# अगस्त्य

लेखक

**प्राचार्य डॉ. अनिल सहस्त्रबुद्धे**

हिंदी अनुवाद

**विनायक पवळे**

मोरया
प्रकाशन

**अगस्त्य**

**(Agastya)**

अनिल सहस्रबुद्धे लिखित मराठी 'अगस्त्य' उपन्यास का हिंदी अनुवाद

**अनुवादक**

विनायक रघुनाथराव पवळे

३५, इंद्रप्रस्थ कॉलनी, पाईपलाईन रोड,

सावेडी, अहमदनगर ४१४००३

मो. ८२३७६२३६३०

**प्रकाशक / मुद्रक**

दिलीप महाजन / गौरी देव / योगिनी आठल्ये

मोरया प्रकाशन

'अनुश्री', ४०/१०, एरंडवणा, पुणे ४११०३८

मो. ९२२३५०१७९७, ८६००१६६२९७

६, 'दिव्यकुंज'. सुदर्शननगर, R10 एम.आय.डी.सी.,

डोंबिवली (पूर्व) ४२१ २०३

email : info@moryaprakashan.com

web. www.moryaprakashan.com

**प्रथमावृत्ती : २०२२**

© **सौ. उषा अनिल सहस्रबुद्धे**

ISBN 978-93-92269-20-2

**अक्षरजुळणी** : श्रीपाद कुलकर्णी

**मूल्य ४५०/–**

महर्षि अगस्ति भक्तोंको लिए...

# अनुवादक का मनोगत

मराठी के ज्येष्ठ साहित्यिक आदरणीय प्राचार्य डॉ. अनिल सहस्त्रबुद्धे जी के उपन्यास का अनुवाद मैं करूंगा, ऐसा मैंने कभी सोचा नहीं था। लेख़क, कवि, शोधकर्ता, डॉ. अनिल सहस्त्रबुद्धे जी ने कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, ललित लेखन, आलोचनात्मक शोध, वैचारिक लेखन जैसे साहित्य के हर क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई हैं। डॉ. सहस्त्रबुद्धे जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य को समर्पित कर दिया हैं और लगभग छह दशकों की गौरवमय साहित्य यात्रा के पश्चात वे आज भी पूर्ववत गतिशील हैं। इस वर्ष वे अपना अमृतमहोत्सवी वर्ष मना रहें हैं। अब तक उनकी ७५ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्हें साहित्य परिषद सहित विभिन्न संस्थानों से कई पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। उनके एक उपन्यास का अनुवाद करने में मुझे जितना समय लगा, उसी समय में उनकी पांच पुस्तके प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

प्रस्तुत उपन्यास 'अगस्त्य' एक पौराणिक उपन्यास है। यह महर्षि अगस्त्य के जीवन पर आधारित चित्रण है। महर्षि अगस्त्य की गणना सप्तर्षियों में की जाती हैं। उन्हें मंत्रद्रष्टा ऋषि कहा जाता हैं, क्यों कि उन्होंने अपने तपस्या काल में उन मन्त्रों की शक्ति को देखा था। उपन्यास की विषयवस्तु बहुत व्यापक और गहन है। अंतरिक्ष-समय का घेरा अनादि अनंत है। एक विश्वात्मक व्यक्ति के वैश्विक योगदान को पृष्ठों की संख्या में सीमित रखकर उसे मनोरम तरीके से व्यक्त करने के लिए, लेखक को विषय वस्तु में समरसता से डूबे रहने की आवश्यकता होती है। इस पौराणिक उपन्यास का लेखन इतने व्यापक तरीके से किया गया है कि, ऐसे लगता है जैसे स्वयं महर्षि अगस्त्य ने कहा और लेखक ने इसे शब्दों में पिरोया।

कुछ दिन पहले अहमदनगर कॉलेज के हिंदी विभाग की प्रमुख डॉ. ऋचा

जी शर्मा के हिंदी काव्य संग्रह 'द्रौपदी क्यों बटी तुम' का मराठी में अनुवाद करने से मेरा आत्मविश्वास बढ़ गया था और बाद में मैंने कवयित्री ऋता ठाकूर के मराठी काव्य संग्रह 'गुलमकाई' का हिंदी में अनुवाद करने का प्रयास किया, तो डॉ. सहस्रबुद्धे जी ने उनके 'अगस्त्य' उपन्यास की पुस्तक मुझे दी और कहा कि, कविताओं का अनुवाद किया हैं, तो अब इस उपन्यास का भी हिंदी में अनुवाद करके देख लेना। मैंने भी बड़े उत्साह से उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

किन्तु जब वास्तविक अनुवाद कार्य आरम्भ हुआ, तब मुझे प्रतीत हुआ कि यह कार्य उतना सहज नहीं है जितना लगता है। उनके प्रभावशाली लेखन और मराठी भाषा की विशेषताओं से संपन्न एवं समृद्ध कार्यों का अनुवाद करना चुनौतीपूर्ण कार्य था। एक तो यह उपन्यास एक मिथक है, इसलिए मुझे सावधान रहना था कि, अरबी, फारसी तथा उर्दू आदि भाषाओं के शब्दों का उपयोग ना हों। इसलिए मैंने कुछ पुराने हिंदी में लिखे पौराणिक उपन्यास पढ़ें, रामायण, महाभारत जैसे धारावाहिक तथा कुछ पौराणिक हिंदी फ़िल्में भी देखी। फिर भी अनुवाद की कुछ सीमाएं अटल होती हैं इसका अनुभव नित्य होता रहा। मुझे थोड़ी निराशा हुई, मन में एक तनाव था परन्तु डॉ. सहस्रबुद्धे जी के निरंतर प्रोत्साहन से अनुवाद संभव हो पाया और इसलिए मैं इस अनुवादित उपन्यास को पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए रोमांचित हूँ।

अनुवाद कार्य पूर्ण होते होते मैंने पाया कि, एक विलक्षण आत्मविश्वास मुझ में विकसित हुआ है। यह मेरा सौभाग्य हैं कि, डॉ. अनिल सहस्रबुद्धे जी ने मुझे उनके इस मराठी 'अगस्त्य' उपन्यास का हिंदी अनुवाद के माध्यम से एक अत्यंत महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उत्तरदायित्व निभाने का जो अवसर प्रदान किया, उसके लिए मैं उनका ह्रदय से आभारी हूँ।

इस कार्य में जिनसे समय समय पर मुझे जो परामर्श और सहयोग मिलता रहा, उनके लिए आभार व्यक्त किए बिना मैं नहीं रह सकता। अतएव मैं डॉ. ऋचा शर्मा, ऋता ठाकूर, डॉ. मछिन्द्र मालुंजकर एवं डॉ. आनंद त्रिपाठी जी का आभार प्रदर्शित करता हूँ। महर्षि अगस्त्य के जीवन पर आधारित, हिंदी में अनुवादित 'अगस्त्य' उपन्यास का यह प्रथम संस्करण हिंदी पाठकों तक ले जाने में जिनका महत्वपूर्ण योगदान रहा वे 'मोरया' प्रकाशन, (पुणे/डोम्बिवली) के श्री. दिलीप जी महाजन, सुश्री. गौरी जी देव एव् सुश्री. योगिनी जी आठल्ये का

मैं हृदय से आभारी हूँ। श्रीपाद जी कुलकर्णी का भी सहयोग मिलता रहा, उनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ। यूँ तो धन्यवाद हेतु मेरे शब्दों का सामर्थ्य बड़ा सीमित है, अतः उपरोक्त सभी स्नेहीजनों के ऋण में रहना ही मेरे लिए गौरव एवं असीम आनंद की बात होगी। और अंत में मुझे यहाँ निश्चित रूप से स्वीकार करना होगा कि, मेरी पत्नी विजया, पुत्री मधुलिका एवं पुत्र अंबरीश, इन तीनों के सहयोग एवं प्रेरणा ने ही मुझे लिखने के लिए प्रेरित किया।

**– विनायक रघुनाथराव पवळे**

*

पतित पावनी माता गंगा के पवित्र स्फटिक निर्मल गंगाजल में प्रभु रामचंद्र स्नान कर रहे थे। माता गंगा के कण कण में अनेकों देवी देवता विराजमान है। नदी का स्वच्छंद बहता हुआ स्वच्छ और निर्मल जल का प्रत्यक्ष अनुभव प्रभु को हो रहा था। दुसरी ओर भूमि पुत्री, गौरांगी, पुलकित सीता को स्वयं माता गंगा नहला रही थी। लक्ष्मण भी उत्साहपूर्ण जलक्रीडा का आनंद ले रहे थे। प्रभु रामचंद्र के स्पर्श से माता गंगा धन्य हुई। उसका पवित्र जल और अधिक पवित्र हुआ। गंगा के निर्मल जल को मानो विमलता प्राप्त हुई। इसका अनुभव काल, ब्रह्मांड और कैवल्य को भी हुआ। प्रभु श्रीराम, जानकी और लक्ष्मण ने गंगाद्वार सम्मुख होकर गंगाजल से गंगाजल को अर्ध्य दिया। गंगाद्वार से शब्द स्फुरित हुए–

'ॐ अगस्त्यै नमः। कृण्वंतो विश्वम् आर्यम्।'

''हे सूर्यप्रकाशी राम, अगस्त्यों के मार्ग से समग्र विश्व सूर्य तेजस्वी और ज्ञानसमृद्ध, जीवनसमृद्ध कर! हिमाच्छादित शिखरों, घने अरण्यों, प्रशस्त जलौघों से तपोबल संपादित करने वाली गुफाओं से प्रतिध्वनि प्रकट होते रहे,

'ॐ अगस्त्यै नमः। कृण्वंतो विश्वम् आर्यम्।'

समग्र विश्व मंत्रमुग्ध हो रहा था। माता सीता रोमांचित हुई। लक्ष्मण अपने नेत्र विस्फारित कर उन प्रतिध्वनियों को सुन रहे थे। प्रभु रामचंद्र विश्वव्यापक विराट रूप में समग्र सृष्टि को दर्शन दे रहे थे। नारदमुनि ने कौतुहलवश इस दिव्य दर्शन को जानने का प्रयास किया; किन्तु वे कुछ अस्वस्थ प्रतीत हो रहे थे।

पूर्ण चैतन्यमय, शक्तिस्वामी प्रभु रामचंद्र ने सीता और लक्ष्मण के साथ शिव जी के दर्शन किए। उन्होंने गंगाद्वार पर विशाल वृक्ष की छाया में कुछ समय के लिए विश्राम किया। माता सीता प्रभु की मुद्रा को निहार रही थी।

''स्वामी, आप विचार मग्न हैं? क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकती हूँ?'' सीतादेवी ने पूछा।

''हे तेजस्विनी, तुम्हारे मन में चल रहा प्रश्नों का तूफान मेरे भी मन में मंडरा रहा है। तुम निःशंक होकर पूछो!''

''ये अगस्त्य कौन है? उनका मार्ग क्या है?'' सीतादेवी ने पूछा।

''हे भार्ये, अगस्त्य एक सृष्टिसमर्पित महर्षि हैं, जिन्होंने सहस्त्रों वर्ष तपस्या करने के पश्चात काल और ब्रह्मांड की शक्तियों को संभ्रमित कर, लोक कल्याण के लिए उन्हे आमंत्रित किया। परंतु यह जानकारी तो मुझे और लक्ष्मण को गुरुदेव वसिष्ठ से प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त मुझे भी इस संबंधी अधिक जानकारी नहीं है।

''तो क्या उन्हीं के मार्ग से जाना है?'' सीतादेवी ने संदेह से पूछा।

''हाँ, वह मार्ग उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम, जंबुद्वीप को ज्ञानमय सेतुओं से जुडा है। संभवतः उस मार्ग से जाने में कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए।''

''आप तो सर्वसाक्षी हैं, मैं और लक्ष्मण अगस्त्य मुनि के विषय में और अधिक जानने के लिए उत्सुक हैं। मैंने सत्य कहा ना लक्ष्मण!''

''जी हाँ माते, कदाचित अगस्त्य मुनि के मार्ग से जाने का समय समीप आया हैं। आप हमारा समाधान कीजिए भ्राताश्री!'' लक्ष्मण ने श्रीराम से अनुनय किया।

''यहाँ से कुछ दूरी पर अगस्त्यमुनि ग्राम है, हम वहाँ जाते है। कुछ समय वहाँ बिताएंगे, तो हमें अधिक जानकारी प्राप्त होगी।'' प्रभु श्रीराम ने कहा।

सीतादेवी और लक्ष्मण का समाधान नहीं हुआ। किन्तु प्रभु रामचंद्र के सम्मुख वे कुछ बोल नहीं पाएं।

विशाल वृक्ष के नीचे दिनभर चर्चा होती रही। संध्या की नीरव बेला में प्रभु रामचंद्र ने लक्ष्मण से कहा,

''हम कल प्रातःसमय स्नान के पश्चात अगस्त्य मुनिग्राम की ओर प्रस्थान करेंगे।'' प्रभु रामचंद्र का निश्चय देख दोनों विचारमग्न हुए। लक्ष्मण ने फलाहार का प्रबंध किया। सभी निःशब्द थे। अगस्त्य मुनिग्राम प्रभु श्रीरामचंद्र की प्रतीक्षा में लीन हो रहा था।''

*

कपूर्रगौर हिमभूमि पर कैलाश क्षेत्र में जब नारदमुनि के पद स्थिर हुए, तब उनके मन में एक जिज्ञासा से दूसरी जिज्ञासा जुडने लगी।

‘ॐ अगस्त्यै नमः। कृण्वंतो विश्वम् आर्यम्।’

प्रभु रामचंद्र को ऐसा आदेश देने का क्या प्रयोजन हो सकता है? राक्षसों और दानवों के संहार का कार्य तो श्रीरामचंद्र जी ने वसिष्ठ और विश्वामित्र की आज्ञा से इसके पूर्व पूरा किया ही था। फिर यह सब क्या है? नारद जी के मन में विचारों का तांडव चल रहा था। कैलाश पर दृष्टि पडी तो श्रीगणेश, नंदिकेश्वर, कार्तिकेय, उमा-महेश और समस्त कैलाश आश्रित शिवगण नर्तन, वादन, गायन में तल्लीन थे। गंगा का बहाव अतीव आनंद से उछल कर बह रहा था। कैलाश पर आनंद की मानो दीपावली मनाई जा रही थी। यह देख कर नारद जी कुछ क्षण के लिए स्तंभित हुए। लय-ताल-सूर में वे भी खो गए। वीणा और करताल ने साथ दिया और शिवसंगीत में नारद जी को श्रीराम प्रभु का विस्मरण हुआ।

सहसा शिवसखी उमा का ध्यान नारद की ओर गया। नृत्यमोहित पार्वती उस स्थिति में भी अपनी हँसी रोक नहीं पाई। उनके सुहास्य मुखकमल पर नटखट सी छटा फैल गई। शिव जी ने भाँप लिया था कि, पार्वती का नृत्य से ध्यान विचलित हुआ है।

‘‘प्रिये, नृत्यमग्नता से भी कहीं विस्मयकारक हुआ है क्या?’’ शिवजी के इस अचानक प्रश्न से उमा और भी खिलखिला कर हँसने लगी। उनका पदन्यास ठहर गया और उन्होंने नारद की ओर अंगुलि निर्देश किया।

त्रिकालज्ञ, जगत्पिता शिवजी ने भी नृत्य को भुलाकर सोत्सुक विस्मय से सामने देखा। नारद श्री गणेश, नंदी और कार्तिकेय के साथ नृत्योत्सव में अपने आप को खो चुके थे। नारद के सान्निध्य में शिवगण अधिक उल्हास से इन तीनों के आसपास नृत्य कर रहे थे। नर्तन, वादन एवम् गायन से गूँज उठे शिवनिनाद से समग्र कैलाश आनंदोत्सव में बेधुंद हो रहा था कि अचानक कार्तिकेय ने शंखध्वनि नाद किया। किसी अभ्यागत के आगमन की सूचना शंखध्वनि द्वारा दी गई। सब के नेत्र शंखध्वनि के पश्चात भी नृत्य में मग्न नारद जी पर टिके थे। कार्तिकेय, श्रीगणेश तथा नंदिकेश्वर शीघ्रता से आगे बढे। शिवपार्वती सकौतुक अपने स्थान पर विराजमान हुए।

‘‘क्षमस्व, हे ब्रह्मर्षि नारदमुने, हमारा अभिवादन स्वीकार करें।’’ जैसे ही

श्रीगणेश के शब्द नारद जी ने सुने, उन्होंने अपने आपको संभाला?

''नारायण नारायण!'' अपने आपसे ही संकोच करते हुए उन्होंने अभिवादन का स्वीकार किया।

''त्रिकालज्ञ, विश्वसंचारी, ब्रह्मर्षि नारद जी की जय हो!'' जैसे ही नंदिकेश्वर ने घोषणा की, नारदजी की जयजयकार से कैलाश हिल उठा।

''हे देवर्षे, आपका स्वागत है। आपके आगमन का शुभ समाचार हमने शिवपार्वती तक पहुँचा दिया है, वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'' श्री गणेश, कार्तिकेय और नंदिकेश्वर नारदमुनि को आदरपूर्वक श्री उमा महेश जी के पास ले गए।

''नारायण नारायण!'' नारदमुनि ने महादेव को त्रिवार वंदन किया।

''आइए, आइए नारदमुनि, आप आसन ग्रहम करें। आपके आगमन से कैलाश अपूर्व आनंद से खिल उठा है।'' नारदमुनि का अभिवादन स्वीकारते हुए महादेव ने कहा।

''नारायण नारायण! हे शिवप्रभो, कैलाश पर यह नर्तन,वादन, गायन किस कारण हो रहा है? ऐसा कौन सा उत्सव मनाया जा रहा है? नारद ने प्रश्न किया।

''सखी पार्वती अंबिका की इच्छापूर्ति का संकल्प हो रहा है।'' शिवजी ने कहा।

''मैं कुछ समझा नहीं!'' नारद ने तनिक संदेह से पुनः प्रश्न किया।

''हे नारदमुने, क्या आपने गंगाद्वार पर श्रीरामचंद्र को जो आज्ञा हुई, वह सुनी? आप उसी विषय में अधिक जानने के लिए ही कैलाश आए हैं न! मैंने सत्य ही कहा ना मुनिवर? और फिर भी आप कुछ समझ में नहीं आया कह रहे है। हे मुनिवर आप तो त्रिकालज्ञानी, सर्वसाक्षी है। विधाता का लिखा आप जानते हैं; फिर भी यह संदेह क्यों?

''नारायण नारायण, शिवप्रभो, आपकी विशेषता मैं जानता हूँ, जो आप चाहते हैं, वह मेरे मुख से सुनना आपका स्वभाव हैं। किन्तु इस समय आप ही मुझे विस्तार से बताएंगे। नारद जी ने हठ किया।

''उमा अपने इस पुत्र की इच्छा पूरी करो।'' शिवजी ने माता पार्वती को आज्ञा की।

‘‘हे नारदमुने, आप सर्वज्ञ हैं। देवता, मनुष्य सभी त्रिदेवों के पुत्रपौत्र हैं। ब्रह्मदेव ने मुझ से उत्पन्न त्रिगुणात्मक सत्व, रज, तम गुणों से युक्त प्रकृति को संस्कृति का रूप देने का निश्चय किया। परंतु तमोगुण के कारण आर्य भी अनार्य हुए। आदिवासी भगवान शिवशंकर ने विश्व के ऐसे अनार्यों को पुनश्च आर्य करने के लिए श्री गणेश को जन्म दिया और समग्र ब्रह्म उनके रूप में विष्णुमय होकर बिना किसी बाधा से विश्व को प्रबुद्ध करने लगे। परंतु श्री गणेश दैवीय श्रेणी में ही कार्य करते रहें। इसके कारण व्यवहार परिवर्तन से आशीर्वचन और कार्यसिद्धि की ओर ही अधिक सूक्ष्म रूप में देखा गया। अमानवी पंचतत्त्वों से शक्ति निर्माण करने के उद्देश्य से भगवान शिवशंकर ने अपने कालरूप तेज सहित मित्र और वरुण की सहायता से अयोनिसंभव पुत्र को जन्म दिया। अगस्त्यमुनि ही वह पुत्र है! जहाँ कहीं भी शिव और शिवगणों का संचार होता है, वहाँ से तमोगुण को नष्ट करके सात्विकता और तेजस्विता से शिवगणों को आर्य बनाने का दायित्व अगस्त्यों पर है। उन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन षड्रिपुओं से प्रादुर्भुत अनार्यो, अज्ञानरूपी अंधकार से पीडित जीवों का उद्धार करने के कार्य को स्वीकार किया है। उन्होंने असुरों का नाश करने के लिए अथक परिश्रम किए। तथापि महर्षिरूप अवस्था में कार्य करने में कुछ मर्यादा आती रही और आधिदैविक स्वरूप का कार्य हुआ। तमोगुण का समूल नाश नहीं हो सका। तमोगुणों को नष्ट करने का कार्य युगों तक करना होगा। इसलिए मानव रूप में श्रीरामचंद्र को यह दायित्व सौंपा है। अगस्त्य शिवशक्तिमान तो थे ही, उनका मन वरुण की भांति कृपालु और सूर्य समान तेजस्वी था। उन्होंने जंबुद्वीप और पुरे विश्व में संचार किया। और सभ्यता, ज्ञानमयता, श्रमप्रतिष्ठा और शक्ति की स्थापना की। श्रीलंका से लेकर विंध्याद्रि तक और कई प्रायद्वीपों पर अपने प्रबुद्ध और तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रेरित करने का प्रयास किया। तथापि निरआर्य, तमोगुणी दानव, दैत्य उत्पन्न होते रहे। मनुष्यों, देवताओं और दानवों के लिए अपार करुणा से कार्यमग्न, अगस्त्य अमानवी-मानवी श्रेणी के हैं। अगस्त्यों को तारापुंज में अटल स्थान प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने अमानवीय तेज को तारापुंज में अनंत काल तक संचित करके मानव रूप में आश्रमवास स्वीकार किया। गुरुकुल में गृहस्थाश्रम के साथ-साथ उन्होंने वेदपठन एवम् मार्गदर्शन की प्रथा को बनाए रखा। अगस्त्य अपने तेज का उपयोग प्रभु रामचंद्र की सहायता करने के लिए

कर पाएंगे और तमोगुणों का नाश होकर कैलाश की भांति स्फटिक विमल जीवन जंबुद्वीप मे पनपेगा। मुझे इस अवनि को, सृष्टि को सात्विक और पवित्र बनाना है। प्रभु रामचंद्र ने मेरी आकांक्षाओं को पूरा करने का संकल्प स्वीकार किया है।'' जब माता पार्वती सकौतुक शिवशंकर के तेज से निर्माण हुए मित्रावरुणी अगस्त्यों की कथा ब्रह्मर्षि नारद को सुना रही थी, तब समग्र कैलाश अगस्त्यमुनिग्राम और कोदंडधारी प्रभु रामचंद्र पर पुष्पवृष्टि कर रहा था। ब्रह्मर्षि नारद, ब्रह्मचैतन्यमयी होकर भूत-वर्तमान-भविष्य के साथ ब्रह्मांड और पृथ्वी पर हो रही घटनाओं में तल्लीन हुए। उन्हें जंबुद्वीप आर्यावर्त्त होते हुए दिख रहा था। नारद श्री प्रभु रामचंद्र से मिलने के लिए आतुर हुए थे। उन्होंने शिव जी को प्रणाम किया और 'नारायण नारायण' प्रभु का नाम लेकर चल दिए।

सखी पार्वती अंबिका, सकौतुक नारद की ओर देख प्रफुल्लित होकर शिवमय हुई। शिवजी प्रसन्न हुए। कार्तिकेय ने शंख ध्वनि के साथ विजयनाद किया। चतुरानन अर्थात ब्रह्मा सकौतुक दृष्टि से भावुक होकर चैतन्य का प्रचलन अनुभव कर रहे थे। अगस्त्यमुनिग्राम की ओर आकाशस्थ देवता, लाखों तारे, काल, ब्रह्मांड और कैवल्य की दृष्टि स्थिर हुई थी। सूर्यवंशी, विष्णुतेजस्वी प्रभु रामचंद्र अगस्त्यों को जानने के लिए उत्सुक थे। माता सीता, लक्ष्मण जी के साथ समग्र विश्व अगस्त्यों की विजयगाथा श्रवण करने के लिए उत्कंठित हुए थे।

*

जैसे ही अगस्त्यों के आश्रम सम्मुख कुछ ही दूरी पर दाशरथियों का आगमन हुआ तो अगस्त्य आश्रम के कुछ शिष्यगण पुष्पमाला, जलकुंभ लेकर श्रीराम जी के स्वागत हेतु आगे आएं। उन्हें देखकर प्रभु रामचंद्र को आश्चर्य हुआ।

''आप अगस्त्य शिष्यगण हो?'' श्रीराम ने पृच्छा की।

''हाँ प्रभो!''

''दशरथ पुत्र राम, मेरी भार्या सीता, एवम् भ्राता लक्ष्मण आपको वंदन करते हैं। स्वीकार करें।'' जैसे ही तीनों उन्हें वंदन करने लगे, शिष्यगण ने कहा,

''हे प्रभो, हम आपसे वंदन स्वीकार करने के पात्र नहीं। हमें क्षमा करें। आप साक्षात भगवान विष्णु के मानवीय अवतार हैं, यह हमें ज्ञात हैं। हम अगस्त्यमुनि

की आज्ञा से आपके स्वागत हेतु आए हैं। कृपा करके स्वीकार करें।'' शिष्यगण ने प्रभु रामचंद्र के चरण कमल पर गंगाजल का सिंचन किया। कमलपुष्प माला अर्पित कर चरणस्पर्श किया। तत्पश्चात माता सीता एवम् लक्ष्मण का स्वागत कर उन्होंने तीनों को आश्रम में विश्राम करने के लिए अनुरोध किया। प्रभु रामचंद्र ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की, तथा वे तीनों शिष्यगण के साथ आश्रम की ओर निकलें।

अगस्त्यमुनि ग्राम पर्वत की गोदी में एवम् घने वृक्षों की छाया में बसा हुआ था। मंदाकिनी जलौघ सन्निध अगस्त्यमुनि का विस्तीर्ण आश्रम बहुत ही लुभावना था। पुष्पसुगंध से आश्रम का परिसर अतिथियों को आकर्षित करता था।

''क्या अगस्त्य मुनिवर आश्रम में ही हैं?'' प्रभु श्रीराम ने पूछा।

''हाँ प्रभो, मुनिवर गोत्रज अगस्त्यमुनि, इस आश्रम के अधिष्ठाता आश्रम में ही हैं।'' शिष्यों ने उत्तर दिया।

''हम मान्दार्य अगस्त्यों के दर्शन पाने के लिए अति उत्सुक हैं।'' प्रभु ने कहा।

''क्षमा करे प्रभु, पूजनीय मान्दार्य अगस्त्य दक्षिणपथ दिग्विजय करने हेतु जाकर कई युग बीत चुके हैं। ऐसा कहा जाता है कि जंबुद्वीप के मध्य अमृतवाहिनी के तट पर उनका उत्तरकालीन वास्तव्य रहा हैं!''

प्रभु रामचंद्र अंतर्मुख हुए। आगे बिना कुछ पुछे वे आश्रम की ओर चलने लगे।

अगस्त्य मुनिग्राम समीप ही अगस्त्य आश्रम होते हुए भी, घने वृक्ष लताओं से ढका हुआ था। हिमालय श्रृंखला की उँची चोटियाँ अपने धवलशीर्ष उठा कर प्रभु के दर्शन करने का प्रयास कर रही थी। शुकसारिका सहित कई प्रकार के पक्षी आनंद विभोर होकर वृक्षों की डालियों से कूद कर, छलांगे मार कर प्रभु श्रीराम का अभिवादन करते हुए उनकी मधुर आवाजे आश्रम परिसर में गुंज रही थी। विभिन्न रंग-बिरंगे फूलों के मनमोहक तोरण वृक्षलताओं के आधार से लक्ष्मीनारायण के स्वागत हेतु मानो मंडप सजा रहें थे। धवल मोरों ने अपने पंख गोल घेरे में उपर उठाकर फैला दिए थे। उन्होंने नृत्य आरंभ कर दिया था। पंख फैला कर नाचते हुए देख कर ऐसा लगता था मानो उन्होंने हीरों से जडी शाही पोशाक पहनी हो। भालू, खरगोश, बंदर बहुत आनंदित थे। आश्रम के प्रवेश द्वार

पर अगस्त्य शिष्यों ने रंग-बिरंगे फूलों से पथ को सुशोभित किया था। गोत्रवान, पीठासीन मुनि प्रभु श्रीराम के स्वागत के लिए स्वयं प्रवेश द्वार तक आए थे। उनका इस तरह प्रवेश द्वार तक आना शिष्यों के लिए कौतुहल का विषय था।

प्रभु रामचंद्र ने प्रसन्नता पूर्वक भार्या सीतादेवी एवम् परछाई की भांति साथ निभाने वाले भ्राता लक्ष्मण के साथ पीठाधीश अगस्त्यों के चरकमलों को स्पर्श कर उन्हें विनम्रता से अभिवादन किया। मुनि अगस्त्य ने उन्हें प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। 'यशोमान भव!' जब यह हो रहा था कि, समूचे आश्रम में तथा आकाश में शब्द गुँजे,

'ॐ अगस्त्यै नमः। कृण्वंतो विश्वम् आर्यम्।'

घोषणाओं के प्रतिध्वनि बारंबार प्राणि-पक्षियों के गूँज से प्रतिध्वनित होते रहे। अगस्त्य मुनि प्रसन्न थे। प्रभु रामचंद्र, सीता और लक्ष्मण गंभीर होकर विचारमग्न हुए।

*

एक विशाल कुटिया में प्रभु रामचंद्र के निवास का प्रबंध किया गया था। कुछ शिष्यों को विशेष रूप से उनकी सेवा के लिए नियुक्त किया था। प्रभु रामचंद्र ने विनयपूर्वक उस शिष्य सेवा को अस्वीकृत किया। मुनि अगस्त्यों ने भी उनकी भावनाओं का सम्मान किया। प्रभु ने रात्रि को सीता और लक्ष्मण के साथ सुरुचि भोजन का आस्वाद लिया। गोशाला के शुभ्र गो माता का दूध प्राशन कर प्रभु प्रसन्न थे। शयनपूर्व प्रार्थना के लिए प्रभु विशेष अतिथि बन कर उपस्थित रहें। अगस्त्यों ने अपने शिष्यों को राम-लक्ष्मण ने वसिष्ठ, विश्वामित्र की सहायता करके किस प्रकार राक्षसी प्रवृत्ति से छुटकारा पाया, इसका महिमामय वर्णन किया। सभी से अनुज्ञा लेकर प्रभु, लक्ष्मण-सीता के साथ विश्राम करने के लिए अपनी कुटिया में लौट आए। वनवास की कठोर व्रतस्थता प्रभु रामचंद्र के आचरण में स्पष्ट प्रतीत हो रही थी।

प्रभु रामचंद्र के साथ माता सीता से विदा लेकर लक्ष्मण ने कुटिया के बाहर प्रशस्त ओसारा में अपनी शय्या बिछाई। दिनभर की अद्‌भुत और सुखद घटनाओं से शेष महाराज लक्ष्मण बहुत संतुष्ट थे। समग्र आश्रम रात्रि के अंधकार

में निद्राधीन हुआ। आकाश में स्थित ग्रह, तारे भविष्य की कल्पना कर रहे थे। एकांत में माता सीता ने प्रभु से पूछा,

‘‘नाथ, हमारा इस आश्रम में कब तक निवास होगा? मैं यहाँ कुछ तनाव अनुभव करती हूँ।

‘‘वह क्यों?’’

‘‘हे प्रभो, आपको निरंतर अगस्त्य मार्ग से जीवन यात्रा करने का आग्रह किया जा रहा है!’’

‘‘हाँ प्रिये, और यही मेरा जीवन कार्य है। मुझे इसके लिए तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है।’’

‘‘हे नाथ, मैं तो आप ही के प्रति समर्पित हूँ।’’

‘‘नहीं प्रिये, तुम्हारा केवल समर्पित भार्या, इतना ही रूप मुझे अभिप्रेत नहीं है।’’

‘‘फिर?’’

‘‘तुम सृष्टि के चराचर की माता हों। उनके कल्याण के लिए तुम्हें पर्वतों, जंगलो और नगरों की खोज कर कल्याणप्रद व्रत करने होंगे। गत अवतार के कार्य पूर्ति के लिए हम दोनों का शेष के साथ जन्म हुआ है। समस्त मानव जाति का कल्याण और मनुष्य को सात्विकता के शिखर पर ले जाकर उसे आर्यावस्था प्राप्त कर देने के लिए हमारा यह अवतार है। तुम्हें कई परीक्षाओं से गुजरना होगा। मानव अस्तित्व की अपनी सीमाएँ हैं। परंतु मर्त्य के मार्ग से इस अवस्था से ही कैवल्य तक पहुँचा जा सकता है। जो देवताओं के लिए संभव नहीं है वह मनुष्य के लिए संभव है। मानव पंचतत्वात्मक है। उनकी एकत्रित सात्विकता से ही कैवल्य की अवस्था हैं। यह जब विकराल हो जाती हैं, तो कैवल्य, काल तथा ब्रह्मांड का अस्तित्व ही विपत्तियों से घिर जाता है। यह प्रलय नही होता, अपितु भयानक अंधकार की अवस्था होती हैं। इस पर यदि विजय पाना हो तो हमें मानवीय तेजस्विता को चरम सीमा पर ले जाना होगा। तुम शक्तिरुपिणी तो हो ही, किन्तु तुम विश्व माता भी हो। इन शक्तियों के साथ तुम्हें मेरी सहायता करनी होगी।’’ प्रभु रामचंद्र ने बडी अपेक्षा से माता सीता की ओर देखा।

‘‘हे नाथ, वह तो आपके ही अधीन है। किन्तु मानव कल्याण के लिए लोकोत्तर कार्य कैसे करें? और अगस्त्य का मार्ग क्या है, यह आप मुझे

समझाइए।''

मध्य रात्रि तक कैवल्य का शक्तिरुपिणी के साथ संवाद होता रहा। अगस्त्यमुनि का विश्वकल्याण का विचार ही मानो राममुख से प्रकट हो रहा था। रात्रि के गर्भाशय में विश्वकल्याण का गर्भ विकसित हो रहा था।

*

उषा ने प्राची गगन के द्वार खोल दिए। आश्रम जाग गया। आश्रम की शिष्या जलौघ से जलकुंभ लेकर आश्रम की ओर आ रही थी। पक्षियों के कलरव से आश्रम गूँज उठा। राम कुटिया ने भी नींद को त्याग दिया था। लक्ष्मण कभी से फल ढूँढने बाहर निकल गए थे। गो शाला से गो दोहन की चीर-चीर आवाज आ रही थी। गो माता वात्सल्य से अपने बछडों को दूध पिला रही थी। माथे पर भरे जलकुंभ के साथ आनेवाली आश्रम की स्त्रियाँ, शिष्या मानो वेदघोष करती थी। पदन्यास करते हुए उनके मुख से सामवेद प्रकट हो रहा था।

**अगस्ती-अगस्ती । मनुष्य की तुम्हें चिंता ।**
**तुम्हारे पुण्य ने । बना दिया उसे देवता ।।**
**अंधकार के उदर में । हुआ कुछ अनोखा ।**
**कैवल्य का चैतन्य । तब काल ने देखा ।।**
**चैतन्य खिल गया । अंतरिक्ष में गिरा ।**
**कोटि-कोटि तारकाओं से । आकाश मंडप घिरा ।।**
**कैवल्य मुस्कुराया । सपनों में खो गया ।**
**सूर्य के तेज से । नवग्रहों को चमकाया ।।**
**कैवल्य के सपने में । हुए पंचतत्त्व निर्माण ।**
**शक्तिमाता ने देखा । सृष्टि का यह विधान ।।**
**पंचमुखी कैवल्य ने । रचा ऐसा खेल ।**
**चराचर में लगा दिया । जनम-मरण का मेल ।।**
**कैवल्य के बन से । माया बाजार रचाया ।**
**माया के बाजार मे । जीवों ने जन्म लिया ।।**
**माया जगत का । यह खेल निराला ।**
**संसार की आसक्ति में । आत्मस्वरूप को भुलाया ।।**

**अहंकार ने घेर लिया । दानव ने जन्म लिया ।**
**अहंकार मिटाने । मान कुंभ से बाहर आया ।।**
**मान का चमत्कार सखी । कुंभ से अगस्ती उभरा ।**
**मनुष्यत्व को रख संभाल । कहे अगस्ती तारा ।।**

उषःकाल की शीतल प्रसन्नता को, भरे जलकुंभ ले जानेवाली ललनाओं के मुख से निकला चिरंतन पुण्यमयी वेदघोष आवाज देकर अगस्त्य मुनिग्राम का वातावरण कानों को पावन करते हुए, मन को जागृत कर रहा था, और कर रहा था।

**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**

चराचर को चैतन्यमय करने की शक्ति इस सामवेद में थी। प्रभु रामचंद्र और सीता माता के कान अगस्त्य कथा श्रवण करके तृप्त हो रहे थे। प्रभु रामचंद्र को इन अपौरुषेय साहित्य से अगस्त्य कथाओं को झरते हुए देख बडा आश्चर्य हुआ। विश्व निर्माण के वर्णन से प्रभु अंतर्मुख हुए।

''हे जानकी, ब्रह्मांड, कैवल्य और काल इन अवस्थाओं की जानकारी इन साधारण मनुष्यों तक कैसे पहुँची होगी। मौखिक परंपरा से कितने सहज भाव से सृष्टि का रहस्य इन गृहिणीयों के होठों पर आता हैं।''

''हे नाथ, मायाबाजार का व्यवस्थापन करने का भी क्या कारण है? यद्यपि यह सत्य है कि, माया मिथ्या है, तो मानवीय गुणात्मकता से माया के झूठे अस्तित्व को संभालने के लिए प्रत्यक्ष ईश्वर को इतनी दौडधूप करने की क्या आवश्यकता है? सीता ने पृच्छा की।

''हे अर्धांगिनी, तुम्हारा प्रश्न वही हुआ, जैसे जीव मिथ्या है, या आत्मा मिथ्या है। मर्त्य लोक के जीव नश्वर होते है। जन्म के पहले जीव कहाँ था और मृत्यु के पश्चात वह पंचतत्त्वों में क्यों विलीन हुआ? जन्म और मृत्यु के बीच का उसका अस्तित्व किस कारण ज्ञात हुआ? आत्मतत्व से! परंतु आत्मतत्त्वों का अस्तित्व जीव के बिना कैसे अनुभव किया जा सकता है? इसलिए जीव का परिपालन यही आत्मा की पूजा होती है। तथा माया का परिपालन यही कैवल्य की पूजा है। माया को संभालना तो अनिवार्य है। उसे संभालकर विश्वक्रीडा की अनुभूति प्राप्त करनी होती है। तत्पश्चात ही ब्रह्मांड, कैवल्य और काल का अस्तित्व अनुभव होने लगता है। माया में रहने वाले प्राणियों का अंतिम लक्ष्य

कैवल्यमय होना, यही होता है। परंतु जीवों को जाग्रत करना, उनके त्रिगुणों को संतुलित करके प्रबुद्ध जीवन जीने के लिए उन्हें प्रेरित करना, यही तो जीवों के लिए सेवा कार्य है। ऋषियों, तपस्वियों एवम् कलाकारों का निर्माण इसी कारण से होता है। वे एक प्रकार से कैवल्य का ही कार्य करते हैं।''

माता सीता प्रभु रामचंद्र के इस भाषण को ध्यान से श्रवण कर रही थी। इतना ही नहीं, आश्रम के पशु-पक्षियों ने भी निःशब्द होकर अपने कान खडे किए थे। हर कोई मंत्रमुग्ध हो रहा था।

''हे नाथ, ये अगस्त्य ग्राम वासी कितने भक्तिभाव से अगस्त्य मुनि का नामकीर्तन करते हैं! अगस्त्यों के जन्म रहस्य को जानने के लिए मैं उत्सुक हूँ।''

जब राम-जानकी का संवाद चल रहा था, तब लक्ष्मण फलशोधन करके आश्रम लौट आए। उन्होंने प्रभु रामचंद्र के सामने रसीले, मधुर एवम् बहुत ही ताजा फल रखें। अगस्त्य आश्रम का प्रधान शिष्य तत्परता से वहाँ उपस्थित हुआ और बडी विनम्रता से उसने प्रभु से उनका कुशल पूछ कर निवेदन किया, कि अगस्त्य मुनि ने उन्हें यज्ञकर्म के अवसर पर एक यजमान के रूप में उन्हें आमंत्रित किया हैं।''

''हे मुनिश्वर, न तो हम आश्रमवासी हैं, न ही गृहस्थ और ना ही राजसिंहासनाधिष्ठित नृप। फिर हम यजमान पद को कैसे विभूषित कर सकते हैं? पूज्य अगस्त्यों को हमारी असमर्थता निवेदन करने का कष्ट करें।'' प्रभु ने कहा।

अगस्त्य शिष्य अगस्त्य मुनि के पास गए। उन्होंने प्रभु का वचन उन्हें निवेदन किया। अगस्त्यों ने फिर संदेश भेजा। संदेश में उन्होंने कहा कि, नित्यकर्म का यज्ञ किसी हेतु पूर्ति के लिए नहीं होता, इसलिए प्रभु के यजमान पद को स्वीकार करने में कुछ भी अनुचित नहीं हैं। अंततः प्रभु श्रीरामचंद्र ने अगस्त्य मुनि की आज्ञा स्वीकार कर अनुमति दर्शाई। प्रभु रामचंद्र माता सीता और भ्राता लक्ष्मण के साथ यज्ञस्थल पर उपस्थित हुएं। अगस्त्यों ने उनका यथोचित स्वागत किया। यज्ञकर्म का संकल्प किया गया और यज्ञ की ज्वाला लपेटे बनकर नृत्य करने लगी। अगस्त्य गुरुकुल यज्ञकर्म में सहभागी होने का सौभाग्य प्रभु को मिला था। यज्ञ की पूर्णाहुति होने पर अग्नि देवता विशेष प्रसन्न थे। यज्ञकर्म की समाप्ति

पर आशीर्वचन हो ही रहा था कि, घोष गूँजा।

''नारायण नारायण!'' नारदमुनि अगस्त्य आश्रम में उपस्थित हुए थे। अगस्त्य मुनि एवम् प्रभु रामचंद्र से मिलने के लिए नारद बहुत उत्सुक थे।

नारदमुनि को देखते ही प्रभु रामचंद्र, माता सीता एवम् भ्राता लक्ष्मण आगे आए और उन्होंने ब्रह्मर्षि नारद को वंदन किया। प्रभु श्रीराम को आशीर्वचन पूर्वक आलिंगन देते समय नारदमुनि की आँखे आनंद से भर आई थी। नारदमुनि ने ऋषि अगस्त्य का भी अभिवादन किया। नारदमुनि के चरण प्रक्षालन पश्चात अगस्त्यों ने उन्हें उनके आगमन का कारण पूछा।

''नारायण नारायण, भगवान शिवपार्वती का आदेश प्रभु रामचंद्र को निवेदन करने हेतु मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।'' नारद जी ने कहा।

''भगवान शिवजी की आज्ञा हमें शिरोधार्य हैं। आप स्वयं उनका आदेश हम तक ले आएं। हम धन्य हैं। भगवन् क्या आज्ञा है, कृपया हमें विदित करने का कष्ट करें। हम आज्ञा का यथार्थ अनुपालन करेंगे।'' प्रभु रामचंद्र ने नारदमुनि को आश्वस्त किया।

''हे प्रभो, अगस्त्य मुनि के जन्मस्थान पर आपका आना, भगवान शिवजी की ही योजना है। प्रकृति के संतुलन की आकांक्षा माता पार्वती के मन में हैं। समक्ष विश्व आर्यमय हों, यह साक्षात परब्रह्म की मनोकामना, माता के मन में अनंत काल से बसी हुई है। इसलिए शिवजी ने शिवतेजस्वी अगस्त्यों को प्रेरित किया। अगस्त्यों ने मानव कल्याण के लिए तथा मानव को तेजस्वी अर्थात प्रबुद्ध एवम् सदाचारी बनाने का कार्य किया। वही कार्य दशानन रावण का संहार करके पूरा करने का उत्तरदायित्व भगवान शिवजी ने आपको सौंपा है।''

''परंतु हे सर्वसाक्षी मुनिवर, दशानन तो महाज्ञानी, शिवभक्त, सूर्यतेजस्वी आर्य ही तो हैं। समग्र विश्व को आर्यमय करने का सामर्थ्य उनमें है।''

''हाँ, यह सत्य है, इसी कारण उमा महेश, भगवान, विष्णु तथा प्रत्यक्ष सृष्टि रचयिता ब्रह्मा दशानन रावण पर प्रसन्न हैं। परंतु हे भगवन्, दशानन रावण अति अहंकारी हो गया है। आपने भी माता सीता के विवाह अवसर पर इसका अनुभव किया हैं। अहंकार उत्पन्न होते ही आर्य प्रवृत्ति नष्ट होती है और अनार्य रूप प्रकट होता है। मानव दानव बन जाता है, यह भी आपको ज्ञात हैं। माता पार्वती को शिवगणों का अहंकार दूर करना हैं। दैत्य, मानव, राक्षस इनके भीतर

का अहंकार नष्ट होने के पश्चात वे सब उनके मूल स्वरूप में अर्थात आर्य रूप में आएंगे और यह कार्य आपके द्वारा हो, यही पार्वती माता की कामना है। भगवान अगस्त्य, परशुराम ने यह कार्य करने का प्रयास किया ही है, तथापि परंपराओं से युगो युगों तक करना हैं, यह भी आपको ज्ञात हैं। इसके लिए ही यह अवतार धारण करने की आपकी प्रेरणा हैं।

''हे श्रीमान नारायण रूप नारदमुने, भगवान शिवजी की आज्ञा हम सभी शिरोधार्य मानते हैं। किन्तु यह कार्य हम कब और कैसे करें? हम तो वनवासी और व्रतस्थ हैं।''

''हाँ प्रभो, इसी कारण आपको अगस्त्य मुनि के मार्ग से जाने की आज्ञा हैं। इसके लिए आपको अगस्त्य मुनि के अलौकिक कार्य को समझना होगा। प्रत्यक्ष अगस्त्यों का मार्गदर्शन तथा सहयोग आपको मिलता रहेगा। अतएव आपकी यात्रा दक्षिण की ओर क्षीरसागर तक होकर आपको लंका नरेश की सुवर्ण लंका तक जाकर दिग्विजय प्राप्त करना हैं।

''हे ब्रह्मांडज्ञानी नारदमुने, क्षमा करें, किन्तु यह अगस्त्य आपसे अपने मन में उत्पन्न आशंका को प्रस्तुत करने की अनुमति चाहता है।''

''कहिए अगस्त्य मुने, आप ही के मार्ग से प्रभु को यात्रा करनी हैं।''

''नहीं, नहीं, मुनिवर, हम तो मात्र अगस्त्य गोत्र गुरुकुल पीठासीन के उत्तराधिकारी अगस्त्य हैं। हमने केवल अगस्त्य महिमा सुनी हैं। अपौरुषेय वाङ्मय में स्थित उनके विचारों की परंपरा हम गुरुकुल में निभा रहे हैं। अतः आप ही आपके मुख से अगस्त्य मुनि की महिमा कथन करने का कष्ट करें।

''हे अगस्त्यमुने, अगस्त्य महिमा अपरंपार हैं, त्रिकालाबाधित है। इसी कारण वह लोकगीतों के माध्यम से परंपरागत प्रचलित हैं। तथापि अगस्त्य महिमा जानने के लिए अपने भीतर के भाव को जगाना होगा। उसके लिए मन, आत्मा तथा शरीर से तपस्या करनी होगी। प्रभु को भी वही करना होगा।''

''हे मुनिवर, अगस्त्यमुनि, अमानवी, शक्तिरूप तथा पंचतत्त्वों के शक्तिशाली प्रतिनिधी थे, यही परंपरागत बताया गया है। आप हमें वह कथा सुनाइए।'' आश्रम कुलपति अगस्त्य ने नारदमुनि से अनुरोध किया।

''हे मुनिवर, आप हम पर कृपा करें। ऋषि अगस्त्य की कथा सुनकर हमें बल प्राप्त करना है। आज प्रातःकाल मुनिग्राम की स्त्रियों के मुख से हमने अगस्त्य

जन्मकथा सुनी और हमारी जिज्ञासा ओर भी जागृत हुई हैं। कृपया कथा निवेदन से हमें अगस्त्यों के ज्ञान का दर्शन करवाइएं।''

''आप सभी अगस्त्य जन्मकथा सुनने के लिए अति उत्सुक है, यह देखकर मैं वह कथा निवेदन करता हूँ। किन्तु उसके लिए मन की एकाग्रता एवम् गंभीरता होना अति आवश्यक हैं। हम अपने शेष सभी कर्मों को पूरा कर भोजन व विश्राम के पश्चात पुनश्च उपस्थित होकर अगस्त्य जन्मकथा सुनेंगे।'' नारदमुनि ने सभी को आश्वस्त किया।

*

ब्रह्मा, विष्णु, महेश एकत्रित मेरुमांदार पर्वत पर विचारमग्न थे। देवता, दानव, मानव, पशु, पक्षी, जलचर, वनस्पति आदि योनि निर्माण करने में प्रजापिता ब्रह्मा सफल हुए थे। ब्रह्मदेव ने सनक, सनन्द, सनातन, सनत्कुमार जैसे ब्रह्मचारी ऋषियों का निर्माण कर सृष्टि के रहस्य का आवरण खोल दिया। तथापि दुख, पीडा, संघर्ष इनका प्रभाव सभी युगों में स्थित था। नारद द्वारा त्रिदेवों को सभी का समाचार मिलता रहा था। मानवी समाज में राज्यों का निर्माण हुआ था। कई कुलों को राजकुल की मान्यता प्राप्त हुई थी। ऋषियों ने राजकुल का पौरोहित्य प्रारंभ करके मानवी समाज को दर्शन शास्त्र, यज्ञसंस्था, देवता, इनका ज्ञान देना आरंभ किया था। किन्तु ब्रह्मदेव ने आरंभ में ही अविद्या का निर्माण किया था, जिसके फलस्वरूप देवता, दानव तथा मानव में इंद्रपद प्राप्त करने के लिए नित्य स्पर्धा होने लगी। त्रिदेवों का इस विषय पर परामर्श चल रहा था कि सहसा नारदमुनि मेरुमांदार पर प्रकट हुए।

''नारायण नारायण! हे त्रिदेव नारद का प्रणाम स्वीकार करें।'' नारद नें शीघ्रता से आकर सभी को वंदन किया।

''देवेन्द्र, भयभीत होकर आपसे मिलने आ रहा है।''

''देवेन्द्र को भयभीय होने का क्या कारण?''

''देवेन्द्र ने दानवों का नाश करने के लिए अग्निदेव तथा मरुद्गणदेव को आदेश दिया था, किन्तु वे खाली हाथ लौट आएं। तारकासुर और लाक्षासुर ने समुद्र में आश्रय लिया है तथा वे देवताओं, ऋषियों एवम् मनुष्यों को प्रताडित

कर रहे हैं। तारकासुर ने तो देवेन्द्र को चुनौती दी है।

''अग्निदेव और मरुत ने उन्हें सौंपा गया कार्य करने से मना क्यों किया? शिवजी पृच्छा की।

''हे महादेव, अग्नि और मरुत यदि अत्यंत क्रोधित होकर तारकासुर और लाक्षासुर को मारने के लिए युद्ध करते है, तो अनगिनत जलचरों को अपने प्राण गँवाने पडते। इस से देवताओं का देवत्व नष्ट होगा।'' नारद ने स्पष्ट किया।

''अग्निदेव और मरुत का कथन सार्थ है। इस पर कोई अन्य उपाय खोजना होगा।'' शिवजी ने कहा।

''परंतु हे त्रिदेव...!''

''कहिए नारद।''

''देवेन्द्र ने क्रोधित होकर उन्हें मर्त्यलोक में ऋषिरूप होने का श्राप दिया है।''

'यह तो अति उत्तम हुआ।'' शिवजी ने कहा।

''नारायण नारायण, भगवन् आप...!''

इतने में देवेन्द्र स्वयं मेरुमांदार पर उपस्थित हुए।

''त्रिदेवों को देवेन्द्र का त्रिवार प्रणाम! त्रिदेवों की जय हो!'' देवेन्द्र ने अभिवादन किया।

''आइए आइए, देवेन्द्र, मेरुमांदार पर आपका स्वागत है।'' भगवान शिव ने कहा।

''हे देवेन्द्र, कैसे आना हुआ?'' ब्रह्मदेव ने पृच्छा की।

देवेन्द्र ने पूरा समाचार निवेदन किया और उस कार्य के लिए सहायता करने हेतु प्रार्थना की।

''हे देवेन्द्र, अग्नि और मरुत को आपने दिया हुआ श्राप आपके लिए वरदान सिद्ध होगा। इसी में सभी देवता, ऋषि एवम् मानव जाति का कल्याण हैं। मैं स्वयं मांदार स्वरूप में आंशिक रूप धारण कर मानस सरोवर से मित्रावरुणी नाम से प्रकट होकर दानवों का संहार करूँगा।'' शिव ने शून्य की ओर देखते हुए कहा।

''हे महादेव, आपकी कृपा से अब मैं निश्चिंत हूँ। तथापि एक संदेह मेरे मन में हैं। मैंने अग्नि और मरुत को श्राप दिया है।'' देवेन्द्र ने कहा।

‘‘हे देवेन्द्र, वरुण, मरुतों से उत्पन्न एक अंतरिक्ष देवता है, तथा मित्र, तेजोमय अर्थात अग्निस्वरूप भू देवता हैं। परिणामस्वरूप उत्पन्न अवतार, दिव्य और मानवी अंतरिक्ष तथा पृथ्वी लोक पर संचार कर सकता है।’’ भगवान विष्णु ने स्पष्ट किया।

‘‘हे महादेव, भगवन् विष्णो, इसलिए अब मेरे लिए क्या आज्ञा हैं?’’ देवेन्द्र ने विनम्रता से पृच्छा की।

‘‘हे देवेन्द्र, उत्पत्ति यह ब्रह्मदेव का विषय है। उनकी आज्ञा से ही मैं पुरुषरूप से और पार्वती प्रकृतिरूप से सृष्टि का निर्माण करते हैं। अतः उनसे परामर्श लेना उचित होगा।’’ शिवजी ने कहा।

‘‘हे ब्रह्मदेव, आपही की आज्ञा से देवता, ऋषि, दानव, मानव एवम् अन्य सृष्टि का निर्माण हुआ है। अतः इस ईप्सित कार्यार्थ मेरे लिए क्या आज्ञा हैं। कृपा करके मुझे बता दें।’’ देवेन्द्र ने प्रार्थना की।

‘‘हे देवेन्द्र, मैं अपने संकट निवारणार्थ कश्यप ऋषि की सहायता से प्रदीर्घ सोमयाग और योग सत्रों का आयोजन करने जा रहा हूँ। उसका यजमान पद मरिचि पुत्र कश्यप ऋषि करने वाले हैं। मेरे मानस पुत्र ऋषि उनका पौरोहित्य करेंगे। सभी देवताओं की शक्तियाँ प्रकट हों, इसके लिए आहुतियाँ देने वाले हैं। प्रत्यक्ष अग्नि मुख से यह आहुतियाँ दी जाएगी। उस समय मित्र, वरुण इन देवताओं को उपस्थित रहने के लिए अनुरोध करें और उन सत्रों के अवसर पर मित्र, वरुण का ध्यान आकर्षित करने के लिए उर्वशी का प्रबंध करें।’’ ब्रह्मदेव ने सभी के साक्षी से योजना बताई।

ब्रह्मदेव के इस आश्वासन से देवेन्द्र संतुष्ट थे। मरीचि ऋषि के मार्गदर्शन से मानस सरोवर समीप मांदार पर्वत पर प्रदीर्घ सोमयाग यज्ञ सत्रों की तैयारी आरंभ हुई। यज्ञभूमि अभिमंत्रित कर दी गई। यज्ञकुंड तैयार हुएं। सोमयाग सत्रार्थ शुभारंभ कलश हेतु प्रत्यक्ष मानस सरोवर की विधिवत पूजा स्थापित की गई। प्रतीकतः पुष्कर पर कुंभ अभिमंत्रित कर स्थापित किए गए। त्रिदेव ब्रह्मा विष्णु महेश तथा मरीचि समेत सभी ऋषियों को साथ लेकर महर्षि कश्यप ने आवाहन करना आरंभ किया। देवता, ऋषि, लोकपाल, दिशा, तीर्थ इन्हें एक के पश्चात एक आवाहित कर वालुकाष्म से प्रतीकरूप स्थापित किए। पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश इन पंचतत्त्वों को आवाहित कर सोम सिद्ध किया। सोमरस के

भोग से सभी देवता संतुष्ट हुएं।

ब्रह्मदेव ने शिवविष्णुरूप अग्नि को स्वयं पौरोहित्य कर आमंत्रित किया। मरुदगणों ने अग्निनारायण को अधिक प्रज्वलित किया। समस्त ऋषिगण पौरोहित्य के लिए सिद्ध हुए। महर्षि कश्यप ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ऋषि, देवता सभी को वंदन कर अग्निपूजन किया। अग्नि में सूक्तपूर्वक आहुति देना आरंभ हुआ। महातेजस्वी अग्निस्तंभ प्रकट हुए। प्रत्यक्ष महारुद्र अपना महातेजस्वी तृतीय नेत्र अग्निस्तंभ रूप से प्रकट कर समग्र विश्व को अपने दिव्य तेज से प्रकाशित कर रहें थे। समस्त देवता ऋषि, देवेन्द्र, शिवगण इस महातेजस्वी अग्निसमेत यज्ञवेदी का शिव आत्मलिंग स्वरूप में दर्शन कर रहें थे। प्रसन्न अग्नि नारायण के सोमयाग सत्र में देवेन्द्र ने उपस्थित सभी के मनोरंजनार्थ उर्वशी को विशेष रूप से आमंत्रित किया था।

प्रदीर्घ सोमयाग सत्र का कार्य चल रहा था। सोमदेवता सिद्ध होकर प्रसन्न हो, इसलिए अनेकों प्रकार के सूक्तों का उच्चारण हो रहा था। यह सोमराज के लिए आवाहन हो रहा था।

''हे सोमराज, तुम अपने मदकर धाराओं से प्रवाहित हों। महात्विज के यज्ञ दिन पर तुम्हें ग्रहण करना अति महत्त्वपूर्ण होता है। सोमरूपी अमृत इंद्रदेव को अति प्रिय हैं। सोम मद से शत्रुओं का संहार करना सुलभ होता हैं। द्यावापृथ्वी का निर्माण कर उसका परिवर्ध्दन तथा शक्तिशाली बनाने का कार्य सोमदेवता करती है। सर्वरक्षक तथा नेतृत्वकुशल सोम सूर्योत्पन्न द्युतदुग्ध यज्ञीय उदक पृथ्वीलोक पर ले आता है। धेनुवृषभ, अश्वरथ, सुवर्ण, स्वर्ग, उदक आदि सहस्त्रावधि संपत्तितेजा, देवोत्पन्न, मदकर और आरक्तवर्णिय सोम सिद्ध हो रहा हैं।''

सोमदेवता प्रसन्न हो रही थी। इंद्रदेव समेत सभी देवगण सोमयात्रा में सहभागी होने के लिए तथा सोमप्राशन से बलवान होने हेतु सोमयाग यात्रा के अवसर पर उपस्थित हुए थे। यज्ञ कर्म कर रहे देव महर्षि, स्वर्गीय, आकाशस्थ सभी देवताओं को उत्तेजित कर सृष्टिकार्य के उद्देश्य से सोम सिद्ध करने की विधि में व्यस्त थे।

सोमरस सिद्ध करते समय अनेक प्रकार की विधियाँ करनी होती है। विभिन्न उत्तेजक धातु द्रव्यों को मिलाकर अति सूक्ष्माछिद्रान्वित झरनी से छानकर सोमरस कलश में भर कर देना होता हैं। सोमरस में स्थित शक्तियों का श्रद्धापूर्वक सूक्तरूप

उच्चारण कर प्रसाद स्वरूप सोम प्राशन करने का कार्य आरंभ हो जाता हैं। सोमवल्ली से रुचिमधुर, सुगंधी, मदकारक और दर्शनीय सोमरस सभी को प्रिय होने के कारण सभी देवताओं का उपस्थित रहना स्वाभाविक था। देवाधिदेव इंद्र ने परब्रह्म के आशीर्वाद से स्वर्गीय वातावरण सदा उत्तेजक, मदयुक्त, नित्य उल्लसित रखनेहेतु सोमवल्ली का आयोजन किया था। अंतरिक्ष की सर्व शक्तियाँ सोमवल्ली में सूक्ष्म रूप से समाविष्ट होने का अनुभव देवदेवताओं को हो रहा था। सोमयाग का आरंभ होते ही अनेक सत्रों के अवसर पर स्वर्गीय अप्सराएं अवश्य उपस्थित होती हैं। इंद्रादि देवताओं की आज्ञा से यह कार्य होता था। मदकर सोम और उत्तेजक अप्सराओं का संग सभी को अच्छा लगता था। यहाँ तक कि देवता भी अप्सराओं की ओर आकर्षित होते थे।

प्रदीर्घ सोमयाग का 'वासतीवर' नामक सत्र आरंभ होने जा रहा था। उसके लिए ताजा सोमवल्ली बडी मात्रा में लाई गई थी। इस 'वासतीवर' सत्र के लिए विशेष रूप से सूर्यप्रकाश रूप मित्र और आकाशस्थ जलदेवता रूप वरुण उपस्थित थे। यह दोनों देवता मूलतः उत्साहवर्धक, प्रकाशमान, तेजस्वी थे और इसके अतिरिक्त उनकी गहरी मित्रता। उनके संयुक्त प्रभाव से आकाश में सप्तरंगों की बौछार होती हैं। इतना ही नहीं, दोनों के अस्तित्व मात्र से संपूर्ण सृष्टि उत्तेजित हो जाती है। मित्रावरुण की यह जोडी मित्रावरुण ऋषि के नाम से ब्रह्मांड में तेजस्विता के लिए कीर्तिमान हैं। वे जब सोमयाग के अवसर पर उपस्थित थे तो उसके मन में सोमप्राशन की अभिलाषा जागृत होना स्वाभाविक ही था। उनकी उपस्थिति में सोम सिद्ध हो रहा था। सोमवल्ली सूख ना जाए इसलिए उस पर बीच बीच में जल सिंचन हो रहा था। बैलों की खाल से ढके अभिषवण संज्ञक को लकडी के दो पल्लों पर कूटने के लिए रखा जाता था। ग्रावन नामक चार पत्थर के बट्टों की सहायता से कूटते समय जलसिंचन भी हो रहा था। कुचली हुई सोमवल्ली को आधवनीय नामक मिट्टी अथवा धातु के पात्र में जल में भिगोया जाता था। जल में मिलाने के पश्चात सीठी को बाहर निकालकर 'दशा पवित्र' नामक कपडे या उनी छाननी से सोमपात्र में छान लिया जाता था। सिद्ध सोम की विभिन्न देवताओं की यज्ञद्वारा आहुतियाँ देनी थी। साक्षात द्यावापृथ्वी अर्थात शिवपार्वती प्रकृति पुरुष के तेज से मानस पुष्कर कुंभ को अभिमंडित कर रहे थे। इस अवसर पर सोमयाग सत्र के लिए मित्रावरुण सोमयाग कलश समीप उपस्थित थे।

वासतीवर सत्र उत्तेजना की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण होने के कारण देवेन्द्र के दरबार की सब से सुंदर कामिनी अप्सरा उर्वशी की योजना बनाई गई थी। यज्ञयाग स्थल पर चिरयौवना, विशाल नेत्रा, कमनीय नितंबिनी, पुष्ट गोपुराकार उरोजा, सिंहकटि, मृगचंचला उर्वशी यज्ञस्थल पर उपस्थित व्रतस्थों का ध्यान विचलित कर रही थी। उसके कामोत्सुक नेत्र कटाक्षों से प्रत्यक्ष मित्रावरुण घायल हो गए थे। वे सोमोत्तेजक मदमत्त होकर अनिमेष नेत्रों से उर्वशी के साथ संभोग स्वप्न देख रहे थे। प्रतिक्षण उर्वशी उनकी संभोगेच्छा तीव्र करती जा रही थी। इंद्र ने मूलतः उर्वशी को ब्रह्मा, विष्णु और शिव की आज्ञा से मित्रावरुण को मोहित करने के लिए नियुक्त किया था। वास्तव में, उर्वशी स्वयं प्रकाशमान मित्र पर मोहित थी। इसलिए उन्हें मोहित करने के लिए वासना का उन्माद लिए वह उनके सम्मुख जाती थी। इसी प्रकार वह वरुण पर भी मोहित थी। इस यज्ञसत्र के अवसर पर मित्रावरुण जुडवा देवता के रूप में एक साथ उपस्थित थे। उर्वशी की दृष्टि से यह अप्सरा वंश का पर्वकाल था। वास्तविक उर्वशी अप्सरा बनकर नहीं रहना चाहती थी। देवेन्द्र के आदेशानुसार किसी भी महान शक्ति को उसकी पौरुष शक्ति पतित करके शबल करना उसे अच्छा नहीं लगता था। अब भी उसे इसी प्रकार का कार्य सौंपा था। परंतु इस कार्य का परिणाम बहुत ही भिन्न एवम् कल्याणकारी था। इस कार्य को शिवशक्ति का आशीर्वाद प्राप्त था और इस कार्य से सूर्य तेजस्वी, वरुण करुणामय एवम् शिवास्पद व्यक्तित्व निर्माण होना अपेक्षित था। उर्वशी को सदा ही मर्त्य विश्व का आकर्षण था। उसे ज्ञात था कि उसके कारण, इस मर्त्य लोक में, मित्रावरुण के रूप में एक क्रांतिकारी पर्व का जन्म होने जा रहा है। इसलिए वह अपने अप्सरा होने का पूरा कौशल दांव पर लगाकर मित्रावरुणी को अपने कामुक तन और सुंदर काया से उत्तेजित कर रही थी।

पंचतत्त्वात्मक देवताओं में मित्रावरुण भूत रूप होने के कारण वासनामय थे। उनकी कामवासना बढती जा रही थी। उर्वशी के साथ उनका दिवास्वप्नसंग आरंभ हुआ। उनके शरीर अत्यधिक दीप्तिमान एवम् मदोन्मत्त होने लगे। संभोग ऊर्मी ने चरम सीमा लांघ दी। वे उर्वशी के कामुक शरीर पर आरूढ हुए। उरोज, नितंब के मथने से उनके रोम रोम जल उठे। समूचा आकाश काम क्रीडा में तल्लीन हुआ। याग स्तब्ध हुआ। सोमदेवता उन्हें आशीर्वाद दे रही थी। वे और अधिक उत्तेजित हो रहे थे। उनकी आंतरिक ऊर्मि उछलने लगी और उनका कामध्वज

संभोग की चरम सीमा तक समाधि अवस्था में पहुँच गया। सहस्त्र अश्वशक्तियों के साथ उनका वीर्य उछलकर उर्ध्वमार्ग से स्खलित हुआ। वीर्यस्खलन की ऐसी परमावधि संभवतः ही अंतरिक्ष, सूर्य, चंद्रमा एवम् इंद्रादि देवताओं ने कभी देखी होगी। परंतु यह संभोग एक दिवास्वप्न स्वरूप का था। यह दो पंचतत्त्वात्मक शक्तियों की स्वप्नावस्था थी। जिस दर्भ के आसन पर मित्रावरुण विराजमान थे उस दर्भासन पर उनका दीप्तिमान, तेजस्वी, सुगंधित एवम् अत्यंत शक्तिशाली वीर्य स्खलित हुआ था। दोनों को एक ही क्षण में वास्तव का ज्ञान हुआ। एक क्षण के लिए वे लज्जित हुए। परंतु यह सोचकर कि, काल, कैवल्य एवम् ब्रह्मांड का इसमें अवश्य कोई उद्देश हो सकता हैं, उन्होंने आश्चर्यजनक कामसमाधि से स्त्रवित वीर्य अपने अँजुली में लिया। उन्होंने अग्नि, सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा और शिव का स्मरण करते हुए लोककल्याण के लिए इस वीर्य के चिरंतन उपयोग के लिए प्रार्थना की और अपना वीर्य यागसत्रों के लिए स्थापित पुष्कर कमल की भांति दिखनेवाले पवित्र मान्य शिवकलश में श्रद्धापूर्वक विसर्जित किया। मन ही मन में कलश को वंदन किया। जैसे ही उन्होंने सामदेवता को वंदन करके सत्र अवसर पर सिद्ध सोमरस का प्राशन कर प्रायश्चित्त किया तो क्या आश्चर्य! वह पवित्र शिवकलश वीर्य के साथ मथने लगा। इससे मानसरोवर, यमुनौद्य, सिंधुजल, पुष्करतीर्थ में प्रचंड नगप्राय लहरें उठी। आकाश में वायु ने कुहराम मचाया। हिमगिरि पवित्र होने लगा। आकाश और अधिक दीप्तिमान हुआ। शिवकुंभ के इस अलौकिक नृत्य को देखकर प्रत्यक्ष परब्रह्म, भगवान विष्णु लक्ष्मी, शिव पार्वती प्रसन्न हुए। देवताओं ने अंतरिक्ष में फूलों की वर्षा करना आरंभ किया। स्वागत शंख ध्वनि से समग्र विश्व गूँज उठा। धीरे-धीरे मान्य शिवकुंभ की गति रूक गई और कुंभ के मध्य से दीप्तिमान, शिवस्वरूप, गम्भीर, सूर्यप्रकाशी, पर्जन्यरूप, ब्रह्मतेजस्वी जटाधारी, बलवान, ऋषि आकृति प्रकट हुई। उस आकृति ने एक क्षण में अपने निर्गुण और सगुण रूप दिखाए। इस अवसर पर हुए चमत्कार के साक्षी समस्त देवता सर्वसम्मति से घोषणा कर रहे थे।

‘‘मान मान्य मान्दार्य, तुम्हारी जय हो।’’

मात्रपुत्र गंभीरता से आगे आए और उन्होंने अत्यंत भक्ति के साथ मित्रावरुण को प्रणाम किया।

‘‘हे पिताओं, मुझे आशीर्वाद दें। जैसे आपका प्रकाश समग्र अवनि पर

प्रकाशित होता हैं और आपका जल अवनि पर वर्षाव करता है, उसी प्रकार मुझे अवनि पर ज्ञान और समृद्धि निर्माण करने के लिए आशीर्वाद दें।''

''तथास्तु!'' मित्रावरुण ने घोष किया। पुनः विजयोन्मादक शंख नाद हुआ। मान्दार्यों ने फिर ब्रह्मा, विष्णु, महेश और माता पार्वती के पास जाकर उनके आशीर्वाद लिए। प्रसन्न मुद्रा से आशीर्वाद की वर्षा करते हुए माता पार्वती ने मान को हृदय से लगा लिया। पंचतत्त्व शक्तियों ने मान्य का जयघोष किया। देवेन्द्र ने स्वयं आगे बढकर मान ऋषि को सोमयाग सिद्ध, पवित्र एवम् उत्तेजक सोमरस दिया। उसी समय सहसा अवशिष्ट कुंभ से पुनः ध्वनि गूँजा और उतने ही तेजस्वी, ज्ञानगभस्ति ऋषि, 'वसिष्ठ' प्रकट हुए। उनके मानव रूप को देखकर सभी ने निर्गुण से उत्पन्न सगुण आविष्कार का स्वागत किया। वसिष्ठ ने भी आगे बढकर सभी को वंदन करके आशीर्वाद लिए। इंद्रादि देवता, मित्रावरुण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, स्वर्ग, कैलाश और आकाश आनंद से भर गए। सब के मुख से जन्मवर्णन के शब्द प्रकट हुए।

**'सत्रे हे जातिविंषिता नमौभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्।**
**ततौ ह मान उदियाय मध्यत ततो जातमृषिंमा हुर्वसिंष्ठम्।।'**

एक प्रदीर्घ सोमयाग के अवसर पर प्रार्थना से उत्तेजित होकर, दोनों (मित्रवरुण) ने एक साथ एक कुंभ राशि में वीर्य डाला। कुंभ के अन्दर से गर्दन ऊपर आईं, जहाँ से कुम्भ के बाहर वसिष्ठ का जन्म हुआ। नारदमुनि ने मान्दार्य अगस्त्य और वसिष्ठ की अद्भुत जन्म कथाओं को सुनाकर भगवान रामचंद्र और अगस्त्य आश्रम वासियों को एक अद्भुत अनुभव दिया।

इन दोनों ऋषियों ने जन्म के समय ही परिपक्वता की अवस्था प्राप्त कर ली थी, उन्होंने स्वयं प्रेरणा से ही तपस्या और अध्ययन प्रारंभ कर दिया। दोनों ऋषि अपने जन्म का रहस्य जानते थे और परब्रह्म द्वारा उन्हें सौंपे गए कार्य भी उन्हें ज्ञात थे। मान मूलतः मान्य अथवा मान्दार्य थे। इस दृष्टि से भूलोक के जीवन में प्रतिष्ठा प्राप्ति के साथ कार्य करना बहुत सुलभ हुआ। एक तो मान तेजस्वी शक्ति के स्वरूप में मान्य थे। उनका जन्म होते ही आकाश प्रफुल्लित, स्वच्छ एवम् प्रकाशमान हुआ। भू लोक पर हवा स्वच्छ, शीतल हुई। मित्रावरुण के संयुग स्वरूप का तेज मान्य ऋषि में प्रतीत हो रहा था। उस संयुग से तेज और आप पंचतत्त्वात्मक उप-अवस्थाएं निर्माण हुई। तेजाकर्षण और जलाकर्षण की दोहरी

शक्तियां उन्हे जन्म जात प्राप्त थी। किन्तु पंचतत्त्वात्मक देवताओं की शक्तियां तपोबल से प्राप्त होनी चाहिए। इसी के साथ भूत, वर्तमान और भविष्य विषयक अंतर्ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए। उन्होंने निश्चित किया था कि, अंतरिक्ष काल और कैवल्य इन अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात भू लोक के मानव समाज का अध्ययन किया जाना चाहिए। पंचतत्त्वों अर्थात अमानवी शक्तियों का संतुलन रखना और मानवी मर्त्य जीवन का भी संतुलन रखना, ऐसे दोहरे कार्य उन्हें विश्वकल्याण हेतु सौंपे गए थे। इसके लिए मान ऋषि ने तपस्या करने का निश्चय किया। साथ ही उन्होंने वसिष्ठ मुनि को मानव समाज में सम्मान का स्थान देने का निश्चय किया। मान पंचतत्त्वात्मक अमानवी अवस्था और मानवी अवस्था दोनों के स्वामी थे, जब कि, वसिष्ठ केवल मानवी अवस्था प्राप्त ज्ञानी मुनि थे। परंतु उनका भी जन्म अयोनिसंभव अमानवी पद्धति से ही हुआ था, इसलिए अपने इस भ्राता को सुप्रतिष्ठित करने हेतु मानमुनि को आगे बढना पडा। अर्थात वसिष्ठ का दूसरा जन्म होना आवश्यक था। यह मानते हुए कि, सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए गुरुकुल और गोत्र की आवश्यकता होती है, मान्य मुनि ने वसिष्ठ के लिए तृत्सु का एक समूह चुना। तृत्सु के समूह को पुरोहितों की आवश्यकता थी। यज्ञयाग और गुरुकुल की स्थापना की दृष्टि से तुत्सु कुलपति एवम् पुरोहित पद के लिए ब्रह्मज्ञान प्राप्त अधिकारी की खोज में थे। मान्य मुनि का ध्यान तृत्सु की ओर गया। वास्तविक वसिष्ठ का जन्म अमानवी और दिव्य स्वरूप एवम् गूढ था। परंतु मान्य मुनि ने तृत्सु को आश्वस्त किया कि, वसिष्ठ दिव्य क्षमताओं के साथ एक आदर्श परिपूर्ण मानव है, इसलिए उनके लिए गुरुकुल के कुलपति एवम् पुरोहित के रूप में नियुक्त होना लाभदायी होगा। मान्य मुनि ने आगे कहा कि, वसिष्ठ में होर्त, उन्दातृ और अध्वर्यु, तीनों पुरोहित के गुण एकत्रित हैं। तृत्सुं ने सिष्ठ को पुरोहित, कुलपति के रूप में स्वीकार किया और वसिष्ठ के स्वतंत्र गुरुकुल, इतना ही नहीं गोत्र भी स्थापित हुए। मान की मध्यस्थता से वसिष्ठ को दूसरा जन्म प्राप्त हुआ। इसलिए वसिष्ठ की जो मित्रावरुणी शिवतेजा प्रतिमा थी वह वृद्ध हुई, जिसमें उन्हें मान्यमुनि की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

मान ने जन्म लेने के पश्चात त्रिदेव द्वारा अपेक्षित पहला कार्य सफलतापूर्वक पूरा किया। दैवीय और मानवीय जन्मों को जोड दिया। देवता और मनुष्य के बीच समन्वयक के रूप में प्रथमतः मानमुनि को सम्मान मिला। देवताओं को मानवी

जीवन जीने का मार्ग मिला, जब कि मनुष्य ने ज्ञान के माध्यम से देवत्व प्राप्त करने का मार्ग खोज लिया। एक सफल मध्यस्थ के रूप में उनके कार्य की देवता एवम् मनुष्य द्वारा प्रशंसा की गई। आकाशस्थ त्रिदेवों द्वारा निर्मित माया-प्रपंच के कार्य को सुव्यवस्थापित करने का कार्य सुकर हुआ।

मान की मध्यस्थता को स्वीकार करते हुए तृत्सुं को कई प्रश्नों का सामना करना पडा। मान दिव्य हैं, उनकी मध्यस्थता कैसे स्वीकार करें? अमरत्व प्राप्त देवता मर्त्य मानव के संबंध में कैसे व्यवस्थापन करेंगे? मान के प्रखर तेज से तृत्सु प्रभावित हुएं। सूर्योदय होने के पश्चात तारे यूँ ही धृष्टता से प्रकाश देने का प्रयास नहीं करते। तृत्सु ने स्वीकार किया कि, मानमुनि को किसी मान्यता की आवश्यकता नहीं। मान मानवी विश्व में भी मान्यवर और सुप्रतिष्ठित हुए। वसिष्ठ की भांति उन्हें अलग से परिश्रम नहीं करने पडे। ज्येष्ठ भ्राता, गुरुपिता और समाज अधिष्ठाता के रूप में वे विख्यात हुए।

ज्येष्ठ भ्राता की भूमिका से वसिष्ठ के कार्य को पूरा करने के पश्चात मान मान्य मान्दार्यों ने अपना आश्रम स्थापित करके तपस्या आरंभ करने का निश्चय किया। वे शिवपार्वती और ब्रह्मा को अपना मनोरथ कथन करने के लिए कैलाश गए।

*

''मित्रावरुण शिवतेजस मान मान्य मान्दार्य आपको सविनय प्रणाम करता है।'' मान ने शिवपार्वती को वंदन किया।

''हे मान्दार्य तुम्हारा स्वागत है।''

''हे मान्दार्य, किस अपेक्षा से कैलाश आना हुआ? कुछ विपदा तो नहीं हैं ना? पार्वती माता ने पूछा।

''हे माते, तुम्हारे पुत्र को समस्त देवताओं के आशीर्वाद तथा शक्ति प्राप्त होने के कारण विपदा को दूर करने की क्षमता जन्मतः ही प्राप्त है। तथापि...''

''तथापि... क्या? अपना मंतव्य खुलकर कथन करो पुत्र।'' शिवजी ने कहा।

''हे भगवन, आपकी अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए मैं तपस्या कर विशेष

शक्ति प्राप्त करना चाहता हूँ। आप आज्ञा दें।

''तथास्तु!''

''हे भगवन, मुझे किस प्रकार तपस्या करनी चाहिए, इसका मार्गदर्शन करें।'' मान ने शिव जी से कहा।

''हे मान्दार्य, तुम्हें प्रथमतः पंचतत्त्वों की शक्ति प्राप्त करनी होगी और उनके उपयोजन के लिए शक्तिमाता की तपस्या करनी होगी। तत्पश्चात भूलोक पर तुम्हें महत्वपूर्ण कार्य करने होंगे। इसके लिए आकाश, काल और कैवल्यरूप ॐ कार की शक्ति प्राप्त कर ब्रह्मचैतन्यमय गायत्री शक्ति भी प्राप्त करनी होगी।'' शिवजी ने कहा।

''हे प्रभो, मैं आपकी कृपा से धन्य हूँ। मेरे जीवन का ईप्सित मुझे मेरी समझ में आ गया। मैं आपके आदेश के अनुसार तपस्या करूंगा।''

मान ने उन्हे पुनश्च वंदन किया और वे गंगाद्वार की ओर चल दिए। सहसा सखी पार्वती ने उन्हें रुकने के लिए कहा।

''हे वत्स, तुम पर बहुत बडा दायित्व है। मेरे कार्य की पूर्ति के लिए तुम्हारी प्रेरक शक्ति आवश्यक है। इसलिए तुम जब भी किसी अभियान पर जा रहे हो या किसी आक्रमण का सामना करें, तो मेरा स्मरण किया करो। मैं तुम्हें अपने शक्तिरूप आयुध अवश्य दूँगी। मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि, तुम किसी भी युद्ध में असफल नहीं होंगे। माता पार्वती भावुक होकर कह रही थी।

✲

मान्दार्यो ने गंगाद्वार की ओर प्रयाण किया। गंगाद्वार समीप अपने आश्रम की विधिवत स्थापना की। तपस्या आरंभ करने के पूर्व वे ब्रह्माजी के पास गए। उन्होंने शिवजी के साथ हुए परामर्श का सार बताकर ब्रह्मा से आज्ञा मांगी।

''हे वत्स, भगवान शिवजी की आज्ञा के अनुसार तुम तपस्या करो, तथापि मैं चाहता हूँ कि, मेरी रचना में यदि कभी बाधा उत्पन्न हो, तो ऐसी स्थिति में मै जब भी तुम्हारा स्मरण करूँ, तुम अवश्य उपस्थित हो!''

''परंतु, मेरी तपस्या?'' मान ने संदेह से पूछा।

''मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि, तुम्हारी तपस्या में न कभी कोई बाधा आएगी

न कभी वह खंडित होगी।

''हे देवाधिदेव सृष्टि रचयिता परब्रह्म, मैं धन्य हूँ। आपके आशीर्वाद से मेरा बल कई गुना बढ गया हैं।''

मान ने ब्रह्मदेव से विदा ली और अपनी तपस्या आरंभ की।

*

ब्रह्मर्षि नारद ने वैदेही, श्रीराम और लक्ष्मण के साथ अगस्त्य मुनि ग्राम के अगस्त्य आश्रम में मान्दार्यों की जन्मकथा सुनाई।

''हे प्रभो, आपने हमें मान मान्दार्यरूप अगस्त्य कैसे प्रकट हुए इससे अवगत कराया, हम धन्य हैं, परंतु हमारे मन में संदेह हैं।'' श्रीराम ने कहा।

''क्या संदेह है?''

''हे ब्रह्मर्षे, आप इस ब्रह्मांड की उत्पत्ति, स्थिति और गति को जानते है। उषःकाल के समय मुनिग्राम की

**'अहंकार ने घेर लिया । दानव ने जन्म लिया ।**

**अहंकार मिटाने । मान कुंभ से बाहर आया ।।'**

''लोक कथाओं से मान के जन्म की कथा सुनते समय विश्व के उत्पत्ति का उल्लेख किया गया था। मान अगस्त्य आज भी दक्षिण में हैं। तथापि उन्हें दक्षिण में जाकर कई युगों का समय बीत चुका है ऐसा हमें कहा गया है। अतः हमें इस स्थितिगति काल का रहस्य समझाइए।

''हे श्रीरामचंद्र, ब्रह्मांड के उदर से कैवल्य और काल का जन्म हुआ। कैवल्य और काल में रचनात्मक और गतिशील होने की प्रकृति है। कैवल्य से ब्रह्मांड में विश्व निर्माण हुआ। इस विश्व में अनेको अस्तित्व वास करते हैं। परंतु सौरमंडल में भूलोक का अर्थात पृथ्वी का अस्तित्व होना कैवल्य का स्वप्न है। परब्रह्म कैवल्य ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को भूलोक पर कैवल्य से माया के रूप का अस्तित्व भासमान कर पंचतत्त्वों का निर्माण करने की प्रेरणा दी। ब्रह्मा ने दिशा, काल, पंचतत्त्व, सूर्यचंद्र ऐसे ब्रह्मांड निर्माण किए। इन पंचतत्त्वों के अस्तित्व को अक्षुण्ण रखकर जीवसृष्टि निर्माण का प्रयत्न लाखों वर्षों से होता आ रहा है। अविरत सृष्टि यह ब्रह्मांड की प्रकृति हैं। एक प्रकार से कैवल्य ही अनेक रूप भासमान करके उन्हें नष्ट कर देता हैं। परंतु भासमान पंचतत्त्वों में चिरंतन अमरत्व

का चिंतन है। कैवल्य ने उन्हें स्वभावतः ही मर्त्य बनाया है। फिर भी शून्याकाश, कैवल्य और काल की संवेदना उनके अस्तित्व को स्पर्श करती है और उससे उत्पन्न अमरत्व प्रकृति के केवलरूप पर विजय पाकर वे अपनी अवस्था प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इस समग्र जीवसृष्टि में प्रत्यक्ष कैवल्य का परिपूर्ण किन्तु भासमान रूप है। यह रूप त्रिगुणात्मक है। अर्थात जिसमें प्रकृति के तीनों गुण – सत्व, रजस् और एक साथ उपस्थित हो। सत्व कैवल्य का मूल्यरूप गुण है, रज कैवल्य का प्रकट गुण है, और तम कैवल्य का क्षयकारी गुण है। जहाँ मानव जीवन रजगुण में व्यतीत हो रहा हैं, वहाँ राजसी प्रवृत्ति की प्रधानता होती है, इसमें मनुष्य रूप, सम्मान एवम् अहंकार आदि भावों के अधीन रहता है। पंचतत्त्वों की वासना मानव शरीर को तमोगुण द्वारा कैवल्य को भुला देती है। इससे मनुष्य की गलत धारणा होती है कि, वह सर्वशक्तिमान है। हे श्रीराम, मनुष्य से, अर्थात निरवासनिक जीवन से अथवा आत्मा से दूर वासनायुक्त शरीर में अज्ञान से अहंकार स्वरूप तमोगुण निर्माण होते हैं और यह आत्मा को पूर्ण रूपेण भ्रम में डाल देता है। वह अहंकार से, उद्दंडता से आत्मशक्ति का बल प्रयोग करना आरंभ कर देता है। इस अवस्था को अनार्य, राक्षस, दानव से संबोधित किया जाता है। सृष्टि निर्माण करते समय कैवल्य का एक सुंदर स्वप्न था, कि मानव सत्वरजयुक्त कल्याणकारी शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करें। इसलिए इन अहंकारी तमोगुण युक्त अनार्यों का नाश करके अपने स्वप्नपूर्ति के लिए कैवल्य ने देवताओं को प्रेरित करके अवतार कार्य स्वरूप में मनुष्य जगत में भेज दिया। शक्तिशाली दिव्य गुणों से युक्त एवम् दिव्य शक्ति के पुत्र ऋषियों के रूप में प्रकट किए। परंतु मनुष्यों के सत्वगुणों का आवाहन करके इस कार्य की पूर्ति करने के लिए दैवी और मानवी अथवा मानवी अमानवी अवस्था के तेजस्वी स्वयंप्रकाशी अस्तित्व ब्रह्मदेव ने शिवजी की आज्ञा के अनुसार कैवल्यरूप का आवाहन करके निर्माण किए और उन्हें मानवी जीवन में प्रेरित किया। इन महर्षियों ने मानवी शक्तियों की सहायता से और यज्ञसंस्था के माध्यम से सात्विकता की अभिव्यक्ति के साथ, देवताओं के लिए भी कष्टदायी, मानवी अवस्था के दानवों, राक्षसों अथवा तमोगुणी अनार्यों को परास्त करने का कार्य किया। ये ऋषि निरंतर स्वयंप्रकाशी तारा के रूप में मानव जीवन को मार्गदर्शन करते है। जब मानव जीवन में मानवी प्रवृत्तियों की अधिकता हो जाती है तो, मानवी नेतृत्व की

सहायता से दानवी प्रवृत्तियों को मिटाने के लिए महर्षि अथवा अवतार प्रेरित होते है।'' नारद कह रहे थे।

''मान अगस्त्य मुनि का अवतार इसी प्रयास का एक भाग है। मान अगस्त्यों का जन्म होकर कई युग बीत गए। हे प्रभु, युगारंभ से यह परंपरा है। यदि आप आत्ममग्न, अंतर्मुख होकर चिंतन करते है तो आपको सृष्टि का, काल गति का ज्ञान होगा। मान अगस्त्य मुनि का यह अमानवीय, अयोनि अर्थात दिव्य जन्म लाखों वर्ष पूर्व हुआ था। न केवल मान्दार्य और वसिष्ठ अपितु गोत्र को सुस्थापित करने वाले कई ऋषि सहस्त्रों वर्षों से कार्यरत हैं। इसलिए इनका स्वयंप्रकाशी तारों के रूप में एक निश्चित स्थान है। इस परंपरा में मान अगस्त्य एक बहुत ही महत्वपूर्ण ऋषि थे।'' नारद ने आगे कहा।

''परंतु हे प्रभो, आप स्वयं भगवान विष्णु के अर्थात प्रत्यक्ष कैवल्य के मानवी अवतार है तो मैं आपसे और क्या कह सकता हूँ?'' नारद ने विनम्रता से कहा।

''हे ब्रह्मर्षे, पूर्ण मानवी अवस्था में अवतार धारण करने के पश्चात हमें आप जैसे ब्रह्मर्षियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करना अभिप्रेत है। आप जानते है कि, मानव प्रकृति ज्ञानार्जन के मार्ग से ही जाती है।'' प्रभु श्रीराम ने कहा।

''हे प्रभो, अब आप अगस्त्यों के मार्ग से जाने के लिए सिद्ध हुए हैं।

''हे ब्रह्मर्षे, हम अगस्त्यों के कार्य का सूक्ष्म अभ्यास करना चाहते है, इसलिए आप ही उनकी कार्य कथा सुना सकते हैं।''

''हे प्रभो, इसलिए आपको वसिष्ठ, विन्ध्य, वाल्मिकी इनका उपयोग होगा। आप निश्चित रूप से दक्षिण के मार्ग पर निकलें।''

''जो आज्ञा!'' प्रभु रामचंद्र नें नारदमुनि का अभिवादन किया और उनका शुभाशिर्वाद लिया। नारदमुनि ने ऋषि अगस्त्य से विदा लेकर प्रभु श्रीराम को आश्वासित किया कि, भविष्य में उनसे बारं बार भेंट होती रहेगी।

अगस्त्यमुनिग्राम आश्रम में प्रभु रामचंद्र ने सीता-लक्ष्मण के साथ वनवास के चौदह दिन व्यतीत किए। मान्दार्य के मूल आश्रम में गायत्री के पुनश्चरण का मुख्य अध्ययन होता था। अगस्त्य ऋचाओं के मौखिक परंपरा के अध्ययन का एक बहुत महत्वपूर्ण भाग प्रभु रामचंद्र ने वसिष्ठ के आश्रम में सीखा था। पीठासीन अगस्त्य मुनि ने प्रभु श्रीराम को गया, वाराणसी, प्रयाग, उज्जैन, प्रभास, हक्केश्वर,

विस्तरणा नदी के सभी आश्रमों की जानकारी दी, तथा उन्हें इन सभी तीर्थस्थलों की यात्रा करने के लिए सूचित किया। उन्होंने यह भी कहा कि, पूर्व उत्तर व पश्चिमोत्तर क्षेत्रों में अगस्त्य मुनि का संपूर्ण इतिहास हिमालय और विंध्य को ज्ञात है। प्रभु रामचंद्र की उत्कंठा चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। उन्होंने विचार किया कि हमें भी इस संपूर्ण इतिहास को जानना चाहिए, इसलिए उन्होंने प्रत्यक्ष हिमालय और कैलाशपति से पृच्छा करने का निश्चय किया। प्रभु रामचंद्र की शोध तपस्या आरंभ हुई। वे हिमालय तथा कैलाश की ओर निकल पडे।

प्रभु रामचंद्रजी के दर्शन पाकर हिमालय धन्य हुआ। प्रभु का स्वागत करते हुए हिमालय ने पूछा,

''हे प्रभो, मैं आपकी क्या सेवा करूँ।''

''मुझे महर्षि अगस्त्य के कार्यसंबंधी कुछ बताईए।''

''हे प्रभो, देव और पंचमहाभूतादि देव के बीच मेल-मिलाप का कार्य मान अगस्त्य ने किया। मित्रावरुण की कृपा से इसी क्षेत्र में अगस्त्य का जन्म हुआ था। परंतु उन्होंने इंद्रादि देवताओं का मरुतादि से मेल-मिलाप करने का कार्य शिवाशीर्वाद से किया। उस कार्य की श्रेष्ठता प्रत्यक्ष शिवजी से सुनना हितकारी होगा।'' हिमालय ने बताया।

'मान मान्दार्य मान्य ये नाम अगस्त्यों के पुष्कर कमलकुंभ से प्राप्त हुए, इसका इतिहास नारदजी ने हमें बताया था। उसे सुनकर हम तिनों की जिज्ञासा बढ गई है। इसी कारण हम यात्रा कर रहे है।'' श्रीराम ने कहा।

''हे भगवन्, नारद द्वारा कमल कुंभ के रूप में वर्णित कुंभ लाक्षणिक है। मेरे उदर मे मानस और मान जैसे सरोवर है, राजहंस, पुष्कर कमल भी हैं। मित्रावरुण का स्खलित वीर्य इन दोनों सरोवर में गिर गया। उसी से मान्दार्य और वसिष्ठ निर्माण हुए। दोनो सरोवर भूगर्भांतर्गत जुडे हुए है। प्रत्यक्ष क्षीरसागर से मेरे साथ ही पुनीत होकर धरती पर आए हैं। उसमे से गंगाजल निकला, मान्दार्य और वसिष्ठ का भी जन्म हुआ। इसलिए सृष्टि की गति में हस्तक्षेप कर संतुलन बनाए रखने का कार्य इन्ही ऋषियों को सौंपा गया था।'' हिमालय कथन कर रहे थे और प्रभु रामचंद्र ध्यान से उनकी बाते सुन रहे थे।

''हे प्रभो, आप कैलाशनाथजी को मान्दार्यों के दिव्य कार्य के बारे में पुछिए। यद्यपि मैं उनके कार्य का साक्षी हूँ, किन्तु कारण तो शिव ही हैं।''

प्रभु रामचंद्र ने हिमालय से विदा लेकर कैलाश की ओर प्रस्थान किया। कैलाश समीप आते ही उन्होंने पद्मासनस्थ होकर शिवस्तुति का प्रारंभ किया। वैदेही और भ्राता लक्ष्मण भी उनके साथ ध्यानमग्न हुए। 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र से समूचा आकाश गूँज उठा। प्रकृतिस्वरूपिणी पार्वती ने इसे शिवजी के ध्यान में लाया। शिवजी के मुख पर आनंद की सूचक मुसकान खेल रही थी।

''हे साक्षात प्रकृतिरूपिणी, तुम्हें शिवभक्त विष्णु की महिमा कैसे कथन करूँ? प्रत्यक्ष कैवल्यरूप श्रीराम मेरी आराधना कर रहे हैं। जब मैं उन्हीं का ध्यान कर रहा हूँ, तो मुझे उनका साक्षात्कार क्यों नही हो रहा है?''

''नाथ मैं कुछ समझी नही?''

''हे कांते, ब्रह्मांड, काल और कैवल्य परब्रह्म की तीन अवस्थाएँ है। परब्रह्म ब्रह्मा के रूप में सृष्टिरचना का कार्य कर रहे है, जब कि कैवल्य विष्णू के रूप में, लोकधारणा, सृष्टि व्यवस्थापन का कार्य रहे है। कालस्वरूप मैं भैरवनाथ, शंकर अथवा महादेव के रूप में सर्वसाक्षी, सर्वप्रभावशाली एवम् सर्व प्रलयंकर का कार्य कर रहा हूँ। इस कार्य में काल का द्यावारूप अथवा पुरुषरूप कैवल्य का ही दातृत्व है और उससे प्रकृति भी प्रकट हुई है। तथापि कालरूप से कैवल्य प्रकट हुआ है। इसलिए हम त्रिदेवों में गुरुशिष्यभाव, पितृभाव स्थित है। परब्रह्म इन अवस्थाओं का कारण है। हम त्रिदेव और त्रिशक्तिरूप अवस्था उन्हींकी लीला है। इसमें कैवल्य चैतन्यमय होने से प्रत्यक्ष आत्मचलन की क्रीडा कैवल्य को करनी होती है। ब्रह्मांड के परमात्मस्वरूप का कैवल्य यह एक सर्वश्रेष्ठ अस्तित्व है। यद्यपि भले ही वे ब्रह्मांड से ही स्वयंप्रेरित हुए है, सृष्टिरचयिता विधिरूप ब्रह्म तथा कालरूप शिव इनकी सहायता से आत्मतत्व क्रीडा कर रहे हैं। यह ब्रह्मज्ञान का सारांश कैवल्य के चिंतन का ही एक भाग है। कैवल्य विष्णुरूप है, जब कि प्रभु राम वास्तव में नश्वर संसार में प्रत्यक्ष विष्णु का मानव अवतार है। अतः मैं उन्ही का चिंतन कर रहा था। वे स्वयं लक्ष्मीशक्ति और शेषावतार लक्ष्मण के साथ हमें मिलने आ रहे हैं। विष्णु के अवतार कार्य में शिवभेंट की प्रक्रिया अति आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण है। क्योंकि हे कांते, इसके बिना अवतार में शक्ति प्रकट होना संभव नहीं होता।''

''हे प्रिये, यह केवल एक निमित्त है। साक्षात प्रकृतिमाता की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए आपके दर्शन और शिवदर्शन भी आवश्यक है। इसलिए

हे प्राणेश्वरी, हम स्वयं उनकी ध्यानमग्न अवस्था में उनके सम्मुख जाकर उनका दर्शन लेते है।''

प्रभु रामचंद्र का मुखमंडल स्वयंप्रकाशी आभा से अत्याधिक कांतिमान दृष्टिगोचर हो रहा था। उन्हे शिवजी के आनेकी आहट सुनाई दी।

प्रभु रामचंद्र की तेजस्विता से सृष्टि प्रफुल्लित हुई। जडजीव प्रभावित होकर प्रकट होने लगे। शिवतत्व और विष्णुतत्व का अलौकिक, अपूर्व मिलाप देखने का भाग्य हिमालय को मिल रहा था और उन शक्तियों के प्रभाथ से हिमालय को दिव्य शक्तियाँ भी प्राप्त हो रही थी।

''हे श्रीरामचंद्र, सीतामाता, शेषभगवंत, उमामहेश का प्रणाम स्वीकार करें।'' शिवजी ने वंदन किया। परंतु प्रभु रामचंद्र लक्ष्मण और सीता समेत बडी विनम्रता और प्रसन्न भाव से शीघ्रातिशीघ्र शिवचरण को समर्पित हुएं।

''हे प्रभो, आप और माता आशीर्वाद देने के अधिकारी हैं। हमारा वंदन स्वीकार कर हमें शक्तिशाली बनाईएं।'' प्रभु रामचंद्र ने अत्यंत विनम्रता से प्रार्थना की। परस्पर अनिर्वाच्य उत्कट प्रेम से ओतप्रोत इन महान मूल शक्तियों ने एक दूसरे को दृढालिंगन दिया। आकाश से पुष्पवृष्टि हो रही थी। कुछ क्षण के लिए शिवजी भावुक हुए थे। अपने आप को सँवारते हुए उन्होंने प्रश्न किया।

''हे श्रीरामचंद्र, कैलाश पर आप का कैसे आना हुआ? हम उभयतः आप की क्या सहायता कर सकते है?''

''हे शिवप्रभो महादेव, प्रकृतिमाते, आपने हमें शक्ति प्रदान की है। प्राप्त कार्यार्थ हमें आप के आशीर्वाद की आवश्यकता है, तथापि आपने हमें अगस्त्य मुनि के मार्ग पर चलने की आज्ञा दी है। (चलने का आदेश दिया है।) अतः अगस्त्य का कार्यस्वरूप और कार्यमहिमा जानने के लिए हम उत्सुक है। कृपया हमें कथन करें।'' प्रभु रामचंद्र ने प्रार्थना की।

''आपकी इच्छा अवश्य पूरी होगी।'' प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें आश्वासन दिया और अपना कथन आरंभ किया।

''हे श्रीराम, पंचतत्वात्मक सृष्टिनिर्माण के पश्चात सृष्टिव्यवस्थापन, नियंत्रण आवश्यक हुआ है। अन्यथा सृष्टि का निर्माण करना, उसे स्थापित करना, उसका भरण पोषण करना इन कार्यों के लिए पंचतत्व की शक्तियाँ सहायक सिद्ध नहीं होती। इसलिए ब्रह्मदेव ने विभिन्न दैवी शक्तियों का उपयोग मानवी

मन के आत्मचलनात्मक और कल्पनाचमत्कृति शक्तिस्वरूप का उपयोग करके ऋषिगणों को उत्पन्न किया। पंचतत्वात्मक शक्तियाँ, नश्वर संसार के जडजीवों का व्यवस्थापन एवम् उन्हें मोक्षपद जाने का मार्ग दिखाने का दायित्व इन ऋषियों को सौंपा। हे राम, यह सृष्टि त्रिदेवों की प्रेरणा से मायास्वरूप में त्रिगुणात्मकता से निर्माण हुई है। पंचतत्व और देवता भी इस त्रिगुणात्मक अवस्था से मुक्त नहीं हैं। इसलिए उन्हें मार्गदर्शन की आवश्यकता है। कदाचित उसके लिए संघर्ष भी करना होता है। इसके एक भाग के रूप में दैवीशक्तियुक्त मित्रावरुण शक्ति से प्रेरित एवम् शिवतेज से प्रस्थापित अगस्त्य ऋषि का जन्म हुआ। उनके साथ वसिष्ठ का भी जन्म हुआ। अगस्त्य ने दिखाया कि वसिष्ठ को सुप्रतिष्ठित करके मनुष्य को दैवी शक्ति की सहायता से कैसे उन्नत और प्रबुद्ध किया जा सकता है। विगत लाखों वर्षों से अगस्त्य यह कार्य कर रहे हैं। अपने अवतारकार्य की योजना से उन्हें सप्तऋषि मंडल में स्थान प्राप्त हुआ है। उनकी तेजस्विता अब मार्गदर्शक सिद्ध हुई है। दैवी और मानवी दोनों अवस्थाएँ भोगनेवालों को समाधि योग से चिरस्वरूप में विलीन होकर निरंतर कार्य करते रहना संभव होता है। ब्रह्मापिता के आशीर्वाद से यह परमावस्था अगस्त्य को प्राप्त हुई है। अगस्त्य ने महान कार्य करके अपनी दिव्य शक्ति को सिद्ध किया है। वस्तुतः उन्होंने देवाधिदेव इंद्र और सृष्टि को विस्मित करने वाले मरुद्‌गण के बीच मित्रता स्थापित करने का महद् कार्य किया है, यह बहुत ही मनोरंजक एवम् प्रशंसनीय है।''

''हे प्रभो यह कार्य हमें विस्तार से समझाइए। हम इसे जानने के लिए उत्सुक हैं।'' प्रभु रामचंद्र ने उत्तेजित होकर कहा।

''हे रामचंद्र, मरुतों को प्रसन्न करने के लिए अगस्त्य ने मरुद्‌गणों के विषय में एक सूक्त की रचना करके यज्ञ प्रारंभ किया था। मरुतों के लिए एक विशेष आहुति (हविष्य) अपनी शक्तिसामर्थ्य से निर्माण की थी। वे मरुतों के साथ साथ इंद्र को भी प्रसन्न करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि जबतक ये दोनों शक्तियाँ समतल होकर एक साथ नहीं आती, तब तक वर्षा, वर्षा से अन्न, अन्न से भरणपोषण एवम् प्रजोत्पादन सुफलित होना संभव नहीं। पृथ्वी पर सभी जीवों के निरंतर कल्याण हेतु इन शक्तियों का एक साथ प्रसन्न होना आवश्यक ही था। हे प्रभु रामचंद्र, उनके गौरवशाली कार्य के हजारों वर्ष बीत चुके हैं। सृष्टि का चक्र निरंतर चल रहा है। इंद्रमरुद्‌गण एक साथ कार्य कर रहे हैं, यही कारण है कि यह

सब आज तक हो रहा है। फिर भी इन देवताओं के बीच कभी कभी असहमति होती रहती है, परंतु मान्दार्यों ने किया हुआ यह कार्य सरल नहीं था।''

''हे प्रभु महादेव, कृपया शीघ्र बताइए कि ये कैसे हुआ। हम जानने के लिए उत्कंठित हैं।

भगवान शिवशंकर ने आगे कहा,

''मान्दार्यों ने अपने पिता अग्निस्वरूप मित्र और शांतिप्रिय वरुण को आमंत्रित किया।''

''वरुण ने अत्यधिक उत्साह से, प्रेमपूर्वक सिंचन करके यज्ञकुंड स्थापित करने में मदद की। हर्षोल्लास का वातावरण निर्माण किया। मान्दार्यों ने यज्ञ संपन्न करने के लिए सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुओं का प्रबंध किया। ब्रह्मांड, काल और कैवल्य समेत सभी देवता और ऋषिगणों का सम्मानपूर्वक आवाहन किया। परिसर और मंडप को विभिन्न लताओं-फूलों से सजाया। प्रथमतः उन्होंने मरुद्‌गण को आहुति देने के लिए सिद्धता की। उसी समय इंद्रदेव के आहुति का संकलन किया। सूर्यनारायण के उपस्थिती में मरुद्‌गण के लिए यज्ञ किया जाना था, जब कि अगले सात दिनों मे इंद्रदेव के लिए योजना बनाई गई थी।''

''मान्दार्यों ने शतार्चिन ऋषि को पौरोहित्य करने के लिए आमंत्रित किया। मान्दार्य स्वयं यज्ञविधि सिद्ध करने वाले थे। यज्ञसत्रों का शुभारंभ करने के लिए निर्धारित स्थानों पर ऋषिगण पुरोहित स्थानापन्न हुए थे। मान्दार्य ने सभी देवताओं का विनम्र अभिवादन करके उन्हे यजमान के नाते आवाहन किया। मरुद्‌गण और देवेन्द्र इस समारोह की ओर आदरपूर्वक देख रहे थे। मान्दार्यो को दोनों परमदेवताओं के प्रति अपार श्रद्धा थी। उनके स्वीकृत कार्य कें लिए दोनों देवताओं के आशीर्वाद और उनका सक्रिय सहभाग अगस्त्यों को अभिप्रेत था। यज्ञवेदी- यज्ञकुंड सुशोभित और सिद्ध किए गए थे। शरीर, आत्मा, चित्त तथा स्थल, परिसर एवम् काल की सभी अनिवार्यताओं की पवित्रता की पुष्टि पश्चात ऋषि शतिर्चित ने यज्ञकर्म अनुष्ठित किया।

''देवलोक में भी शक्तिसामर्थ्य को लेकर स्पर्धा का उदय होगा। यह सत्य है कि, परब्रह्म की आज्ञा से, उनकी इच्छा से तद्नुरूप ब्रह्माविष्णुमहेश ने निष्पन्न करके प्रजापति की सहायता से देवलोक की स्थापना की, तथापि भूलोक के अस्तित्व का श्रेय, इस पर स्पर्ध्दा आरंभ हुई। इंद्र और मरुत के बीच अत्यधिक

थी। ऋषि वर्षा के लिए इंद्र और मरुत को प्रसन्न करने का प्रयास करते थे। किन्तु कई यज्ञविधि करने के पश्चात भी उनके प्रयास सफल नहीं होते थे। सभी ऋषियों ने सोच-विचार के पश्चात इंद्र और मरुत के बीच संधि करने का कार्य महर्षि अगस्त्य को सौंप दिया।''

''भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, पुलह, पौलस्त्य आदि ऐसे कई ऋषि अगस्त्य के पास आए।'' भगवान शिवजी कथा सुना रहे थे।

*

''हे अगस्त्य ऋषें, हम आप को वंदन करते है।''

''हे ऋषि श्रेष्ठ गण, आप सभी ब्रह्मर्षि हैं; इसलिए आप ही मेरे लिए वंदनीय है। मैं आप को त्रिवार वंदन करता हूँ।'' अगस्त्य ने विनम्रता से कहा।

''हे अतिप्राचीन त्रिदेवस्वरूप मित्रावरुण, आप देवेन्द्र और मरुत के भी स्नेही हैं। आप के यज्ञ विधि के अवसर पर मरुत आपकी यथोचित सहायता करते हैं, जब कि इंद्र भी आप की इच्छानुसार जलवृष्टि करते हैं। आप साक्षात भगवान सूर्यनारायण, अग्नि और विष्णू के अवतार हैं। इंद्रदेव के लिए स्थायी सुरक्षा प्राप्त हो, इसलिए आपने शिवस्वरूप होकर समुद्र प्राशन किया और गंगा मैया के माध्यम से उसे फिर से भर दिया। केवल आप ही के कारण समुद्र को सर्वश्रेष्ठ तीर्थत्व का सम्मान मिला। अतः हे त्रिकालज्ञ ऋषिवर, आपसे हमारा नम्र निवेदन हे कि आप इंद्र-मरुत का सुप्रतिष्ठित मेल करें, इसलिए कि ऋतुचक्र नियमित रूप से स्थापित हो सकें।

''हे स्वयंप्रकाशी ब्रह्मर्षे, आप का विनम्र और स्तुतिपूर्ण भाषण सुनकर मैं अतिप्रसन्न हूँ। परंतु हे ऋषिगण, यह सारी शक्तियाँ आप में भी स्थित है। अस्तु। मैं आप की आज्ञानुसार इंद्रमरुतों के लिए विस्तीर्ण सोमयाग के साथ यज्ञसत्र आरंभ करता हूँ। आप भी इन सत्रो में उपस्थित रहिए। मैं मरुतों के लिए प्रथम सत्र आरंभ करता हूँ और देवेन्द्र को आमंत्रित करता हूँ। आईए, हम ऐसे सुअवसर के लिए प्रयास करें। देखते है क्या होता हैं।''

''हे अगस्त्ये, आप साक्षात ब्रह्मा, नारायण, शिव, अग्नि, सूर्य हैं। ऋषिकुल के प्रधानाचार्य के रूप में आप अवश्य ऐसे सत्र आरंभ करें। हम सभी आप के

नेतृत्व मे सर्वतोभाव से भाग लेंगे। आप शीघ्रातिशीघ्र यह कार्य आरंभ करें।''

''तथास्तु, मैं यज्ञसिद्धि कार्य आरंभ करता हूँ। उसके लिए सर्वोत्तम प्रकार के आहुतियों का प्रबंध करना होगा। आप भी उपयुक्त आहुतियाँ जमा करें।'' अगस्त्य ने कहा, ऋषिगण प्रसन्न होकर चले गए।

ऋषियों ने अग्न्युपासना आरंभ की। आकाश में आवाहक शब्द आंदोलित हुए।

**'अग्निमीळे पुरोहितं, यज्ञस्य देवमृत्विजम।**
**होतारं रत्नधातममें'**

अग्नि का मंत्रपूर्वक आवाहन आरंभ हुआ। स्वयं अगस्त्य द्वारा रचित अग्निसूक्त का उच्चारण किए जाने लगा। – त्रिष्टुभ छंद की ऋचाओं का पाठ होने लगा।

**'अग्ने नये सुपथां राये अस्मान विश्वानि देव वयुनांनि विद्वान् ।**
**युयोध्य? स्मज्जे हुराण मेनो भूयिंष्ठां ते नमंउकिं विधेम**
**अग्ने त्वं पोरया नव्यों अस्मान त्स्पस्तिभिरतिं दुर्गाणि विश्वां ।'**

''हे सर्वज्ञ अग्निदेव, स्तवक भक्तों को सन्मार्ग से प्राप्त धन प्रदान कर और हमें दुष्ट पापों से मुक्ति दिला दे। हे प्रशंसनीय अग्ने, हर प्रकार से हमारा कल्याण करके हमें संकटमुक्त कर और पुत्रपौत्रों को विपुल सुख दे। विस्तृत तथा व्यापक पृथ्वी हमें स्वसामर्थ्य से छोटे नगर के भांति प्रतीत हो।''

''हे यज्ञार्ह अग्निदेव, भक्तों के कल्याण हेतु सभी देवताओं के साथ पृथ्वी लोक आओ और हमारे रोग नष्ट करो।''

''हे युवा तथा बलवान अग्निदेव, प्रज्वलित होकर हमारे यज्ञगृह में अवतीर्ण हो और स्त्रोतों को आज एवम् कल भी निर्भय बना दें। आप निरंतर हमारी रक्षा करें। हे बलवान अग्ने, दाँतो से काटने वाले, जिव्हाग्र से दंश करने वाले अथवा निगलने वाले क्रूर, भुक्कड तथा दुष्ट शत्रुओं के चंगुल से बचा लें। उनसे हमारी रक्षा करें। यज्ञकार्यार्थ उत्पन्न हुए, हे दुष्ट संहारक, श्रेष्ठ अग्ने, शरीर रक्षा हेतु मैं आप का स्तवन करता हूँ। दुष्ट लोगों से तथा निंदकों से मेरी रक्षा करें। देवता और मनुष्य दोनों को ही सुपरिचित ऐसे आक्रमणशील और पूजनीय अग्ने, यजमान को धर्मकृत्य सिखानेवाले ऋत्विज की भांति प्रातःसमय यज्ञीय भक्तों को भी शिक्षा दें। हे पराक्रमी अग्ने, ऋषियों की सहायता से मानपुत्र द्वारा रचित इन स्तोत्रों

का स्वीकार करें और हमें अन्न, बल और गौरवशाली धन प्रदान करें।''

इस तरह अग्नि के क्रियावान स्तुतिस्तोत्र गान से अग्निदेव प्रसन्न हुए। मथने से अग्नि यज्ञकुंड में स्थिर हुआ और उसकी लपटे आकाश की ओर जाने लगी। देवताओं के मुख अग्निरूप होने के कारण अब देवताओं को भी आवाहित किया गया। मानऋषि के आवाहन से देवेन्द्र भी अत्यानंद से यज्ञ स्थल पर उपस्थित हुए। उनके और मान्दार्य के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध थे। देवेन्द्र ने सहर्ष आहुति स्वीकार कर ली।

''हे मान ऋषे, आप बडी श्रद्धा से यज्ञ विधि संपन्न कर रहे हैं। आप की मनोकामना अवश्य पूरी होगी।'' मान ऋषि ने विनम्रता से इंद्रदेव का अभिवादन किया। मरुद्गण ने इंद्रदेव का क्षेम पूछा।

''हे मान ऋषे, आप मुझसे और मरुत देवसे अत्यधिक प्रेम करते हैं। हमारी स्तुति करते समय आप की वाणी अति प्रासादिक बन जाती है, इसलिए हम आप से अति प्रसन्न हैं। परंतु मेरे एक प्रश्न का समाधान कीजिए।'' इंद्रदेव ने पहेली बुझाई।

''हे पूजनीय देवेन्द्र, जब आप अधिक मात्रा में उत्तम जल सृष्टि को अर्पण करके सृष्टि सुजागर करते हैं, तो हम पर आप की विशेष कृपा है, तो आप किस संदेह का समाधान चाहते है।

''स्तुतिसुमनों की वर्षा करते समय आप मरुतों को अधिक महत्त्व देते हैं, वह कैसे? अभी आपने हम दोनों के लिए यज्ञयाग करते हुए भी मरुतों को अग्रक्रम दिया, वह क्यो?''

''हे देवेन्द्र, पक्षपात करके आप दोनो के बीच अनबन उत्पन्न करना मेरे लिए कैसे संभव है। आप दोनों की शक्तियों पर ही पृथ्वी निर्भर है।''

''यदि ऐसा है तो ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी रचनाओं में, वाणी में मरुतों को विशेष महत्व दिया गया है।''

''मैं क्षमा चाहता हूँ, किन्तु मेरा ऐसा कोई उद्देश्य नहीं है, क्यों कि मरुत आप के साथ ही होते हैं। आप अपनी यात्राएँ भी उनकी इच्छानुसार ही करते है। तो यह प्रश्न क्यों?''

''यदि आप का उद्देश्य वास्तव में ऐसा नहीं है, तो आप को हमें वह यज्ञीय पशु देना होगा जो आप ने इस यज्ञ के लिए एक विशेष आहुति देने हेतु सिद्ध

किया है।'' इंद्र ने पुनःश्च उलझन खडी की।

''परंतु देवाधिदेव, यह यज्ञीय पशु मैंने मरुतों के लिए सिद्ध किया है। आप जानते हैं, यदि आप को यह पशु दिया जाता है तो मरुतों का यज्ञ सफल सिद्ध नहीं होगा।''

''अर्थात मैंने जो कहा, वह यथार्थ है, यही सिद्ध होता है।'' इंद्र ने कहा।

मरुत उनका संभाषण सुन रहे थे। उन्हें भी तनिक क्रोध आया। वे आगे बढ कर कहने लगे–

''हे मान्दार्य, यज्ञ के लिए संकल्पित पशु अन्य किसी और को नहीं दिया जा सकता। यदि ऐसा हुआ तो मेरे लिए सिद्ध किया हुआ पशु मुझे देने से यज्ञ कर्म अधूरा रह जाएगा।'' मरुत ने अपना मत स्पष्ट किया।

''हे देवाधिदेव, आप के सम्मुख चल रहा संभाषण आप सुन रहे हैं, अतः आप से प्रार्थना है कि, आप ऐसा आग्रह ना करें। इंद्र और मरुत दोनों देवता मेरे लिए महत्वपूर्ण हैं। मनुष्य के सुखदायी जीवन के लिए आवश्यक है। अपना यह आग्रह परे रख कर आप यज्ञ में भाग लें।'' मान ने प्रार्थना की।

''तो फिर सुनो, इस सृष्टि में जो कुछ भी निर्माण हुआ है, वह मेरे कारण है। अतः उस पर प्रथम मेरा अधिकार है। अर्थात यह यज्ञीय पशु मैं ले जाऊँगा।'' ऐसा कह कर इंद्र ने बलपूर्वक यज्ञीय पशु अपहरण करने का निश्चय किया और वास्तव में इंद्र ने उस पशु का अपहरण किया। आकाश मार्ग से वे मार्गस्थ भी हुए। मान्दार्यों ने देवेन्द्र का आवाहन करने का प्रबंध किया। परंतु मरुत क्रोध से वज्र हाथ में लिए इंद्र का वध करने के लिए उद्युक्त हुए।

मान्दार्यों ने समायोचित बुद्धि से मरुतों के चरण पकड लिए। सभी ऋषिगण भयभीत हुए।

मेघों की प्रलयंकारी गडगडाहट से अवनि और आकाश भी कंपायमान हुए। जब कि, मरुत ने उतने ही सामर्थ्य से झंझावात आरंभ किया। एक पल के लिए मान ऋषि की समझ में नहीं आया कि क्या करें। उन्होंने ब्रह्मा, विष्णू, महेश का स्मरण किया। ब्रह्मा विष्णु महेश अपनी शक्तियों के साथ आकाश से अगस्त्य की ओर सकौतुक देख रहे थे।

*

‘‘हे महादेव, पुत्र अगस्त्य व्याकुल स्थिति में है। आप को कुछ करना होगा।’’ पार्वती माता ने शिवजी को उलझन में डाल दिया।

‘‘हे प्रकृतिस्वरूपिणी, आदिमाया, पुत्र मान्दार्य, इंद्र-मरुतों के स्नेही हैं। वे निश्चित रूप से इससे बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ लेंगे।’’

‘‘हे विश्वेश्वर, आप जो कहते है वह सत्य है, किन्तु अब अगस्त्य दुविधा में हैं। वो देखिए, वे आप ही के पास आ रहे हैं। ब्रह्मदेव ने पार्वती माता की बात का समर्थन किया। तब तक महर्षि अगस्त्य समस्त ऋषिगण के साथ त्रिदेव के सम्मुख उपस्थित हुए।’’

‘‘हे लोकरचयिता, हम समस्त ऋषिगण आप को प्रणाम करते हैं।’’

‘‘हे महर्षे, आप प्रत्यक्ष यज्ञकर्म अधूरा छोड कर यहाँ कैसे आएं?’’ शिवजी ने प्रश्न किया।

‘‘हे देवाधिदेव, मरुतों के लिए सिद्ध हो चुका हविष्यरूपी पशु वृषभ देवेन्द्र द्वारा छीन लिया गया है। इसलिए मरुत क्रोधित हो गएं। दोनों के बीच द्वंद्वयुद्ध आरंभ हुआ है। यह रोकने की क्षमता केवल आप ही के पास है प्रभो! यह द्वंद्व भी आप ही की लीला है।’’

‘‘हे अगस्त्ये, ये दोनों अंतरिक्ष देवता तो आप के मित्र हैं, तो उनके बीच संघर्ष निर्माण होने का क्या कारण है? आप ही ने तो उन्हें आमंत्रित किया है?’’ विष्णु भगवान ने पूछा।

‘‘हे सृष्टिरचयिता, सृष्टि सिंचन एवम् पोषण के लिए ये दोनों शक्तियाँ समान रूप से महत्वपूर्ण है। तथापि सृष्टिकार्य मे कौन श्रेष्ठ, इस पर दोनो में अहंकारयुक्त धारणाएँ बढने लगी है। इन दोनों के बीच का यह संघर्ष सृष्टिविनाश का संकेत है। अतः आप ही को इसका समाधान खोजना होगा।’’

‘‘हे अगस्त्य ऋषे, जब कि हम त्रिदेव तुम्हारे स्वरूप मे वहाँ पर उपस्थित होते हुए, ऐसा नहीं होना चाहिए था। आप ही अपने आत्मशक्ति से परामर्श लें। आप के लिए कुछ भी असंभव नहीं है।’’ शिवजी ने गौरवपूर्वक कहा।

‘‘ठीक है। आप के आदेश के अनुसार मैं यथाशक्ति प्रयास करता हूँ। आप का आशीर्वाद रहें।’’

अगस्त्य के साथ समस्त ऋषियों ने त्रिदेवों को साष्टांग प्रणाम किया। ऋषिगण पुनःश्च अपने यज्ञवेदी स्थल पर लौट आए। त्रिदेवों का आशीर्वाद प्राप्त

होते ही अगस्त्य ने मरुतों को पुनःपुनः शांति के लिए आवाहन आरंभ किया। मरुत तनिक सामंजस्य से शांत होते हुए देखते ही मान ऋषियों ने उन्हें स्वरचित सूक्तों से अभिषिक्त किया। मान ने इंद्रदेव को चर्चा के लिए आवाहन किया। इंद्र की घनगर्जना कुछ शांत हुई।

''वास्तव में सभी हविष्य पशु आप एक दूसरे द्वारा ही निर्माण किए गए हैं। हमारा कार्य केवल अग्निमुख के द्वारा आप तक पहुँचाना है।'' अगस्त्य ने कहा। उनकी वाक्पटुता से इंद्र कुछ शांत हुए।

यदि आप दोनों में संघर्ष आरंभ हुआ तो सृष्टि का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। कृपया इस पर भी आप ध्यान दें।'' मान ने विनम्रता से निवेदन किया और मरुद्‌गण के साथ इंद्रदेव की ओर जाने लगे।? इंद्र ने यह सब देखा और सोचने लगे।

''समवयस्क, सहनिवासी और बलसंपन्न मरुद्‌गण अपने शक्तिशाली सामर्थ्य से वृष्टि करते हैं। मेरा सामर्थ्य वृद्धिंगत करने वाले ये मरुत किस उद्देश्य से मेरी ओर आ रहे हैं, यह समझना आवश्यक है।'' इंद्र मन ही मन विचार कर रहे थे। तब तक मान के साथ मरुत देवेन्द्र के निकट आकर बैठ गएं।''

''हे देवेन्द्र, आप उभयतः घनिष्ठ मित्र हैं। परस्पर सहयोग से आप अनंतकाल सृष्टि को शोभिवंत करने जा रहे हैं। आप सौहार्द के साथ हमारे यज्ञ को संपन्न करके आहुति स्वीकार करें। समूचे सृष्टि के कल्याणार्थ ही यह सब हो रहा है।'' मान ने समझाने का प्रयास किया।

''हे युवा मरुतों, कौन से स्तोत्र का हविर्द्रव्य तुम भक्षण करते हों? श्येन पंछी की भांति आकाश में भ्रमण करने वाले तुम्हें यज्ञ स्थल पर कौन खींच लाता है? कौन से महान स्तोत्र से तुम्हें आनंद मिलता है?'' इस प्रकार हर तरह से अनुनय किया; मान की प्रार्थना का सम्मान करते हुए मरुतों ने शांति से उत्तर दिया।

''हे सज्जन संरक्षक, अश्वयुक्त तथा श्रेष्ठ इंद्र, तुम इस तरह क्रोधित होकर अकेले मत जाओ। हम तुम्हारे पास आ रहे हैं। तुम्हें जो भी कहना है, निःसंदेह कह सकते हो।''

''हे मरुतों, यज्ञ के सभी हविर्द्रव्य, स्तोत्र और सोमरस जो मिले हैं, वे मेरे अकेले के हैं। उन पर केवल मेरा अधिकार है। भक्तों के संकटनिवारण के लिए

मैंने शक्तिशाली वज्र धारण किया है। जब भी आवश्यकता होती है, भक्तगण स्तोत्रों की सहायता से मेरी प्रार्थना करते हैं।'' इंद्र ने अहंकार से अपनी महानता का दावा किया।

''हे इंद्र, अश्वयुक्त जैसे हम अपने सामर्थ्य से गरज कर हमारे रथाश्व सिद्ध करते हैं। हमने अपनी शक्तियों का बोध तुम्हें भी करा दिया हैं। मरुतों ने विनम्रता से उत्तर दिया।''

''मैं उग्र, शक्तिशाली, पराक्रमी एवम् श्रेष्ठ हूँ। मैंने समस्त शत्रुओं को शस्त्रों के बल से वश में कर लिया हैं। क्या तुमने कभी ऐसा शौर्य दिखाया है जो मैंने अकेले अहिनामक राक्षस के साथ लडकर दिखाया था?'' देवेन्द्र के मुख से अहंकार झलक रहा था।

''हे शक्तिशाली और पराक्रमी इंद्र, यद्यपि आपने अपने बल से अनेक पराक्रम किए होंगे। किन्तु जो पराक्रम हमने अपने सामर्थ्य और कर्तृत्व से किए हैं वे आप के पराक्रम से कई अधिक श्रेष्ठ हैं। और भविष्य में भी श्रेष्ठ रहेंगे, क्यों कि हम मरुत हैं। यह देख कर कि, देवेन्द्र नम्रता से कहने के पश्चात भी विनम्र नहीं होता हैं, मरुतों ने भी उसी तरह से प्रत्युत्तर दिया।''

''हे मरुतों, मैंने अपने इंद्रिय सामर्थ्य और सक्रोध के बल से वृत्रवध का महान पराक्रम किया है। मैं वज्रबाहू हूँ, मैंने मनू के लिए आल्हादक और प्रवाही जल का निर्माण किया है।'' इंद्र ने गर्व से कहा।

''हे शक्तिशाली एवम् सर्वज्ञ इंद्रदेव आप के शौर्य हमें ज्ञात है। आप की प्रेरणा से ही सृष्टि का कार्य चल रहा है। मानव जाति में जिसका जन्म हुआ है या होने वाला है, ऐसे किसी भी मनुष्य को आप की तुलना में पराक्रम करना संभव नहीं।''

जब मरुतों ने ही इंद्र की स्तुति करना आरंभ किया, तो इंद्रदेव चौंक गए, तनिक लज्जित हुए। मान ऋषि के कौशल को उपयोग में लाया गया था। मान ऋषि ने विनम्रता से मरुतों को जित लिया ही था, तथापि उनके सामंजस्य का उपयोग करके इंद्रदेव को भी अपने पक्ष में कर लिया। इंद्र और मरुत के बीच निर्माण हुआ शत्रुभाव तो दूर हुआ ही, साथ में मानव कल्याण हेतु दोनों शक्तियों का उपयोग करने में मान्दार्य सफल रहें। मरुतों का विनम्र और प्रशंसनीय भाषण सुन कर इंद्रदेव ने कहा,

‘‘हे मरुतों, मैं अपनी इच्छाशक्ति से मनचाहा पराक्रम प्रदर्शित कर सकता हूँ, तथा उग्र पराक्रम से समस्त वस्तुओं का स्वामी बन सकता हूँ। अतः हे मरुत, मेरा यह सामर्थ्य वृद्धिंगत करो। हे मरुतों, मैंने आजतक ऐश्वर्यवान, बलवान, शक्तिशाली, सुयज्ञ तथा अनेक शरीरों से युक्त ऐसे महान पराक्रम किए है, इसलिए भक्तों के आनंददायी स्तोत्र मुझे ही प्राप्त होने दे। विपुल अन्न और कीर्ति धारण करने वाले, मुझसे प्रेम करने वाले हे आल्हादित, शरीर कांतियुक्त मरुतों, मेरी उपासना, आराधना करके मेरी कीर्ति बढा दो।’’

इंद्रदेव के इन वचनों को सुनकर मान्दार्य ने अत्यंत चतुरता से इंद्रदेव को तो प्रसन्न किया, तथापि मरुतों की श्रेष्ठता स्थायी रखने में भी सफल रहें, उन्होंने कहा,

‘‘हे अद्‌भुत मरुतों, जब आप मेरी शक्तियों के उद्‌घाटक हो, तो उन मित्रवत् भक्तों के पास जाइए जो आप की पूजा करते हैं और उनके लिए ऐश्वर्य प्राप्त करें हे मरुतों, जिन स्तोत्रोंद्वारा स्तुति की जाती है, ऐसे स्तोत्रों की महिमामय बुद्धि आप दोनों को प्राप्त हो। आप के लिए स्तोत्रों की रचना करने वाले ज्ञानी स्तोताओं के पास शीघ्र लौट आओ। हे आनंददायी मरुतों, हम स्तोताओं के स्तोत्र तथा तेजस्वी वाणी आप के लिए ही हैं। इन स्तोताओं की प्रार्थना आप सुनें और हमारे शरीर-पोषण के लिए आवश्यक अन्न, बल तथा धन प्रदान करें।’’ मान ऋषि के इस कौशल्यपूर्ण निवेदन से इंद्रदेव और मरुत प्रसन्न होकर पुनःश्च यज्ञस्थल पर उपस्थित हुएं। उनका आपसी मनमुटाव अब मिट गया था अपने-अपने शौर्य की यशोगाथा महर्षि अगस्त्य के मुख से सुनने में मग्न हो गएं।

मान्दार्यों ने मरुतों की हर तरह से स्तुति की, उनके तेज को उजागर किया। साथ ही वे इंद्र की शक्ति को प्रकाशित कर अपने मन में मरुतों के प्रति गहरा सम्मान उत्पन्न करने में भी सफल रहें। अर्थात इंद्रदेव और मरुतों की पारस्परिक सफलता का वर्णन करते हुए उन दोनों को अपने वश में कर लिया।

‘‘हे अश्वयुक्त इंद्रदेव, हमारी मदद करने के हजारो प्रकार आप को ज्ञात है। उसी मार्ग से आप हमें समृद्ध करें। धन का वहन करने में, तथा जहाँ आवश्यक हो वहीं वर्षा को बरसाने का आपका कौशल इंद्रदेव को उनको शौर्य प्रदर्शित करने तथा हमें सुख दिलाने के लिए सहायक सिद्ध होता है। इसलिए हमारे सभी सूक्त आप का स्तुतिगान करते हैं। आप उभयतः हम पर प्रसन्न हों।’’

‘‘मरुतों की स्तुति गाते हुए मान्दार्य ने कहा, ‘‘हे मरुतों, मैं आपसे मनुष्यमात्रों के यज्ञ में सामंजस्य लाने, यज्ञकृत्य देवताओं तक पहुँचाने, द्यावापृथ्वी को प्रसन्न करने के लिए सुखसमृद्धि कर स्तोत्रों की सहायता से आवाहन करता हूँ। हे आनंददायी मरुतों, हम स्तोताओं की प्रार्थना आप सुने और हमारे शरीर पोषण के लिए आवश्यक अन्न, बल तथा धन प्रदान करें।’’ मान के इस आवाहन से मरुत प्रसन्न हुए।

मान्दार्य अगस्त्य ने इंद्र को और भी अधिक कुशलता से अपने वश में कर लिया। इंद्रदेव के स्तुतिस्तोत्र गाते हुए उन्होंने कहा,

‘‘श्रेष्ठ मरुतों को प्रेरणा और उनका साथ देनेवाले हे ज्ञानवान इंद्र, आप वास्तव में महान हैं। मरुतों के क्रोध से हमारी रक्षा करके हमें सुख प्रदान करें। हे इंद्र, युद्ध काल के वैपुल्य मे संतोष मानने वाले ज्ञानी मरुद्‌गण आप की कृपादृष्टि से मनुष्य मात्रों के साथ स्नेहपूर्ण संबंध रखने लगे हैं और उनके लिए पर्जन्यवृष्टि करते हैं। जल से घिरे एक द्वीप की भांति हरिर्द्रव्यों से व्याप्त हे देवेन्द्र, हमारे लिए अपने वज्र को मेघों पर फेंक दे, अर्थात मरुद्‌गण प्राचीन जल को मेघों से मुक्त कर देंगे और उसके साथ यज्ञकार्य के लिए अग्नि उपलब्ध होगी। भक्तों के स्तुतिगान से समृद्ध बने हे इंद्र, दक्षिणा देकर प्रसन्न किए ऋत्विज की भांति हम आप को प्रसन्न कर रहे हैं। आप हमें धन दें। यज्ञकर्ता को संतोषप्रद धन प्रदान करनेवाले हे इंद्र, यज्ञस्थान पर देवताओं के सम्मुख प्रकट होनेवाले मरुतों की कृपादृष्टि हमें प्राप्त करा दें।’’

हे इंद्र आप देवताओं के हविर्द्रव्य अर्पण करने वाले यजमान के यज्ञगृह जाकर आप को जितना हविर्द्रव्य चाहिए, ले लीजिए। मार्ग में राज सैन्य की भांति मरुद्‌गण रूपी विशाल मेघ आप का स्वागत करने के लिए खडे हैं। हे इंद्र, आप के भयंकर, गतिशील और लडाऊ मरुद्‌गणों का पदरव दूर से सुनाई दे रहा है। ऋत्विज द्वारा स्तवन किए गए हैं लोकोपकारक, शक्तिशाली एवम् आत्मगौरव युक्त इंद्र, प्रकाश को अवरुद्ध करने वाले जलपूर्ण मेघों का आप भेद कर दें। आप हमें अन्न, शक्ति एवम् धनसंपत्ति प्रदान करें।

यद्यपि इन स्तुति स्तोत्रों से इंद्रदेव प्रसन्न थे, किन्तु मान्दार्यों ने इंद्रदेव के साथ साथ जब मरुतों को भी हविर्द्रव्य अर्पित किए तो, इंद्रदेव को लगा कि उनका अपमान किया गया है। वे क्रोधित नहीं हुएं, अपितु विलाप करने लगे।

मान्दार्यों की बातों से वे सहमत थे। उनकी इस बात पर इंद्रदेव को विश्वास हो गया था कि, इंद्रदेव और मरुत को एक साथ मिलकर जलभरण और सृष्टि पोषण का कार्य करना आवश्यक है। इंद्रदेव को अब पछतावा हो रहा था, कि उन्होंने यज्ञीय पशु को भगा के ले जाकर मान्दार्यों को अपमानित किया। देवेन्द्र होकर भी हमने उनके लोककल्याण कारी कार्य मे बाधाएँ उत्पन्न की। उन्हें अपने किए पर खेद था। तथापि एक साधारण मनुष्य की भांति अपने अपमान से वे अस्वस्थ थे। मान अगस्त्य इस बात को जानते थे, इसलिए उन्होंने पहले इंद्रदेव की बाते सुन ली और फिर इस पर समाधान ढूँढने का निश्चय किया।

''मनुष्य को दिखाई देने वाली हर एक वस्तु तुरंत नष्ट हो जाती है, अपना कोई निशान भी पीछे नहीं छोडती। विचलित हुए भक्तों का मन स्थिर करने का सामर्थ्य मेरे पास है। मेरी अद्‌भुत शक्ति का सामर्थ्य मैं अपने भक्तों को किस प्रकार समझा दूँ?'' इंद्रदेव ने खेद व्यक्त किया।

''हे इंद्र, आप हमें अर्थात सृष्टि को क्यों नष्ट कर रहे हैं? मरुत आप के भ्राता है। आप को उनके साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए। अगस्त्यों ने इंद्रदेव से प्रार्थना की।''

''हे भ्राता मान्दार्य, आप मेरे सखा होकर भी आपने मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया? मेरे अधिकार का हविर्द्रव्य आपने अन्य देवता को क्यों अर्पित किया? हे मान्दार्य ऋत्विजों ने सालंकृत किए वेदी तथा प्रज्वलित अग्नि के निकट हम आप के अमरत्व प्राप्ति के यज्ञ को पूरा करते हैं।''

इंद्रदेव के यह सौहार्दपूर्ण और लज्जित स्वर के बोल सुन कर अब इंद्रदेव और मरुतों को एक साथ मिलाने का यही उचित अवसर है, यह देख कर मान्दार्यों ने कहा,...

''हे धनाधिपति और मित्र इंद्रदेवता, आप समृद्धि के स्वामी हैं। हमारे मित्रों के आप ही आधार हैं। मरुत तो आप के भ्राता और सखा भी है। आप मानते हैं कि, मैं भी आप का सखा हूँ, इसलिए मेरे वचन आप स्वीकार करें। मरुतों को अपने साथ ले आकर आपका हवि भक्षण करें।''

मान्दार्य अगस्त्य मुनि की यह मध्यस्थता तथा सभी को साथ लेकर कार्य करने के लिए प्रेरित करने का भाषण सुनकर इंद्रदेव प्रसन्न हुए।

''हे बंधुरूप मरुतों, हम हमारा दुराग्रह छोड रहे हैं। इसलिए आप हमारे

साथ आकर मान्दार्य अगस्त्य मुनि का यज्ञीय हविष्य स्वीकार करें।'' इंद्र ने मरुतों से आवाहन किया। मरुतों को बहुत अच्छा लगा। ''हे देवाधिदेव, आप स्वयं हमें बुलाते हैं, इससे बढकर और क्या सम्मान हो सकता है? आप जल से ओतप्रोत मेघों की भांति बाहर से उग्र किन्तु भीतर से कोमल, और सब के लिए जीवनदायी हैं। हम अवश्य मान्दार्यों का अनुरोध स्वीकार करेंगे।''

मरुतों ने इंद्रदेव को आलिंगन देकर अपना आदरभाव व्यक्त किया। दोनों की मित्रता देखकर मान्दार्यों को विश्वास हो गया कि, त्रिदेव द्वारा दिए गए आज्ञानुसार अनंत काल से चलता आ रहा दोनों के बीच के इस संघर्ष को समाप्त करके सृष्टि कल्याण के लिए दोनों को एक साथ लाने के लिए किया गया यह यज्ञ अब निश्चित रूप से सफल होगा।

''हे इंद्रदेव मुझे गर्व है कि आपने मुझे सखा कहा है। मैं आप का स्वागत करता हूँ। हे इंद्रदेव, भ्राता मरुतों, हम धन्य हैं कि आपने इंद्रदेव के साथ हमारे अनुरोध को स्वीकार कर लिया और यज्ञ में भाग लेने तथा यज्ञीय हविर्द्रव्य को स्वीकार करने का निर्णय लिया। आप दोनों हमारा प्रणाम स्वीकार करें।'' मान्दार्य अगस्त्य मुनि के बोल इंद्र-मरुतों के हृदय को छू गए। लोककल्याण के लिए अपनी महानता भूलकर यज्ञकर्म करनेवाले मान्दार्यों के प्रति अपार प्रेम से दोनों ने अगस्त्य मुनि को दृढ आलिंगन दिया।

इंद्र-मरुत के इस विश्वमिलाप को देखने के लिए देवताओं और ऋषियों की भीड उमड पडी थी। ऋषिओं और देवताओं ने इंद्र-मरुतों का जयघोष किया। सारा संसार आनंद से पुलकित हुआ। सृष्टि अनंतकाल के दुखों के नष्ट होने का अनुभव कर रही थी।

मान्दार्योंने शतार्चिन ऋषि की सहायता से एक विशेष सोमरस सिद्ध करके उसे इंद्र-मरुतों को अर्पित किया। सोमप्राशन से ऋषियों का उत्साह पुनः शतगुणित हुआ। मान अगस्त्यों ने यज्ञ में हविर्भाग अर्पित करने के लिए इंद्र-मरुतों के सुक्तों का जाप आरंभ किया। यज्ञ क्षेत्र को विशिष्ट ईप्सित सिद्धि के साथ विश्वकल्याणोत्सव का रूप प्राप्त हुआ था।

''हे दृतगति मरुतों, मैं आप के अनुग्रह की प्रार्थना करते हुए हविर्द्रव्य और स्तोत्रों के रूप में आप के पास आ रहा हूँ। आप प्रसन्न और क्रोधरहित होकर आप के कृपालू अश्व मुक्त करें । हे मरुतों, हमने मनःपूर्वक तैयार किए इस

हविर्युक्त स्तोत्र का आप स्वीकार करें और हमें प्रचुर मात्रा में अन्न प्रदान करें। हे बहुस्तुत्य मरुतों, धनवान इंद्र के साथ आप हमें अपार सुख दें। आप हमारे जीवन के सभी भविष्य के दिनों को समृद्धि से भर दें। हे मरुतों, बलिष्ठ इंद्र के भय से इतस्ततः भागने के कारण मुझे आप के हविर्द्रव्य दूर ले जाना पडा। परंतु आप हम पर क्रोधित न हों। अपितु हमें सुख प्रदान करें।''

''मरुतों के ज्येष्ठ भ्राता इंद्रदेव आप उषा के आगमन के पश्चात बलसंपन्न होकर सूर्य तेज से प्रकट होते हैं। आप की शक्तिशाली किरणों की सहायता से उग्र, बलद और पुरातन मरुतों सहित आप हमें समृद्धि प्रदान करें। हे इंद्रदेव, बुद्धिमान मरुतों के साथ हम पर प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करें।''

''हे मरुतों, आप मर्त्यलोक के हम पुत्र-पौत्रों को व्याधि मुक्त करके दीर्घायु प्रदान करें। हे इंद्रदेव, आप के प्रिय सामगीत गाकर हम आप का पूजन करते हैं। हे प्रशंसनीय इंद्र बहुस्तुत देवताओं की स्तुति करने वाले होतृगण सहपरिवार आप का यज्ञकर्म कर रहे हैं। आप से प्रार्थना है कि, आप स्वयं हविर्दाता ऋत्विज के यज्ञस्थल पर उपस्थित हों। अग्निनारायण इंद्रदेव की ओर से हमारे हविर्द्रव्य स्वीकार कर रहे हैं और अश्व की भांति हिनहिनाकर, वृषभ समान गर्जना करते हुए अग्निदेव इंद्रदेव तक हविर्द्रव्य पहुँचाते हैं। हे इंद्रदेव, आप अश्विनीकुमार जैसे निरामय स्वास्थ्य के सुंदर वीर पुरुष हैं। आप इतने श्रेष्ठ योद्धा है कि, आप के सामने सभी शत्रु हतबल हो जाते हैं।

''हे इंद्रदेव, आपका पृथ्वीव्यापी बलसामर्थ्य और आप का माहात्म्य समग्र त्रिलोक में विख्यात है. आप द्यावापृथ्वी में कहीं भी संचार कर सकते हैं अपितु त्रिलोक को भी व्याप्त कर लेते हैं। आप द्युलोक धारण कर सकते हैं, इसलिए आप हम जैसे अपने भक्तों को अभयपूर्वक आश्रय देकर उनकी रक्षा करते हैं। हे इंद्रदेव, हमारे द्वारा सिद्ध किए गए सोमयाग और स्तोत्रों से प्रसन्न होईए। प्रबल प्रतिस्पर्ध्दियों की प्रतिस्पर्ध्दा को सामंजस्य से समाप्त कर देने वाले हे इंद्र, हम आप को स्तुति गान से वश कर लेते हैं। आप प्रसन्न होईए। महायुद्ध में मरुतों के साथ विचरण करने वाले, हे बलवान इंद्र आप हमारे हविर्द्रव्य और स्तोत्रों का स्वीकार करें। आप हमें आप से अलग न करें। हे इंद्र-मरुतों, मेरे ये स्तोत्र और मेरी वाणी केवल आप ही के लिए हैं। हम स्तोताओं की इच्छाओं का सम्मान करते हुए आप समग्र मानव जाति के भरण-पोषण के लिए हमें अन्न,

शक्ति एवम् धनसंपत्ति प्रदान करें।'' अगस्त्य इंद्र-मरुतों से प्रार्थना कर रहे थे।

ऋषि अगस्त्य के इस तरह के मधुर स्तोत्रों से इंद्रदेव और मरुत प्रसन्न हुए। दोनों ने अगस्त्य मुनि द्वारा सिद्ध किया सोम, सोमयाग बलप्रसाद के रूप में प्राशन किया। दोनों अति प्रसन्न हुए और आपसी वैमनस्य को त्याग कर निर्मल मन से एक दूसरे के मित्र बनें। अग्निदेवता अर्थात मित्रावरुण देवता और इंद्रदेव के अंशात्मक आविष्कार से द्यावापृथ्वी के निर्माण और सृष्टि सामर्थ्य में मूलतः सहभागी तथा शिवतेज से समृद्ध मान्दार्यों ने लोककल्याण कारी कार्य में सेवारत होने के लिए जब आग्रहपूर्वक इंद्रमरुतों से अनुरोध किया तो वे तनिक लज्जित हुए। अंततः दोनों ने वर्षा और वायु का संतुलन रखने के लिए अगस्त्यों द्वारा किए गए निवेदन को स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा,

''हे मान्दार्य, अब हमारे स्तोत्र गान को रोक दो। हम पूरी तरह से प्रसन्न हैं। हम आप को दो अभिवचन देना चाहते हैं। हे मित्रवर, आप जो चाहे माँग सकते हैं।''

इंद्रमरुतों की यह प्रेममयी वाणी सुनकर मानऋषि अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने बिना एक क्षण की देरी से अपनी माँगे निवेदन की।

''हे सर्वव्यापी, शक्तिशाली, महापराक्रमी इंद्रदेव, हे इंदभ्राता, विश्वसंचालक प्राणदाता मरुत, आप दोनों प्रसन्न होने से मुझे अत्यानंद हुआ है। आप की आज्ञा शिरोधार्य मान कर मैं आप से वरदान माँगता हूँ।''

''हे इंद्रमरुतो, विश्व में न केवल जीवों को अपितु सभी ऋषियों और देवताओं को आप की कृपा से जीवन और अन्न, शक्ति और सौंदर्य तथा बुद्धि और चातुर्य प्राप्त होते हैं। यह सब आपसी सहयोग और मित्रता से संभव होता है। आप दोनो यह महान और लोककल्याणकारी कार्य करते हैं। हम सब आप ही के कारण शक्तिशाली हुए हैं। इसलिए मैं आप से पहला अभिवचन यह चाहता हूँ कि, अब, इस क्षण से आप कभी भी एक-दूसरे को श्रेष्ठ, हीन, बलवान, दुर्बल अथवा एक-दूसरे के प्रतिद्वंद्वी नहीं समझेंगे अपितु पारस्परिक दृढ विश्वास, स्नेह, सामंजस्य और सहयोग के साथ, आपस में मैत्रीपूर्ण व्यवहार करेंगे।'' मान्दार्यों ने गंभीरता से इस माँग का उच्चारण किया। इंद्र मरुत कुछ क्षण के लिए लज्जित हुए, तथापि प्रसन्न भी हुएं।''

''तथास्तु!''

दोनों ने प्रसन्नता से अभिवचन दिया।

‘‘हे मान्दार्य, आप बहुत ही चतुर, विचारशील और लोककल्याणकारी हैं। हमें विश्वास हुआ कि, आप हम दोनों से प्रगल्भ है। आप की तपस्या तथा लोकहितैषि भावना से समग्र विश्व ज्ञानमय और तेजस्वी होगा, इस में कोई संदेह नहीं हैं। आप हमसे और कौनसा अभिवचन चाहते हैं? अवश्य माँग करें।’’

‘‘हे इंद्रमरुतो, आपने मेरा पहला अनुरोध स्वीकार करके मुझे उपकृत किया है। आपने मेरा सम्मान किया इसलिए मैं आप का आभारी हूँ। आप के आदेश के अनुसार मेरा दूसरा अनुरोध है कि, आप ऋतुचक्र का यथोचित नियोजन करें, ताकि सृष्टिरचयिता द्वारा निर्माण अत्यंत प्रसन्न और सुंदर स्वरूप सृष्टि पर वर्षा और जीवन का निरंतर संतुलन रह सके। जिससे इस सृष्टि में जल, अन्न और जीवन बिना कोई भूखा न रहे, ऐसा संकल्प करके संतुलन रखने का आशीर्वाद दें।’’ मान्दार्यों ने कहा।

‘‘हे मान्दार्य, आपने हमें अपने लोककल्याणकारी दृष्टि और सृष्टि के प्रति प्रेम से पूरी तरह से बाँध दिया है। वर्षा और जीवन का संतुलन रखने का हम आप को अभिवचन देते हैं। तथापि आप को यह भी बता दें कि, यह सर्वस्वी हमारे हाथ में नहीं है। सृष्टि में मनुष्य देवताओं, पंचतत्वों के साथ प्रतिस्पर्धा करने का प्रयास करता है। इसके लिए वह तंत्र की विज्ञान के आधार पर स्वयं संतुलन को नष्ट कर देता है, इस विषय में हम कैसे विश्वास करें? तो यदि इस तरह का संतुलन नहीं बना रहा, तो हमारे अभिवचन का क्या लाभ? अतः हमें इस धर्मसंकट में डालना उचित नहीं होगा। तथापि, हे मान्दार्य, आपने वरदान मांगा है तो हम दोनों संतुलन रखने का अभिवचन देते हैं।’’

इंद्र मरुतों की बाते सुनकर अगस्त्य गंभीर हो गए। तथापि इंद्रमरुतों की शरण में जाकर उन्होंने मानव कल्याण के लिए पुनःश्च उनसे प्रार्थना की।

‘‘हे इंद्रमरुतों, यह स्पष्ट है कि, तमोगुण के कारण मनुष्यों द्वारा प्रमाद होना स्वाभाविक है। तथापि जब उसे अपनी भूल का ज्ञान होगा तो उसे पश्चात्ताप होगा और परब्रह्म ने पापक्षालन का अवसर दिया है। सत्वगुण निष्पन्न होते ही मानव विनम्र भाव से परब्रह्म की शरण में आता है। उस समय आप कृपालु होकर उसे क्षमा करें और सृष्टि के वर्षा और जीवन का संतुलन रखकर उसे संतुष्ट करें।’’

मान्दार्यों की यह मानवतावादी वाणी सुनकर इंद्र मरुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मान्दार्य अगस्त्य मुनि को आशीर्वाद दिया।

''तथास्तु।''

इंद्र मरुतों के इन वचनों को सुनकर चराचर सृष्टि, प्रत्यक्ष परब्रह्म, शक्तिशाली त्रिदेव और यज्ञ के समय उपस्थित सभी देवता अति प्रसन्न हुए। उन्होंने देवाधिदेव इंद्र और उनके सखा मरुतों की प्रशंसा की और साथ ही मान्दार्य अगस्त्यों का विजय घोष किया।

''हे मान्दार्य, हम आपको निरंतर सफलता प्राप्त करने के लिए गायत्र्यौपनिषद प्रसाद के रूप में दे रहे हैं। आपको उनकी परंपरा को प्रचलित रखना है।'' इंद्रदेव ने अगस्त्यों को प्रसाद देते हुए कहा। मान्दार्यों द्वारा आरंभ किया गया यज्ञ इन असाधारण संघर्षो और अंततः प्रेमपूर्व घटनाओं से सिद्ध हुआ। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर मान्दार्यों को कहा कि, अब उन्हें और अधिक यज्ञ करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उस अवसर पर इंद्र-मरुतों सहित सभी देवता उनकी वाणी सुन रहे थे।

''हे मान्दार्य, तुमने लोककल्याणकारी सद्भावना से अहंकार, अभिमान को भी त्याग कर इंद्र और मरुतों के आपसी वैमनस्य को नष्ट करके उनके बीच सामंजस्य की भावना प्रस्थापित की। उनकी उदारता और सद्सद्विवेक बुद्धि को, प्रेममयता को आवाहन करके उनकी कर्तव्यभावना को भी कल्याणकारी कार्य के लिए हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं कि, तुम्हारा यह कार्य तुम्हें महर्षि पद की ओर ले जाएगा। तुम स्वयंप्रकाशी हो इसलिए स्वयंप्रकाशी तारों में तुम्हारा अंतर्भाव होगा।'' प्रत्यक्ष त्रिदेवों के इस आशीर्वचन से समूचा विश्व आनंदित हुआ। मित्रावरुण धन्य हुए। इंद्रमरुत और मान्दार्य अगस्त्य मुनि पर अभिनंदन की वर्षा हो रहे थे। भगवान कैलाशपति ने रामचंद्र को कथा निवेदित की।

*

धर्मात्मा शिलादमुनि के कोई पुत्र नहीं था। जब तक पुत्र पौत्र न हो, तब तक पितरों को मुक्ति मिलना संभव नही होता। पितरों ने शिलाद को पुत्रप्राप्ति करने के लिए आदेश दिया। पितरों की आज्ञा से शिलादमुनि देवेन्द्र की तपस्या

करने लगे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर देवेन्द्र ने शिलादों को पूछा,

''हे मुनिश्रेष्ठ, आपकी तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ। आप की मनोकामना व्यक्त करें।''

''हे देवेन्द्र मुझे अमर, सुव्रत, अयोनिसंभव ऐसा पुत्र चाहिए। शिलादमुनि ने प्रार्थनापूर्वक कहा।

''हे मुनिश्रेष्ठ, ऐसा पुत्र देने का सामर्थ्य मुझ में नहीं। किन्तु मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि, तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। पुत्र प्राप्ति के लिए आप महाशक्तिमान देवाधिदेव महादेव की आराधना करें। आप का मनोरथ वे ही पूर्ण करेंगे।''

''धर्मात्मा शिलाद महादेव को प्रसन्न करने के लिए पुनःश्च तपस्या करने बैठ गए। आशुतोष शिवशंकर प्रसन्न हुए और शिलादमुनि के सम्मुख प्रकट हुए। धर्मात्मा शिलाद तपमग्न थे। भगवान शंकर ने उन्हें सचेत किया। प्रत्यक्ष भगवान शंकर अपने सम्मुख देखकर वे बहुत आनंदित हुए। भगवान शंकर को साष्टांग दंडवत करते हुए उन्होंने शिवस्तुती की।

**'जय देव जगन्नाथ जतय शङ्कर शाश्वत।**<br>
**जय सुराध्यक्ष जय सर्वसुराचिर्तत।**<br>
**जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रत।**<br>
**जय नित्य निराधार जय विश्वम्भराव्यय।।**<br>
**जय विश्वैक वेधेश जय नागेन्द भूषण।**<br>
**जय गौरीपते शम्भो जयचन्द्रार्धशेखर।।**<br>
**जय कोट्यार्क संकाश जयानन्त गुणाश्रय।**<br>
**जय रुद्र विरुपाक्ष जयाचिन्त्य निरज्जन।।**<br>
**जय नाथ कृपासिन्धो जयभक्तार्तिभज्जन।**<br>
**जय दुस्तरसंसार सागरोत्तारण प्रभो।।**<br>
**प्रसीद मे महादेव संसारार्तस्य खिद्यतः।**<br>
**सर्व पापभय हत्वा रक्षमां परमेश्वर।।**<br>
**महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतस्थच।**<br>
**महाशोकविनष्टस्य महारोगातुरस्यच।।**<br>
**ऋणीरपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः।**<br>
**ग्रहै प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शङ्कर।।'** (ब्रह्मा ७.५९.६६)

शिलाद की प्रशंसनीय प्रार्थना और पूजा से संतुष्ट होकर, भगवान शंकर ने शिलाद से कहा, ''मुझे अपनी मनोकामना निवेदन करो।''

''हे कैलासराणा, शिवचंद्रमौली, मुझे आप जैसा बलिष्ठ, अमर और अयोनिसंभव पुत्र चाहिए।''

''तथास्तु, हे तपोधन विप्रोत्तम, प्राचीन काल में ब्रह्मदेव, ऋषियों और देवताओं ने तपस्या के द्वारा मेरी आराधना की थी, ताकि मैं अवतार ले सकूँ। इसलिए हे ब्राह्मण, यद्यपि मैं समग्र विश्व का पिता हूँ, मैं तुम्हारा अयोनिसंभव पुत्र होने के लिए तत्पर हूँ। मेरे इस अवतार का नाम नंदी होगा।'' शिवजी ने आशीर्वाद दिया।

''हे भगवन्, मैं धन्य हूँ।'' शिलाद ने कहा। शिलाद मुनि को आशीर्वाद देने के पश्चात भगवान शंकर अंतर्धान हुए। तत्पश्चात शिलादमुनि अपने आश्रम लौट आए। उन्होंने यह वृत्तांत अपने पितरो और ऋषियों को सुनाया। सभी बहुत आनंदित थे। अब सभी को भगवान शिव के नंदी अवतार की प्रतीक्षा थी।

कुछ समय पश्चात, जब शिलादमुनि यज्ञक्षेत्र नगरी में थे तब उनके शरीर में एक बडी हलचल हुई और उनके शरीर से सूक्ष्म तेज प्रकट हुआ। यह तेज आगे एक बालक के रूप में प्रकट हुआ। इस दीप्तिमान बालक के जन्म से सभी दिशाएँ प्रसन्नता से खिल उठी। यह अलौकिक समारोह सूर्य और यज्ञ के लिए उपस्थित सभी ऋषिगण देख रहे थे। इस बालक की तीन आँखे, चार भुजाएँ, एक जटा मुकुट और त्रिशुलादि आयुध थे। सभी को विश्वास हुआ कि, वास्तव में शिवजी प्रकट हुए हैं और 'जय शिव ॐकारा, जय शिव ॐकारा' के मंत्रघोष से अंतरिक्ष गूँज उठा।

''हे महेश्वर, देवाधिदेव महादेव, आप ने नंदी नाम से मेरे घर आकर मेरी तपस्या और मेरा जीवन सार्थक बनाया। हे आनंदसागर, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।'' शिलाद उस बालक को बार बार वंदन कर रहें थे। तत्पश्चात नंदी को लेकर शिलाद ऋषियों के साथ अपनी पर्ण कुटिया में आए। वहाँ पहुँच कर नंदी ने शिवस्वरूप को त्याग कर साधारण मनुष्य का रूप धारण किया। आगे प्रथा के अनुसार शिलादमुनि ने इस अयोनिसंभव पुत्र को जातकर्मादि संस्कार करके उसे शिक्षा देना प्रारंभ किया।

सातवे वर्ष में, साक्षात शिवाज्ञा से मित्रावरुणी अगस्त्य-मान्दार्य और

वसिष्ठ नंदी को देखने के लिए शिलाद के पास आए। उन्होंने शिलादमुनि से कहा, ''यह सत्य है कि आपका पुत्र सर्व शास्त्र निपुण है, किन्तु वह अल्पायु है।''

यह सुनकर शिलाद मूर्च्छित हुए। सचेत होते ही वे विलाप करने लगे। अपने पिता को रोते देख नंदी शिलादों के निकट आया।

''तात, आप क्यों विलाप कर रहे हैं? कौन सी विपत्ति आन पडी है।'' नंदी ने पूछा।

''हे वत्स, इन ऋषियों ने कहा कि, तुम अल्पायु हो। मैं इस दुख को कैसे सह सकता हूँ?''

''हे तात, आप तनिक भी शोक ना करें। भगवान विश्वनाथ आपके दुख निवारण करेंगे।''

नंदीने अपने पिता को समझाया और उनकी प्रदक्षिणा कर वह तपस्या करने वन में चला गया।

एकांत देखकर वह नदी के उत्तर की ओर बैठ गया। नंदी ने सदाशिव का ध्यान करके रुद्रजाप का प्रारंभ किया। सदाशिव अपने ही अवतार तेजस्वी पुत्र को जाप में निमग्न देख कर प्रसन्न हुए। महेश उमा के साथ नंदी के पास पहुँचे और उन्होंने प्रेम से कहा,

''हे शिलाद नंदन, मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो चाहिए वह वर मांग लो।''

महेश्वर के इन मधुर वचनों को सुनकर नंदी ने उन्हें प्रणाम किया और चंद्रमौली के स्तुतिस्तोत्र गाए। सर्वज्ञ उमामहेश्वर ने नंदी की ओर साभिप्राय देखकर कहा,

''हे नंदी, मैंने ही उन दो ऋषियों को किसी उद्देश्य से तुम्हारे पिता शिलाद के पास भेजा था। तुम्हें मृत्यु का कोई भय नहीं हैं। तुम तो मेरे ही अंशात्मक अवतार हो। मेरी तरह तुम भी अमर, दुःखविहीन, अक्षय तथा अनन्य हो। मेरी तुम पर हमेशा कृपा बनी रहेगी।''

इतना कहकर महादेव ने अपने गले से कमल पुष्पमाला निकाल कर नंदी के गले में डाल दी। माला के गले में पडते ही नंदी भगवान शंकर के समान त्रिलोचन और दशभुजाधारी हो गया।

''कहो, नंदी, तुम्हें और क्या चाहिए?'' शिवजी ने पूछा।

''हे महेश्वर, मैं उन लोगों की सेवा करना चाहता हूँ जो दिन रात परिश्रम करते हैं, कृषि कर्म करते हैं। इसलिए पृथ्वी का पुण्यमय सिंचन होगा ऐसा कुछ कीजिए।'' इस पर महादेव ने अपनी जटा से निकले गंगाजल का पृथ्वी पर प्रोक्षण किया। उस से जहोदका, त्रिस्त्रोता, वृषध्वनि, स्वर्णोदका और जम्बूनदी ऐसी पंचपुण्यमयी नदियाँ निर्माण हुई। जो कोई भी पंच नदियों मे स्नान कर शिवपूजन करेगा वह शिवसायुज्यता प्राप्त करेगा ऐसा वरदान प्रकट हुआ। शिवशंकर ने विचारविनिमयार्थ साभिप्राय गौरी की ओर देखा।

''हे गौरी, मैं नंदी का अभिषेक कर उसे गणाध्यक्ष बनाना चाहता हूँ।''

''हे देवपते, आपके विचार अति आनंददायी है। नंदी मेरे लिए मेरे गजानन के समान है। वह मुझे बहुत प्रिय है।''

उमा के बोल सुनकर महादेव ने अपने सभी गणनायकों को बुलाया।

''हे समस्त गमनायकों, मैंने अपने पुत्र नंदिकेश्वर को गणनायकों का अध्यक्ष नियुक्त किया है। आप सभी प्रेम से गणाधिपति का अभिषेक करें। आज से नंदिकेश्वर गणों के स्वामी बन गए हैं। महादेव की आज्ञा शिरोधार्य कर सब ने नंदिकेश्वर को गणाधिपति के रूप में स्वीकार किया। महादेव ने विघ्नहर्ता गणेश को आमंत्रित किया।''

''हे गणनायक, विघ्नहर्ता गजानन, आप नंदी का गणाध्यक्ष के रूप में अभिषक करें।''

''तात, आप की इच्छानुसार ही होगा।'' गणराय ने गणनायकों के साथ नंदिकेश्वर को अभिषेक पूर्वक गणाध्यक्ष के रूप में आसनस्थ किया। शिवशंकर ने शिलादमुनि को बुलाया। गणाध्यक्ष के रूप में अपने पुत्र नंदी को नियुक्त किया है, यह देख कर शिलादमुनि बहुत प्रसन्न थे। उनके साथ मित्रावरुणी अगस्त्यों के साथ कई ऋषि कैलाश आए थे।

एक बार मरुत कन्या सुयशा ने बन में नंदिकेश्वर को तपस्या करते हुए देखा था। देदीप्यमान दिव्यपुरुष को देख कर उसके मन में विचार आया कि उसे ऐसा ही पति मिले। उसने अपनी मनोकामना अपने पिताश्री मरुतों को बताई थी। गणाध्यक्ष के पद पर नंदिकेश्वर की नियुक्ति का उचित अवसर जान कर मरुत अपनी कन्या के साथ कैलाश आए।

''हे कैलाशपति, यह मेरी कन्या सुयशा है। मैं और सुयशा चाहते हैं कि

उसका विवाह श्री नंदिकेश्वर से हो।''

''हे बालिके, तुम किस कारण से नंदिकेश्वर से विवाह करना चाहती हो? तुम्हारा मनोगत मुझे बताओ। नंदिकेश्वर निरंतर मेरी सेवा में रहेगा, उसे सायुज्यमुक्ति चाहिए। फिर विवाह से क्या लाभ?'' शिवजी ने सुयशा से पूछा।

''हे देवाधिदेंव, मैं, भी आपकी सेवा करना चाहती हूँ। आपकी सेवा से पावन होकर मैं भी सायुज्यमुक्ति प्राप्त करना चाहती हूँ। हे भगवन, आप पुरुष और प्रकृति के रूप में उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का निर्माण करते है। आप हमें भी इसमें सहभागी कर लीजिए। आपने श्री गंगा माता, गण नायक, तात मरुत, देवेन्द्र को जैसे सहभागी कर लिया है, वैसे मुझे भी कर लेंगे इसलिए मैं नंदिकेश्वर से विवाह करना चाहती हूँ। नंदी सदैव अपनी सेवा से सभी को संतुष्ट करने का प्रयास करेंगे, क्यों कि सृष्टि रूप आप का ही रूप है। सृष्टि सेवा ही आप की सेवा है; मैं इसमें सहभागी होना चाहती हूँ।'' सुयशा ने खुलकर अपने विचार व्यक्त किए।

''हे बालिके, तुम्हारा मनोरथ सुनकर मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारी इच्छानुसार सब होगा।'' शिवजी ने आशीर्वाद दिया।

''हे बालिके सुयशा, तुम भी त्रिनेत्री होंगी और तुम्हारे द्वारा सब की मनोकामनाएँ पूरी होगी।'' जगज्जननी पार्वती ने सुयशा से कहा जब कि, शिलादपुत्र नंदिकेश्वर और मरुत कन्या सुयशा इनका विवाह कैलाश ऋषियों, तपस्वियों और शिवगणों की उपस्थिति में संपन्न हो रहा था, तब विष्णु और देवेन्द्रादि सभी देवता विवाह समारोह में सहभागी थे। सभी ने नंदिकेश्वर और सुयशा को शुभाशिर्वाद दिए। उस समय मित्रावरुणी मान्दार्य अगस्त्य आगे आए।

''हे देवाधिदेव महादेव, गणनायक गणेश, भगवान कार्तिकेय सहित हम सभी पुत्रों को आपने भूलोक के प्राणिमात्रों के कल्याण का कार्य सौंपा है। इसलिए, हम त्रिदेव और देवेन्द्र की आज्ञा के अनुसार प्रकृति और पुरुष के उत्पत्ति, स्थिति औल प्रलय के चक्रक्रिडा का यथाशक्ति, यथामति व्यवस्थापन करते हैं। विभिन्न देवताओं ने पशुओं को वाहन के रूप में स्वीकार कर उनका यथोचित सम्मान के साथ संस्करण भी किया है। इतना ही नहीं, उनमें देवत्व की भावना भी जागृत की है। सरीसृप प्राणि (जैसे सर्प, मगरमच्छ, आदि), पशु, पक्षी, वृक्ष लता आदि को आपने देवत्व देकर सम्मानित किया है। दूरदर्शी ऋषिमुनियों ने मानवी सृष्टि के

व्यवस्थापन के लिए योजना बनाई। यद्यपि मनुष्य को इस सृष्टि का उपयोग करके अपना जीवन व्यतीत करने की आज्ञा दी है, किन्तु मनुष्य इस सृष्टि का विध्वंस करने मे व्यस्त है। वह समस्त सृष्टि को अपना अन्न और साधन मानता है। इससे हम ऋषियों और राजाओं को संस्कृति के प्रचलन कार्य में बहुत कष्ट होता है। सृष्टिकल्याणहेतु आपने इस विवाह के शुभ अवसर पर शिलादपुत्र अर्थात आप ही के पुत्र और हम सबके भ्राता नंदिकेश्वर और भ्रातापत्नि मरुतकन्या सुयशा को आशीर्वाद दिया है, किन्तु....''

''हे मान्दार्य, आपका भाषण सुन कर लगता है, भूलोक में कुछ विशेष समस्याएं खडी हुई है।''

''क्षमा करें भगवन, परंतु मानवी जीवन अति कष्टप्रद है। इसे समाप्त करके मनुष्य को सृष्टि का आनंद लेने के लिए शस्त्र और मंत्र-तंत्र के अधीन होना पडता है। उसका जीवन स्थिर करने के लिए कुछ उपाय करने चाहिए। आप इस सृष्टि के बीज हैं। उस बीज का विस्तार ही सारी सृष्टि है। क्या उस सृष्टि के आनंदमयी, सुखी जीवन का कोई उपाय है?'' अगस्त्य मुनि ने अपनी व्यथा निवेदित की।

''हे अगस्त्ये, इसीलिए तो ऋषियों को ऋषिकार्य अर्थात कृषिकार्य करने की प्रेरणा दी है।''

''नारायण नारायण,'' इतनी देर तक शांति से दोनों की चर्चा सुन रहे नारद ने उनकी बातों को काटते हुए कहा,

''क्या मैं आपके संभाषण में भाग ले सकता हूँ?''

''हे नारद, वत्स, वह तो तुम्हारा अधिकार ही है।'' शिवजी ने अनुज्ञा दी।

''हे भगवन, ऋषियों ने शक्तिशोधक और उपयोजन के लिए गुरुकुल निर्माण किए हैं। तथापि कृषिकर्म संपूर्णतः हाथों से ही करना पडता है। मानवी हत्यार अर्थात दो हाथों से मनुष्य कितने श्रम कर सकता है? इसीलिए भूमाता से कष्टपूर्वक परिश्रम से अन्न प्राप्त करने का कृषिकर्म अत्यंत कष्टप्रद है। इस कृषि कर्म को सहायक होगा ऐसा कोई उपाय आप प्रदान करें, अन्यथा शिकार करके अन्न प्राप्त करने में मनुष्य अपने मानवता वाद को भूल जाएगा।''

''हे भगवन शिव, आपने हमें निरंतर आपके सान्निध्य में रखने का आशीर्वाद दिया है। गणाध्यक्ष पद देकर सम्मान किया है। इसलिए आपके कार्य की रक्षा

करना हमारा दायित्व है। आपने मुझे दश भुजाएँ दी है और हम दोनों को त्रिनेत्र बनाया है। हम दोनों आपके बीज रूप की रक्षा कर सके, ऐसी कृपा हम पर बनी रहें।'' गणाध्यक्ष नंदी ने प्रार्थना की।

''हे भगवन्, ब्रह्मर्षि नारद का परामर्श यथार्थ है और श्री नंदिकेश्वर की मनोकामना भी सही है। अकारण पशुहत्या नहीं होगी। मनुष्य कृषिकर्म के लिए उपयुक्त पशुओं का उपयोग यदि करने लगे तो अपने आप पशुओं की शिकार तथा हत्या बंद होगी।''

''हे ऋषियों, सृष्टि के चराचर सभी रूप प्रकृति और पुरुष के ही पुत्रपौत्र रूप हैं, उन सभी को भूलोक पर परिश्रम करना और एक दूसरे पर निर्भर रहना पडता है, क्यों कि ये सब माया के ही रूप है, नश्वर है, केवल भासमान है। तो हम मनुष्य के लिए इतना विचार क्यों करें?'' महादेव ने परीक्षा लेते हुए प्रश्न किया।

''हे भगवन्, यह सत्य है कि आपने शिवविद्या का सारांश अद्वैततत्व रूप से स्पष्ट किया, तथापि यह सब कैवल्यक्रीडा है। वह आनंदरूप अर्थात नंद रूप होनी चाहिए। सुख-दुख के फेरे में फँसे जीवों का दुख कम करना आवश्यक है। वास्तविक ब्रह्मदेव का उद्देश्य है कि, जीवन व्यतीत करते समय उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का चक्र भी घूमते रहना चाहिए, जिससे मायारूपी आनंददायी क्रीडा भी चलती रहे। आपने हमें इसके लिए ही प्रेरित किया है ना? हे भगवन्, वृषभ जैसे बलिष्ठ पशु के लिए भी इंद्र और मरुतों मे युद्ध हुआ था। उनका आपस में मेल करने के लिए मुझे क्या क्या नहीं करना पडा। वास्तविक आपने वृषभरूप बलिष्ठ गण को अपने वाहन के रूप में स्वीकारा है। अब देवेन्द्र और मरुत दोनो तत्व यहाँ उपस्थित हैं।''

''हे मित्रावरुणी अगस्त्ये, मान्दार्य, तुम वास्तव में प्रत्यक्ष सूर्य, अग्नि, विष्णुस्वरूप तेजस्वी, अर्थात ज्ञानी हो। हिमालय जैसे आर्य हो। तुमने अपना नाम सार्थ सिद्ध किया है। मैं प्रसन्न हूँ। मेरे ही अंश शिलादपुत्र को मेरे पास लेकर आने का कार्य भी तुमने ही किया है। मैं प्रसन्न हूँ। लोककल्याण के प्रति तुम्हारी आस्था देखकर मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि, तुम सभी के लिए मैं सहायक एवम् प्रेरक बनूँगा। बलशाली पशुओं का अधिपति, मेरा ही अंशावतार नंदी के रूप मे हैं। यह सुयशा, नंदीभार्या मरुतनंदिनी प्रकृतिरुपिणी है। इन दोनों का उपयोग सृष्टि

के कार्य में किया जाएगा। कृषिकर्म में इन दोनों के पुत्रपौत्रादि गज, ऊँट, अश्व, वृषभ, महेश, गंधर्व, अज आदि पशुरूप जो मेरे ही अंशरूप है, उनका उपयोग किया जाएगा। वे मनुष्य की सहायता करेंगे। मनुष्य के पालतू प्राणि बनकर रहेंगे और उन्हें कृषिधन रूप में जाना जाएगा। वे सभी मानवी संपत्ति स्वरूप होंगे। मनुष्य के वैभव का परिमाण होंगे। अपवादात्मक स्थिति में यज्ञ में उनका हविष्य के रूप में उपयोग किया जाएगा। ये सभी मेरे वाहन के रूप में जाने जाएंगे और प्रमुख वृषभ निरंतर मेरे सान्निध्य में मेरा कार्य सुलभ होने के लिए सेवारत होकर 'नंदी' के नाम से विख्यात होगा। इन सभी पशुओं की पूजा की जाएगी और जहाँ भी अगस्त्यादि ऋषिमुनि बाण के रूप में अथवा लिंग स्वरूप में मेरी स्थापना करेंगे, वहाँ मेरे वाहन नंदी को भी स्थापित करना होगा। नंदी भार्या वृषभी, नंदिनी के नाम से जानी जाएगी और इन सभी पशुओं का मातृरूप उसीका रूप होगा। वह अमृत के समान अपने दूध से सभी देवताओं और मनुष्यों को संतुष्ट करेगी। इसे गोधन के नाम से जाना जाएगा। मानवी रूप में कृषिवल शिवरूप से जाने जाएंगे। कृषिवलों के वाहनों को ढोने का कार्य करेंगे। अश्व, गज, ऊँट के साथ साथ वृषभ भी रथ के लिए उपयोग में लाए जाते हैं, वह भी शूचितापूर्वक होता रहेगा। नंदी-सुयशा का विवाह श्रावण काल में हुआ है, इसलिए पशुपूजन की विधि इसी काल में सर्वत्र होती रहेगी। मानवी जीवन में उन सभी का महत्वपूर्ण पवित्र स्थान होगा।'' भगवान शिव ने घोषणा की।

''हे महादेव, मैं आपके आशीर्वाद से धन्य हूँ। हे शंभो, हर हर महादेव, पार्वतीमाते, हम सभी सुयशा को गोस्वरूप माता के रूप में स्वीकार करते हैं। आपकी कृपा से मानवी जीवन संपत्ति और अन्न से समृद्ध होगा। वन्य पशु निर्भय होकर स्वतंत्र जीवन क्रीडा करने लगेंगे।'' नारदजी ने कहा।

''हे शंभो महादेव, आपने सभी पशुओं को गण स्थान में स्वीकार कर मेरे रूप से उन्हें आपका कार्य करने का जो अवसर दिया, जिसके लिए मैं धन्य हूँ।'' नंदिकेश्वर ने कहा।

''हे महादेव, सुयशा गोस्वरूप में कामधेनु अथवा सुरभि के नाम से स्वर्ग में जानी जाएगी। मै पर्जन्य चक्र को यथा योग्य रखने के लिए अगस्त्यों की इच्छानुसार मरुतों की सहायता करूंगा।'' देवेन्द्र ने आश्वासन दिया।

''हे शिवप्रभो, मम पुत्री सुयशा, अब वास्तव में सफल हुई है। उसके

सम्मान में आपने उसे भूमाता का स्थान दिया है। मैं धन्य हूँ। मरुतों ने कृतज्ञता व्यक्त की।

‘‘हे महादेव, आपकी आज्ञा के अनुसार सभी प्राणिमात्र व्यवहार करते हैं तो भूलोक पर ब्रह्मज्ञानको प्रतिष्ठा प्राप्त होगी और कर्म को ही यज्ञ मानकर व्यवहार आरंभ होंगे और कैवल्यक्रीडा को आनंदमय स्वरूप प्राप्त होगा।'' ब्रह्मदेव ने आशीर्वाद दिया।

‘‘हे शिवस्वामी, नंदी और नंदिनी की स्थापना करके आपने इस भूलोक का अतिसुलभ व्यवस्थापन किया है। इसलिए विष्णुलक्ष्मी का वास निरंतर आपके साथ रहेगा।'' विष्णु ने अभिवचन दिया।

‘‘हे मित्रावरुणी अगस्त्ये, लोककल्याण के प्रति आपकी आस्था और लगन से आपको शिवजी से जो वरदान मिला है, इसलिए तुम कृषि देवता माने जाओगे। हल, जो तुम्हारा साधन है उसे भी देवत्व प्राप्त होगा। हल पूजन का पूजन सर्वोच्च माना जाएगा। हलस्वरूप का प्रतीकरूप तुम्हारा साधन-कुदाल भी ख्यात होगा। तुम कृषि विशेषज्ञ, स्वास्थ्य विशेषज्ञ, अथर्वण तथा समन्वयक मित्र के रूप में विश्वविख्यात होंगे।'' साक्षात ब्रह्मदेव ने अगस्त्यों का सम्मान किया।

नंदिकेश्वर के विवाह से शिलाद सहित सभी ऋषियों का ईप्सित साध्य हुआ। शिवशक्ति प्रसन्न हुई और मानव कल्याण का कृषिमार्ग प्रशस्त हुआ। मान्दार्य अगस्त्य मुनि ने पशुओं को कृषि विद्या सें जोड कर पशु और मानव दोनो के कल्याण कार्य में अपना योगदान दिया।

*

‘‘हे प्रभो, आपने मान्दार्यों के समन्वय और सद्भाव की भूमिका को विस्तार से सुनाया, हम धन्य हैं। विश्व को आर्यमय करने के लिए ली गई यह भूमिका महनीय तथा अनुकरणीय है। किन्तु हे प्रभो, इंद्रदेव देवाधिदेव और मरुतदेव पंचतत्वात्मक होते हुए, ऐसी स्थिति क्यों निर्माण होती है? क्या है इसका रहस्य?'' प्रभु रामचंद्र ने प्रश्न किया।

‘‘हे रामचंद्र, देवगण, स्वयं देवेन्द्र और पंचतत्व की ये अवस्थाएँ परब्रह्म की इच्छा एवम् ब्रह्माविष्णुशिव तत्व से निर्माण हुई है। इतना ही नहीं देवताओं

की भांति दानवों और मानवों की अवस्थाएं भी इसी प्रकार से निर्माण हुई है। प्रकृति और पुरुष की यह क्रीडा परब्रह्म की लीला है। उनकी कल्पना है। परंतु उस कल्पना का विश्व माया के रूप में अस्तित्व में है। अर्थात सत्यस्वरूप में है। वास्तव में वे परब्रह्म के ही विभिन्न रूप हैं। रूप प्राप्त होते ही त्रिगुणात्मकता आती है और त्रिगुणात्मक अस्तित्व में काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ, मत्सर आदि षड्रिपुंओं का वास्तव्य स्वभावतः आ ही जाता है। मनुष्य पूर्ण प्रकृतिरूप है इसलिए मनुष्य दृश्य है बस। तथापि तत्सम अवस्थारूप दानव और देवता त्रिगुणात्मक विकारों में बद्ध है। अर्थात उनका व्यवहार अमानवी होता है, वही वृत्ति होती है। इसीलिए मान्दार्यों का जन्म दैवीय और मानवीय प्रकृति का होता है। मानव, दानव और देवता इन तीनों अवस्था में बद्ध मनुष्य में सामंजस्य और सौहार्दता प्रकट करने के लिए इन तीनों अवस्थाओं में योजना बनाने की परंपरा है। यही परिणाम है।''

''हे प्रभो, शिवशंकर, हे महादेव, आपके द्वारा प्राप्त इस अगाध ज्ञान से हम तीनों धन्य है। फिर भी मेरे मन में एक आशंका उत्पन्न हुई है। यदि आप क्रोधित न हो तो मैं निवेदन करता हूँ।'' प्रभु रामचंद्र ने बहुत ही विनम्रता से कहा।

''हे रामचंद्र, तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान करने में हम दोनों को अत्यधिक आनंद होता है। तुम निर्भय होकर पुछो।'' शिवप्रभु ने कहा।

''हे शिवप्रभो, देवाधिदेव इंद्र और मरुत इन दोनों देवताओं को मान्दार्यों की बाते सुनने की क्या आवश्यकता थी? केवल मान्दार्यों ने यज्ञ का प्रबंध किया था और इंद्रमरुतों को वे हविर्द्रव्य देने जा रहे थे, इसलिए इंद्रमरुतों ने उनकी बाते सुनी, यह संभव नहीं। दूसरी बात, सभी हविर्द्रव्य पर देवेन्द्र का ही अधिकार था, अर्थात उनकी माँग उचित ही थी।'' रामचंद्र ने कहा।

''हे रामचंद्र, तुम्हारा प्रश्न महर्षि अगस्त्य के महान व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है। मान्दार्यों मे हम दोनों का तेज संग्रहित है। अतः वे हमारे ही पुत्र हुए। पुत्र के पराक्रम लीलाओं के विषय में प्रत्यक्ष माता प्रकृति स्वयंकथन करें तो क्या उचित नहीं होगा?''

''हाँ प्रभो, हम प्रकृति माता से मान्दार्यों की शक्ति के विषय का रहस्य कथन करने के लिए अनुरोध करते हैं। हे माते, आप हमे इस रहस्य से अवगत कराएं, क्योंकि प्रकृति माया आप ही का रूप है।''

''हे प्रभु रामचंद्र, जैसे ही पुष्करकमलपात्र कुंभ से मान्दार्य प्रकट हुए, वे सीधे हम दोनों के दर्शन के लिए आए। इस प्यारे बालक का देवयोनि में जन्म हुआ है ऐसा मानकर देवेन्द्र चाहते थे कि, मान्दार्य प्रथमतः वंदन करें। प्रत्यक्ष प्रकाशरूप, अग्निस्वरूप मान्दार्यों को देवेन्द्र की इस अहंकारयुक्त अपेक्षा का ज्ञान हुआ और इस उग्रस्वरूप, जन्मतः ऋषिपद प्राप्त मान्दार्यों ने धनरूप देवेन्द्र को अपने अग्नितेज से एक क्षण में एक स्थान पर बद्ध कर दिया। समस्त देवता इस उग्ररूप ऋषि की लीला देख रहे थे। देवेन्द्र एक ऐसी अदृश्य तर्कहीन ताकतों से बंधे थे कि एक बंदी को किसी खंबे से बांध दिया हो। आग की लपटों से उनका शरीर तपने लगा था। आग की लपटों से उनका शरीर तपने लगा था। उन्होंने छुटकारा पाने के लिए

उन्होंने देवताओं की सारी शक्तियों का उपयोग स्वयं को बचाने के लिए किया, परंतु मूल रूप से लोगों के कल्याण के लिए और अहंकार की यज्ञ में आहुति देने के लिए त्रिदेव ने द्यावापृथ्वी की गोद में दैवीय एवम् मानवी योनि में महर्षि अगस्त्य की प्रेरणा की, इसलिए देवेन्द्र की एक न चली। असहाय होकर देवेन्द्र ने, 'त्राहिमाम् भगवन् ब्रह्म', 'त्राहिमाम् भगवन् विष्णो', 'त्राहिमाम् भगवन शिव'। त्रिदेव का आवाहन करना आरंभ किया। उनका आर्त स्वर चरम सीमा तक पहुँचा था। मान्दार्य अगस्त्य देवेन्द्र का बंधन और अधिक कडा करते जा रहे थे। उन्हें पीडा दे रहे थे। जब देवेन्द्र का अहंकार पूरी तरह से नष्ट हुआ, तो दारुण वेदना से अत्यंत क्लांत देवेन्द्र ने दीनता से शिवप्रभु की ओर देखा। जैसे ही भगवान शिवजी ने उन्हें समाधान बताया, देवेन्द्र ने अपराधी स्वर में किन्तु किंचित उपहास से मान्दार्यों से याचना की, तब मान्दार्यों ने शिवप्रभु की ओर देखा। शिवजी के नेत्रों मे अपार करुणा देखकर मान्दार्यों ने देवेन्द्र को बंधमुक्त किया। जब शिवजी ने देवेन्द्र को अगस्त्य अवतार के विषय में उपदेश किया, तो इंद्र समझ गया कि, मान्दार्यों के साथ शत्रुता असहनीय होगी, अतः उनसे मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखना ही उचित होगा। मान्दार्यों ने भी देवेन्द्र की ओर स्नेहपूर्वक दृष्टि से देखा। हे रामचंद्र, एक बात का नित्य ध्यान रखना चाहिए कि, बालक मान्दार्य अगस्त्य चैतन्य का प्रत्यक्ष परब्रह्मरूप है, इसलिए परब्रह्म की महानता भी उनके सामने नहीं टिकती है। चिरंजीवी इंद्रदेव इस बारे में भूल गए थें। मान्दार्यों के इस लीला से ही मैंने उनका नाम अगस्त्य रखा।'' पार्वती ने बडे ही वात्सल्य

से मान्दार्यों का पराक्रम कथन किया।

''हे माते, प्रत्यक्ष मातृमुख से मान्दार्यों के महाशक्ति का परिचय हुआ। हम कृतार्थ हुए। हमारा प्रणाम स्वीकार करें। परंतु हमारी वनवास यात्रा में हम मान्दार्यों की गाथा श्रवण करते हुए मार्गक्रमण कर रहें हैं। इसलिए उनके पराक्रम की और अधिक कथाएं श्रवण करने के लिए हम अति उत्सुक हैं। इन कथाओं के विषय में हमारा मार्गदर्शन करें जिससे हमारी वनवास यात्रा आनंद और ज्ञान से व्यतीत होगी।'' प्रभु रामचंद्र पुनः पूछने लगे।

''हे रामचंद्र आपकी यात्रा के दौरान आप बहुत सारी कथाएँ श्रवण कर पाएंगे, तथापि प्रयाग तीर्थ समीप अगस्त्य मुनि का एक आश्रम हैं। वहाँ पवित्र तीर्थस्नान करके आप कुछ समय के लिए आश्रम में निवास करें। अगस्त्यों के चिंतन में समय बिताएं। यहाँ से आपको महर्षि अगस्त्य के कार्य का अंतर्ज्ञान होगा, उसके अनुसार आप अपना कार्य करें। दक्षिण में संतुलन रखने के लिए अगस्त्यों ने यहीं से प्रस्थान किया था। प्रकृति माता की इच्छा है कि, आप उसी मार्ग से जाएं।'' उत्तर पूर्व में वंग, गया, वाराणसी, प्रयाग इन गंगातट पर अगस्त्य मुनि के आश्रम प्रस्थापित हुए हैं। सहस्त्रों वर्षों से वहाँ ज्ञानयज्ञ चल रहा है। वहां गायत्रौपनिषद का भी प्रचार किया जा रहा है। जैसे मान्दार्य अगस्त्य कृषि विकास के व्रतस्थ थे, वैसे ही उन्होंने स्वास्थ्य रक्षा के लिए कई यज्ञ करके औषधि सिद्ध की है। उन्होंने उनका अध्ययन करके पश्चिम में सिंधु उपनदी, वितस्ता और पुष्कर तीर्थ, हटकेश्वर, प्रभास और उज्जैन यहाँ भी अगस्त्य आश्रम स्थापित किए। विंध्य की ओर जाते हुए यमुना से निर्माण उपनदी के तट पर उनका आश्रम है। इन सभी उत्तरी भागों को जानने के पश्चात विंध्य के मार्गदर्शन के साथ ही दक्षिण की ओर बढना चाहिए। मान्दार्यों ने मानवी संचार अनुभूति हेतु पूर्वोत्तर में फैले खेल राजा के पुरोहित पद को स्वीकार किया। यह कार्य करते हुए उन्होंने भौतिक और अधिभौतिक पराक्रम किए। हमें उनका भी अध्ययन करना चाहिए।'' भगवान शिव ने अगस्त्य मुनि का यथोचित मार्गदर्शन किया और उन्हें भ्रमण करने का आदेश दिया। आगे प्रभु ने कहा,

''हे रामचंद्र, आपने बाल्यावस्था में वसिष्ठ और विश्वामित्र के कहने पर उत्तर में ऋषियों के यज्ञ की रक्षा की और यज्ञकार्य में बाधा उत्पन्न करने वाली राक्षसी प्रवृत्तियों को नष्ट कर दिया। आपका यह कार्य वास्तव में स्पृहणीय

हैं। तथापि आपका वास्तविक कार्य दक्षिण में होता है। दक्षिण में गए मान्दार्य अगस्त्य आपकी प्रतीक्षा कर रहें हैं।'' शिवप्रभु ने कहा।

*

वैदेही और लक्ष्मण के साथ प्रभु रामचंद्र ने शिव पार्वती को प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया और आगे की यात्रा आरंभ की। प्रयाग तीर्थस्थल स्थित अगस्त्य आश्रम में उनका यथोचित स्वागत हुआ।

''हे आश्रम कुलपति, अगस्त्ये, आपके स्वागत से हम तीनों को प्रत्यक्ष भगवान शिव और माता पार्वती ने हमें अगस्त्यों के महान कार्यों का परिचय उनकी कथाओं द्वारा करवाया। उन कथाओं को सुनकर हमने भी उनकी लोककल्याण भावना के पथिक होने का निश्चय किया हैं। हमें भी उन्हीं के मार्ग से जाना हैं। हमें अगस्त्य मुनि के पराक्रम स्तोत्र कथन करें।''

''हे प्रभो, अगस्त्यों ने कृषि, अथर्व वैद्यकशास्त्र, यज्ञ संस्था, सृष्टिचक्र व्यवस्थापन, युद्धकला आदि अनेकों क्षेत्र में महान कार्य किए हैं। उन्होंने चिकित्सा एवम् शल्यतंत्रादि क्षेत्र में अद्वितीय कार्य किए हैं।''

''हे कुलपते, हम और अधिक जानने के लिए अति उत्सुक हैं। और अधिक जानने के लिए कृपया आप निवेदन करते रहिएं।''

''तथास्तु!''

''आश्रम कुलपति अगस्त्यों ने, मान्दार्य अगस्त्य कथा निवेदन करना आरंभ किया।

मान ऋषि ने जंबुद्वीप के पूर्वोत्तर विस्तीर्ण फैले खेल राजा का पौरोहित्य तथा आचार्यपद को स्वीकार किया। वसिष्ठों की प्रतिष्ठापना करने के पश्चात यज्ञ संस्था के माध्यम से मनुष्य में पंचतत्वात्मक शक्तियों, सृष्टिशक्तियों एवम् मुख्य दैवीय शक्तियों का मानव कल्याण हेतु किस तरह उपयोग किया जा सकता है, यह स्पष्ट करने के लिए मान मान्दार्य अगस्त्य मुनि ने प्रयाग, गया एवम् वंग स्थानों पर आश्रम स्थापित किए और अध्ययन, अध्यापन तथा ऋषि परंपरा निर्माण करने का कार्य आरंभ किया। आगे यही ऋषि परंपरा बडे गर्व के साथ मान्दार्य गोत्र के स्थान पर अगस्त्य गोत्र के नाम से प्रख्यात हुई। खेल राजा ने मान्दार्यों के पराक्रम,

ज्ञान, कौशल, उदारता एवम् स्वास्थ्य विज्ञान में उनके अधिकार और देवताओं के साथ उनके घनिष्ठ संबंध को देखते हुए उनकी गोत्र परंपरा को भी स्वीकार किया। खेल राजा अगस्त्यों को, महर्षि के स्थान पर 'महाकृषि' के नाम से संबोधित करने लगे। गंगा तट पर मान्दार्यों ने कृषि से संबंधित कई विकास कार्य किए। उन्होंने गंगावतरण के लिए भगीरथ की सहायता की ओर जल को जंतुरहित करके गंगा को पवित्र तीर्थजल का सम्मान दिया। गंगा के साथ–साथ यमुना, सरस्वती, सिंधु एवम् क्षिप्रा नदियों को भी शुद्ध जलवाहिनी से सम्मानित किया गया। अगस्त्य मुनि ने कृषि उद्देश्य के लिए लोहे से उत्खल या कुदाल नामक छोटे उपकरण भी बनाएं। उन्होंने खेलराजा की सहायता से वंग, गया, प्रयाग, वाराणसी, गंगाद्वार एवम् अगस्त्य मुनिग्राम में वनौषधियों की रसशालाएं निर्माण की। मान्दार्य अपना समय कृषिवलों को कृषि के लिए औजारों का अच्छा उपयोग करने के लिए मार्गदर्शन करने में व्यतीत करते थे। वे अन्न, बल एवम् स्वास्थ्य प्रदान करनेवाले 'कृषिऋषि' की उपाधि से प्रख्यात हुए। उन्होंने सोमयाग के साथ हविर्द्रव्य अर्पित कर इंद्र, मरुत, अग्नि, मित्र, वरुण, सूर्य, अश्विनीकुमार, पृथ्वी जैसे कई देवताओं को प्रसन्न किया। मान्दार्यों का यह कार्य देखकर प्रत्यक्ष भूतनाथ शंभुदेव महादेव भी उनसे प्रसन्न हो गए। प्रत्यक्ष अग्निरूप मित्रावरुणी ऋषि भी अत्यधिक उदारता से कार्यरत थे। यद्यपि उन्हें खेलराज के पुरोहित की उपाधि से मान्यता प्राप्त थी, किन्तु जन्म से ही उन्हें सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया था, इसलिए उन्हें किसी राजा से मान्यता प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं थी। मान्दार्यों के कारण खेलराज की महिमा विकसित हो रही थी। समृद्धि फली–फूली। स्वाभाविक रूप से, खेल राजा से ईर्ष्या करने वाले कुछ प्रतिद्वंद्वी राजाओं ने खेल राजा का वैभव छीनने का निर्णय किया और खेल राजा के सुव्यवस्थित, समृद्ध कृषि साम्राज्य पर आक्रमण किया। खेलराजा, लोककल्याण कार्यों में लगे रहने के कारण और मान्दार्य जैसे पुरोहित मिलने से बहुत निश्चिंत थे।

खेल राजा के शांत व्यक्तित्व के कारण शत्रु प्रबल हुआ। खेलराजा ने अपनी पत्नी विश्पला के साथ अपने विशेष रथ में प्रत्यक्ष युद्धक्षेत्र में प्रवेश किया। विश्पला भी एक महान योद्धा थी। क्षात्रतेज से परिपूर्ण विश्पला रणरागिनी बन कर स्वयं शत्रु पर टूट पडी। शत्रु उसके तलवार से भयभीत थे। प्रत्यक्ष खेल राजा भी विस्मित थे। जैसे एक शक्तिशाली घोडी बेलगाम होकर हिनहिनाते हुए युद्धभूमि

पर नीडरता से शत्रु पर अपने लातों से प्रहार करके उसे हैरान कर देती है, उसी प्रकार विश्पला क्रोधित होकर युद्ध में मानो रणचंडी बनी थी। अचानक निर्माण हुए युद्ध की स्थिति में, समय सूचकता से खेल राजा, उनकी सेना एवम् उनकी पत्नी विश्पला शत्रु को भगाते हुए, अपनी सीमाओं की रक्षा करने हेतु दृढता से लड रहे थे। किन्तु शत्रु भी उतना ही सतर्क, चतुर एवम् युद्धनिपुण था। यह देखकर कि, शत्रु की पत्नी स्वयं युद्ध भूमि में है, शत्रु ने अपना पूरा ध्यान विश्पला पर केंद्रित कर दिया, यह सोचकर कि, शत्रु को हराने का यह सबसे अच्छा अवसर था। उन्हें विश्वास था कि, शत्रु की पत्नी मिल जाने पर शत्रु आसानी से पराजित हो जाएगा, उन्होंने विश्पला को घेर लिया और दुर्भाग्य से विश्पला शत्रु के जाल में फंस गई। सूर्य अस्ताचल हो रहा था। रणनीति के अनुसार विश्पला का अधिकार वापस लौटाना आवश्यक था, अन्यथा अस्त्रविद्या नष्ट हो जाती थी, ऐसा सोचकर शत्रु ने विश्पला के एक पैर को तोड दिया और उसे उसी अवस्था में युद्धभूमि पर फेंक देकर अन्य सेना पर आक्रमण किया। स्वाभाविक रूप से विश्पला पर ध्यान केंद्रित करने से खेल राजा और उनकी सेना हतबल हो गई थी। सूर्य अस्ताचल गया और खेलराज ने राहत की सांस ली।

शल्यचिकित्सा और रस प्रक्रिया के विशेषज्ञ मान्दार्यों को समाचार मिला तो वे बहुत दुखी हुए। खेल के कारण कृषि और आयुर्वेद शास्त्र विकास कार्य में व्यस्त थे, इस पर उन्हें पछतावा हुआ। मन ही मन वे सोचने लगे कि, यदि अपनी शक्ति खेलराज की सहायता के लिए लगा देते तो संभवतः यह विपत्ति टल सकती थी। वे शीघ्रता से युद्धस्थल गए। प्रत्यक्ष मान्दार्यों को युद्ध शिबिर की ओर आते देख खेलराजा ने विनम्रता से उनकी शरण ली।

‘‘हे महर्षे, राजपत्नी को युद्धभूमि में लाकर हमने बहुत बडा अपराध किया हैं। हमें क्षमा करें। अब आप ही हमें इस संकट से मुक्त करा सकते हैं। विश्पला को वापस उसके पैरों पर खडा कर दे। आपके पास पंचतत्त्वों की शक्ति को प्रकट करने का सामर्थ्य हैं। आपने ही प्रत्यक्ष इंद्रादि देवताओं को अहंकार मुक्त किया हैं। भूलोक के मनुष्यों को स्वस्थ, ज्ञानवान एवम् बलवान बनाने के लिए पृथ्वी, इंद्र, वरुण, सूर्य इनको भी कार्यशील बनाया हैं। इतना ही नहीं, आपने गोमाता के दुग्ध प्रयोग की परंपरा निर्माण की है। प्रत्यक्ष इंद्र देव ने आपको गायत्रोपनिषद का पाठ पढाया हैं। इसलिए हे महर्षे, आप हमारे पुरोहित एवम् आचार्य हैं।

आपसे हमारी प्रार्थना है कि, आप विश्पला को चिकित्सापूर्वक पूर्ववत करें।

''हे राजन, मैं आशीर्वाद देता हूँ कि, आपके प्रयास अवश्य सफल होंगे। मुझे सोमयाग पूर्वक अश्विनीकुमारों को सहायता के लिए बुलाना होगा, इसलिए आप राजपत्नी विश्पला को हमारे आश्रम के चिकित्सालय में लाने का प्रबंध करें। धन्वंतरी की कृपा से विश्पला को कुछ नहीं होगा, आप निश्चिंत रहें।'' मान्दार्यों ने खेलराज को आश्वासित किया।

विश्पला को आश्रम के चिकित्सालय में लाया गया। मान्दार्यों ने स्वयं तुरंत उसका इलाज किया। वे विश्पला को चेतन अवस्था में लाने एवम् उसका रक्तस्त्राव रोकने में सफल रहें। उन्होंने उसे एक प्रकार की संजीवनी देकर मानो उसे पुनर्जीवन दिया था। एक लंबा समय बीत चुका था, जब शत्रुओं ने उसका एक पैर जंघा से जोड दिया था एवम् उसे नष्ट भी किया था। इसलिए अब विश्पला को नया पैर लगाने के सिवा कोई चारा नहीं था। उसके लिए अश्विनीकुमारों का सहयोग आवश्यक था। इसलिए मान्दार्यों ने सोमयाग पूर्वक अश्विनीकुमारों को आमंत्रित करने का निश्चय किया। अश्विनीकुमार अमानवी योनि के एक तेजस्वी व्यक्तित्व थे। सूर्यउर्जा उनकी भार्या थी। मान्दार्यों के साथ उनका घनिष्ठ संबंध था। वस्तुतः मान्दार्य भी मित्रावरुणी थे। एक तरह अश्विनी उनके सखा, भ्राता थे। मान्दार्यों की आयुर्वेद चिकित्सा में विशेष रुचि थी, इसलिए अश्विनीकुमारों की उनसे विशेष मित्रता थी। उन्होंने विश्पला की शल्य चिकित्सा करने का निर्णय लिया।

सोमयागपूर्वक यज्ञ की तैयारी हुई। मान्दार्यों ने सभी देवताओं का आवाहन किया और अश्विनीकुमारों को विशेष सहायता के लिए सूक्तपूर्वक आमंत्रित करने लगे। मूलतः अश्विनीकुमारों के प्रति स्नेह और विश्पला के स्वास्थ्य का दायित्व, इससे मान्दार्य स्तुतिपूर्वक अश्विनीकुमारों को सहायता के लिए आमंत्रित कर रहे थे।

''हे अश्विनीकुमारौं, आपके अश्व जब अंतरिक्ष में भ्रमण करने लगते हैं, अथवा आपका रथ आकाश के चारों ओर घूमना आरंभ कर देता है, उसके सुवर्णमयी अंश से मधुर रस प्रवाहित होता है। उस रस का सेवन करके आप उषा के साथ भ्रमण करते हैं। हे मधुररसप्राशक, अश्विनी कुमार, आपके अविरत संचारी, मनुष्य हितैषि एवम् श्रद्धेय अश्वों के पहले आप अंतरिक्ष में प्रविष्ठ होते

हैं। उषा रूपी स्तुत्य भगिनी आपका स्वागत करती है और आपसे अन्न एवम् शक्ति की याचना करती है। हे सत्यस्वरूप अश्विनीकुमारौ, आपके पराक्रम से प्रभावित होकर तेजस्वी उपासक आपकी उपासना करते हैं। हे अश्विनीकुमारौ, आपने हविर्दाता अत्रि ऋषि को प्रचुर मात्रा में मधुर रस उपलब्ध करा दिया था, इसलिए पशुयाग और सोम शीघ्र गति से आपकी ओर आकर्षित होते हैं। हे अश्विनीकुमारौ, जरामुक्त तुग्रपुत्र की भांति मैं अपना मनोगत विदित करता हूँ। कृपा करके मेरी वृद्धावस्था का नाश कर मुझे दीर्घायु प्रदान करें। अपने रथ के अश्व की सहायता से अविरत भ्रमण करने वाले, हे दानशील अश्विनीकुमारौ, आप अपने सदाचारी भक्तों को सद्बुद्धि, वैभव एवम् शक्ति प्रदान करते हैं। हे बलशाली एवम् स्तुत्य अश्विनीकुमारौ, आपके निस्सीम उपासक आपका स्तवन करते हैं और हमने आपके लिए त्रैलोक्यश्रेष्ठ सोमपात्र सिद्ध किया है। अन्य देवताओं के साथ आप भी यह सोम प्राशन करें। हे अश्विनीकुमारौ, सुविख्यात अगस्त्यमुनि रौद्ररूपी वर्षा वृष्टि के लिए निरंतर आपको शंखनाद सदृश्य ध्वनि से एवम् सहस्त्रो उपायों से जागृत कर रहे हैं। हे अश्विनीकुमारौं, आपके रथ पर आरूढ होकर मानवी होतृ की भांति आप हमारे यज्ञस्थल पर आएं और हमारे यजमानों को उत्तम अश्व और हमें प्रचुर धन प्रदान करें।''

''हे अश्विनीकुमारौं, आज हम आपके सर्वोत्कृष्ट नूतन रथ का स्तवन करके आवाहन करते हैं कि, आप हमें अन्न, बल और धनसंपत्ति प्रदान करें।''

अश्विनीकुमारों की इस तरह स्तुति करने के पश्चात भी मान्दार्य संतुष्ट नहीं हुएं। किन्तु अश्विनीकुमार उनकी स्तुति से आनंदित हो रहे थे। वे भी अगस्त्यों से मिलने के लिए उत्सुक थे। इस बीच अगस्त्यों ने फिर से सूक्त जाप आरंभ किया।

''हे यज्ञसिद्धकर, धनसंपन्न एवम् लोक संरक्षक अश्विनीकुमारौं, आप कब अन्न, धन और जल के रूप में अवतरित होंगे? हमने आपके लिए यह यज्ञ सिद्ध किया हैं। हे अश्विनीकुमारौ, आपके बलवान, स्वयंप्रकाशी तेजस्वी अश्व आपको हमारे यज्ञ स्थलपर ले आएं। आकर्षक, स्वाभिमानी और शक्तिशाली रथ पर आरूढ हे श्रद्धेय अश्विनीकुमारौ, आप ढलान से नीचे बहनेवाली धारा के रूप में तेज गति से हमारें यज्ञस्थल पर आएं। हे अश्विनीकुमारौं, आप में से एक सुमुख नामक देवगण का नायक है और दूसरा द्युलोक का भाग्यशाली पुत्र है।

पृथ्वी लोक में जन्मे आप दोनों का हम हृदय से स्तवन करते हैं। हे अश्विनीकुमारौं आपका वेगशील, शिखरयुक्त एवम् हिरण्यवर्णीय रथ हमारे यज्ञस्थल पर आए। हमारे हविर्द्रव्य एवम् स्तोत्रों से आपके अश्व पुष्ट हों, बलवान हों। स्वादिष्ट अन्न का परिवहन करने वाले, धनधान्यसंपन्न महापराक्रमी एवम् प्रतापी रथ से युक्त हे अश्विनीकुमारों, आपके वेगशील अश्व हमारे लिए उच्च प्रदेश को संपन्न नदियों का जलप्रवाह ले आएं। हे तेजबुद्धि अश्विनीकुमारौं, हम आपके त्रिविध स्तोत्रों का जाप कर रहे हैं। चाहे आप भ्रमण कर रहे हों या एक ही स्थान पर बैठे हों, हमारे स्त्रोतों का श्रवण करें और जिन भक्तों को आवश्यक हो उनकी रक्षा करें। शक्तिशाली मेधोदक की सहायता से गोरस की वर्षा के समान मनुष्यों को तृप्त करने वाले, हे अश्विनी कुमारौं, तीन स्थानों पर दर्भ बिछाकर हम आपके तेजस्वी रूप का गुणगान कर रहें हैं। आप हमें अन्न, शक्ति एवम् प्रचुर धन प्रदान करें। हे अश्विनीकुमारौं, ज्ञानी पूषन देवता समान यज्ञिय यजमान अग्नि और उषा के साथ स्तुतिपूर्वक आपका आवाहन करते हैं। आप हमें अन्न, शक्ति और धन प्रदान करें।''

अगस्त्य अपने मित्रों की बारंबार प्रशंसा करने के पश्चात भी संतुष्ट नहीं हुए। रात्रि के समय अश्विनी कुमारौं का आवाहन करने का उनका प्रयास एक ऐतिहासिक घटना थी। किन्तु विश्पला को ठीक करना भी आवश्यक था। शत्रु से लड़ने के लिए उसके आत्मविश्वास को जागृत करना था। अश्विनी कुमार भी आने के लिए आतुर थे, तथापि दैवीय कर्म जगत में सूर्योदय से पहले प्रकट होना संभव नहीं था। अगस्त्यों ने मन ही मन में सहस्त्ररश्मी से प्रार्थना की। अश्विनी कुमारों को आवेश के साथ पुकारा जा रहा था।

महर्षि अगस्त्य ने पुनश्च सूक्तगायन आरंभ किया।

''हे ज्ञानी भक्तों, सूर्योदय होते ही अश्विनी कुमारौं का वीर्यशाली अश्वयुक्त रथ अवतीर्ण हो रहा है। विश्पला की रक्षा करने वाले एवम् सदाचारी भक्तों का कल्याण करने वाले, बुद्धिप्रेरक तथा स्तुत्य सुपुत्र अश्विनीकुमारों का आगमन हो रहा हैं। इंद्र के समान बुद्धिमान, मरुतों के समान पराक्रमी, रथसंपन्न, एवम् सामर्थ्यशाली अश्विनीकुमारौं, आप मकरंद से भरे रथ में बैठकर हविर्दाता भक्तों के पास आइएं। आप हविष्य अर्पण न करने वाले घमंडी एवम् कृपण मनुष्यों के पास क्यों जाते हैं? आप वहाँ क्यों निवास करते हैं? उन्हें त्याग कर, उनका नाश

करके आप यहाँ आइएं और आपकी स्तुति करने वालों भक्तों को मार्ग दिखाइएं। हे शत्रुसंहारक अश्विनीकुमारौं आप नास्तिकरूपी, असूया प्राप्त श्वानों को खदेड दें। आप मेरे तथा अन्य भक्तों के स्तोत्र सफल एवम् रत्नों के समान तेजस्वी करें। हे अश्विनीकुमारौं, तुग्रपुत्र के लिए आपने समुद्र में चलने वाली नौका बनाई और उसी की सहायता से स्वर्ग के लिए उड़ान भरी। हे अश्विनीकुमारौं, आपने समुद्र में डूबने वाले तुग्रपुत्र को, चार नौकाओं की सहायता से अनायास ही बचा लिया था। हे अश्विनीकुमारौं, सोमयुक्त यज्ञ स्थल पर मान ऋषिं द्वारा गाए गए इन स्तोत्रों से प्रसन्न होकर आप हमें अन्न, शक्ति एवम् प्रचुर धन प्रदान करें।'' मान ऋषि गाते रहे,

''हे वीर्यवान अश्विनीकुमारौं, आप सुपक्ष पक्षी समान त्रिलोक में जानेवाले तीन रथचक्रों एवम् तीन कबूतरों के आकर्षक रथ में बैठकर हमारे निवासस्थान आइएं। द्युकन्या उषा के साथ भ्रमण करने वाले, हविर्द्रव्य की इच्छा से रथारूढ होकर एवम् सुगमता से यज्ञ स्थल की ओर आने वाले हे अश्विनीकुमारौं, हमारे इन स्तोत्रों से आप प्रसन्न हों। हविर्द्राता भक्तों तथा उनके पुत्रपौत्रों के कल्याणार्थ आप हमारे निवास स्थान आइएं। हे पराक्रमी अश्विनीकुमारौं, मैंने आपके लिए मेरे ये स्तोत्र, हविर्द्रव्य एवम् मधुर रस के कुंभ सिद्ध किए हैं। आप हमें आपसे अलग न करें अथवा हमें अकेला मत छोडिए। हे अश्विनीकुमारौ, नासत्यौ, हमारे स्तुति गान से प्रसन्न हो, ईश्वरी मार्ग से हमारे पास आओ और हमें अंधकार से मुक्ति दिलाओ। हमें अन्न, शक्ति एवम् प्रचुर धन प्रदान करें। हे नासत्यौ, आप उषः काल समय कहीं भी हों, हम आपको अपनी दिनचर्या के अनुसार हविर्द्रव्य एवम् स्तोत्र अर्पण करते रहेंगे। हे वीर्यवान और शूर अश्विनीकुमारौं, हमारे स्तोत्रों से प्रसन्न होकर आप हमारी यज्ञीय प्रार्थना श्रवण करें। आप अपनी शक्तियों से पणी का संहार करें। हे पूषन और नासत्यौ, सूर्यकन्या सूर्या के स्वयंवर समारोप के अवसर पर आपको उदकोद्भव अश्व आपको वरुण के प्राचीन अश्व की भांति वांछित स्थान पर ले गएं। हे मधुयुक्त एवम् दानशील अश्विनीकुमारौ, हमारे स्तुतिगान से प्रसन्न होकर हम पर कृपा करें। हे धनसंपन्न अश्विनीकुमारौं, मानपुत्रों के छंदोबद्ध स्तोत्रों से प्रसन्न हो और हमारे पुत्रपौत्रों के कल्याण के लिए आओ। हे अश्विनीकुमारौ, आप हमारे स्त्रोतों से प्रसन्न होकर हमें इस अंधकार से मुक्त करके अन्न, बल और धनसंपत्ति प्रदान करें।''

सूर्य नारायण को भी महर्षि अगस्त्य के इस आर्त स्तवन को स्वीकार करना पडा। अश्विनीकुमारों की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने अश्विनीकुमारों को सूर्यदेव के साथ जाने की अनुमति दी।

दिशाएँ भासमान हुई, स्वर्णिम कांति से जगमगाने लगी। देवता भी चकित रह गए। ब्रह्मदेव सकौतुक अगस्त्य मुनि की ओर देख रहे थे। मित्रावरुण का तेज उनके वदन पर झलक रहा था। अश्विनीकुमार सूर्या के साथ अपने मित्र की सहायता के लिए शीघ्रता से उपस्थित हुएं। यज्ञ वेदी पर जैसे ही वे प्रकट हुए, अगस्त्यों ने उनका स्वागत किया।

''हे मित्रावरुणी, अग्निद्वारा हमें हविर्द्रव्य प्राप्त हुआ है। हम संतुष्ट हैं। वास्तव में आपकी कर्तव्यतत्परता और स्नेह ने हमें यहा खींच लाया हैं। हम प्रसन्न हैं। अब विनाविलंब हम विश्पला की चिकित्सा करते हैं।''

''हे अश्विनीकुमारौ, सूर्यदेवता, आपकी जय हो। आप हमारे द्वारा सिद्ध किए सोम का स्वीकार करें। हमने लोह द्वारा विश्पला की जंघा तैयार की है। हमने सभी अंग समानुपाति, प्रमाणबद्ध और पहले की तरह पुष्ट बनाएं हैं। आप शल्यचिकित्सा की सहायता से उनका विरोपण करें।''

''हे अगस्त्ये, आपकी वाणी से हम धन्य हैं। आप आयुर्वेद शास्त्र में निपुण और एक अच्छे शल्यचिकित्सक भी हैं। वास्तविक आप भी यह कार्य सहजता से कर सकते थे। आपने हमे आमंत्रित करके हमारा सम्मान किया हैं।'' अश्विनी कुमारों ने कहा।

''हे ऋषि, आप त्रिकालज्ञ, सर्वशक्तिमान और कुशल शरीर रचनाविद और स्वास्थ्यदाता हैं। मेरी वीर पत्नी विव्हल अवस्था में है। उषःकाल होने से शत्रु द्वार पर खडा है, इसलिए...।'' खेलराज ने प्रार्थना की।

''हे खेलराजेश्वर, आपने हमें यह अवसर देकर उपकृत किया है। आप चिंता न करें।'' अश्विनीकुमारों ने कहा।

अश्विनीकुमार यज्ञभूमि से चिकित्सालय गए। सूर्या उनके साथ थी। साक्षात सूर्यकन्या के तेज से लोहयुक्त पाँव स्वर्णिम हुआ। दृष्टिस्पर्श से हुआ यह चमत्कार देखकर विश्पला विस्मित हुई।

''हे देवते, आपके असीम तेज से हम प्रबुद्ध हैं। आप मेरे लिए आए हैं। मैं धन्य हूँ।'' विश्पला ने कहा।

‘‘हे विश्पला, राज्ञी, आपका युद्धभूमि जाकर महातेजस्वी पराक्रम करना विश्व के समस्त स्त्रियों के लिए मार्गदर्शक और प्रेरक सिद्ध होगा। प्रत्यक्ष अश्विनीकुमारों के स्पर्श के पश्चात इस उर्जा का रुपांतर सजीवता में होगा। आप चिंता न करें।

अश्विनीकुमार और स्वयं महर्षि अगस्त्य ने विश्पला का पाँव स्वर्णजंघा से जोडना आरंभ किया। अगस्त्य मुनि ने सटिक विरोपण किया। अश्विनीकुमारों ने अपने अति कुशल हस्तस्पर्श से उसमें एकरूपता ला दी और सूर्यनारायण का स्मरण कर ब्रह्मदेव से अपनी कृपादृष्टि विश्पला पर केन्द्रित करने का अनुरोध किया। देखते ही शल्यचिकित्सा सफल हुई और क्या आश्चर्य! विश्पला का पाँव पहले से अधिक तेजस्वी बना था। विश्पला को केवल अपने पैरों मे ही नहीं अपितु संपूर्ण शरीर में नवतेज प्रतीत हो रहा था। कुछ ही क्षणों में वह वीरता से अपने पुष्ट पैरों पर खडी रही। समूचा विश्व आनंदमय हुआ। इस प्रकार के आश्चर्य दुर्लभ होते हैं। प्रत्यक्ष भगवान शिवशंकर ने गणेश को इसी प्रकार निर्माण किया था। अश्विनी कुमार और अगस्त्यों को त्रिवार वंदन कर विश्पला सीधे युद्धभूमि जाने के लिए निकल पडी। शंख घोष हुए और युद्ध पुनश्च आरंभ हुआ। विश्पला को दोनों पैरों पर ठीक से खड़ी देख शत्रु का लहू सूख गया। अंततः खेलराजा की जीत हुई। अगस्त्य मुनि ने अपनी योग्यता सिद्ध कर दिखाई।

प्रभु रामचंद्र प्रयागतीर्थ पर विशाल और रमणीय आश्रम में अगस्त्य शिष्य कुलपति के मुख से अगस्त्य गौरवगाथा का अनुभव कर रहे थे। महर्षि अगस्त्य के कतृत्व से राम–लक्ष्मण–सीता निस्तब्ध हुए थे। शिष्य ने अपनी अस्खलित मधुर वाणी से अश्विनीकुमारों के सूक्त कहते हुए प्रभु श्रीराम को कथा सुनाई। किन्तु उनकी संतुष्टि नहीं हुई।

*

‘‘हे अगस्त्यशिष्य कुलपते, हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि, आप हमें महर्षि अगस्त्य के कार्य की और कथाएँ सुनाएं।’’ प्रभु रामचंद्र ने निवेदन किया।

‘‘नारायण नारायण!’’ घोष करते हुए नारद जी प्रकट हुए। प्रभु रामचंद्र ने उन्हें प्रणाम किया।

‘‘हे ब्रह्मर्षे, त्रिकालज्ञ नारदमुने, हम आपके दर्शन से धन्य हैं।’’

''हे प्रभु रामचंद्र, यदि आप केवल अगस्त्यों के पराक्रम की कथाएँ सुनकर संतुष्ट हैं, तो दक्षिण में दैत्यों, राक्षसों, अनार्यों को आर्य कौन करेगा?''

''हे नारदमुने, आप सब कुछ जानते हैं। आपकी कृपा से ही हमें ऋषियों की कथाओं का लाभ होता है। हम उनकी कार्य शैली को समझ गए हैं, अब आप ही हमें मार्गदर्शन करें।

''हे प्रभो, अब आप उत्तर में अगस्त्य आश्रम की अपनी यात्रा तुरंत पूरी करें और प्रत्यक्ष विंध्य पर्वत का मार्गदर्शन लें, उनसे आपको महर्षि अगस्त्य के पराक्रम की गाथा का ज्ञान प्राप्त होगा।''

''हे ब्रह्मर्षे नारद, प्रयागतीर्थ से होकर हम विंध्य का मार्गदर्शन लेने अवश्य जाएंगे। तथापि काशी निवासी अगस्त्यों का काशी निवास का महात्म्य जानने के लिए हम उत्सुक हैं।''

''हे रामचंद्र, काशी निवास महिमा यह है कि, शिवतेज द्वारा उत्पन्न घोर तपःसामर्थ्य से प्रकाशित अगस्त्यों को स्वयं भगवान शिव जी ने ही काशी क्षेत्र में आश्रम स्थापित करने के लिए कहा था। यह काशी क्षेत्र वास्तव में गंगा सखा शिव का निवास है। विश्वेश्वर को वंदन करके गंगा, प्रयाग की ओर प्रयाण करती है और अपना विसर्जन त्रिवेणी में करते हुए वह त्रिवेणीयुक्त होकर समुद्र को जा मिलती है। गंगा जल्लौघ का पूर्ण स्वतंत्र पथसामर्थ्य से युक्त ऐसा यह स्थान है। यही गंगा और विलयकार शिव का मिलन होता है। जब शिवशंकर कैलाश पर नहीं होते हैं, तब उनका वास काशी में काशीविश्वेश्वर के रूप में होता हैं। परब्रह्म स्वरूप में आदिपुरुष ही शिवशंकर हैं। उन्होंने अवनि और जल दोनों में सृष्टि का निर्माण करने के लिए हिमालयपुत्री पार्वती और हिमालयपुत्री गंगा दोनों से विवाह किया। पार्वती प्रकृतिरुपिणी बनी, तो पोशिता ओर विलया ये दोनो कर्म गंगा के पास आएं। हे प्रभो, इसलिए शिव को गंगा शिरोधार्य प्रतीत हुई। पार्वती एक महान सृजनयोगिनी, तो गंगा महान गृहिणी थी और अगस्त्य दामिनी अग्निस्वरूप के साथ साथ कोमल हृदय के शिवस्वरूप होने से प्रत्यक्ष भगवान शंकर को अगस्त्य मुनि से कई अपेक्षाएँ थी। अगस्त्य मुनि से भगवान शिवशंकर को देवता और मनुष्य का मार्गदर्शन करके दानवों को मानव रूप में लाने का महान कार्य अपेक्षित था। उनसे विश्व से अहंकार रूपी पहाड को नष्ट करने और विनम्रता और सीधेपन, भक्ति और मानवता के माध्यम से विश्वशांति

लाने का कार्य अपेक्षित था। हे रामचंद्र, भगवान सृष्टि का निर्माण करते हैं, भगवान विष्णु, निर्माण किए गए जीवों का भरण पोषण करते हैं, तथापि भगवान शिव को ही सृजन और पोषण के बीच संतुलन बनाए रखना होता है। इसके लिए विश्व के अध्ययन की आवश्यकता होती हैं। इसीलिए विश्वनाथ ने अगस्त्यों की प्रेरणा काशीक्षेत्र में की। अगस्त्यों ने काशीक्षेत्र में आश्रम का निर्माण किया और सहस्त्रों वर्षों तक ज्ञान, व्यवहार, कृषिकर्म एवम् स्वास्थ्य का अध्ययन किया। अगस्त्य अगने तपोबल से युद्धनिपुण हुए। उन्हें देवताओं और दानवों के सभी अस्त्र प्राप्त हुए थे। उन्होंने यज्ञसंस्था के अभ्यास को आत्मसात किया था। उन्होंने यहाँ न केवल मायापलट के संपूर्ण अथर्वण का अध्ययन किया, अपितु अथर्वण की रचना भी की. आयुर्वेद में उन्हें अध्वर्युपद प्राप्त हुआ। शाप-उःशाप की शक्ति भी उन्होंने यहीं पर प्राप्त की। कडे परिश्रम और अनुशासन के बल पर उन्होंने उग्र ऋषि के रूप में अपनी प्रतिमा निर्माण की। उन्होंने मनोजव रथ के माध्यम से विश्वसंचार किया और जंबुद्वीप में अपने गुरुकुलों की स्थापना की। प्रत्येक गुरुकुल के कुलपति के पद पर उन्होंने अपने साथ गोत्रज शिष्यों को नियुक्त किया। उन्होंने ध्यानमग्न होकर जलौघ, उपवन, अरण्य, विशेष पर्वतों का मनोवेग से निर्माण किया। इनका उपयोग कैसे किया जा सकता है, यह भी स्पष्ट किया। वे काशी निवासी अगस्त्य के नाम से ही प्रख्यात हुए। उन्होंने भगवान शिव के साथ नित्य संवाद करके समग्र विश्व को आर्यमय करने के लिए अपना जीवन समर्पित करने का निश्चय किया। उन्होंने अपनी अपार शक्ति और असीम ज्ञान से जंबुद्वीप में अपनी धाक जमा रखी थी। हे रामचंद्र, मुझसे अगस्त्यों की शक्तियों की गाथा सुनने से अधिक अच्छा होगा कि, आप काशीक्षेत्र में कुछ दिन निवास करें और उनके कार्य को जान लें।'' नारद जी ने रामचंद्र को कहा।

''हे ब्रह्मर्षे नारद, हम आपके आदेशानुसार काशीक्षेत्र जा रहे हैं।

''आपका कल्याण हो! नारायण नारायण!'' नारदमुनि ने श्रीराम को आशीर्वाद देकर उन्हें अगली यात्रा के लिए प्रेरित किया।

*

स्वर्ग और पृथ्वी को पावन करने वाली शिवस्वामिनी गंगा माता का

विस्तीर्ण प्रवाह, अपने दोनों तट के क्षेत्र को पवित्र करते हुए शिवस्पर्श से स्वयं पावन होकर युगोयुगों का जीवनदायी संकल्प करते हुए धीमे धीमे बहता है। प्रभु रामचंद्र, सीतामाता और लक्ष्मण के साथ गंगा पर स्तवकों के घाट से जलौघ में उतर गए। उन्होंने गंगा माता को श्रद्धापूर्वक वंदन किया। प्रभु रामचंद्र के पदकमलों को स्पर्श करने के लिए गंगामाता भी अधीर होकर उछल रही थी। प्रभु के नेत्र कृतज्ञता से भर आएं। वहाँ से कुछ ही दूरी पर घने वृक्ष से अगस्त्य आश्रम की पताका चमक रही थी। सूर्यतेजस्वी पताका अगस्त्यों का तेज मानो आकाश में बिखेर रही थी। प्रभु रामचंद्र ने पताका को त्रिवार अभिवादन किया। काशी विश्वेश्वर के मंदिर में आकर श्रीप्रभु ने शिव के स्वयंभू लिंग की पूजा की। प्रभु श्रीराम ने अनुभव किया कि नेत्रों को तीर्थ लगाते ही श्री शिवप्रभु का हस्तस्पर्श होता है। शिव के दर्शन करने के पश्चात तीनों अगस्त्य आश्रम की ओर चल दिए। काशी नगरी से जाते हुए मार्ग में कई महात्माओं के दर्शन पाकर प्रभु आनंदित हुएं।

''क्या आप अगस्त्य आश्रम जाना चाहते हैं?'' ऋषि के भेस में एक ने पूछा।

''हाँ मुनिवर, हमारा प्रणाम स्वीकार करें। आप कौन है? आपको कैसे पता चला कि हम अगस्त्य आश्रम जाना चाहते हैं?'' प्रभु ने आश्चर्य से पूछा।

''हम अगस्त्य आश्रम के सेवक है। हमने सेवाभाव से दर्शन के लिए आने वाले हर एक व्यक्ति को अगस्त्य आश्रम के दर्शन कराने का संकल्प लिया है।'' सेवक ने उत्तर दिया।

''आपने यह कार्य क्यों स्वीकार किया?''

''हे प्रभो, महर्षि अगस्त्य की सेवा से संघर्ष मिट जाते हैं और शांति मिलती है। इसी उद्देश्य से मैं यह कार्य करता हूँ। हमारे घरों में भाईयों के बीच संघर्ष बढते ही जा रहे हैं। वंश नाश होने का भय है। अगस्त्य शिष्यों ने मुझे यह सेवा करने के लिए सूचित किया।''

''महर्षि अगस्त्य की कृपा से आपका कल्याण हो। अब हमें आश्रम ले चलो'' सेवकों का सेवाभाव देखकर प्रभु रामचंद्र ने उन्हें अपने साथ आने का अवसर दिया।

जैसे ही उन्होंने देखा कि, कुछ अभ्यागत अगस्त्य आश्रम की ओर

आ रहे है, शिष्य शीघ्रता से आगे बढे। उन्होंने सम्मानपूर्वक प्रभु रामचंद्र का अभिवादन किया और उन्हें आश्रम ले गए। कुछ ही क्षणों में आश्रम में यह समाचार फैल गया कि, अयोध्या से भगवान रामचंद्र आश्रम में आए हैं। आश्रम आनंदित हुआ। एक शिष्य ने दौडकर अगस्त्य मुनि को प्रभु रामचंद्र के आश्रम आने की सूचना दी। यज्ञस्थल पर यज्ञ कर्म का प्रबंध ठीक हुआ हैं या नहीं यह देखने के लिए आए अगस्त्य, प्रभु के आने की सूचना पाकर आनंदित हुए। कुलपति अगस्त्य अपनी ऋषि पत्नी के साथ श्रीराम से मिलने आए। अत्यंत सद्भाव से वे प्रभु रामचंद्र को लेकर अभ्यागत कक्ष में गए। प्रभु को श्रद्धापूर्वक आसन ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की। प्रभु रामचंद्र ने आसनस्थ होने के पूर्व विनम्र भाव से अगस्त्य मुनि को वंदन किया। लक्ष्मण और सीता ने ऋषि पत्नी सहित सभी को वंदन किया।

अतिथियों का यथोचित स्वागत करने के पश्चात भोजन के समय समस्त शिष्यों का प्रभु श्री रामचंद्र से परिचय कराया गया। आश्रमवासी ,प्रभु श्रीरामचंद्र के दर्शन पाकर धन्य हुए। अगस्त्य मुनि ने वैदेही के साथ श्रीराम को यज्ञशाला, गोशाला, पाठशाला, नियुद्धशाला, युद्धअभ्यास भूमि, पाकशाला, चिकित्सालय आदि सभी शालाओं से परिचय करा दिया। ज्ञानसमृद्ध शिष्यों और आचार्यों के बीच परिचितों से मिलकर श्रीराम विशेष रूप से प्रसन्न हुये। प्रभु रामचंद्र कुछ दिन के लिए आश्रम में वास्तव्य करने वाले हैं, यह जान कर आश्रम में आनंद की लहर दौड गई। सोमयाग सत्र का आयोजन कर विश्वदेव और अन्न, आप्री आदि सूक्तों से संबंधित देवताओं को आहुतियाँ प्रदान की गई। प्रभु श्रीरामचंद्र को यजमान पद से सम्मानित किया गया। श्रीराम को सीता के साथ यज्ञ संस्था का लाभ हुआ। लक्ष्मण को भी आहुति देने के लिए आमंत्रित किया गया। अगस्त्य मुनि द्वारा रचित सूक्तों के गान समय सहजता से शक्तियां उत्पन्न हो रही थी।

''हे अगस्त्ये, आपके इस शिष्टाचार से मानव कल्याण का हमारा लक्ष्य और अधिक दृढ हुआ है। इस सोमयाग सत्र से हम संतुष्ट हैं। हमें एक बार फिर गुरू वसिष्ठ का स्मरण हो रहा हैं। वसिष्ठ और विश्वामित्र के सान्निध्य में यज्ञ कर्म में नित्य सहभागी होते थे। हे अगस्त्ये, आपसे विदा लेने के पूर्व हम आपसे महर्षि अगस्त्य ने समुद्र प्राशन क्यों और कैसे किया यह जानना चाहते हैं। कृपया उनके इस समुद्र प्राशन के पराक्रम की कथा हमें कथन करें।

‘‘हे प्रभो, यह, हम अगस्त्य गुरुकुल वासियों का सौभाग्य है। आपको मान मान्य अगस्त्य मुनि के पराक्रम की कथा श्रवण करनी हैं। इस कथा के श्रवण मात्र से आपको असीम शक्ति प्राप्त होगी। समुद्र आपकी आज्ञा में रहेगा, इतना ही नहीं, शत्रुओं का समूल उच्चाटन करने वाली यह कथा अब मैं आपको सुनाता हूँ। उसे सुनकर आप शक्तियाँ प्राप्त करें।

*

‘‘हे अगस्त्य कुलपते, हम कानों में प्राण लिए मान्दार्य अगस्त्यों की पराक्रमकथा श्रवण करने वाले हैं।

‘‘हे प्रभो, रामचंद्र, यह कथा कृत युग की है। इस युग में देवता और दानवों के बीच नित्य संघर्ष होता था। परब्रह्मा चाहते थे कि, दानवों का नाश करके विश्व में देवताओं का निरामय साम्राज्य हों। देवता और दानव दोनों अवस्थाएं वास्तव में त्रिगुणात्मक मानवरूप ही हैं। तथापि क्रमशः सत्व और तमोगुण की अधिकता से निर्माण हुए है। ब्रह्मदेव ने सृष्टि की रचना करते हुए मनुष्य की रचना की। त्रिगुणात्मक मानव से सीधे परब्रह्म से जो संपर्क कर सकते थे वे सत्वगुणयुक्त मानवगण के रूपमें देवता कोटि को प्राप्त हुए। तमोगुण से युक्त मानवों को दानव होना पडा। ये दोनों अवस्थाएँ इस बात पर निर्भर करती हैं कि, प्रकृति किस प्रकार मोड लेगी। मर्त्य लोक में सामंजस्य से सुखोपभोग लेकर सत्व युक्त को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करने अथवा देवता कोटि पहुँचने की प्रथा प्रचलित हैं।

‘‘कृतयुग से आजतक देवता और दानव प्रवृत्तियों का संघर्ष नित्य चलते आ रहा है। कृतयुग में वृत्तासुर के नेतृत्व में कालकेय नाम के दानवों की टोलीयाँ उन्मत्त होकर देवताओं को नित्य कष्ट पहुँचाती थी। वृत्तासुर के ये समूह ज्ञानी और शक्तिशाली होने में देवताओं से भी श्रेष्ठ थे। किन्तु उनके अहंकार के कारण उन्हें दानवरूप प्राप्त हुआ था। वृत्तासुर ने कई बार देवताओं पर आक्रमण किया परंतु देवता उसे किसी न किसी तरह से रोकने में सफल रहें। वृत्तासुर ने घोर तपस्या करके शिवशंकर से ऐसा वरदान प्राप्त किया था कि, शिव शक्ति से संपूर्ण सत्वयुक्त, निर्दोष तपस्वी और त्यागपूर्ण भावना से परिपूर्ण ऋषियों की अस्थियों से बने वज्र से वृत्तासुर का वध किया जा सकता हैं, अन्यथा वृत्तासुर अमरत्व

को प्राप्त होगा।

वृत्तासुर इस बात से क्रोधित हो गया कि, कई बार देवताओं पर आक्रमण करने के पश्चात भी उनकी हार नहीं हुई। इसलिए उसने इंद्रलोक पर आक्रमण करने का निश्चय किया। देवेन्द्र के स्वर्ग पर उसने निर्णायक आक्रमण किए। वृत्तासुर के गिरोह का युद्ध कौशल और शस्त्रज्ञान अगाध था। इनमें से कई अस्त्र उन्होंने देवताओं से ही प्राप्त किए थे। शिवजी की कृपा से उसे पराजित करना इंद्रदेव के लिए भी संभव नहीं था। यह देखकर कि वृत्तासुर के गिरोह को वश में नहीं किया जा सकता, इंद्र ने अपने देवगणों के साथ वहाँ से भागना उचित समझा। देवेन्द्र ब्रह्मदेव के पास गए।

''देवेन्द्र अचानक, भयभीत अवस्था में ब्रह्मदेव के सम्मुख खडे थे।

''नारायण नारायण, हे इंद्र देव, आप अचानक यहाँ कैसे? इतना भयभीत होने का क्या कारण है? संयोग से नारद ही इंद्रदेव के पास पहुँचे। इंद्रदेव को नारद का उन्हें इस प्रकार रोकना अच्छा नहीं लगा। विवश होकर भयभीत इंद्र ने उन्हें बताया कि वृत्तासुर उनका पीछा कर रहा है।

''क्या? देवाधिदेव इंद्र का भी वृत्तासुर जैसे अहंकारी शत्रु दानव ने पीछा किया, पिताश्री, अब देवलोक का क्या होगा?'' नारद ने देवेन्द्र का उपहास करते हुए ब्रह्मदेव से पूछा।

''हे ब्रह्मदेव, हम सभी देवता आपकी शरण में है। देवलोक का निर्माण आप ही ने किया हैं। आप ही ने मुझे देवताओं का नेतृत्व प्रदान किया हैं। आप सर्वश्रेष्ठ सृष्टिरचयिता हैं। अब आप ही हमारी रक्षा करें।''

''हे देवेन्द्र, आपका वचन सत्य है। तथापि यदि प्रत्यक्ष ब्रह्मास्त्रों से असुरों को परास्त नहीं किया जाता हैं, तो आपको भगवान शिवशंकर से परामर्श करना चाहिए। चाहिए तो स्वयं हम आपके साथ शिवजी से मिलने कैलाश आएंगे।

''हे ब्रह्मदेव, जैसा आप कहेंगे, हम वैसा ही करेंगे। हम आपकी आज्ञा से परे नहीं हैं। किन्तु प्रत्यक्ष वृत्तासुर हमारा पीछा करते हुए सीधे ब्रह्मलोक तक आ पहुँचा हैं। तो अब हम उसे रोक कर कैलाश कैसे जा सकते हैं?'' इंद्र ने भयभीत होकर प्रश्न किया।

''हे विष्णुभक्तश्रेष्ठ पुत्र नारद, वृत्तासुर को रोकने का कार्य हम तुम्हें सौंपते है। तुम ही वह चतुरता से कर सकते हो।'' ब्रह्मदेव ने आदेश दिया।

''हे पिताश्री हम आपकी आज्ञा के परे नहीं हैं, किन्तु यदि हम इस कार्य में असफल रहते हैं तो हमें अभयदान दें। नारद ने नट-खटी की।

''हे नारद, तुम्हें अभय है। परंतु हम तुम्हें इस कार्य में सफल होने का आशीर्वाद देते हैं।'' ब्रह्मदेव ने आशीर्वाद देकर इंद्रदेव को आश्वासित किया और ब्रह्मसामर्थ्य से देवताओं के साथ वे कैलाश के लिए निकल पडे।

''हर हर महादेव, वृत्तासुर की जय हो! ऐसी गर्जना से ब्रह्मलोक गूंज उठा। वृत्तासुर विकट हास्य करते हुए ब्रह्ममंदिर के द्वार पर खडा था।

''कहाँ हैं तुम्हारे देवाधिदेव इंद्र! ब्रह्मा की शरण में आए हो? उनसे कहो कि वे हमारी शरण लें और फिर ब्रह्मा की शरण में रहें!'' भयभीत द्वारपालों से विकराल वृत्तासुर ने क्रोधित स्वर में कहा।

''नारायण नारायण! ओ, हो हो! विश्वपराक्रमी, देवेन्द्र पदाधीश वृत्तासुर महाराज की जय हो। हे देवेन्द्र, आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। ब्रह्मलोक में आपका स्वागत हैं!'' नारद ने स्वागत किया।

''हे नारदमुने, वृत्तासुर का आपको त्रिवार वंदन है। आपके द्वारा की गई घोषणा से हम धन्य हैं। आप कृपा करके हमें बताइएं कि इंद्र और समस्त देवता कहाँ हैं।'' वृत्तासुर ने पूछा।

''इंद्रदेव, समस्त देवता और प्रत्यक्ष पिताश्री ब्रह्मदेव कैलाशपति शिवशंकर की शरण में गए हैं। वे उनसे परामर्श लेने गए हैं, परंतु हे सर्वश्रेष्ठ योद्धा, आपको इस विषय पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। देवेन्द्र देवलोक को छोड़कर भाग गए हैं। अब आपको सिंहासनाधिष्ठित होने से कौन रोक सकता है?''

''हे ब्रह्मर्षे, आपका वचन सत्य है। किन्तु आप जानते है कि शक्तिशाली दानव कायर, भगौहें शत्रु के सिंहासन पर डरपोक की भांति नहीं बैठेगा। शत्रु द्वारा हार स्वीकार करने के पश्चात उसकी उपस्थिति में राज सिंहासन पर बैठने में ही वास्तविक पुरुषार्थ है! वृत्तासुर ने कहा।

''आप वास्तव में बुद्धिमान और पुरुषार्थसंपन्न हैं। तथापि आपसे क्षमा मांग कर क्या मैं आपसे एक प्रश्न पूछ सकता हूँ?''

''अवश्य!''

''भयभीत होकर अपने राज्य से दूर भागने वाले शत्रु के पीछे दौडने में

क्या पुरुषार्थ है, यह जो आपने कहा, वह मैं समझ पाया।'' नारद ने आवाज कस दी।

वृत्तासुर को नारद की चतुराई समझ आई तथापि उसने अति नम्रतापूर्वक कहा,

''हे ब्रह्मर्षे, नारदमुने, हमें इंद्रपुरी में ही रुकना चाहिए था।''

''हे विश्वविजेता, इंद्रदेव इंद्रपुरी को छोड़कर भाग गए। इंद्रपुरी को आपने वश में कर लिया। तो वहीं रुक कर राज्य स्थापित करने में क्या आपत्ति है?

''परंतु हे नारदमुने, इंद्रदेव का दिव्य अहंकार अभी समाप्त नहीं हुआ। वे किसी न किसी मार्ग से हम पर अवश्य आक्रमण करते है। कूट नीति से आचरण करना कहाँ तक शिष्टसम्मत हैं?

''हे अतुल पराक्रमी वृत्तासुर, पिताश्री ब्रह्मा उन्हें कैलाश ले गए हैं और शिवजी के वरदान से जब आप इन सभी विजयों को प्राप्त कर रहे हैं, तो शिवजी उनकी सहायता कैसे करेंगे?''

''हे नारदमुने, शिव के वरदान के कारण नहीं, अपितु हमारी घोर तपस्या के कारण हमने शिवशक्ति को वश कर लिया है। हमारी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने हमें वरदान दिया। इसलिए शिवमहादेव इंद्र की भी सहायता करेंगे, क्यों कि इंद्रदेव उनकी शरण में गए हैं।''

''हे वृत्तासुर, मुझे नहीं लगता कि शिवजी परस्पर शत्रुओं को शिवशक्ति प्रदान कर स्वयं निस्तेज होंगे। क्यों कि शिवजी जानते है कि एक दूसरे के शत्रुओं को दी गई शक्तियों के बीच संघर्ष होने पर आत्मघात हो सकता है।

''हे नारद, आपका वचन सत्य है; तथापि हमें युद्ध के लिए तत्पर रहना होगा क्यों कि हमारी तपस्या के पश्चात भी त्रिदेव सदैव पक्षपाती रहे हैं।''

''हे वृत्तासुर, आप महान योद्धा और तपस्वी हैं। आपका त्रिदेव के प्रति इस प्रकार बात करना उचित नहीं होगा। आप भली भांति जानते है कि, त्रिदेव सदैव भक्ति के वश में रहे हैं। परंतु भक्त का अनन्य और आर्त होना भी उतना ही आवश्यक है। मैंने सत्य कहा ना!''

''हे मुनिवर, आपके परामर्श नुसार मेरे लिए इंद्रपुरी के स्थान पर कैलाश जाना ही उचित होगा। अतएव मैं कैलाश की ओर प्रयाण करता हूँ। वहाँ शिव मुझे अवश्य न्याय देंगे। आपका आशीर्वाद बना रहे।

‘‘तथास्तु!’’

‘‘वृत्तासुर अपनी दानव सेना के साथ कैलाश की ओर निकल पडा। कैलाश आकर उसने देखा कि, महादेव स्वयं पार्वती के साथ ध्यान में निमग्न थे। उनका ध्यान समाधि की स्थिति में पहुंच गया था। वृत्तासुर को समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। शिवगणों को पूछा तो कोई ठीक से कह नहीं पा रहा था। इंद्रदेव ब्रह्मा के साथ आए थे, किन्तु वे तुरंत कैलाश से दूर चले गए, इतना ही वे जानते थे। वृत्तासुर पूछताछ कर रहे थे कि, सहसा प्रत्यक्ष सत्यविनायक गणेश वृत्तासुर को देख वहाँ आ गए।

‘‘हे महान प्रतापी शिवभक्त, आपका कैलाश कैसे आना हुआ? तात शिवशंकर तो ध्यान समाधि में निमग्न है।’’

‘‘हे सत्यविनायक श्रीगणेश, आप कभी असत्य वचन नहीं करते। इसलिए हमें बताइएं कि, देवाधिदेव इंद्र, देवगण तथा ब्रह्मदेव कहाँ गए हैं।

‘‘बस इतना ही ना, हे वृत्तासुर, ब्रह्मदेव देवताओं के साथ भगवान नारायण के पास विष्णुलोक गए हैं।’’

‘‘अच्छा तो यह बात है, शिवप्रभु ने उनकी सहायता नहीं की, इसलिए भगवान विष्णु से सहायता प्राप्त करने के लिए वे विष्णु लोक गए हैं। तो हमें भी अब विष्णु लोक जाना होगा।’’ वृत्तासुर ने श्रीगणेश के समक्ष अपने विचार व्यक्त किए।

‘‘हे वृत्तासुर, आप अवश्य विष्णुरूप नारायण से मिलें। उनसे मिलकर सभी का कल्याण ही होता है।’’ श्रीगणेश ने कहा।

वृत्तासुर कुछ संदेहपूर्ण और व्यथित मन से विष्णुलोक की ओर निकल पडा।

‘‘इंद्रदेव और समस्त देवगण ब्रह्मदेव के साथ कैलाश गए। भगवान महादेव और पार्वती माता ने उनका स्वागत किया और उन्हें अभयदान भी दिया।

‘‘हे महादेव, इंद्रदेव सहित समस्त देवतागण आपकी शरण में आए हैं। आप उनकी रक्षा करें।’’

‘‘हे ब्रह्मदेव, आप सर्वज्ञ हैं। जब आपको सबकुछ ज्ञात था, तो आपने देवताओं का मार्गदर्शन क्यों नहीं किया? आप जानते हैं कि, मेरे वरदान से केवल त्यागी, सेवारत ज्ञानी ऋषियों के प्रत्यक्ष अस्थियों से बने वज्र के बिना

वृत्तासुर वध होना संभव नहीं। हे ब्रह्मदेव, ऐसे ऋषि, देवताओं से भी श्रेष्ठ होते हैं। इतना ही नहीं, हम त्रिदेव और प्रत्यक्ष परब्रह्म भी उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। इसलिए अब हमें ही ऐसे ऋषियों की खोज करनी होगी। मेरे द्वारा दिए गए वरदान में ही अहंकार को नष्ट करने और संतुलन बनाए रखने की व्यवस्था की हैं।'' महादेव ने उत्तर दिया।

''हे महादेव, आपके मार्गदर्शन के अनुसार विष्णुभक्त दधीचि ऋषि ही केवल त्यागमूर्ति एवम् सेवामूर्ति पूर्णपरब्रह्मरूप हैं। उनकी तपस्या करके हम सभी को उनकी शरण में जाना चाहिए, ऐसी उनकी योग्यता हैं। किन्तु उनसे उनकी अस्थियाँ माँगना, अर्थात उनके मृत्यु को आमंत्रित करना होगा। देहत्याग किए बिना यह कैसे संभव हैं? हम उन्हें कैसे बताएँ? उनसे प्रार्थना भी कैसे करें? ब्रह्मदेव ने अपना संदेह स्पष्ट किया।

''हे ब्रह्मदेव, हमें कैवल्य के रूप में विष्णुस्वरूप नारायण की शरण में जाना चाहिए और उनके नेतृत्व में हमें महर्षि दधीचि से प्रार्थना करके विश्वनाश को रोकना होगा। महादेव ने मार्गदर्शन किया। महादेव से अनुज्ञा लेकर सभी मनोवेग से विष्णुलोक पहुँचे। विष्णुलोक के प्रवेशद्वार पर ही नारदमुनि ने उनका स्वागत किया।

''नारायण नारायण, क्या आपको कोई समाधान मिला है?''

''हे नारदमुने, अब विचार करने का समय नहीं है।''

''हाँ, यह भी सत्य हैं। वृत्तासुर आपके पीछे ब्रह्मलोक से कैलाश तक पहुँचा होगा और वहाँ से अपनी पूरी सेना के साथ विष्णुलोक की ओर निकला भी होगा। अतः हमें अब शीघ्र विष्णु रूप नारायण से भेंट लेना आवश्यक हैं।'' नारद के बोल सुनकर इंद्रदेव भय से कांपने लगे। उनका पीछा करते हुए वृत्तासुर सीधे विष्णुलोक तक पहुँचने वाला था। जब जयविजय ने भगवान नारायण को यह समाचार सुनाया कि, नारदमुनिसहित समस्त देवता प्रत्यक्ष ब्रह्मदेव के साथ उन्हें मिलने आ रहे है, तो भगवान विष्णु के वदन पर प्रसन्नता की मुसकान खिल गई। माता लक्ष्मी विस्मित हुई।

''नाथ, क्या हुआ? आप मुस्कुराएँ!'' माँ लक्ष्मी ने पूछा।

''हे त्रिकालज्ञ जगत्स्वामिनी, प्रिये, वृत्तासुर की मृत्यु अब निकट है। देवाधिदेव इंद्र की इंद्रपुरी को बचाने का समय आ गया है।''

''मैं कुछ समझी नहीं।''

''हे प्रिये, ये देखो, ये सभी देवता केवल एक ही विचार से यहाँ आए हैं। वृत्तासुर से कैसे बचे? इसी विचार से सभी व्यथित हैं।'' भगवान नारायण ने एक लंबी आह भरते हुए कहा।

''नाथ, वृत्तासुर का वध होना यह सब के लिए आनंदप्रद होगा। वृत्तासुर अत्याचार से समग्र विश्व त्राहि त्राहि कर रहा था। अब तो उसका वध निश्चित है, तो आप व्यथित क्यों हैं?'' माता लक्ष्मी ने पूछा।

''हे भगवते, मेरे प्रिय भक्त, महान तपस्वी, त्यागमूर्ति दधीचि का अंत भी अब निकट आया है।'' भगवान विष्णु ने अत्यंत व्यथित स्वर में कहा। उनकी मुद्रा गंभीर हुई थी। सहसा देवता ब्रह्मदेव के साथ आ पहुँचे।

''हे नारायण, हम आपको प्रणाम करते हैं।'' सभी ने वंदन किया।

''हे भगवन विष्णु नारायण, अब आप ही समस्त देवताओं की रक्षा कर सकते हैं। अब एक ही उपाय शेष हैं, आपके परमभक्त दधीचि यदि अपनी अस्थियों का दान कर दें तो उन अस्थियों से एक वज्र बनाया जाएगा और उस वज्र से वृत्तासुर को मारा जा सकता है।'' देवताओं ने प्रार्थना की।

''आप सब निश्चिंत रहें। आईए, हम सब परब्रह्म स्वरूप महर्षि दधीचि की शरण में जाते हैं।'' एक ही क्षण में भगवान विष्णु माता भगवती सहित सभी देवताओं के साथ भूलोक आ गए। दधीचि के आश्रम में देवताओं के स्वागत का बडे धूम-धाम से आयोजन हो रहा था। स्वयं दधीचि देवताओं के स्वागत के लिए आगे आएं।

''हे भगवन्, हे ब्रह्मदेव, हे देवेन्द्र, आप सभी देवताओं को मेरा त्रिवार प्रणाम! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?'' दधीचि ने अनुज्ञा माँगी।

''हे परब्रह्म रूप भगवान दधीचि ऋषे, हम सभी देवता आपकी शरण में है। आपके आश्रय में आए हैं। आप हमें हमारी रक्षा करने का अभिवचन दें। ब्रह्मदेव ने नारायण के नेतृत्व में प्रार्थना की।

''हे भगवन् मेरे पास ऐसा क्या है, जिसके लिए आप मुझसे याचना करें? मेरी भक्ति की भावना भी आप ही की है। महर्षि दधीचि ने विनम्रता से कहा।

''हे भक्तश्रेष्ठ, आपकी विनम्रता जगद्वंद्य हैं। वृत्तासुर का वध करने के लिए आपके अस्थियों का वज्र करना आवश्यक है। आप हमें आपकी अस्थियाँ

दान देकर उससे बने वज्र की सहायता से वृत्तासुर का वध होगा।'' देवताओं ने आर्जवपूरक कहा।

''हे भगवन् जिस अवसर के लिए मैंने आजतक इस शरीर को सँभाला है वह अपने आप मुझ तक चलकर आया है, इसलिए मैं अपनी सारी अस्थियाँ प्रदान करता हूँ। आप अवश्य इन अस्थियों से वज्र बनाएं।'' दधीचि ने तुरंत अपनी अस्थियों का दान कर दिया और अपना देह त्याग दिया।

''हे इंद्रदेव, अब त्वष्टा को इन अस्थियों से वज्र बनाने के लिए कह दो।'' नारायण ने इंद्रदेव से कहा। त्वष्टा ने अति शीघ्रता से वज्र बनाकर इंद्र को सौंप दिए और दधीचि के आश्रम से वे फिर से इंद्रलोक चले गए। भगवान विष्णु विष्णुलोक, ब्रह्मदेव ब्रह्मलोक जाकर ध्यानमग्न हुए। जैसे ही इंद्रदेव इंद्रलोक पहुँचे, वृत्तासुर अपनी सेना के साथ वहाँ आएं। देवलोक में आत्मविश्वास और आनंद का वातावरण देख वृत्तासुर विस्मित हुआ। गरजते हुए प्रवेश द्वार से सभी दानव इंद्रलोक में प्रवेश कर गए और अचानक एक घनघोर युद्ध छिड गया। दधीचि की अस्थियों से बने वज्र की सहायता से इंद्र ने वृत्तासुर का वध किया। यह देख दानव भागने लगे। इंद्रदेव ने अग्नि और वायु को उनका पीछा करके मार डालने का आदेश दिया। देवताओं ने भयंकर आक्रमण किया। भीषण युद्ध में असंख्य दानव मारे गए। शेष पराजित दानव असहाय होकर भागने लगे।

पहले तो उन्होंने सोचा कि, समुद्र से नीचे पाताल लोक जाकर वहीं निवास करें। तथापि उन्होंने समुद्र में ही छिपने का निर्णय किया। उन्हें लगा कि वहाँ पर कोई आएगा नहीं। पाताल में देवता और मानव आते थे। किन्तु समुद्र के रसातल तक कोई नहीं जाता था। अग्निनारायण और वायु संतुष्ट हुए। दानव कायरता से समुद्र में छिपे हुए थे। अग्नि, वायु, वरुण अर्थात मित्रावरुण को विश्वास हो गया था कि अब उनसे किसी प्रकार के संघर्ष की कोई संभावना नहीं। फिर वे इंद्रलोक आए और उन्होंने देवेन्द्र को समाचार दिया।

''देवेन्द्र अतिशय क्रोधित हुए, जब उन्हें पता चला कि, दानव अभी भी जीवित हैं। उन्होंने अग्निमित्र और वरुण को आज्ञा दी। जब तक काम पूरा न हो जाए, वापस मत आना। यदि आवश्यक हों, तो समुद्र मंथन करें किन्तु समुद्र में छिपे दानवों का नाश करें। दानव प्रवृत्ति का कहीं नामोनिशाण भी नहीं रहना चाहिए। इस कार्य में यदि समुद्र नष्ट हो जाता है तो मुझे कोई अंतर नहीं

पडता।''

''इंद्रदेव द्वारा बडे क्रोध से दिया गया यह आदेश अग्नि और वायु को भ्रमित करने के लिए था।

''हे देवेन्द्र, कृपया हमारी बात सुनें।''

''बताओ'', इंद्र सुनने की मानसिक स्थिति में नहीं थे।

''देवेन्द्र के देवत्व को जागृत करने के प्रयास करते हुए अग्निनारायण और वायु ने उनसे कहा,

''हे देवेन्द्र, आप देवाधिदेव हैं। त्रिदेव और साक्षात परब्रह्म भी आपकी सत्ता, शक्ति को स्वीकार करते है। आप संपूर्ण विश्व के पालनहार हैं। आप ही के कारण समग्र सृष्टि का निर्माण हुआ है।''

''हे अग्नि, हे वायु, यह मेरा स्तुति गान का समय नही हैं। जिन शत्रुओं ने त्रिदेवों का सम्मान करने से इन्कार कर दिया और इंद्रलोक को अपने नियंत्रण में लाने का प्रयास किया, जिनके कारण त्यागमूर्ति दधीचि को अपने प्राणों की आहुति देनी पडी, वे दानव अभी भी जीवित हैं। उन्हें नष्ट करने का दायित्व आप को सौंपा था। प्रथमतः उसे पूरा करें।'' इंद्रदेव क्रोधित स्वर में बोल रहे थे।

''हे इंद्रदेव, हमारा प्रथम कर्तव्य विश्व से असुरी प्रवृत्ति का उन्मूलन करना हैं। परंतु इन्हें नष्ट करने में कुछ बाधाएँ ऐसी आती हैं, जिसे आपको विदित करना आवश्यक हैं।'' अग्निवायु ने कहा।

''वृत्तासुर वध होने के पश्चात अब कौन सी बाधाएँ निर्माण हुई हैं?'' इंद्रदेव ने तनिक संदेह से पूछा। इंद्र का मन भय और क्रोध से भर गया। वे कुछ निराश हुए।

''इंद्रदेव, ऐसा नहीं कि कोई शक्तिशाली दानव मार्ग में आया है और हम उसका सामना करने में असमर्थ हैं, अपितु शेष दानव अब भयभीत होकर समुद्र तल मे छिपे हैं। उन्हें बाहर निकालना इतना सरल नहीं हैं!''

''क्यों? क्या समुद्र ने विरोध किया है। इंद्र ने पूछा।

''नहीं, समुद्र ने भी विरोध नहीं किया। क्यों कि वे भी हमारी तरह आपके आदेश से बाहर नहीं है!''

''तो ऐसी कौनसी समस्या थी? क्या दानवों ने आपकी शक्ति ही छीन ली?

''नहीं देवेन्द्र, हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि, आप हमारी बात ध्यान से सुन लें।''

''तो कहो।'' देवेन्द्र कुछ निराश होकर बोले।

''देवताओं का कर्तव्य सभी की रक्षा और उनका पोषण करना होता हैं। आप भी नित्य यही कहते आए हैं। हे देवेन्द्र, समुद्र में और कई निरुपद्रवी जीव रहते हैं। यदि समुद्रमंथन करेंगे तो वे भी मर जाएंगे। तब ऐसा होगा कि, आपने भी कोई राक्षसी कार्य किया है। इसलिए हे देवेन्द्र, निरपराध जीवों को बचाने के लिए समय पर हमें दुष्टों को भी छोडना पडता हैं। तो अब, जब कि आपको इन दानवों से कोई भय नहीं हैं, हमें युद्ध को रोकना चाहिए।'' अग्नि वायु ने देवेन्द्र को समझाने का प्रयास किया। इंद्रदेव उग्रवादी व्यवहार कर रहे हैं, ऐसा उन्हें लग रहा था।

''इंद्रदेव बहुत क्रोधित हो गए। उन्होंने अग्नि अर्थात मित्र और वरुण रूप वायु को श्राप दिया।''

''तुम दोनों अपना कर्तव्य भूल गए और मुझे ही धर्म का ज्ञान पढाने लगे? अब इसका निर्णय पृथ्वी वर ही होगा। जाओ, तुम दोनों अब पृथ्वी पर जाकर जन्म लो।''

''अग्नि की ओर देखकर इंद्रदेव ने कहा,

''तुम समुद्र का पानी सुखाते हो, अब समुद्र ही प्राशन करो। इंद्र ने श्राप दिया। अग्नि और वायु दोनों आश्चर्यचकित रह गए। वे विचार करने लगे कि, इंद्र का श्राप तो अब सत्य सिद्ध होकर ही रहेगा। उस चिंता से दोनों के रूप परिवर्तित होकर अग्नि मित्र रूप में तो वायु वरुण रूप में पृथ्वी पर आ गए। प्रकाश और आर्द्रता दोनों के अस्तित्व ने सृष्टि को शांत कर दिया। दोनों ने शापमुक्त होने हेतु यज्ञ संस्था का आश्रय लिया। अग्नि ने आहुति स्वीकारने के लिए मुख का तथा वायु ने अग्नि की सहायता करने का कार्य आरंभ किया। इसलिए ऋषियों की यह प्रथा रही थी कि, यज्ञ के प्रत्येक अवसर पर दोनों को ही आहुति देकर प्रसन्न करें। देवताओं को भी चिंता होने लगी कि, इंद्रदेव का श्राप भी सत्य सिद्ध हो और इन दोनों के शुद्ध हेतु का भी पालन हों। दोनों वास्तविक सम्मान के पात्र थे। इसलिए देवताओं ने उन दोनों को दैवीय जन्म के साथ ऋषियों के रूप में पृथ्वी पर भेजने का निश्चय किया। इसलिए उन्होंने इंद्रदेव से प्रार्थना की। अंततः इंद्रदेव

सभी देवताओं से सहमत हुए और उन्होंने उर्वशी को आमंत्रित किया।

‘‘हे देवाधिदेव, स्वामी, क्या आपने मुझे स्मरण किया? मेरे लिए क्या आदेश है?’’

‘‘हे विश्वसुंदरी, अक्षय्य यौवना, काम अधिष्ठात्री उर्वशी, क्या तुम्हें पुत्र प्राप्ति की अतीव इच्छा है?

‘‘हाँ देवेन्द्र मुझे मृत्युलोक में एक स्त्री की भांति संतान को जन्म देनेकी तीव्र इच्छा है। यह केवल आपके आशीर्वाद से ही संभव है। इसके लिए मुझे क्या करना होगा?’’

‘‘साक्षात कामिनी, अनुपम सौंदर्यवती उर्वशी मन ही मन संतति प्राप्ति के स्वप्न देखने लगी। उसकी काया पुलकित हुई। उसके अस्तित्व का मृद्‌गंध महकने लगा। इंद्रदेव ने भाँप लिया कि, उर्वशी की कामलालसा अनिवार हुई हैं।

‘‘हे कामिनी, मैं तुम्हारी इच्छा समझ सकता हूँ। तथापि तुम्हे अप्सराओं की योनि से मानवी योनि में जाना संभव नहीं होगा। इसलिए प्रत्यक्ष अग्नि और वायुतत्व से तुम्हें पुत्रप्राप्ति होगी। तुम्हारे दोनों पुत्र अमर होकर ऋषियों में स्थान प्राप्त करेंगे। इसके लिए तुम मित्र और वरुण रूप में यज्ञ स्थल पर उपस्थित अग्नि और वायु को मोहित कर दें। तुम्हारे प्रति उत्पन्न उनके प्रेम से तुम्हें पुत्र लाभ होगा। तुम्हारे दोनों पुत्र मृत्युलोक में संचार कर पाएंगे। मर्त्यलोक के उनके कार्य से उन्हें देवत्व पद प्राप्त होगा।’’ देवेन्द्र ने उर्वशी को वरदान देकर उसे यह महत्त्वपूर्ण कार्य सौंप दिया।

‘‘वासितवर सोमयाग सत्र के अवसर पर उर्वशी ने मित्रावरुण को आकर्षित कर उन्हें कामोद्दीप्त कर दिया। उसके आकर्षण से उनका वीर्यपतन हुआ। उसे पुष्कर कमल की भांति दोनों ने सुशोभित कलश में विसर्जित कर दिया। उस कुंभ के केन्द्र से मान मान्य अथवा मान्दार्य नाम से स्वीकृत और अगस्त्य नाम से प्रख्यात ऋषि का जन्म हुआ तथा अवशिष्ठ कुंभ से वसिष्ठों का जन्म हुआ। इंद्रदेव द्वारा अग्निवायु को दिए गए श्राप को सत्य सिद्ध करने का दायित्व स्वाभाविक रूप से प्रथमतः प्रकट हुए अगस्त्य पर ही था।

‘‘कुछ समय पश्चात समुद्र में छिपे दानव अवसर देखकर बाहर आने लगे। उन्होंने यज्ञ संस्थाओं को प्रताडित करना आरंभ कर दिया। साथ ही कुछ दानवों ने घोर तपस्या आरंभ की। उनका यह उत्पात उग्र रूप धारण करने लगा। तो जब

सभी देवता चिंतित थे कि, अब क्या किया जाए कि सहसा ब्रह्मर्षि नारद जी प्रकट हुए। नारद जी को देखकर सभी देवता चकित रह गए। नारद ने इंद्रदेव को प्रणाम किया। उनका अभिवादन पूर्वक स्वागत करते हुए इंद्रदेव ने पूछा।

''हे ब्रह्मर्षि नारदमुने, आज आपका इंद्रलोक कैसे आना हुआ?''

''हे देवेन्द्र, जब देवता चिंतित हैं तो नारद भला कैसे शांत बैठ सकता है? हे देवेन्द्र प्रथमतः हमें यह बताइए कि आप इतने चिंतित क्यों हैं।''

''हे नारदमुने, समुद्र में छिपे हुए दानव, पृथ्वी पर यज्ञ संस्थाओं को बडा कष्ट दे रहें हैं। यज्ञ प्रणाली में बाधाएं खडी कर देते हैं। उन्हें समूल नष्ट करने के लिए अग्नि और वायु को आज्ञा दी गई थी। किन्तु उन्होंने अवज्ञा की और शापवचनों को स्वीकार किया।

''परंतु हे देवेन्द्र, इंद्र दरबार की अप्सरा उर्वशी ने तो अपनी भूमिका ठीक से निभाई है ना?''

''हाँ नारदमुने, मेरे मन में संदेह है कि, मान और वसिष्ठ दोनों मनुष्य के रूप में कार्य कर सकेंगे या नहीं; क्यों कि मनुष्य की शक्ति सीमित होती है।''

''हे इंद्रदेव, कर्तृत्व से मनुष्य भी परब्रह्म बन सकता है, यह आपने ही कहा था ना?''

''हाँ ब्रह्मर्षे, किन्तु हमारे ही श्राप से यह हुआ है, तो उसका प्रायश्चित्त कैसे करें?''

''हे इंद्रदेव, अगस्त्य ऋषि निश्चित रूप से यह कार्य कर सकते हैं और आपका प्रायश्चित्त भी अपने आप होगा।''

''हे नारदमुने, क्या आप यह विश्वास के साथ कह सकते हैं?''

''हे देवेन्द्र आपकी व्यथा को जानकर प्रत्यक्ष भगवान विष्णु ने मुझे आपको यह विदित करने की आज्ञा दी है। हे देवेन्द्र अगस्त्य मित्रावरुण है और वास्तव में शिव के अंश हैं। इसलिए उनकी सारी शक्तियाँ एक साथ आ गई हैं और समुद्र प्राशन करके उसे पुनश्च पूर्ववत विसर्जित करने का सामर्थ्य अन्य किसी में नहीं हैं। इसके अतिरिक्त उनका स्वास्थ्य उच्च कोटि का होने से उनकी पाचन शक्ति त्रिलोक में श्रेष्ठ हैं। इसके कारण समुद्री जीव आदि सभी सजीव प्राणि उनके उदर में सुरक्षित रहकर वापस बाहर आ सकते है।''

''हे नारदमुने, हम केवल श्री विष्णु के आशीर्वाद से ही यह कार्य कर सकते

है, अन्यथा यह असंभव था। हम भगवान श्री विष्णु की शरण में जाते हैं।''

''हे देवेन्द्र, किन्तु इस महान देवर्षि नारद से आपको स्वयं याचना करनी होगी।''

''अवश्य! हे नारद, अगस्त्य के रूप मे हम शापित अग्नि-वायु की क्षमायाचना कर सके। इससे हमारा प्रायश्चित्त भी होगा।''

''देवेन्द्र समस्त देवताओं के साथ काशी क्षेत्र आएं और उन्होंने अगस्त्यों से अनुरोध किया।

''हे महर्षि भगवान अगस्त्ये, हम देवतागण आपकी शरण में हैं। आपके महान सामर्थ्य का विश्वास प्रत्यक्ष भगवान विष्णु ने दिया हैं। हमें अभय दें।''

''हे देवेन्द्र, मेरा मानना है कि, आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा प्रथम कर्तव्य है। यज्ञसंस्था को कष्ट देनेवाले और स्वयं यज्ञ के ही आश्रय से देवेन्द्र पद की अपेक्षा रखनेवाले, मदांधता से ऋषिमुनियों और लोगों को भक्ष्य बनाने वाले दानवों को खोजने के लिए मैं समुद्र प्राशन करने के लिए तत्पर हूँ।''

''हे महर्षि भगवान अगस्त्ये, हम चाहते है कि, आपके समुद्र प्राशन से निरपराध अन्य जीवों की हानि ना हो पाएं।''

''हे देवेन्द्र, मित्रावरुण और शिवजी का सामर्थ्य आप ही की कृपा से मुझ में केन्द्रित हैं। अतः समुद्र प्राशन के पश्चात मैं योग द्वारा समुद्र पथ और उसके समस्त सजीवों को शिव स्वरूप बनाऊंगा। शिव जी की कृपा से वे सभी जीव पवित्र गंगा माता के उदर में पावन होकर गंगौघा के रूप से समुद्र में आएंगे। इसके लिए आप सभी को भगवान शिव को प्रार्थना पूर्वक आमंत्रित करना होगा?''

''इंद्रादिदेवताओं के साथ अगस्त्यों ने शिव आराधना आरंभ की। शिव आवाहन करते ही भगवान शिव स्वयं काशी क्षेत्र में प्रकट हुए।

''भगवान शिवशंकर की जय हो!'' देवताओं और ऋषियों ने घोष किया।

''हे देवेन्द्र, अगस्त्य के अनुसार शिवरूप बने जीव गंगा द्वारा पुनश्च लौट आ सकेंगे यह संभव नहीं। इन नश्वर जीवों को जैसे हैं, वैसे ही वापस लाने का एक ही उपाय है। उन्हें अगस्त्य के उदर से बाहर आकर पुनश्च समुद्र में प्रवेश करना होगा। किन्तु समुद्र प्राशन के पश्चात अगस्त्य को अतीव परिश्रम सहन करने होंगे। इसके लिए वे गंगा माता के उदर में आश्रय ले सकते है। उनके शरीर से निकली स्वेदगंगा गंगा जल में अति पवित्र होकर समुद्र में मिल जाएगी और

पुनश्च सब कुछ पूर्ववत होगा!''

''यह महान दिव्य विश्वोत्पत्ति के पश्चात पहली बार होगा। हे देवेन्द्र, दानवों का नाश करने के लिए महर्षि दधीचि ने अपना शरीर त्याग दिया, उसी प्रकार का त्याग अगस्त्य कर रहे हैं। उनके कार्य से वृत्तासुर से लेकर सभी दानव देवताओं के चंगुल में फंस जाएंगे। यद्यपि समुद्र का पानी स्वेदगंगा के कारण नमकीन हुआ हो, फिर भी लोककल्याणार्थ देवकार्य करने से समुद्र स्नान ही सर्व श्रेष्ठ स्नान माना जाएगा। इस स्नान से कई युगों तक अगस्त्य मुनि का स्मरण होता रहेगा। तो चलिए अब हम दानवों से युद्ध के लिए तत्पर होते है और अगस्त्यों से समुद्र प्राशन योग करने का अनुरोध करते हैं।''

*

धनुर्योगी अगस्त्य ने जलविहारी भगवान विष्णु को अभिवादन करने हेतु धनुर्बाण अभिमंत्रपूर्वक, विष्णुसूक्तपूर्वक छोडा। केवल कैवल्यस्वरूप भगवान विष्णु अलौकिक स्मितहास्यपूर्वक इंद्र और दानवों की लीला अनुभव कर रहे थे। शेषनाग क्षीरसागर के पार भू पृष्ठ का संतुलन कर रहे थे। उन्होंने अपने स्वामी की निद्रा बिना भंग किए भू विश्व की क्रीडा को बीच में न रोकने का निश्चय किया था। प्रत्यक्ष ब्रह्ममानसरूप, त्रिदेवों के संयुक्त अवतार कैवल्य क्रीडान्वेशी भगवान अग्निरूप मित्रावरुणी, मान्दार्य अगस्त्य का बाण क्षीरसागर में प्रवेश करके स्वप्नमग्न विष्णु के द्वार तक आते ही शेष नाग ने उसे रोक दिया। त्रिकालज्ञ अगस्त्यों को तुरंत इस बात का पता चल गया। प्रारंभ में क्रोधायमान प्रतीत होने वाले अगस्त्य सहसा हँस दिए। देवता और ऋषि गण विस्मित हुए।

''हे अगस्त्ये, नारायण आप क्यों हँस दिए? भगवान विष्णु के चरणस्पर्श से बाण कृतार्थ हुआ। भगवान विष्णु जागृत हुए इसीलिए ना?''

''नहीं ब्रह्मर्षे नारद, मैं क्यों हँसा, इसका रहस्य आपको ज्ञात है।''

''नारायण नारायण, परंतु हे भगवन्, सभी इस रहस्य का आनंद ले सके, इसीलिए मैंने यह प्रश्न किया था।''

''हे समस्त देवता और ऋषियों, भगवान विष्णु स्वप्नमग्न हैं। देवेन्द्र और दानव के बीच की संघर्षलीला का वे अनुभव कर रहे हैं। सकौतुक इन क्रीडाओं

का अनुभव करते हुए उनका स्वप्नभंग ना हो इस उदात्त हेतु से प्रेरित होकर विष्णु भक्त, महान सेवक, विष्णु स्वरूप भूधर शेषनाग ने मेरे बाण को अवरुद्ध कर दिया। इसलिए अगस्त्य बाण श्रीमन्नारायण को वंदन नहीं कर सका।''

''हे अगस्त्ये, अब इस का क्या उपाय है?'' देवेन्द्र ने घबराकर प्रश्न किया।

''हे देवेन्द्र, मैं भगवान विष्णु की आज्ञा के बिना समुद्र को अलग नहीं कर पाऊँगा। समुद्र भी ऐसा नहीं कर सकता। इसलिए हमें शेष नाग की प्रार्थना करना आवश्यक हैं। उन्हें ही इस महान कार्य के महत्त्व से अवगत करना होगा। अतः हम प्रत्यक्ष भूधर शेषनाग की प्रार्थना करते हैं। मैं मेरी धनुर्विद्या की सहायता से शेष नाग को वश करता हूँ।'' महर्षि अगस्त्य के वचन सुनकर सभी ने शेष स्तुति का प्रारंभ किया। अगस्त्य मुनि ने हर एक बाण शेषनाग की महानता के स्तोत्रों से अभिमंत्रित कर और श्रीमन्विष्णु को अपना संदेश पहुँचाने तथा उन्हें वंदन करने का अवसर प्रदान करने के लिए प्रार्थनापूर्वक शेषनाग को विदित करना आरंभ किया।

''हे कैवल्य के शेषत्व, तुम ब्रह्मांड के प्रथम और अंतिम सत्यरूप चल अवतार हो। तुम भूलोक को संतुलित रखकर उस पर क्रीडा रचाने के लिए प्रेरक हो। तुम लोकबंध विष्णुतत्त्व के धारक हो। ब्रह्मस्वरूप से तुम सृष्टिसूत्र हो। विष्णुस्वरूप से तुम लोकपाल, लोकधारक, कुलस्वामी, जीवसृष्टि के प्राणतत्त्व हो। शिवतत्त्व से तुम कालभैरव के प्रत्यक्ष कालरूप हो। तुम कैवल्य के धारक हो।''

अगस्त्य के स्तुतिसुमन बाण विष्णुवंदन सहित शेष मुख तक जाने लगे। अगस्त्य के स्तुति सुमनों से प्रसन्न शेषनाग ने भगवान विष्णु की क्षमायाचना करके अगस्त्य का संदेश भगवान विष्णु के सम्मुख विदित किया। भगवान विष्णु प्रसन्न होकर अगस्त्य के सम्मुख प्रकट हुए।

''हे मतस्वरूप अगस्त्ये, तुमने देवेन्द्र को समुद्र प्राशन करके दानवों को नष्ट करने का दिया गया अभिवचन सफल होगा। परंतु यह सब निरपराध जीवों की सुरक्षा के साथ होना चाहिए।'' भगवान विष्णु ने कहा।

''हे भगवन्, जलजीव और भूलोकादि लोक, इन सबके रक्षक आप ही हैं। भगवान शिव जी से प्राप्त की योग विद्या का उपयोग करके मैं समग्र सृष्टिसहित

क्षीरसागर प्राशनोत्तर पुनर्प्रकटिकरण योग करने जा रहा हूँ। आप विराट कैवल्य हैं। कृपया मुझे अभिवचन दें कि, आपका आशीर्वाद मुझे महत्योग सफल करने में सहायक होगा। केवल आपके आशीर्वाद से ही मैं देवेन्द्र को दिए गए अभिवचन से मुक्त हो सकूँगा। अग्नि-वरुणों से डर कर दानव समुद्र में छिपे बैठे हैं। आपकी अनुज्ञा बिना हम उन तक कैसे पहुँच पाएंगे?''

अगस्त्य के विनम्र वचनों से भगवान विष्णु अधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने समुद्र को अगस्त्य की सहायता करने की आज्ञा देकर उसे अभयदान दिया और अगस्त्य से कहा,

''हे अगस्त्ये, मैं आपको आशीर्वाद देता हूँ कि आप देवलोक के, वास्तव में सभी लोकों के कल्याण हेतु दुष्टों का नाश करने का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। आपके इस कार्य में आपको सफलता प्राप्त हो।''

भगवान विष्णु और अगस्त्यों के बीच का संभाषण सुनकर समस्त देवता और ऋषिगण अति प्रसन्न हुए। अगस्त्य मुनि की महानता और उनके अधिकार का ज्ञान हुआ। सभी ने विष्णूसूक्तपूर्वक विष्णू का पूजन किया। अगस्त्य मुनि को संपूर्णतः सहायता करने का आश्वासन देकर देवता और ऋषिकार्य सफलता के लिए यज्ञ सत्र व्यवस्था में लग गए। अगस्त्यों ने भी योगाभ्यास किया।

समुद्र प्राशन के लिए सिद्ध हो जाने पर भी महर्षि अगस्त्य ने दानव कुलों को दानवी प्रवृत्तियों को त्याग कर शरण आने के लिए आवाहन किया। किन्तु उनके आवाहन को किसी ने प्रतिसाद नहीं दिया। महर्षि अगस्त्य ने तब अपनी धनुर्विद्या के माध्यम से दानवों को संदेश भेजा। परंतु उनका यह प्रयास भी असफल रहा। अंततः अगस्त्य मुनि का रुद्रावतार प्रकट हुआ। उन्होंने तांडव आरंभ कर दिया। विश्व को रुद्र के तांडव का आभास हुआ। देवता, मनुष्य, ऋषि, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, पिशाच, राक्षस आदि अगस्त्य मुनि के तांडव को विस्मय से देख रहे थे। तांडव के प्रकट होने से शिवलोक, ब्रह्मलोक भी दोलायमान हुए। साक्षात शिवपार्वती सकौतुक अपने पुत्र का यह अग्नितांडव देख रहे थे। अगस्त्यों का पूर्ण रुद्रावतारी तांडव समाप्त हुआ, फिर भी अहंकारी दानव शरण नहीं आए। अगस्त्य शांत हुए। कोई यह नहीं समझ पाया कि अगस्त्य शांत क्यों हुए। उन्होंने विनम्रतापूर्वक भगवान विष्णु, शिव, ब्रह्मा और परब्रह्म का अभिवादन किया और योगसाधना आरंभ की।

प्रथमतः उन्होंने समुद्र और समुद्र के सभी चराचर का अभिवादन कर उनसे क्षमा माँगी और सूर्योन्मुख होकर भगवान विष्णु से अपना विराट रूप धारण करने की अनुमति माँगी। वस्तुतः कद में तनिक छोटे, चतुर्भुज और विस्तृत उदर धारक अगस्त्य मुनि ने योग बल से विराट रूप धारण करना आरंभ किया। अगस्त्य का शरीर महा, अति महा, विराट होता गया। भूलोक के सभी भूखंड उनके सामने अति क्षुद्र प्रतीत होने लगे। उनका मुख कैलाश, विष्णुलोक, स्वर्गलोक आदि में फैलने लगा। सूर्यदेव सकौतुक इस महाकाय स्वरूप को देख रहे थे। ब्रह्माविष्णुमहेश सूक्ष्म रूप से अगस्त्य की प्रशंसा कर रहे थे। अंतरिक्ष के असंख्य तारे भूलोक का यह चमत्कार देखने के लिए कुछ सीमा तक निकट आए। साक्षात देवेन्द्र, स्वर्गलोक के समस्त देवता और सप्तर्षियों में स्थान प्राप्त ऋषि, खेल, इक्ष्वाकु आदि विभिन्न कुलों के राजा इस अतर्क्य घटना को देखने के लिए उत्सुक थे। अगस्त्य की छाया ने आकाशाच्छादित मेघों के भांति संपूर्ण भूलोक को ढक लिया था। समुद्र अभयदान प्राप्त होने के पश्चात भी भयभीत होकर आश्चर्य से अत्यल्प भू क्षेत्र पर महाकाय रूप धारण कर खडे अगस्त्यों की ओर देख रहे थे। समुद्र में छिपे दानवों को क्या हो रहा है, कुछ पता नहीं था। उन्होंने अपनी मायावी शक्ति से देखने का प्रयास किया। उन्हें विश्वास होने लगा था कि, अब कुछ भी करें, देवता उन्हें पकड ही लेंगे। तब उन्होंने अगस्त्य मुनि की शरण में जाने का विचार किया, फिर भी वृत्तासुर का अहंकार उन्हें चैन से बैठने नहीं दे रहा था। इंद्रादि देवता अगस्त्य मुनि के आदेश के अनुसार अपने अस्त्र-शस्त्रों सहित तत्पर थे। अगस्त्य मुनि ने गंगामाता को वंदन किया। गंगामाता अपने पुत्र के इस विराट रूप का दर्शन पाकर प्रसन्न थी।

समुद्र प्राशन पश्चात अगस्त्य मुनि ने गंगा किनारे गंगाद्वार, वाराणसी, प्रयाग, गया, वंग आदि स्थान पर अपना नित्य निवास स्थापित किया। अपनी तपःसाधना इन स्थानों पर आरंभ की, इन सभी स्थानों पर अगस्त्य गुरुकुल फूलने लगे। धनुर्विद्या, योगविद्या, स्वास्थ्यविद्या, अथर्वविद्या, कृषिविद्या, युद्धविद्या, अद्वैतविद्या, यज्ञसत्र, तंत्रविद्या, तत्त्वज्ञान, न्याय आदि विद्याओं का गुरुकुल में नित्य अध्यापन, अध्ययन, अनुसंधान प्रारंभ हुआ। अगस्त्य मुनि की परिक्रमाएँ भी चल रही थी। रुद्र, विष्णू, ब्रह्मस्वरूप अगस्त्यों का परिचय उनके महाकाय दर्शन से समग्र विश्व को हुआ था। स्थाणुपूजा, लिंगपूजा, कालभैरवपूजा, शक्तिपूजा

इनका भी फैलाव विश्वभर में होने लगा। अगस्त्यों ने भूलोक तथा सागर में सर्वदूर भ्रमण कर अगस्त्यविद्या स्थापित की। इंद्र, वरुण, मरुत, सूर्य, पर्जन्यशक्तियों को जनकल्याण कार्य हेतु अनुकूल किया। उनका मानना था कि सरोवर, नदियाँ इनकी शक्तियों को लोककल्याण हेतु उपयोग में लाना चाहिए। इसके लिए दानव, राक्षस, पिशाच्च तथा पशु इनकी दुष्टता को वरुणकृपा एवं शिवस्पर्श से मिटा देना चाहिए। आवश्यकता पडने पर रुद्र, अग्नि, सूर्य इनके उग्र रूप धारण कर युद्ध भी किया जाए। इसी कारण देवेन्द्र, गणेश, कार्तिकेय, पराशक्ति और त्रिदेवों को अतिप्राचीन मित्रावरुणी मांदार्यप्रिय हुए। भूलोक में उत्तरदक्षिण, पूर्वपश्चिम का संतुलन कायम रखते हुए यज्ञसत्रों द्वारा पर्जन्य प्रबंधन के साथ कृषिविद्या प्राप्त करनी होगी। कृषिविद्या, स्वास्थ्यविद्या तथा युद्धविद्या से समग्र विश्व शिवस्वरूप हो सकता हो, ऐसी अगस्त्य मुनि की धारणा थी। लोककल्याण के इस कार्य में कार्तिकेय, श्रीगणेश, ब्रह्मवादिनी सरस्वती, नारद, माता गंगा, प्रकृति, पुरुष तथा इंद्रादि देव उन्हें नित्य सहयोग देते थे। भूलोक का व्यवस्थापन तथा लोककल्याण की जैसे

अगस्त्य गोत्र अनेक कुलों ने स्वीकारा था। और अपने पुरखों की मुक्ति के लिए अगस्त्य ने भगीरथ की सहायता की। वैसे स्वगोत्र के पुरखों की मुक्ति के लिए उन्होंने लोपामुद्रा से विवाह कर इघ्मवाह जैसा प्रति अगस्त्य भी निर्माण किया था। इसी के साथ विभिन्न प्रदेश-देश में अपने गुरुकुल में अगस्त्य के अनगिनत शिष्य, मानसपुत्र अपने आप को अगस्त्य मुनि मानकर किसी न किसी विद्या का तपस्या के साथ अध्ययन करते थे। अगस्त्य मुनि के इन भूलोक व्यापी प्रभाव से ब्रह्मा विष्णू महेश द्वारा उन्हे सप्तर्षियों से भी अधिक सम्मान मिलता था। त्रिदेवों का संयुक्त अवतार अर्थात परब्रह्म का गुण रूप मानो अगस्त्यों के रूप में विहार करता था। अमानवी, दैवी एवं मानवी अस्तित्व अगस्त्यों को प्राप्त था। अगस्त्यों में अंतरिक्ष यात्रा, समुद्र यात्रा तथा मनोवेग से संचार आदि अद्‌भूत शक्तियाँ केंद्रित थी।

जैसे ही दानवों के साथ युद्ध करने के लिए देवता सिद्ध हुए, अगस्त्यों ने गंगा जहाँ समुद्रसे मिलती वहाँ खडे होकर योग सामर्थ्य से अपने शरीर को विशाल रूप में प्रकट करना आरंभ किया। देखते ही देखते उनका शरीर आकाश को छेद गया, उनका उदर महाकाय हुआ। उन्होंने अपना हाथ आचमन के लिए

आगे किया। अगस्त्य मुनि के एक ही हाथ की अंजुली में समूचा समुंदर समाया था और क्या आश्चर्य ''ऐष लोकहितार्थ वैपिबामि वरुणालयम।'' ऐसा संकल्प कर एक ही आचमन में समूचा समुद्र प्राशन किया।

दानवों में भगदड मच गई। अकस्मात आए संकट से वे मूलतः ही सहम गए थे। घबराए हुए थे, देवताओं ने इसीका लाभ उठाया। कुछ ही क्षण में दानवों का नाश हुआ।

महर्षि अगस्त्य ने अपने अपूर्व पाचन शक्ति का प्रदर्शन किया। विश्व को प्रकाशमान करनेवाले गभस्ती का तेज उनमें केंद्रित हुआ। विश्वसंचार करनेवाले वायु से उनका उदर हलका होने लगा; गंगा की ओर हाथ जोडकर अगस्त्यों ने गंगामैया को अभिवादन किया और समाधि योग से उनके विराट रूप द्वारा स्वेद धारा गंगौघात में विलीन होने लगी। अगस्त्यों ने एक गहरी साँस ली और अपने मुख द्वारा समुंदर को फिर से बाहर छोडना आरंभ किया। ब्रह्मा, विष्णू, महेश्वर अगस्त्य की इस अद्‌भुत प्रशंसा को देख रहे थे। कुछ ही क्षण में अगस्त्यों के उदर में बसी सभी सजीव सृष्टी पुनःश्च एकबार समुंदर के पानी में उडकर समा गई। कुछ ही क्षण में समुंदर फिर से सूरज की रोशनी में लहरों के साथ झूलने लगा। यह अनुभव पृथ्वी पर मानवों के लिए तर्कहीन था। कुछ ही क्षणों में समुंदर गायब हो जाता है और कुछ ही पलों में फिरसे पूर्ववत होता है। कुछ समझ नहीं आता। इस अद्‌भुत चमत्कार के साथ, अगस्त्यों ने लोगों के कल्याण के लिए एक बार फिर संकटों का पहाड तोडकर लोगों को आश्वस्त किया।

अगस्त्य समाधि अवस्था से बाहर आएं और गंगा मैया को 'माते' कहकर लिपट गए। काशी विश्वेश्वर के दर्शन के दौरान, विश्वेश्वर ने उनका आलिंगन किया।

''हे इंद्र, तुम्हारे अहंकार को नष्ट करनेवाले ऋषि अगस्त्य आज तुम्हारा इंद्रपद अक्षुण्ण रखने के लिए त्यागपूर्वक अपनी पूरी शक्ति के साथ सिद्ध हुए हैं।''

''हे अगस्त्य ऋषे, हम आपको त्रिवार वंदन करते हैं'', इंद्र ने कहा। आपकी कृपा से ही हम राक्षसों का विनाश करने में सक्षम हुए। हे अगस्त्यें आप हमें मार्गदर्शन करें।

''हे देवेन्द्र, असुरों का विनाश करने के लिए हमने भी असुरी शक्तियों का

ही उपयोग किया। यह राक्षसी प्रवृत्ति नष्ट होनी चाहिए। वास्तव में कोई भगवान नहीं होता। केवल गुणात्मकता से यह प्रकट होता है। इसलिए ध्यान रहें कि, पुनः कभी कायरता से विकृतियों को आश्रय न दे।'' समुद्र प्राशन से देवत्व, महानता तथा स्वामित्व प्राप्त अगस्त्यों ने सचेत किया।

प्रलय और पुनर्निमाण की अगस्त्य मुनि की शक्तियों का वर्णन कर अगस्त्य ने उनकी महानता का प्रमाण दिया।

''हे अगस्त्य महर्षे, मान अगस्त्य मुनि की समुद्रप्राशन कथा सुनकर असुरी शक्तियों का विनाश करना कितना आवश्यक तथा कितना कठीण है, यह ज्ञात हुआ। साथ ही इसके लिए पूरी ताकत एकत्रित कर कार्य करना होगा, यह भी ध्यान में आया। हम धन्य हुए। अब हम प्रभास और उज्जैन आश्रम में प्रवेश करने जा रहे है। हम चाहते है कि, अगस्त्य मुनि की कथाएँ भी हमें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो।''

''तथास्तु'' कुलपति अगस्त्य ने आशीर्वाद दिया और प्रभु रामचंद्रजी ने वहाँसे प्रस्थान किया।

*

इक्ष्वाकु कुलपति सगर के साठ सहस्त्र पुत्र कपिलमुनि से शापित थे। कपिलमुनि साक्षात शिवपुत्र गणेशस्वरूप ब्रह्मर्षि थे। उनके यज्ञीय सत्रों के लिए ईक्ष्वाकु कुलपति सगर ने उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व लेने से इन्कार किया था। कपिलमुनि की इक्ष्वाकु कुलपति पर विशेष कृपादृष्टि थी। क्योंकि सगर वितूट प्रजापति होने के कारण जनकल्याण हेतु किए जानेवाले यज्ञसत्रों के अवसर पर सगर की सहायता अपेक्षित थी। किन्तु भूमि अधिग्रहण के लिए उन्हें अश्वमेध करना था, इसलिए कुलपति सगर ने कपिलमुनि को यज्ञ का आयोजन कुछ समय पश्चात करने का सुझाव दिया, अन्यथा यज्ञ के लिए रक्षा प्रबंध करना उनके पुत्रों के लिए असंभव होगा। सगर की बात सुनकर कपिलमुनि ने सगर को शाप दिया।

''हे सगर, जिन पुत्रों पर विश्वास कर तू यज्ञरक्षा को गौण मानकर उसे अस्वीकार करने का दुःस्साहस कर रहे हो वे तेरे पुत्र जलकर भस्म हो जाएँगे

और उनकी रक्षा भूमि पर गिरेगी।''

कपिलमुनि की यह शापवाणी सुनकर सगरपुत्र अंशुमन के पुत्र राजा दिलीप इन पिता पुत्रों ने कपिलमुनि के पाँव छूकर क्षमायाचना की। ''हे ऋषिश्रेष्ठ, आप स्वयं शिवपुत्र विघ्नहर्ता गणेश हैं। आपके अभिशाप से हमारे कुल पर जो आपत्ति आई है उसे आप ही दूर करें । इक्ष्वाकु कुल आपके गुरुप्रसाद से ही मार्ग का अनुसरण कर रहा है। हम सभी आपकी शरण में हैं।'' सगरकी क्षमायाचना से कपिलमुनि का क्रोध शांत हुआ।

''मेरे द्वारा दिया गया श्राप अब वास्तव में साकार होगा ही। किन्तु गंगाधरकांता पुण्यमयी गंगा पुत्रों की रक्षा से बहेगी तब उन्हें स्वर्गप्राप्ति होगी और अहंकारी योनि से उनका उद्धार होगा'' कपिलमुनि ने कहा।

सगरपुत्र अंशुमन आनंदित हुआ। एक तो आकाशगंगा अवतरित होगी और शिवकृपा से सगरपुत्रों का उद्धार होगा। दूसरी ओर गंगा की अविरत जलधारा से भूलोक के पुत्रों को स्वर्ग के द्वार खोल दिए जाएंगे।

सगरों ने कपिलमुनि को प्रणाम किया और गगनस्थ गंगामैय्या से प्रार्थना करने का निश्चय कर तपाचरण प्रारंभ किया। अंशुमन ने तुरंत हिमालय जाकर तपस्या आरंभ की। तथापि कपिलमुनि के श्राप के कारण, अंशुमन के साथ सभी साठ सहस्त्र पुत्र जलकर राख हो गए। इसके बाद राजा दिलीप ने कई वर्ष तपस्या करने के पश्चात भी गगनस्थ गंगा भूलोक पर अवतरित नहीं हुई। राजा दिलीप पुण्यश्लोक नाम से जाना जाता था। राजा दिलीप के पुत्र भगीरथ ने अपने शासनकाल के साथ-साथ अपने वंशजों को मुक्ति दिलाने का प्रण किया। उसने कुलोपाध्यायों को बुलाकर उनसे परामर्श किया। उनके कथनानुसार वह हिमालय में कपिलमुनि के आश्रम गया, उसने मुनिवर को प्रणाम कर पूछा,

''हे श्रेष्ठमुनिवर, आपके द्वारा दिए गए उःशाप से केवल मेरे पितामहों को मुक्ति मिलनेवाली है। तथापि पितामह अंशुमन और पिताश्री दिलीप इनकी तपस्या फलदायी नहीं हुई। अतः मैं किस प्रकार तपस्या करूँ, इस विषय में मेरा मार्गदर्शन करें।''

इस पर कपिलमुनि ने कहा, ''उःशाप की वाणी सिद्ध होने मे अवधि तथा संयोग की आवश्यकता होती है। तथापि तुम मान, मान्दार्य अगस्त्यों का परामर्श लो। उःशाप सिद्ध करने का एवं अन्य ऋषिगणों द्वारा दिए गए शाप से मुक्ति

पाने का सामर्थ्य प्रत्यवीर्यरूप, अग्निस्वरूप, मित्रावरुण, मान्दार्य अगस्त्य में है। उनके मार्गदर्शन पर तुम तपस्या आरंभ करो'' यह सुनकर राजा भगीरथ अगस्त्य मुनि की ओर चल पडा।

''हे महर्षि ब्रह्मर्षे, मैं आपकी शरण में हूँ, ऋषिश्रेष्ठ कपिलमुनि ने आप से परामर्श करने के लिए मुझे आपके पास भेजा है। हे ब्रह्मर्षे, आप प्रत्यक्ष त्रिदेव हैं। आपको शिव जी की छत्रछाया में रहना पसंद हैं। आपने प्रत्यक्ष शिव जी से शिक्षा पाई है। इंद्रमरुतों का मिलाप केवल आपके कारण ही संभव हो पाया। नहुशों का आपने गर्वहरण किया है। आपसे प्रार्थना है कि, इक्ष्वाकुपति सगरपुत्रों को मुक्ति दिलवाए।'' भगीरथ ने कपिलमुनि की पूरी कथा अगस्त्य को सुनाई।

''हे भगीरथ, तुम महातेजस्वी, प्रतिज्ञित, तथा सत्वशील हो तुम्हारी तपस्या सफल हो तथा तुम्हारी मनोकामना पूरी हो, यही आशीश मैं तुम्हें देता हूँ। तुम इसलिए महारकंद कार्तिकेयजी से मिलो, मैं मित्रावरुणी मानपुत्र हूँ, तथा शिवतत्व से प्रकट हुआ हूँ। गगनस्थ गंगा ही गगनव्यापी शिव की पत्नी है। इसीकारण मैं कपिलमुनि और कार्तिकेय हम सभी गंगामाता के ही पुत्र हैं। अपने लोककल्याणकारी कार्यों के लिए चूडामणि ने गगनरूप अवस्था में सहस्त्र प्रवाहिनी गंगा की पवित्र धारा को सदैव अपनी जटा में धारण किया हैं। मैंने विद्या प्राप्त करने हेतु कार्तिकेय से सहायता ली थी। तुम भी उनसे सहायता ले सकते हो, वे अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे।'' अगस्त्य ने कहा।

भगीरथ ने अगस्त्यों की आज्ञानुसार कार्तिकेय जी से भेंट ली, तथा उन्हें अगस्त्य द्वारा दिए गए परामर्श से अवगत कराया। कार्तिकेय प्रसन्न हुए, ''हे भगीरथ, अगस्त्य मुनि ने तुम्हें श्राप से मुक्त होने का आशीर्वाद दिया है वह शक्ति ने केवल अगस्त्य के पास ही है। अज्ञान, अंधःकार, संकट, दुर्घटमेघ तथा दुर्धर शापवाणी भेदने की शक्ति अगस्त्य के पास है। चूँकि, वे साक्षात अग्निनारायण होने के कारण उनके मुख से सभी दुष्ट प्रवृत्तियों का विनाश होता हैं। अगस्त्य तपःशक्तिशाली, शिवविद्या विभूषित, स्वयंप्रज्ञ, सृष्टी प्रबंधक है। उनका स्मरण कर संकल्पपूर्वक तुम गंगामाता एवं शिवजी को प्रसन्न करने हेतु तपस्या आरंभ करो। तुम्हारे अविचल उग्र तपस्या से गंगामाता प्रसन्न होगी और शिव जी की आज्ञा से वह अवश्य प्रवाहित होगी, इस विषय में तुम्हारे मन में कोई संदेह नही होना चाहिए।

कार्तिकेय के परामर्शा नुसार भगीरथ ने किए उग्र तपस्या से गंगामाता अतीव प्रसन्न हुई।

''हे भगीरथ, तुम्हारी उग्र तपस्या से एवं मेरे पुत्रों के हठ से मैं प्रसन्न हूँ। अपने कुल का उद्धार करने हेतु तुमने यह तप किया। किन्तु पतिदेव भगवान श्री महादेव की आज्ञा बिना मैं भूलोक पर प्रभावित नहीं हो सकती। प्रावृटकाल में मैं वर्षाजल के रूप में भूलोक पर आऊँगी, लेकिन तुम्हारा हट है कि, मैं पृथ्वीपर अविरत बहती रहूँ, इसके लिए तुम्हे भगवान श्री शंकर जी से अनुमती लेनी होगी और वही कल्याणप्रद सिद्ध होगा।'' गंगामाता का वचन सुनकर भगीरथ ने कपिलमुनि, कार्तिकेय और अगस्त्यों को इस संबंधमें अगवत कराया और उनके परामर्शनुसार उसने शिवतपस्या आरंभ की। शिवशंकर प्रसन्न हुए। उन्होंने भगीरथ के अथक प्रयत्नों की सराहना कर उसे आशीर्वाद दिया। भगीरथ के कुल का उद्धार होने हेतु माता भगीरथ को प्राप्त हुई।

''पुत्र, तुम जिस मार्ग से जाओगे मैं उसी मार्गका अनुसरण करूँगी। किन्तु शिव जी ने मुझे सूचित किया है कि, मैं समुद्र में विलीन होकर अगस्त्य को उनके जलप्रबंधन कार्य में सहायिका बनूँ।'' गंगामाताने भगीरथ को समझाया।

''हे माते, आपके पुत्र अगस्त्य, कार्तिकेय कथा कपिलमुनि के शुभाशिर्वाद से ही मैं आप तक पहुँचा हूँ। उनकी इच्छा नुसार ही मैं आपको समुद्र तक ले जाऊँगा। मेरे पितामह, प्रपितामह तथा भूलोक के शापित जीवों को आपके पवित्र जल से मुक्ति मिलें यही मेरी मनोकामना है।''

''हे भगीरथ, तुम्हारी इच्छानुसार हो, तथापि तुम पीछे मूडकर न देखते हुए समुद्र तक मार्गक्रमण करते रहो। यदि तुमने तनिक रूककर पीछे मूडकर देख लिया तो शिव जी की आज्ञा से मुझे अप्रकट होना पडेगा।''

''हे माते मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करूँगा'' ऐसा कहकर भगवान कार्तिकेय रचित गंगास्तुति का पाठ कर भगीरथ मार्गस्थ हुआ।

**'ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमः ।**
**नमस्ते विष्णुरुपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते ।।**
**नमस्ते रुद्ररुपिण्यै शाङ्कये ते नमो नमः ।**
**सर्वदेव स्वरूपिण्यै नमो मेषमूर्तये ।**
**सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्लेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते ।**

स्थास्वुजङ्गममसंभूतविषहन्यै नमोऽस्तु ते ।।
संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमोऽस्ते ते ।
तापत्रितय संहन्त्र्यै प्राणेश्यै ते नमो नमः ।
शान्तिसन्तानकारिण्यै नमस्तै शुद्धमूर्तये ।
सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्तये ।।
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः ।
भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तु ते ।
मन्दाकिन्यै नमस्ते ते ऽ स्तु स्वर्गदायै नमो नमः ।।
नमस्त्रैलोक्यभूषायै त्रिपथायै नमो नमः ।
नमास्त्रिशुक्लसंस्थायै क्षमावत्यै नमो नमः ।।
त्रिहुताशनसंस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः ।।
नन्वायै लिङ्गधारिण्यै सुधाधारात्मने नमः ।।
नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमो नमः ।
बृहत्यै ते नमस्तेस्तु लोकधात्र्यै नमोऽस्तु ते ।।
नमस्ते विश्वमित्रायै मन्दियै ते नमो नमः ।
पृथव्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमो नमः ।।
परापरशताढ्यायै तारायै ते नमो नमः ।
पाशजालनिकृन्तिन्यै अभिन्नायै नमोऽस्तु ते ।।
शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः ।
उग्रायै सुखजग्ध्यै व सज्जीवन्यै नमोऽस्तु ते ।
ब्राह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः ।।
प्रणमार्तिप्रभाविज्जन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते ।
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः ।।
शरणागतदीनार्त परित्राण परायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।
निर्लेपार्य दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः ।
परापरापरायै च गङ्गे निर्वाण दायिनी ।।
गङगे ममाग्रनो भूया गङ्गे मे तिष्ठ पुष्ठतः ।
गङ्गे मे पार्श्वयोरेधिगङ्गेत्वय्यस्तु मे स्थितिः ।

**आदौ त्वमन्ते मध्येच सर्व त्वं गाङ्गते शिवे ।।**
**त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि ।**
**गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे ।।'**

गंगास्तोत्र के पुरश्चरण से गंगामाता प्रतिक्षण प्रसन्न होकर आगे बढती गई। गंगाद्वार से काशीनगरी, प्रयाग, गया होकर वंगदेश से वह समुद्र को जा मिली। समुद्र उछल उठा। अपनी लहरों को उँचा उछालकर समुद्र ने शिवस्वरूप का अभिवादन किया। भगीरथ ने जैसे ही गंगामाता से आज्ञा माँगी, माता गंगा प्रसन्न होकर बोल उठी,

''हे इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न, तुम वास्तव में एक महान परोपकारी मनुष्य हो तुम्हारी तपस्या से भूलोक पर जंबुद्वीप की उत्तर दिशा पावन हुई। हे दिलीप राजपुत्र, माता के नाम से पुत्र का परिचय होता है तथापि दिग्विजयी पुत्र की माता होनेका सौभाग्य तुम्हारे कारण मुझे प्राप्त हुआ इसीलिए मैं इसी क्षण से गगनपुत्री, सागरपुत्री गंगा-भागीरथी नाम धारण करती हूँ। ''जय गंगे भागीरथी। जय गंगे भागीरथी।'' मंत्रसे आसमंत गूँज उठा।''

स्वास्थ्य एवं अथर्वविद्या के अनुसंधान हेतु अगस्त्य नित परिक्रमा में जुडे रहते थे। किसी एक ही आश्रम में अधिक काल उनका निवास नहीं होता था। किसी विशिष्ट उद्देश से उनके यज्ञसत्र निरंतर हो रहे थे। इस कार्य में उपस्थित सभी ऋषिगण तथा देवताओं को भी वे सहभागी बनाते थे। इस प्रकार अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा के साथ भ्रमण करते थे। ऋषिपत्नी लोपामुद्रा ने अपना संपूर्ण व्यक्तित्व अगस्त्यमुनि को उनके कार्य के लिए समर्पित किया था। इसी कारण लोपामुद्रा का स्वयंप्रकाशी तेज अगस्त्यमुनि को प्राप्त हुआ था।

लोपामुद्रा के साथ अगस्त्यमुनि ने श्रीपर्वत की परिक्रमा पूरी की। कार्तिकेय के बन की ओर जानेका निश्चय किया। तथा उसी मार्ग पर चल पडे। वे कार्तिकेय के विशाल बन तक पहुँचे। लोहित नामक पर्वत को प्रणाम कर अगस्त्य ने बन में प्रवेश किया। तब तक अगस्त्य और लोपामुद्रा के आश्रम आने की सूचना कार्तिकेय को मिल चुकी थी। उनके स्वागत की तैयारी हो चुकी थी। कार्तिकेय बडी उत्कंठा से अगस्त्यों की प्रतीक्षा कर रहे थे। लोपामुद्रा के साथ मुनि अगस्त्य का आगमन हुआ। दोनों ने झुककर बडी विनम्रता से कार्तिकेय को प्रणाम किया।

‘‘हे मुनिवर अगस्त्ये, सब कुशल है? आपके आगमन का समाचार हमें प्राप्त हुआ था। विंध्याचल उत्तुंग हुआ, यह भी हमें ज्ञात हुआ है। हे अगस्त्ये अविमुक्त, महाक्षेत्र काशी कुशल है ही, क्योंकि शिव जी द्वारा वह सुरक्षित है। आपका वहां पर नित्य वास होता है। आप धन्य हैं। भगवान शिव जी वहाँ मर्त्य प्राणियों को मोक्ष प्रदान करते हैं। मैंने कभी ऐसा महान क्षेत्र नहीं देखा। हे अगस्त्ये मैंने स्वयं काशी क्षेत्र की प्राप्ति हेतु यहां पर तपस्या आरंभ की है, आपको तो वह सहज प्राप्त हुई हैं, किन्तु मेरी मनोकामना अभी तक पूरी नहीं हुई। पुण्य, दान, तप, जप, तथा विभिन्न प्रकार के यज्ञ से काशी क्षेत्र सदा ही अलौकिक वातावरण से एकमात्र लुभावना क्षेत्र बन चुका है। केवल महादेव की कृपा से ही इस क्षेत्र की प्राप्ति हो सकती है। सब कुछ त्याग कर जीवनभर काशी क्षेत्र में रहना कितना आनंददायी होगा।

‘‘धन की चिंता छोड धर्म की शरण में जाकर स्वर्ग प्राप्त होगा, किन्तु फिर भी काशीपुरी अत्यंत दुर्लभ है। पाशुपत योग मोक्ष का साधन है, काशीपुरी यह मोक्षदात्री क्षेत्र है, इसीकारण भगवान विश्वनाथ, गंगाधर तथा कालभैरव को वह अत्यंत प्रिय है। मैं तो काशी से आनेवाली वायु को भी स्पर्श करता हूँ। आप तो प्रत्यक्ष काशी में निवास करके आए हैं।’’ ऐसा कहकर कार्तिकेय ने अगस्त्यमुनि के संपूर्ण शरीर को स्पर्श किया। कार्तिकेय को मानो अमृतसरोवर के स्नान का अनुभव हुआ। इतना सब देखकर भी अगस्त्यों ने कार्तिकेय को विनम्रता से निवेदन किया।

‘‘हे शिवपुत्र, महातपस्वी, प्रत्यक्ष शिवस्वरूप कार्तिकेय, स्वामी आप हमें काशी की महिमा से अवगत कराने का कष्ट करें। यह क्षेत्र हमें अतिप्रिय हैं।’’ अगस्त्य का विनम्र भाव तथा ऋजु स्वभाव देखकर कार्तिकेय अर्थात स्कंद प्रसन्न हुए।

‘‘तथास्तु’’ कार्तिकेय ने कहा, और स्कंद स्वयं अगस्त्य को काशी महात्म्य सुनाने लगे।

‘‘काशीक्षेत्र बहुत ही गुप्त रूप में है । वहाँ साक्षात भगवान का निवास होने के कारण सभी प्रकार की सिद्धियाँ, अलौकिक शक्तियाँ होती है। काशीक्षेत्र आकाश में स्थित है। इस भूलोक से जुडा नहीं हैं। किन्तु इसे केवल योगीही जानते है। जो कोई एक वर्ष के लिए अपने क्रोध पर काबू पा लेता है, परनिंदा

नहीं करते है, प्रतिदिन दान करता है, उसके सहस्त्र जन्मों के पाप नष्ट हो जाएँगे। जीवनभर काशी में निवास करनेवाले को मृत्यू का भय नहीं होता। शरीर अनेक पापों से भरा हुआ है मानकर काशीपुरी में निवास करना लाभप्रद होगा। कितनी भी आपत्तियाँ क्यों न हो, क्षेत्र त्याग नहीं करना चाहिए।'' इतना कहकर स्कंद ने आगे कहा– ''यद्यपि छह मुख होने के पश्चात भी इस अविमुक्त क्षेत्र का वर्णन करना मेरे लिए असंभव है, इतना ही नहीं, सहस्त्रमुख होने पर भी शेषनाग इस क्षेत्र का वर्णन करने में असमर्थ हैं।

''भगवन्, यह अविमुक्त क्षेत्र भूलोक पर कब से ख्यात हुआ? किस कारण यह क्षेत्र मोक्षदायी है, यह जानने के लिए मैं अत्यंत उत्सुक हूँ। अगस्त्य ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

''हे अगस्त्य, महाप्रलय दौरान चराचर प्राणी नष्ट हुए। चारों ओर अंधेरा था। सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र, दिन, रात कुछ भी नहीं था। केवल सत्यस्वरूप ब्रह्म बचा था। वह मन तथा वाणी का विषय नहीं था। उसका कोई नाम, कोई रूप नहीं था। वह सत्य, ज्ञान, अनंत, आनंदस्वरूप प्रकाशमान था। आधारहित, निर्विकार, निर्गुण, योगीगम्य, सर्वव्यापी एकमात्र कारण, निर्विकल्प, कर्मारंभरहित, माया से परे उपद्रवशून्य था। यह तत्व कल्पांत के समय एकमात्र केवल था।''

कल्प के पूर्व उसके मनमें संकल्प उत्पन्न हुआ कि, क्यों न हम एक से दो हो जाएं। उसने अपनी लीलाशक्ती से साकार रूप धारण किया। यह उनकी दूसरी मूर्ति सभी ऐश्वर्य से युक्त थी। वह सर्वज्ञानमयी, शुभ, सर्वस्वरूप, सर्वसाक्षी तथा सभी का निर्माण करनेवाली सिद्ध हुई। उस निराकार, परब्रह्म अस्तित्व का आविष्कार ही शिव हैं। प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वान उन्हें ईश्वर कहते हैं। साकार होने के पश्चात शिवजी अकेले ही भ्रमण करते रहें। उन्होंने अपने शरीर से प्रकृति का निर्माण किया। प्रकृति तथा गुणवती माया बनी। कालस्वरूप आदिपुरुष ने एक बार शक्ति के साथ काशीक्षेत्र का भी निर्माण किया। शक्ति प्रकृति तथा शिव जो पुरुष है, वे दोनो परमानंद स्वरूप में काशी–क्षेत्र में विहार करने लगे । शिवजी ने इस विशाल, विस्तीर्ण काशी–क्षेत्र का कभी त्याग नहीं किया था, इसीकारण यह क्षेत्र परब्रह्म से अविमुक्त होकर प्रसिद्ध हुआ। मानो शिवजी के आनंद के लिए ही निष्पन्न हुआ था। अतः इस क्षेत्र का प्रथम नामकरण 'आनंदवन' हुआ। इस आनंदवन में चारों ओर शिवलिंग ही हैं। तत्पश्चात शिवजी ने सच्चिदानंद

स्वरूपिणी जगदंबा के साथ अपने शरीर की बाएँ ओर अमृतवर्षा करनेवाली दृष्टि फेर दी। वहाँ से एक त्रिभुवनसुंदर पुरुष प्रकट हुआ। वह पुरुष परमशांत, सत्वगुण युक्त समुद्र से भी अधिक गंभीर था। उसकी कांति इंद्रनील मणि समान श्याम वर्ण थी। नेत्र विकसित कमल भांति थे। पीताम्बर शोभायमान था। नाभिकमल से सुगंध फैल रही थी। वही पुरुषोत्तम हैं। भगवान शिवजी ने उस पुरुष को अर्थात अच्युत को महाविष्णु होने के लिए कहा और आशीर्वाद दिया कि उनकी साँसों की माध्यम से वेद प्रकट होंगे।

तत्पश्चात श्री विष्णु ने ध्यानपूर्वक तपस्या की। उन्होंने अपने चक्र से एक पुष्करिणी (छोटा जलाशय) बनाई और उसे अपने स्वेद से भर दिया। उसी पुष्करिणी के किनारे तपस्या आरंभ की। शिवपार्वती वहाँ प्रकट हुए।

''हे महाविष्णु, हम अतिप्रसन्न हैं, आप वर माँग लीजिए'' शिवपार्वती ने कहा।

''देवाधिदेव महादेव, यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं माँ भवानी के साथ आपके दर्शन लेना चाहता हूँ।''

''तथास्तु'' शिवजी ने दर्शन देकर उनकी इच्छा पूरी की। ''इसी स्थान पर मेरी मणिकर्णिका गिरी थी। अतः इस तीर्थ का नाम मणिकर्णिका तीर्थ होगा।'' महादेव ने कहा।

''प्रभो, यहाँ मुक्तामय कुंडल गिर गया है अतः यह स्थान मुक्ति का प्रधान स्थान हो जाए। शिवस्वरूप अनिर्वचनीय ज्योतियाँ यहाँ प्रकाशित हो। इसलिए यह मणिकर्णिका मुक्तदायिनी क्षेत्र 'काशी' नाम से जाना जाएगा। यहाँ सभी जीवों को मोक्ष प्राप्त हो।'' विष्णू ने अपने विचार व्यक्त किए।

'हे महाबाहू विष्णु, हम चाहते हैं कि, आप विभिन्न प्रकार के सृष्टी का निर्माण करें। पापियों का संहार करें। यह काशीक्षेत्र मुझे अति प्रिय है। यहाँ केवल मेरी आज्ञा का पालन किया जाता है। इस क्षेत्र को विश्वनाथ के नाम से जाना जाएगा।'' शिवजी ने आशीर्वाद दिया।

कार्तिकेय ने शिव और विष्णू के बीच संवाद का वर्णन करने के पश्चात, गंगामाता की महिमा का वर्णन किया और गंगामाता के सहस्त्रनामों का पाठ किया। 'नाम' की महिमा स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा,

''इनमे से एकसौ आठ नाम सबसे महत्वपूर्ण हैं। उनके स्मरणमात्र से

भी मोक्षप्राप्ति होती है।

वह एक सौ आठ (१०८) नाम इसप्रकार हैं ।-

ॐकाररुपिणी, अमृतस्त्रवा, अशोका, अलकनंदा, अमृता, अमला, अनाथवत्सला, अमोघा, अव्यक्तलक्षणा, अक्षांभ्या, अपरा, अजिता, अनाथनाथा, अभिष्टार्थासिद्धिदा, अनङ्गवर्धिनी, आणिमादिगुणा, अप्रगण्या अचिन्त्यशक्ति, अद्भूतरूपा, अघहारिणी, अनङ्गयोग सिद्धीप्रदा, अच्युता, अक्षुण्णशक्ति, अनन्ततीर्थ, अनन्तमहिमा, अनंतसौख्यप्रदा, अविद्याजालशमनी, अप्रतर्क्यगतिप्रदा, अशेषविघ्नसहस्त्री, अज्ञानतिमिर ज्योति, अभिरामा, अनन्तसारा, आरोग्यदा, आनंदवल्ली, आश्चर्यमूर्ति, आर्यसेविता, आप्यासिनी, आश्वासदायिनी, आलस्यघ्नी, इष्टदात्री, इतिहासश्रुतीऽद्यार्थ, इन्द्रादि परिवन्दिता, इलालङ्कारमाला, रम्यमंदिरा, ईश्वरी, ईडनीयचरित्रभृत, उड्पसण्डलचारिणी, उदिताम्बरमार्गा, उरगलोकविहारिणी, उपेन्द्रचरणद्वया, उत्पस्थितिसंहारकारिणी, उर्जधरा, उर्मिमालिनी, उर्ध्वरेत, प्रिया, ऋषिवृन्दस्तुता, ऋतम्भरा, ऋजुप्रिया, ऋजुमार्गप्रदर्शिनी, ऐश्वर्यदा, ओजस्विनी, अम्बरमाला, अन्धकहारिणी, अन्शुम ाला अज्जना, कल्याणाकारिणी, कांचनाक्षी, कमलाक्षी, करुणार्दा कल्याणी कामरूपा, कलावती, कालकूटप्राशिनी, कदम्बकुसुमप्रिया, क्रान्तलोकत्रया, खण्डितप्रणताघौला, गंधवती, गंधर्वनगरप्रिया, गांधारी, गर्भशमनी, गुणनीयचरित्रा, ग्रहपीडाहरा, घण्टारवप्रिया, घृणावती, चन्द्रायुशतानता, चाम्पेयलोचना, जान्हवी, इल्लरी वाघकुशला, अम्बरप्रवहा, तर्पणी, त्रिपथा, तपोमयी, त्रैलोक्यसुंदरी, तेजोगर्भा, दीर्घायुःकारिणी, देविदेहानिवारिणी, दूरदेशांतरचरी, द्यावाभूमिविगहिनी, व्यानगम्यस्वरूपा, धारणावनी, निजानन्द प्रकाशिनी, निर्मलज्ञानजननी, नन्दिगृङ्गि गणस्तुत्या, प्राणदा, विश्वमाता, विभावरी, विरुपाक्षाप्रियकरी.

एकसौ आठ नामों की महिमा वर्णन करने के पश्चात स्कंद ने अगस्त्य को काशी का माहात्म्य बार-बार दोहराया। अपना कथन आगे बढाते हुए वे बोल उठे,...

‘‘सुप्रसिद्ध राजा भगीरथ ने महादेव की आराधना कर गंगामाता को आपकी सहायता से भूलोक पर लाया, यह तो आप जानते ही हैं। उन्होंने ही गंगा का मणिकर्णिका तीर्थ, भगवान शंकर का आनंदवन, श्रीहरी की चक्रपुष्करिणी आदि स्थानों को ख्याती दिलवाई। यह परब्रह्म परमात्मा का सर्वोत्तम क्षेत्र है। अपनी

लीलाओं से यह परब्रह्म सभी जीवों को मुक्ति दिलाता है। दिलीपपुत्र भगीरथ के महत्प्रयासों से काशीपुरी में गंगावतरण हुआ। काशी का माहात्म्य तो प्राचीन काल से ही है, उसमें गंगामाता के आगमन से वृद्धि हुई। काशी में शरीर त्याग करने वाला मनुष्य तारकमंत्र का उपदेश पाकर अमरत्व प्राप्त करता है। देवताओं ने यहाँ पापी मनुष्य के असत्य विचारों का खंडन करने वाली असी अर्थात खङ्गरूपा नदी दुष्टों का प्रवेश रोकनेवाली धुनी नदी, विघ्नहरण करनेवाली वारणा नदी का निर्माण किया। काशी के दक्षिण क्षेत्र में असी तथा उत्तर क्षेत्र में वारणा जैसी पवित्र नदीयाँ हैं। प्रत्यक्ष भगवान शिवजी ने काशी के पश्चिम क्षेत्र का रक्षण करनेहेतु देहली विनायक की स्थापना की।'' - स्कंद अगस्त्य को बता रहे थे।

इसके संदर्भ में एक प्राचीन कथा स्कंद ने अगस्त्य को बताई। ''दक्षिण समुद्र तट पर धनंजय नाम का एक वैश्य रहता था। वह बडा ही मातृभक्त था। सदाचार से जो भी धन मिलता उससे वह याचकों को संतुष्ट रखता था। धनंजय यशोदानंदन कृष्ण का उपासक भी था। यद्यपि वह व्यापारी था, फिर भी सत्यप्रिय था। ऐसे एक सरल स्वभाव के वैश्य की माता का देहांत हुआ। उसने अपनी युवावस्था में व्यभिचार किया था, इसलिए उसे नरकवास मिला। सत्यप्रिय धनंजय शिवयोगी के सानिध्य में धर्मपरायण बन चुका था। अपनी माता के अस्थि विसर्जन हेतु वह गंगा की ओर निकल पडा। राह में चलते चलते वह ज्वरग्रस्त हुआ। ज्वर की पीडा से वह क्लांत हो रहा था, फिर भी वह चलता रहा। जैसे तैसे वह काशी पहुँच गया। धनंजय उस मनुष्य का घर ढूँढते-ढूँढते वहाँ पहुँच गया, तो उसे पता चला कि, वह मनुष्य कलश की लालच से जंगल की ओर चला गया, वहाँ पर उसने कलश में रखी अस्थियों को कहीं फेंक दिया और कलश लेकर चला गया। धनंजय ने उसकी पत्नी से पूछा, ''देवी, आप के पति कहाँ है?'' पत्नी उसे लेकर जंगल चली गई। धनंजय ने वहाँ पर काफी समय तक वह स्थान ढूँढने की कोशिश की, जहाँ पर उस मनुष्य ने अस्थि फेंक दिए थे। किन्तु वह असफल रहा। बहुत ही निराश होकर वह काशीपुरी लौट आया। उसके मुखमंडल पर उदासी छा गई थी। धनंजय ने प्रयाग, गया तीर्थों की यात्रा की। अर्थात विश्वनाथ के मन में नहीं था कि, उसकी माता के अस्थियों का गंगा जल में विसर्जन ना हो, सो नहीं हुआ। तात्पर्य यह कि, आचरण शुद्ध हों, तो ही, काशीक्षेत्र जा सकते है। इस क्षेत्र की पूजा तथा परिक्रमा करनी चाहिए। जो व्यक्ति दूरस्थ है, किन्तु इस अविमुक्त

क्षेत्र का स्मरण करता है, वह व्यक्ति भी मोक्ष पा लेता है। यहाँ पर भगवान भैरव कपालमोचन तीर्थ की सहायता से भक्तजनों की पाप परंपराओं का भक्षण करता है। यह भैरव कली और काल का विनाश करता हैं, इसी कारण वह कालभैरव कहलाता है। स्कंद ने पापमोचक कथा सुनाई।

*

''हे स्कंदनारायण हम चाहते हैं कि, आप काशी माहात्म्य सिद्ध करने वाली और भी कथाओं का कथन करें।'' अगस्त्य ने उत्कंठित होकर कहा।

उस पर स्कंद ने कथाकथन जारी रखते हुए कहा, ''प्राचीन काल में गंधमादन पर्वत पर रत्नभद्र नाम का एक विख्यात परमधर्मात्मा यक्ष रहता था। वह लाखों पुण्यकर्म से शोभान्वित था।'' उसका पूर्णभद्र नाम का पुत्र था। एक दिन वृद्ध रत्नभद्र ने अपना शरीर त्याग दिया और परमशांत शिवधाम को प्राप्त हुआ। पिता की मृत्यु के पश्चात पूर्णभद्र सभी राजवैभव एवं भोगसामग्री का अधिकारी बना। किन्तु उसकी कोई संतान नहीं थी। अर्थात इसकारण वह दुःखी था। एक दिन इस यक्ष ने अपनी पत्नी यक्षिणी कनककुंडला से कहा, ''प्रिये हमारा यह भवन पुत्र के बिना रिक्त प्रतीत होता है। मैं क्या करूँ? कैसे मैं पुत्रमुख देखूँ? कोई समाधान हो तो शीघ्र कथन करो।'' इस पर कनककुंडला ने गहरी साँस लेकर कहा, ''प्रभो, आप तो ज्ञानी है, फिर भी आप इतना खेद करते हैं, इतने दुःखी हैं। इस चराचर सृष्टि में कार्यशील मनुष्य के लिए कौनसी वस्तु दुर्लभ है? जो कायर है, वही मनुष्य प्रारब्ध की बाते करता है। हमारे पूर्वजन्मों का कर्म ही प्रारब्ध के परिणामस्वरूप हमारे सम्मुख। आता है। उसे अनुकूल करने हेतु हमें भगवान शिवजी की शरण में जाना चाहिए। महर्षि शीलाद भी निःसंतान थे, किंतु भगवान शिवजी की कृपा से उन्हें मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाला पुत्र प्राप्त हुआ। आर्यपुत्र, यदि आप पुत्र चाहते हैं तो भगवान शिवजी की शरण में जाइए।'' धर्मपत्नी की बाते सुनकर पूर्णभद्र ने महादेव की आराधना प्रारंभ की। वह संगीत कला में विशेषज्ञ था। उसने अपनी संगीत विद्याद्वारा भगवान शिव को संतुष्ट किया। उनकी कृपा से उसकी इच्छा पूरी हुई। उसे पुत्र प्राप्ति हुई। उसका नाम हरिकेश रखा गया। हरिकेश अति मनोहारी बालक था। वह भी शिवभक्त

था। वह मृत्तिका की शिवमूर्ति बनाकर उसे तृणांकूर से पूजता था। वह अपने मित्रों को शिवनाम से ही पुकारता था। भगवान भूतनाथ के मंदिर अतिरिक्त उसके पग अन्य किसी ओर पडते ही नहीं थे। वह निरंतर शिवनाम का अमृत प्राशन करता था। इस प्रकार वह भगवान शिव का अनन्य भक्त था।

हरिकेश की हालत देखकर उसके पिता कहते थे, ''वत्स, अब घर और व्यवसाय पर ध्यान देना वांछनीय होगा। पहले अध्ययन पूरा करो। तत्पश्चात सुख भोग लेना।'' बारंबार पिता की बाते सुनकर हरिकेश घर छोडकर चला गया। जाना कहाँ है, यह निश्चित नहीं था, तब उसने शिवशंकर को पुकारना आरंभ किया, ''शंभो, अब मैं कहाँ जाऊ? मैं अज्ञानी हूँ। किन्तु मुझे ज्ञात है कि, जिसे कोई गति (सहारा) नहीं उसके लिए काशीपुरी है।''

ऐसा सोचकर वह काशीपुरी पहुँच गया। आनंदवन में उसने तपस्या की। एक बार उस वन में भगवान शंकर विहार कर रहे थे, तो उन्होंने माता-पार्वती से कहा, ''देवी पार्वती, जिस प्रकार तुम मुझे प्रिय हो, उसी प्रकार यह आनंदवन भी मुझे अत्यंत प्रिय है। यहाँ पर मेरे अनुग्रहित जिवात्मा को अमृतस्वरूप प्राप्त होता है। मैं इस काशीपुरी में विशेष उद्देश से आया हूँ, क्यों कि यहाँ पर जीवन तारक ब्रह्म का उपदेश होता है। योगियों के हृदय में कैलाश तथा मंदराचल पर निवास करने में कोई रूचि नहीं हैं, किन्तु काशीपुरी में निवास करना मुझे अच्छा लगता है।''

महादेव इतना कुछ कह रहे थे कि उनकी दृष्टि सहसा आनंदवन में आकाशवृक्ष के छायातले तपस्या में लीन हरिकेश पर पडी। उसे देखकर पार्वती ने महादेव से कहा, ''हे विश्वनाथ, यह आप ही का तपस्वी भक्त प्रतीत होता है। लगता है वह अत्यंत दुःखी होनेके कारण आप को प्रसन्न करने हेतु आप की तपस्या कर रहा है। उसका मन केवल आप पर टिका हुआ है। कठोर तपस्या से उसका शरीर अस्थिपंजर हुआ है। आप कृपा करके उसे अनुग्रह दीजिए। (उसकी मनोकामना पूरी करें)।''

पार्वती का वचन सुनकर भगवान शिवजी ने आँखे बंद की। उन्होंने हरिकेश को अपने हाथ से स्पर्श किया। स्पर्श होते ही हरिकेश की आँखे खुल गई। प्रत्यक्ष भगवान त्रिलोचन को देखकर वह अत्यंत आनंदित हुआ। हर्ष से विभोर होकर उसने कहा, ''भगवन् आपकी जय हो, हे शंभो, गिरिजापती, शिवशंकर,

त्रिशूलपाणी, चंद्रार्धशेखर कृपालु, आपका करकमल स्पर्श पाकर मेरा शरीर अमृतमय हुआ।'' भगवान शंकर ने उसे अनेक वरदान देकर कहा, ''हे यक्ष, अब तुम मेरे इस काशीधाम का दंडनायक हो। अब से तुम्हारा नाम दंडपाणी होगा। तुम मेरी आज्ञा से उत्कट गणों का अधिकारी बनो। तुम अब से काशी निवासी प्राणियों के लिए एकमात्र अन्नदाता एवं तारकमंत्र के उपदेश से मोक्षदाता हो। तुम काशीपुरी में स्थायी रूप से निवास करोगे। यक्षराज, यह उत्तम क्षेत्र आज से मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ। दंडपाणी, अब से तुम्हारी प्रार्थना किए बगैर कोई पुरुष मोक्ष का अधिकारी नहीं बन पाएगा। हे दंडपाणी, तुम दक्षिण दिशा में निवास करना। पापी मनुष्यों को दंड देते रहना और भक्त जनों को अभय देते जाना।''

इस प्रकार साक्षात् भगवान शिवजी ने काशीपुरी की दक्षिण दिशा हरिकेश को सौंप दी। तत्पश्चात् भगवान शिव वृषभराज नंदी पर आरूढ होकर आनंदवन स्थित अपने निवासस्थान की ओर मार्गस्थ हुए। तब से यक्षराज हरिकेशी दंडनायक के पद पर विराजमान होकर काशीपुरी का संचालन कर रहा है। हरिकेश की यह कथा सुनाकर स्कंद ने अगस्त्य मुनि से कहा, ''मैं भी उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखकर काशीनगरी के बाहर निवास करने लगा। मैंने काशीनगरी में रहते हुए भी कभी उसे आदरभाव से नहीं देखा, ना ही उसका सम्मान किया।'' इस पर अगस्त्यों ने पृच्छा की, ''हे स्कंदमुनि, आपने जितेंद्रिय होकर भी काशी का त्याग किया। कहीं इस दंडपाणी की अवकृपा तो नहीं हुई?''

''नहीं, केवल अज्ञान के कारण यह सब हुआ। बाद में जब शिवकृपा से दंडनायक की महत्ता का ज्ञान हुआ तो मैंने दंडनायक की प्रार्थना की, उनकी प्रार्थना करते हुए मैंने कहा, 'हे यक्ष हरिकेश, कल्याणमय मोक्ष के लिए मुझे निर्विघ्न काशीवास प्रदान कर। महामाते दंडपाणी, यक्ष पूर्णाभद्र आप धन्य हो। माता कनककुंडला धन्य है। उनके गर्भ से तुम्हारा जन्म हुआ। यक्षपते, तुम्हारी जय हो। दंडरूप महान आयुध धारण करनेवाले देव, तुम्हारी जय हो। विश्वनाथप्रिय तुम्हारी जय हो। काशी निवासियों को मोक्ष देनेवाले यक्ष तुम्हारी जय हो। तुम्हारा शरीर चमकते हुए मोतीयों के प्रकाश से झलक रहा है। दंडपाणे, तुम्हारी जय हो। गौरीचरणविंद के भ्रमर कुशल यक्षराज, तुम्हारी जय हो।'' इन स्तुतिसुमनों से प्रसन्न होकर दंडनायक ने स्कंद को अभय देकर कहा, ''हे स्कंद आप साक्षात शिवरूप हैं। आप भी मेरी प्रार्थना कर रहे हैं, इस में आप

की महानता हैं।'' यह सुनकर अगस्त्यों ने कहा, 'आपके इस कथन से हमें ज्ञात हुआ कि, भगवान शिवजी, कैसे अपने भक्तों को अपने से भी अधिक महानता देते हैं। आपने इसका प्रमाण ही दिया है। हे स्कंद, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि, काशीपुरी की और अधिक महिमा स्पष्ट करने का कष्ट करें।' इस पर स्कंद ने काशीपुरी का माहात्म्य बताना जारी रखा।

स्कंद कार्तिकेय ने अगस्त्यों से कहा, ''हे अगस्त्य मुने आप की जिज्ञासा देखकर मैं आपको उनकी और महिमा से अवगत कराता हूँ।'' कार्तिकेय ने ज्ञानवापी की महिमा कथन करना आरंभ किया।

''यह ज्ञानवापीतीर्थ महानिद्रा में निद्रित जीवों को ज्ञान, मोक्ष देता है। मोहमायारूपी सागर के भँवर में पाए जाने वाले जीवों के लिए नौकारूप है। दुःखी, निराश जीवों का विश्राम स्थल है। यह क्षेत्र सच्चिदानंद ईश्वर का धाम है। परब्रह्म रस की प्राप्ति दिलानेवाला है। यह सुख का विस्तार करनेवाला एवम् मोक्ष की प्राप्ति दिलानेवाला है।''

''एक समय इस क्षेत्र में ईशानकोण के अधिपती ईशान नामक रुद्र स्वेच्छा से विहार कर रहे थे। उन्होंने यहाँ पर भगवान शिवजी के विशाल ज्योतिर्मय लिंग का दर्शन किया। इस के चारों ओर प्रकाशपुंज फैला हुआ था। देव, ऋषि, सिद्ध तथा योगी इनके समूह निरंतर आराधना में संलग्न रहते थे। ईशानों के मन में विचार आया कि, यहाँ पर क्यों न शीतल जल के स्त्रोत का निर्माण करें। उन्होंने बिचेश्वरलिंग के दक्षिण दिशा में त्रिशूल की सहायता से एक कुंड खोदा। उस समय पृथ्वी में छिपा हुआ जल प्रकट हुआ। उसी जल से उन्होंने लिंग का स्नापन (स्नापन=नहलाना) किया। वह जल अत्यंत शीतल, ज्ञानस्वरूप, पापों का नाश करने वाला था। ईशानों ने उसी जल से विश्वनाथजी का भी स्नापन किया। विश्वनाथ भगवान ने प्रसन्न होकर कहा, ''श्रेष्ठ व्रतों का पालन करनेवाले ईशान, मैं तुम्हारे कार्य से प्रसन्न हूँ, कोई वरदान माँग लो।'' तब ईशान ने कहा, ''भगवन् आप यदि प्रसन्न हैं, तो आपसे नम्र निवेदन करता हूँ, कि यह अनुपम तीर्थस्थल आप के नाम से विख्यात हो। त्रिलोक में जितने भी तीर्थस्थल हैं, उनमें यह शिवतीर्थ परम श्रेष्ठ है। इस तीर्थस्थल की ख्याति ज्ञानोद अथवा ज्ञानवापी नाम से हो। यहाँ के जलस्पर्श से मनुष्य के समूचे पाप धूल जाएँ।''

ज्ञानोदतीर्थ के स्पर्श से अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। इस तीर्थ में स्नान

करने से सभी पाप नष्ट होते हैं। यहाँ पर संध्योपासना करने पर काललोकजनित पाप भी क्षण में धूल जाते हैं। मनुष्य ज्ञानी बन जाता है। यह तीर्थ ज्ञानतीर्थ, तारकतीर्थ तथा मोक्षतीर्थ के नाम से भी जाना जाता है।

इस प्रकार भगवान शंकरजी से वरदान पाकर त्रिशुलधारी ईशान धन्य हुए।

''हे स्कंदरूप मुने, आपने तीर्थ की महिमा प्रकट करने वाली कथा सुनाकर मुझे तीर्थस्नान की अनुभूति दी। इससे हमारे मन में ऐसी मधुर कहानियाँ सुनने की जिज्ञासा और भी जागृत हो रही हैं। अगस्त्य की जिज्ञासा देखकर कार्तिकेय ने प्रसन्न होकर पुनःश्च कथा सुनाना आरंभ किया।

प्राचीन समय की घटना है। काशी क्षेत्र में हरिस्वामी नामका एक प्रख्यात ब्राह्मण रहता था। उसकी सुशिला नाम की एक रुपवती, सुंदर कन्या थी। शील एवम् सदाचार में वह भूलोक पर सर्वश्रेष्ठ थी। सर्वगुणसंपन्न ऐसी यह कन्या ज्ञानोदतीर्थ के सेवन से शिवमय हुई थी। एक दिन वह अपने आँगन में निद्रा में खो गई थी तब उसके रूप पर मोहित होकर एक विद्याधर ने उसका हरण किया। निशा की बेला थी, आकाशमार्ग से वह उसे मलय पर्वत पर ले जा रहा था। अचानक विद्युन्माली नाम का एक भयानक दानव उसके सामने आया। उसने विद्याधर से कहा कि, ''इस मानवी कन्या को निगल जाऊँगा'' और इतना कहकर उस दानव ने विद्याधर को मारना आरंभ किया। विद्याधर भी मुष्टियुद्ध में निपुण था। उसने अपने बलवान मुष्टियों से उसे मार डाला। किन्तु दानव के त्रिशूल से घायल विद्याधर ने भी अपने प्राण त्याग दिए। सुशिला ने विद्याधर को ही अपना पति मान कर उसके साथ ही देह त्याग किया। अपना शरीर अग्नि को समर्पित किया।

मरते समय विद्याधर ने अपनी प्रियतमा का स्मरण किया था, इसी कारण उसे मलयकेतू के घर में पुनर्जन्म मिला। जब कि सुशिला ने भी विद्याधर का स्मरण करते हुए अग्नि में प्रवेश किया, अतः उसने भी कर्नाटक में जन्म लिया। उसके पिता ने इस कलावती का विवाह मलयकेतू के पुत्र से करवा दिया। पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण कलावती इस जन्म में भी शिवपरायण थी। मलयकेतू के पुत्र का नाम माल्यकेतू था। उसे पति के रूप में प्राप्त कर कलावती ने दिव्य वैभव का उपभोग लिया। उसकी तीन संताने हुई।

एक दिन उत्तर दिशा से एक चित्रकार माल्यकेतू से मिलने आया। उसने राजन को एक विचित्र चलचित्र दिखाया। राजा ने वह कलावती को दिखाया।

वह चलचित्र देखकर कलावती के शरीर पर रोमांच खडे हुए। वह एकांत में बैठी थी। बार-बार भगवान विश्वनाथ को देखने के पश्चात वह अपने होश खो बैठी। तनिक सतर्क होने के पश्चात उसने चलचित्र को गौर से देखा लोकार्क कुंड के समीप परमसुंदर असी और गंगा का संगम है। उत्तर की ओर भगवान केशव के चरणोंसमीप से वारणा नाम की नदी बहती है। यहाँ उत्तरवाहिनी गंगा में स्नान करने हेतु स्वर्ग से देवताओं का भी आगमन हुआ है। यहीं वह अति पवित्र मणिकर्णिका तीर्थ हैं, जो साधुजनों को मोक्ष का स्थान प्रतीत होता है। वहीं पर श्री कालभैरव जी का कुलस्तंभ है। उसी स्थान पर कपालमोचन तीर्थ है क्यों कि, वहीं पर भैरव के हाथ से कपाल गिर पडा था।

पास ही ऋणमोचन तीर्थ है, इस तीर्थ पर ॐकारेश्वर का स्थान है, अप, उ, म, नाद और बिंदू पाँच रुप में प्रणवरूप परब्रह्म वहाँ पर सदैव प्रकाशित होते हैं। वहीं पर परमसुंदर मत्स्योदरतीर्थ और भगवान त्रिलोचन देव है। कामेश्वर देव का भी वास है। काशी की प्रधान देवता विश्वनाथ है। वहीं स्कंदेश्वर महादेव भी कहलाते हैं। एक ओर विनायकेश्वर है। वह साक्षात काशीदेवी है। कहा जाता है इस देवी के दर्शन से मोक्षप्राप्ती होती है। क्यों कि, यहाँ पर मोक्षदाता भगवान महेश्वर गौरी देवी के साथ निवास करते हैं। यज्ञेश्वर नाम का शिवलिंग है, उसी के समीप पुराणेश्वर लिंग है। इन लिंगदर्शन से अठारह विद्या का ज्ञान प्राप्त होता है।

''यह धर्मशास्त्रेश्वर महादेव है और इसके दर्शन मात्र से धर्मशास्त्र के अध्ययन का पुण्य प्राप्त होता है। इस काशीनगरी में चारों ओर लिंग स्थापित है और वे शिवमहिमा के साथ-साथ काशी माहात्म्य का भी वर्णन करते हैं। भगवान मंत्रेश्वर, बाणेश्वर, वैरोचनेश्वर, बालकेश्वर, इनके अतिरिक्त नारदकेशव, आदिकेशव, आदित्यकेशव, भीष्मकेशव, दत्तात्रयेश्वर, आदिगदाधर, भृगुकेशव, वामनकेशव, नरनारायण, यज्ञवराहकेशव, नारसिंह, गोपीगोदी, लक्ष्मीनृसिंह, सर्व विनायक, शेष माधव, शंख माधव, सारस्वत स्तोत्र, बिंदुमाधव, पंच ब्रह्मातक, पंचनद, मंगलागौरी, मयुखादित्यतीर्थ, गभस्तीश्वर, धौतपापेश्वर, निर्वाणनृसिंह, मणिप्रदीपनाग, कपिलेश्वरलिंग, प्रियव्रतेश्वर, श्रीकालराज मंदिर, परमसुंदर मंदाकिनी, रत्नेश्वर लिंग, कृतिवासेश्वर, भगवतीदुर्गा व उत्तम पितृलिंग, चित्रघंटेश्वरी देवी, घंटाकर्ण सरोवर, ललितागौरी विशालाक्षी, आशाविनायक, धर्मकूप,

विश्वभुजादेवी, यह त्रिलोकवंदित दशाश्वरमेघतीर्थ, प्रयागतीर्थ, अशोकतीर्थ, गंगाकेशव, मोक्षद्वारतीर्थ ऐसे अनेक दृष्यों का दर्शन कलावती ने उन चलचित्रों में किया।

कलावती ने उस चलचित्र में स्वर्गद्वारसम्मुख श्री मणिकार्णिकातीर्थ देखा। यहीं पर भगवान शंकर अपने दाहिने हाथ के स्पर्श से संसारग्रस्त जीवों को तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं। उसने भगवान विश्वनाथ के दक्षिण स्थान पर ज्ञानवापी देखी। शिवजी की यह जलमय मूर्ति हैं।

ज्ञानवापी के दर्शन से कलावती की तनु रोमांचित हुई। उसका शरीर कंपायमान हुआ। कपाल पर स्वेद बिंदु जमने लगे। उसके नेत्र हर्ष के आँसुओं से भर आए। उसने होश खो दिए और उसकी दृष्टि से चित्रमाला ओझल हुई। तभी उसकी सखियाँ वहाँ पर आई और उसकी ओर देखकर बोल उठीं ''क्या हुआ देवी?'' उसने कोई उत्तर नहीं दिया। सखियाँ उसकी सेवा में जुट गई। कलावती सचेत हुई, तो उसे पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त हुआ। उसने कहा, ''पिछले जन्म में मै एक ब्राह्मण कन्या थी। काशी विश्वनाथ मंदिर समीप ही मैं ज्ञानवापी तटी पर खेल रही थी। मेरे पिता का नाम हरिस्वामी था। माता का प्रियवंदा और मेरा नाम सुशिला था।'' इसपर सखियों ने कहा, 'कलावती देवी, हमें भी उस तीर्थस्थान का दर्शन करवाइए ना। अपनी सखियों की प्रार्थना सुनकर कलावती ने अपने पति से कहा, ''नाथ, आप मेरी सभी इच्छाओं को पूरा करते हैं, अतः मेरी और एक इच्छा को भी पूरा करें।'' उस पर उसके पति ने कहा, ''कलावती हम दोनों ही शीघ्र काशी जा रहे हैं।''

कलावती को काशीपुरी ले जाने का वचन देकर माल्यकेतू ने अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाया और वे काशीपुरी की ओर चल पडे। विश्वनाथ नगरी का दर्शन होते ही उसे लगा मानो उसका जीवन सार्थक हुआ। पूर्वजन्म की स्मृति से कलावती को समूचा काशीक्षेत्र परिचित सा लगने लगा। मणिकर्णिका में स्नान करने के पश्चात, विश्वनाथ की पूजा की। मुक्तिमंडप में धर्मकथा सुनी। बहुत सारा दानधर्म किया। पती माल्यकेतू के साथ रातभर जागरण किया। प्रातःकाल होते ही ज्ञानवापी में दोनों ने स्नान किया। राजा ने पूरी श्रद्धा के साथ पिंडदान कर अपने पितृकों को संतुष्ट किया। सुपात्र ब्राह्मणों को दान दिया। दीन, अंध, निर्धन, अनाथ याचकों को धन देकर संतुष्ट किया। दोनों ने ज्ञानवापी पर तपस्या की।

एक दिन स्नान करने के पश्चात पति–पत्नी बैठे थे कि, एक जटाधारी व्यक्ति हाथ में विभूति लेकर आया, और कहने लगा, ''उठिए, आज इसी क्षण आप दोनों को तारकमंत्र का उपदेश होनेवाला है'' उस जटाधारी ने इतना कहना ही था कि, आकाशमार्ग से एक तेजस्वी वायुयान उतरा। भगवान शिवजी यान से नीचे आए उन्होंने उन पति–पत्नी के कान में स्वयं ज्ञान का उपदेश किया।''

''हे स्कंदनारायण, यह कथा सुनकर हम धन्य हुए। अब हमें व्यावहारिक उपदेश करने का कष्ट करें ।''

अगस्त्यों ने विनम्रतापूर्वक स्कंद से पुनःश्च प्रार्थना की।

तत्पश्चात स्कंद ने अगस्त्यों को सदाचार का विस्तार के साथ उपदेश किया। सदाचार, संस्कार, ब्रह्मचर्य, गृहस्थधर्म, पंचयज्ञ महिमा, काशीवास माहात्म्य, शिष्टाचार, योग, मृत्यु ऐसे विभिन्न विषयों पर विस्तार से अगस्त्य को अवगत कराया। और इसके प्रमाणार्थ कथा सुनाना आरंभ किया।

''रिपुंजय नाम का एक राजा, जिसका जन्म मनु वंश में हुआ था, जो एक शक्तिशाली क्षात्र धर्मावतार था, अपने मन, इंद्रियों को वश कर वह अविमुक्त नाम के महाक्षेत्र में तपस्या कर रहा था। एक दिन प्रजापती ब्रह्मदेव ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिए और कहा,

''महामते, तू समुद्र, पर्वत, वन के साथ समूचे पृथ्वी का पालन कर। नागराज वासुकी तुम्हे पत्नी के रूप में नागकन्या अंगमोहिनी को समर्पित करेंगे। देवता भी तुम्हें प्रचुर मात्रा में धन प्रदान करेंगे। तुम 'दिव्य दास्यन्ति' हो, अतः तुम 'दिवोदास' नाम से जाने जाओगे। राजन मेरे प्रभाव से तुम्हें दिव्य सामर्थ्य प्राप्त होगा।''

''पितामह, मनुष्य से भरे इस जगत में क्या मेरे अतिरिक्त कोई अन्य राज्यकर्ता नहीं? मुझे ही यह आज्ञा क्यों?'' दिवोदास ने पृच्छा की।

''राजन, तुम इस धरती पर राज करोगे तो इंद्रदेवता निरंतर वर्षावृष्टि करते रहेंगे। दूसरा कोई पापी राजा राज करेगा तो वृष्टि होना असंभव होगा।'' ब्रह्मदेव ने कहा।

''महामान्य पितामह, आप स्वयं तीनों लोक की सुरक्षा करने में समर्थ हैं, इस के उपरांत आप यह उत्तरदायित्व मुझे सौंप रहे हैं, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। आप की आज्ञा शिरोधार्य है। किन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है, यद्यपि

आप इसे स्वीकार करें तो मैं इस धरती पर राज करूँगा'' दिवोदास ने विनम्रता से निवेदन किया।

''हे राजन, तुम्हारे मन में जो भी है, निःसंकोच निवेदन करो।''

''पितामह, देवता अपने देवलोक में रहें तथा मनुष्य भूलोक पर, देवता भूलोक पर वास करने का प्रयास ना करें तो ही मेरी प्रजा सुखी होगी।''

''तथास्तु'', ब्रह्मदेव ने उसका प्रतिवेदन स्वीकार किया।

''देव स्वर्ग में चले जाएँ, नागगण यहाँ पर ना रुके।''

''घंटानाद कर दिवोदास ने घोषणा की।'' स्कंद कथन कर रहे थे।

''हे स्कंद भगवन्, किन्तु भगवान शंकर ने राजा दिवोदास को काशीपुरी का त्याग करने के लिए क्यों कहा?'' अगस्त्य ने अपनी आशंका प्रकट की।

''गिरीराज मंदार की तपस्या से संतुष्ट होकर भगवान शिव मंदराचला पर गए। उनके साथ देवगण भी थे। भगवान विष्णू भी उनके साथ मंदराचला पर गए। भूलोक से देव जाने के पश्चात दिवोदास ने भूलोक पर राज किया। दानव, नाग, गुह्यक राजा की सेवा करते थे। उसके कार्यकाल में कभी अतिवृष्टी या अनावृष्टी का संकट नहीं आया। हर एक गाँव में कार्यनिष्ठ रक्षक थे। सभी प्रकार की विपुलता थी।''

दिवोदास ने काशीपुरी में अस्सी हजार वर्ष शासन किया। प्रजा को वह पुत्रों के भांति पालता रहा। वह धर्मपरायण, राजनीतिज्ञ तथा नीतिनिपुण भी था। उसकी कमियाँ निकालना देवताओं के लिए भी असंभव था। वह स्वयम् एक पत्नीव्रती था ही, तथापि राज्य की सभी स्त्रिया भी पतिव्रता थी। सभी वर्ण के लोग अति संस्कारी थे। सभी का आचरण वर्णाश्रम के अनुकूल था। राज्य में भी संन्यासी आसक्ति रहित, जीवनमुक्त तथा परिग्रह से परे थे। लोग वैदिक मार्ग का अनुसरण करते थे। राज्य में संततिहीन (निःसंतान), निर्धन, अपाहिज (विकलांग) ऐसा कोई नहीं था, इतना ही नहीं दुराचारी, अपप्रवृत्ती वाला भी कोई नहीं था। काशीपुरी में रहनेवाले सभी लोग ईश्वर की पूजा में मग्न होते थे। उसका राज्य एक आदर्श था। स्वाभाविकतः देवता उससे ईर्ष्या करने लगे।

इंद्रादि देवताओं ने दिवोदास के राज्य की विफलता के लिए कई बाधाएँ खडी की। राजाने अपने तपोबल से उस पर विजय प्राप्त की। तत्पश्चात महादेव ने मंदराचलासे चौसठ योगिनियों को दिवोदास के नगरी में दोष खोजने हेतु भेज

दिया। उन योगिनियों ने बारह महिनो में राजाका एक भी दोष नहीं देखा। वे सभी निराश होकर वापस लौट आए। तब भगवान शिव ने सूर्य देवता को बुलाकर कहा।

''हे सप्ताश्ववाहन, तुम उस मंगलमयी काशीपुरी में जाओ। धर्मात्मा दिवोदास वहाँ पर विद्यमान है। इस क्षेत्र को उजाड बनाने का प्रयास करो। किन्तु राजा का अनादर नहीं करना। उसे धर्मभ्रष्ट करो। तुम्हारे दुःसह किरणों से उस नगरी को वीरान कर दो।''

''भगवान शिव के आदेश पर सूर्यदेव काशीपूर आएं। उन्होंने राज्य में धर्म का कोई उल्लंघन होते हुए नहीं देखा। विभिन्न रूप धारण कर वे एक वर्ष काशी में रहें। उन्होंने कई प्रयास किए, किन्तु काशीपुरी को उजाड नहीं कर पाएँ। सूर्यदेव के बारह रूप अर्थात लोकार्क, उत्तरार्क, सांबादित्य, द्रौपदादित्य, मयुखादित्य, खगोलकादित्य, अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, बिमलादित्य, गंगादित्य, यमादित्य वहाँ पर स्थित हुए। काशीदर्शन से सूर्य देवता मोहित हुए। अतएव वे लोकार्क नाम से प्रसिद्ध हुए। काशीनगरी में लोकार्क का स्थान है, जो निरंतर काशीवासियों को योगक्षेत्र की सिद्धी करता है, तथा उसकी कृपा से सभी लोग पापमुक्त हो जाते हैं।''

काशीपुरी की उत्तर में सबसे अच्छा अर्ककुंड है। यहाँ सूर्य देवता को उत्तरार्क नाम से जाना जाता है। इस प्रकार स्कंद ने सभी तीर्थों की कथाएँ अगस्त्यों को सुनाई। उसमें सांबादित्य, मयुखादित्य आदि देवताओं की कथाएँ थी। उसी के साथ गरुडेश्वर लिंग, खखोलादित्य, गरुड और विनता की भी कथाएँ सुनाई। स्कंद ने गरुड की कथा सुनाते हुए कहा–

त्रिलोचन स्थान के उत्तर में खखोल्क नामक स्थान है। यह आदित्य सभी रोगों का नाश करता है। कुछ समय पहले की बात है। कद्रू और विनता – दोनो बहने खेल रही थी। वे प्रजापती दक्ष की कन्या तथा मारीचनंदन कश्यप की धर्मपत्नियाँ थी। उस समय खेलते हुए कद्रू ने अपनी बहन से कहा, ''विनते, सूर्य के रथ का उच्चैश्रवा अश्व है, उसका रूप कैसा है? क्या तुम्हें पता है? चलो हम शर्त लगाते है, ये दासियाँ साक्षी होगी।'' कद्रू ने सूर्य के अश्व को रंगीन बताया तथा विनता ने श्वेत रंग बताया। विनता के चले जाने के बाद कद्रू ने अपने पुत्रों को उच्चैश्रवा अश्व का रंग शामल तथा चित्र विचित्र करने के लिए कहा। पुत्रों ने

वैसा ही किया। दोनो बहनों ने इस चित्र विचित्र अश्व को देखा, तो विनता ने कद्रू की जीत को स्वीकार किया। तब से विनता कद्रू की दासी बनी। बाद में विनता पुत्र गरुड ने नागों को अमृत देकर अपनी माता को दासता से मुक्त कराया।

''विनता ने अपनी दासता की हीन भावना से छुटकारा पाने के लिए काशी जाने की इच्छा प्रकट की। वहाँ जाकर विश्वनाथ जी से तारकमंत्र की सहायता से अपना उद्धरण करने का निश्चय किया। गरुड ने भी अपनी माता के साथ काशीपूर जाने का निर्णय लिया। काशीपुरी जाकर गरूड ने तपस्या की, शिवलिंग स्थापित किया। विनता ने खखोल्क नामक आदित्य की स्थापना की। उनकी तपस्या से भगवान शंकर तथा सूर्यदेव प्रसन्न हुए। गरुड द्वारा स्थापित शिवलिंग से उमानाथ प्रकट हुए। उमानाथ ने, गरुड स्थापित शिवलिंग गरुडेश्वर नाम से जाना जाएगा तथा उस शिवलिंग से परमज्ञान प्राप्त होगा, ऐसा आशीर्वाद दिया। विनता की तपस्या से शिवरूप खखोल्कादित्य सूर्य प्रकट हुए तथा विनता को शिवज्ञान देकर उसे काशी निवास करने का आश्वासन दिया। विनता की तपस्या से अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गंगादित्य, यमादित्य आदि आदित्य द्वारा सिद्ध किए गए।''

कार्तिकेय ने अगस्त्य से कहा, ''शिव, विष्णू और ब्रह्मा एकरूप होकर वास करते हैं, तथा पार्वती, लक्ष्मी, महामाया, आदिशक्ति, श्रीरूपा आदि सभी शक्तियाँ एकरूप होकर वास करती हैं।'' उन्होंने आगे कहा, ''परब्रह्म कैवल्य तथा प्रत्यक्ष कैवल्य शक्ति केवल काशीपुरी में वास करती है। यहाँ पर महालक्ष्मी रुपिणी महामाया प्रकृति की जो भक्ति करेगा वह सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञानी होगा। ऐसा भक्त सदैव विजयी होगा। उसके सभी पुत्रपौत्र, सेवक, दास, भक्त, प्रजा अति शक्तिमान, धनवान तथा ज्ञानी होंगे। श्री महालक्ष्मी की तपस्या से सभी दुःखों का विनाश होगा।''

अगस्त्य ने उत्कंठित होकर स्कंद से प्रार्थना की, ''हे भगवन्, आप के निवेदन से मेरे मन में माता महालक्ष्मी को तपस्या से प्रसन्न करने की इच्छा जागृत हुई हैं। साथ ही मेरी भार्या लोपामुद्रा भी चाहती है कि, माता लक्ष्मी अपनी प्रजा को सर्व शक्ति, धन, ऐश्वर्य देकर उन्हें संतुष्ट करें। हम दोनो चाहते हैं कि, हम काशीपुरी जाकर महालक्ष्मी की पूजाअर्चा, जप-तपध्यान करें। आप हमारे लिए गुरुसमान हैं। आपका आशीर्वाद सदा ही हमारे पास रहें।'' कार्तिकेय

ने अगस्त्य तथा लोपामुद्रा को महालक्ष्मी माता प्रसन्न होकर अथर्वण योग में भी उनकी सहायता करें, ऐसा आशीर्वाद दिया। परिक्रमा पूरी करने के पश्चात अगस्त्यनारायण लोपामुद्रा के साथ काशीनगरी आएं। कार्तिकेय के मार्गदर्शन नुसार उन्होंने श्री महालक्ष्मी की स्थापना की, और स्तुतिपूर्वक प्रार्थना की।

अगस्त्यों के मुख से महालक्ष्मी स्तोत्र का पाठ गूँज उठा।

**मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि ।**
**श्री विष्णूहृत्कमवासिनि विश्वमातः ।**
**क्षीरोदजे कमलकोमल गर्भगौरी ।**
**लक्ष्मीप्रसीद सततं नमतां शरण्ये ।।**
**त्वं श्रीरुपेन्द्रसदन चंद्रमसि चंद्रमनोहरास्ये ।**
**सूर्ये प्रभासिच जगत्त्रियते प्रभासि ।**
**लक्ष्मी प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ।।**
**त्वं जातवेदसि सदा दहनात्म शक्ति**
**वेंधास्त्वया जगदिदं विविधं विद्ध्यात ।**
**विश्वम्भरोपि विभूयादाखिलं भवत्या**
**लक्ष्मी प्रसिद सततं नमतां शरण्ये ।।**
**त्वत्यक्त मेतदमले हरते हरोऽपि**
**त्वं पासि हंसि विदधासि परावरासि ।**
**ईड्यो बभूव हरिरप्यमले त्वदाद्या**
**लक्ष्मी प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ।।**
**शूरःसः एव स गुणी सबुधःस धन्यो**
**मान्यः स एव कुलशीलकलाकलापैः ।**
**एकःशुचिः स पुमान् सकलेपि लोके**
**यत्रापतेत्तव शुभे करुणा कटाक्षः ।।**
**यस्मिन्वसे क्षणमहो पुरुषे गजऽश्वे**
**स्त्रैणे तृणे सरसि देवकुले गृहे न्रे**
**रत्ने पतत्रिणि पशौ शयने धरायां**
**सश्रीकमेव सकले तदिहास्ति नान्यत ।।**
**त्वत्स्पृष्टमेव सकलं सुचितां लभेत**

**त्वत्त्यक्तमेव सकलं त्वशुचीह लक्ष्मी ।**
**त्वन्नाम यत्र च समङ्गलमेव तत्र**
**श्रीविष्णुपत्नि कमले कमलालयेऽपि ।।**
**लक्ष्मी श्रीयं चकमलां कमलालयांच**
**पदमांरमां नलिनयुग्मकरां च मां च ।**
**क्षीरोदजाममृत कुम्भकरामिरांच**
**विष्णुप्रियामिति सदा जपतां क्व दुःखम**

(काशी. पूर्वा ५.८०.८७)

वाराणसी में अगस्त्य आश्रम से भगवान रामचंद्र ने यमुना के तट पर से यात्रा की और यमुना की उपनदी सिंधु नामक स्थान पर सिंधु अगस्त्य आश्रम में आए। वहाँ पर दो दिन विश्राम करने के पश्चात वे आगे निकल पडे। क्षिप्रा नदी के तट पर उज्जैन नगरी में प्रभू पहुँच गए। क्षिप्रा तट की महान शिवलिंग की महिमा उन्हें ज्ञात हुई। उज्जैन की क्षिप्रा नदी में स्नान करने के पश्चात वे दूर पुष्करतीर्थ चले गए। पुष्करतीर्थ पर उन्हें अनेक प्रकार के कमल मिले। कुछ दिनों तक सुंदर सरोवर के तट पर विश्राम करने के पश्चात उन्होंने वितरता नदी पर स्थित अगस्त्य आश्रम की जानकारी प्राप्त की। पुष्कर आश्रम से भगवान रामचंद्र हाटकेश्वर और प्रभास के आश्रम देखने के पश्चात वे अगस्त के दर्शन कर वापस उज्जैन आ गए। लगभग दो महिनों की इस यात्रा के दौरान उनका अगस्त्य आश्रम से भलीभाँति परिचय हुआ। अब तक अनुभव किए प्रायः सभी आश्रम में गोशाला, कृषि कार्यशाला, युद्धशाला, रसशाला, चिकित्सालय पाए गएँ। उस क्षेत्र के कई छात्र (शिष्य) अगस्त्य गुरुकुल में शिक्षा पा रहे थे। अथर्वविद्या, आयुर्वेद, योग पर महर्षि अगस्त्य का विशेष ध्यान था। जब कि कृषि शाला में नित नए प्रयोग शुरू हुए थे, आयुर्वेद रसशाला के लिए आयुर्वेदीय वनखेती का भी निर्माण किया था। योगविद्या और अथर्वविद्या में आश्रम के शिष्यगण पारंगत थे। कई रोगियों पर विभिन्न प्रकार की शल्यक्रिया की जाती थी।

उज्जैन के आश्रम में अगस्त्य मुनि ने उनके निवास का उत्तम प्रबंध कर रखा था। इस आश्रम में प्रभु रामचंद्र को विंध्य आश्रम, नर्मदा आश्रम, रावेर, अंकाई, पंचवटी, अकोले, नेवासा वावधन, कोल्हापूर, बदामी, अगस्त्यकूट, पांड्य, वैदारण्य, अगस्त्यस्थान, श्रीलंका स्थित अगस्त्य के आश्रमों की जानकारी प्राप्त

हुई। इन सभी आश्रमों में कुछ भिन्न, किन्तु एक जैसी अगस्त्य कथाएँ सुनाई जाती थी। अगस्त्य ऋषि जम्बूद्वीप में पूर्वपश्चिम और उत्तरदक्षिण की चारों दिशाओं में, इतना ही नहीं, लंकादि द्वीप पर भी अथर्वण की खोज में और कृषिज्ञान अधिग्रहणहेतु तथा समृद्धि के लिए निरंतर यात्रा कर रहे हैं। उन्होंने दुर्जया नदी के तट पर बादामी में एक आश्रम की स्थापना की, उस क्षेत्र के अपने प्रिय शिष्य को अगस्त्य पद की उपाधि से अलंकृत किया और गुरुकुलाश्रम उन्हें सौंप दिया। इस प्रकार पाण्ड्य देशमें उन्होंने समुद्र तट समीप मलय पर्वत पर ऐसे आश्रम स्थापित किए। उनके सभी आश्रम में स्वास्थ्य रक्षा, कृषिविकास एवम् यज्ञसंस्था के अभ्यास के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। उन्होंने जंबुद्वीप क्षेत्र में प्रत्यक्ष निवास किया। दूरदूर तक विस्तीर्ण प्रदेशों में घूमकर वनस्पती, वन्य जीव, जल तथा कृषि का अध्ययन किया और सूर्य, तथा वायु को आराध्य मान कर ज्ञानदान तथा तपस्या का एक विस्तीर्ण अगस्त्य संप्रदाय का निर्माण किया। उनके निवास स्थान तीर्थस्थल बन गए। दक्षिण सागर के पास अगस्त्य तीर्थ नाम का स्थान हैं। यहाँ का पर्वत भी अगस्त्यकूट नाम से जाना जाने लगा। अगस्त्यों के संचार के कारण दक्षिण क्षेत्र की मनुष्य बस्तियाँ शिव भक्त और विष्णू भक्त बन गईं। ब्रह्मा, विष्णू और महेश इन त्रिदेवों की महिमा से लोग परिचित हुए। मध्य भारत में गोकर्ण के पास एक आश्रम का निर्माण किया। गोदावरी, पंचवटी तथा अंकाई में आश्रम स्थापित किए, किन्तु अमृतवाहिनी प्रवरा के तट पर अकोले अर्थात अगस्त्यपुरी में उन्होंने जो आश्रम स्थापित किया था, वह सह्याद्रि की पर्वत शृंखला में पवित्र जलस्त्रोत के सान्निध्य में वनस्थली के अंचल में बसा हुआ है, अतएव वह उन्हें अधिक प्रिय हैं। इस आश्रम को उन्होंने तपोभूमि का रूप दिया। प्रायः इसी आश्रम में उनका नित वास्तव्य होता है। सभी तीर्थ अगस्त्यकुंड में निर्माण कर वहीं पर तीर्थव्यवस्था की। पुष्कर और प्रयाग इन दोनों स्थानों पर उनके आश्रम सुचारू रूप से कार्यरत हैं। अथर्वण विद्या, आयुर्वेद इन्हें अगस्त्य प्राथमिकता देते हैं। रस चिकित्सा एवं शल्यचिकित्सा की साधना निरंतर होती हैं। संगीत साधना भी होती हैं। अगस्त्य गोत्रिय अगस्त्य पीठासीन है और अगस्त्य स्वयं गुप्त रूप में सर्वत्र विद्यमान हैं। अपितु काशी और अकोले इन दोनों तीर्थस्थान पर वे प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होकर दर्शन देते हैं। समस्त जंबुद्वीप में भ्रमण करनेवाले यह ऋषि अतिप्राचीन काल से युगो-युगों तक तपस्या

कर देवत्व को प्राप्त हुए हैं। उनका कार्य निरंतर चल रहा हैं।

प्रभु रामचंद्र को जैसे जैसे अगस्त्य संबंधी जानकारी प्राप्त होती थी, उनके हृदय में ऋषिमूर्ति अंकित होने लगी।

**'ततः श्वेतश्चतुर्बाहः साक्षसूत्र कमंडलू । अगस्त्य इतिशांतात्मा बवुव ऋषिसत्तम अगस्त्यों नरां नबुप्रशस्तिः काराधुनीव चितत सहस्त्रैः ।'**

दार्शनिक, आयुर्वेद के महान चिकित्सक, देवताओं के साथ साथ दीर्घायु, ब्राह्मण और क्षात्रतेजयुक्त, शापादपी, शारादपी, मानवता के दाता, पुरोहित, कवि और यजमान, शक्तिशाली योद्धा, अथर्वविद्या विशेषज्ञ, तीर्थयात्री, जैसे विभिन्न पहलू से समृद्ध महर्षि अगस्त्य का व्यक्तित्व प्रभू रामचंद्र के अंतर्मन में अंकित होता गया। यद्यपि उन्होंने उज्जैन निवास में अगस्त्य मुनि संबंधी कई जानकारी प्राप्त की थी, किन्तु अगस्त्य मुनि ने दक्षिण की ओर यात्राएँ क्यों की? वहीं पर इतने सारे आश्रम स्थापित क्यों किए? इन प्रश्नों के उत्तर उन्हें नहीं मिल रहे थे, अतएव उन्होंने अगस्त्य कुलपति से पृच्छा की।

''हे अगस्त्ये, गुरुकुलस्वामी अगस्त्य ने दक्षिण क्षेत्र में इतने सारे आश्रम क्यों स्थापित किए होंगे?''

श्री रामचंद्र की जिज्ञासा को ध्यान में रखते हुए आश्रम के कुलपति अगस्त्य ने श्रीरामजी से कहा,

''हे प्रभो, आप तो जानते ही हैं कि, शिवपार्वती इस सृष्टी के आदितत्व हैं। सृष्टिचक्र की सृजनशीलतामें शिवपार्वती के विवाह का विशेष महत्व होता है। वास्तव में सृजनचक्र निरंतर चल रहा है। इसी कारण प्रतिदिन संध्या समय पर शिवपार्वती के विवाह की प्रथा चलती आ रही है। दशसहस्त्र वर्षों के पश्चात आनेवाले सृजनचक्र के काल में शिवपार्वती के विवाह समारोह को अतिमहत्वपूर्ण माना जाता है। सृष्टि का संतुलन उसी पर निर्भर है।''

''दशसहस्त्र वर्षों के पश्चात घटनेवाला यह विवाहपर्व अति शुभ फलदायी था। ऋषि, तपस्वी, राजा, महंत तथा सभी वर्ग के प्रजाजन इनका हिमालय की दिशा में तांता लगा हुआ था। स्वयं श्री गणेशजी इन सभी के स्वागत के लिए व्यस्त थे। विभिन्न आश्रमवासी तथा देवदेवताओं की व्यवस्था का उत्तरदायित्व कार्तिकेय पर था। कैलाश पर विवाह की तैयारी बडी धूमधाम से हो रही थी। साक्षात परब्रह्म मानससरोवर से प्रकट होने वाले थे। ब्रह्मा और विष्णु भी इस

अपूर्व क्षण का आनंद उठाने हेतु उपस्थित हुए थे।''

देवेन्द्र के साथ सभी देवगण कैलाश आए थे। सोमयाग के सत्र प्रारंभ हो चुके थे। देवेन्द्र ने इंद्र दरबार की अप्सराओं को अतिथियों के मनोरंजन हेतु नियुक्त किया था। लंकाद्वीप से लेकर हिमालय तक तथा ब्रह्मवर्त से सिंधु प्रदेश तक समस्त जम्बुद्वीप वंश उपस्थित थे। सप्तद्वीप के द्वीपाधीश का आगमन हो चुका था। तारकाओं ने आकाश में रंगो का त्यौहार आरंभ कर दिया था। सृष्टि की लताओं ने वसन्तोत्सव सजाया था। तीर्थस्थल का पवित्र जल सिंचा जा रहा था। विवाहपर्व के अवसर पर हिमालय ने विश्व के सभी महानुभावों को आमंत्रित किया था। जम्बुद्वीप के उत्तरी शिखर - कैलाश पर देवताओं, मनुष्यों, दानवों की इतनी भीड जमा हुई थी कि, हिमालय को अपना संतुलन बनाए रखना दुष्कर हो रहा था। व्रतस्थ पार्वती के शृंगार परिपूर्ण व्यक्तित्व से सौंदर्य की किरणे प्रतिक्षण फूट रही थी। अपने व्यक्तित्व से विश्व का ध्यान आकर्षित हो रहा था। हिमगिरी ने देवी पार्वती को भगवान शिव के सम्मुख लाया। व्याघ्रचर्म परिधान, रुद्राक्ष मालाओं से विभुषित तथा चिता भस्म से सजे चंद्रमौलेश्वर के गले में जैसे ही गिरिजा पुष्कर माला डालती है, विरागी शिव अनुरागित होकर प्रकृति के साथ नृत्य आरंभ करते हैं। शिवपार्वती के रतिमदन नृत्य से कैलाश डोल उठा। हिमालय समेत पूरी उत्तर दिशा दोलायमान हुई। क्या हो रहा है, कुछ समझ नही आ रहा था। प्रलयंकर के दशसहस्त्रवार्षिक विवाह समारोप में प्रलय का आभास होने लगा। धीरे धीरे उत्तरी दिशा धँसने लगी, पाताल की ओर जाने लगी। दक्षिण क्षेत्र समुद्र से उपर उठने लगा। प्रत्यक्ष परब्रह्म को संसार के प्राणियों की रक्षा करनी थी। प्रकृति और पुरुष के इस लुभावने नृत्य में सभी मग्न हुए थे। मानो अपने आपको खो चुके थे। चूँकि त्रिकालज्ञ प्रलयंकर शिवशंकर का यह नृत्य बारह वर्षों तक चलने वाला था, इसलिए संतुलन बनाए रखने के उपाय करना आवश्यक था। परब्रह्म ने पुरुष को प्रेरित किया। भगवान महेशजी ने अपने सत्व से निर्मित मित्रवरुण के अवतार अगस्त्य को बुलाया।

''हे महर्षि अगस्त्य, मेरे विवाहोत्सव के कारण सर्जनशील सृष्टि असंतुलित हो गई है। दक्षिण द्वीपा वसुंधरा सागर से उपर उठ रही है। उसे रोकने का उत्तरदायित्व हम आपको सौंपते हैं। यद्यपि पृथ्वी पर आपका भ्रमण होता ही है, किन्तु आपका योगसामर्थ्य भी अतुलनीय है। आप अपनी पूरी शक्ति के बल पर

पृथ्वी का संतुलन करें।''

''हे पिताश्री, आप निश्चिंत रहें। आप की कृपा से प्राप्त सभी तपःसामर्थ्य के साथ मैं संतुलन बनाए रखने का प्रयास करूँगा।''

अगस्त्य शिवजी से आशीर्वाद पाकर काशीक्षेत्र से दक्षिण की ओर निकल पडे।

दण्डकारण्य के अपने आश्रम को लांघ कर वे दक्षिण की ओर कूट पर्वत की चोटी पर चले गए। उन्होंने उस पर्वत पर घोर तपस्या की। पद्मासनस्थ अगस्त्य ने अपने दोनो हाथों से सूर्य उपासना आरंभ की। तथा दूसरे दोनो हाथ भूमी पर रखकर दक्षिण दिशा को फिर से नीचे जाने का आदेश दिया। अगस्त्य के आदेश से दक्षिण दिशा अपने पूर्व स्थान पर जाने लगी।

जाते जाते दक्षिण दिशा ने अगस्त्यों से प्रार्थना की, ''प्रत्यक्ष शिवजी ने आप के रूप में यहाँ आकर हमें दर्शन दिएं। हम धन्य हुए प्रभो। अब आप दक्षिण में पृथ्वी को प्रबुद्ध बनाकर दक्षिण में भी शिवपार्वती का विवाहोत्सव नित्य मनाने का प्रबंध करें।''

''तथास्तु''

महर्षि अगस्त्य ने शिवजी की आज्ञा से दक्षिण को आश्वस्त किया। दक्षिण में भूमि फिर से संतुलित हुई। किसी भी संघर्ष की ज्वाला भडकने के पूर्व महर्षि अगस्त्य ने अपने भीतर को शिवशक्ति का प्रदर्शन किया। उनके इस शक्ति प्रदर्शन से सचिंत सूर्यदेव भी प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने वंशपर गर्व अनुभव किया। शिवपार्वती के विवाहपर्व पश्चात सभी चराचर अपने अपने स्थान पर लौट गए। दक्षिण में चराचर अपनी भूमि की ओर देखकर हैरान रह गए। अगस्त्य मुनि के शक्ति प्रकाश से घने वन सुंदर उपवन की तरह लग रहे थे। कहीं कहीं मानसरोवर जैसी झीलें थी। पृथ्वी कमल फुलों से भरी हुई थी। पंचगंगा की धारा असाधारण उत्साह के साथ बह रही थी। नगरों की संरचना अधूरी लगती थी। बादामी, अगस्त्यस्थान, अगस्त्यकूट, वेदारण्य जैसे स्थानों पर अगस्त्यों के आश्रम स्थापित किए गए थे।

विवाह समारोह में उपस्थित पाण्ड्य राजाओं को श्री नारदजी ने अगस्त्य के कार्य से पहले ही अवगत कराया था। समारोह के पश्चात जब पाण्ड्य वापसी पर निकल पडे तो मार्ग पर उन्होंने अगस्त्य के आश्रम में प्रवेश किया और अगस्त्यों

की प्रशंसा की। अगस्त्य प्रसन्न हुए। उन्होंने पाण्ड्य राजाओं का पौरोहित्य, गुरुकुलपद स्वीकार किया। दक्षिण स्थित क्रतु, पुलह, पुलस्त्य जैसे दाक्षिणात्य लोगों ने दक्षिण क्षेत्र के परिवर्तन को देखकर अगस्त्यगोत्र स्वीकार किया।

''महर्षि अगस्त्य के कर्तृत्व से उत्तर-दक्षिण क्षेत्र अगस्त्यमय हुआ था। अथर्वण अगस्त्य के इस कर्तृत्व का रहस्य, हे प्रभो, भगवान शिव की शक्ति में छिपा है।''

''अगस्त्य ने पाण्ड्य लोक के पुरोहित होने के नाते, सूर्य उर्जा, विष्णूतत्व का प्रसार किया। कृषि की विभिन्न कार्यप्रणालियाँ विकसित की। कृषकों का कृषि संबंधी मार्गदर्शन के साथ साथ योगसामर्थ्य, आयुर्वेद अथर्वण के महत्व पर जोर दिया। दुष्टों का अहंकार मिटाने के लिए अभियान शुरू किए। दक्षिण में अगस्त्य आश्रम में गुरुकुलों का प्रारंभ हुआ। गंगायमुना किनारे पर विकसित हुआ कृषिज्ञान दक्षिण तक आ गया। युद्धकौशल्य भी विकसित हुआ। दक्षिण की कला, संगीत, नृत्य अगस्त्य आश्रम में अध्ययन के विषय बनें। आश्रम में, शल्यचिकित्सा, रसचिकित्सा मंत्रसामर्थ्य की भी शिक्षा दी जाती थी। महर्षि अगस्त्य ने दक्षिण में यज्ञ सत्रों का आयोजन कर यज्ञसंस्था की स्थापना की। अगस्त्याश्रमोंकी व्यवस्था करते समय अपने गोत्रज को सावधानी से चुना गया था। उन्हें आश्रम का कुलपति का पद देकर महर्षि अगस्त्य ने अपनी तपस्या को एक निश्चित मोड दिया। उन्होंने दक्षिणी लोगों की भाषाओं को अपनाकर और उनका प्रबंध करके स्थानीय लोगों तक अपना ज्ञान फैलाया। दक्षिणी लोग अगस्त्य को ईश्वर मानने लगे, शिवस्वरूप मानने लगे।

''दक्षिण में जाकर, अगस्त्यों ने सभी प्राणियों के लिए शिव पार्वती द्वारा प्राप्त वरदान का उपयोग किया।'' अगस्त्य ने कहा।

''ऐसा कौन सा वरदान दिया था?'' भगवान रामचंद्र ने पूछा।

''जब कभी भी अगस्त्य मन में स्मरण करेंगे, तो शिवपार्वती उनके सामने प्रकट होंगे। अगस्त्य ने लोगों के कल्याण के लिए दक्षिण की योजना बनाई और शिवालय तथा तीर्थ स्थलों का निर्माण किया। ज्ञान और वैराग्य, समृद्धि तथा शांति का आनंद लिया। किन्तु...''

''किन्तु क्या मुनिवर?' श्रीराम ने पूछा।

''महर्षि अगस्त्य के इस स्वयंसिद्ध कार्य ने आर्यतेज को प्रकट किया।

किन्तु मानवी प्रकृतिनुसार अहंकार, बल, शत्रुता, द्वेष, ईर्ष्या जैसे अवगुणों से मनुष्य को राक्षस बना दिया है। शिवभक्ति का उपयोग दैवीय प्रकृति को मारकर एक राक्षसी राज्य बनाने के लिए किया जा रहा है।'' अगस्त्य ने कहा।

''मुनिवर आप चिंता ना करें। अगस्त्यों के मार्ग पर चलने के लिए हम प्रेरित हुए हैं। तथापि मन में एक प्रश्न उभरकर आता है कि, यद्यपि अगस्त्य मुनि का भ्रमण आजतक चल रहा है, तो यह अनर्थ क्यों?''

''प्रभो, यह सत्य है कि, अगस्त्य के ज्ञानयज्ञ से वे एक आत्म प्रकाशित तारा के रूप में अविचल स्थान पर विराजमान हुए है। किन्तु इस स्थान से उन्हें प्रत्यक्ष कार्य करना संभव नही हो रहा हैं। उन्हें परब्रह्मरूप प्राप्त हुआ तथापि जिस कार्य का उन्होंने आरंभ किया उसमें उन्ही के गोत्रजों से बाधाएँ आने लगी। अगस्त्य प्रेरणा तो प्राप्त होती हैं, किन्तु आवश्यकता होती है मनुष्य के कर्तव्य पालन की। इसीलिए प्रत्येक आश्रम में युगोयुगों तक अगस्त्यों का निर्माण होना आवश्यक हो। अगस्त्यों में संगीत, भाषा, साहित्य, कृषि, अथर्व, आयुर्वेद और योग के साथ साथ लोक कल्याण के प्रति संतुलित दृष्टीकोण केंद्रित था। ऐसा सर्वज्ञ ज्ञान प्राप्त होना चाहिए, इसके लिए मान्य अगस्त्यों से ही प्रार्थना करनी होगी। साधना और अनुसंधान करना ही हमारे हाथ है। अब यह हम पर निर्भर हैं कि, हम अगस्त्य मुनि से प्रार्थना कर उनके द्वारा प्राप्त मार्गदर्शन से ही शोध कार्य एवं साधना प्रारंभ करें।''

'हे मुनिवर, आपने कहा कि, अगस्त्य मुनि ने व्यवस्था का निर्माण किया, यदि इसे अधिक स्पष्ट करें तो बडी कृपा होगी।'' रामचंद्रजी ने कहा।

''हे प्रभो, सहस्त्र वर्षों से अगस्त्य आश्रम में अगस्त्यनीति मौखिक रूप से चली आ रही है। हम आपको उस से अवगत करा देते हैं, इसलिए इसे याद रखें।'' अगस्त्य ने कहना प्रारंभ किया।

मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चार गुणों का ठीक से पालन करना चाहिए। जितना हो सके, युद्धों से बचना चाहिए। करुणा, क्षमा, व्यावहारिकता सर्वोपरि है। इसका पालन करना चाहिए। चार गुणों की दृष्टि से व्यवहार करते हुए धन प्रबंधन, राज्य प्रबंधन, सत्वनिष्ठा, मानवनिष्ठा, कृषि व्यवस्थापन, स्वास्थ्य प्रबंधन के सभी बातो में परब्रह्म, त्रिदेवशक्ति, दिव्यगुण, निसंगनिष्ठा, अर्थात पंचतत्वनिष्ठा की आवश्यकता बताई है। उसकी नीति पृथ्वी के सभी राजाओं में

फैलने की आशा की जाती है। अगस्त्य आश्रम की इन मौखिक परंपराओं का निरंतर प्रसार किया जाए। कुछ आश्रमो में हम प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु कुछ दानव इस कार्य में बाधाएँ खडी कर देते हैं। प्रभु रामचंद्र, लक्ष्मण तथा जानकी महर्षि अगस्त्य के अवतार कार्य सुनकर विस्मित हो रहे थे। जानकी लगातार एक प्रश्न से परेशान हो रही थी। ऐसा पराक्रमी पुरुष, चार पुरुषार्थों का अभ्यास कैसे कर सकता है? अगस्त्य मुनि ने विवाह कब किया? सीता माताने पुष्करतीर्थ से उज्जैन तक प्रभु रामचंद्र के साथ आए हुए अगस्त्य को पूछने का निश्चय किया।

''हे अगस्त्यपीठाधीश अगस्त्ये, अगस्त्यों की कई लोककल्याणकारी कथाएँ हमने सुनी। तथापि उनके विवाह की कथा हम नहीं सुन पाएँ। शिवपार्वती दशसहस्त्रवार्षिक विवाह समारोह देखने वाले इन महर्षि का अपना विवाह कैसे संपन्न हुआ यह सुनने के लिए मैं उत्कंठित हूँ।'' सीतामाता ने अपनी इच्छा प्रदर्शित की।

''माते, आपकी मनोकामना अवश्य पूरी होगी। मांदार्य मान मान्य अगस्त्य विवाह एक अलौकिक इतिहास है। इस इतिहास को सुनकर पुरुषार्थ को नैतिकता की शक्ति मिलती है।''

''हे मुनिवर, हम वनवास पर निकल पडे हैं, क्या ऐसे अवसर पर यह अगस्त्य कथा हमारे लिए और अधिक फलदायी नहीं होगी?''

''क्यों नहीं माते, अवश्य होगी'', इतना कह कर अगस्त्य ने अगस्त्य विवाह कथा सुनाना प्रारंभ किया।

''हे माते, अग्नि अर्थात मित्ररूप में सूर्यतेज है, उनके पास करुणा का एक हृदय भी है। वे हिमपुत्र है। तथापि, चंद्रमौलीश्वर का जहाँ निवासस्थान हैं, उसी हिमालय में उनका जन्म हुआ। अतएव उनमें शिवतेज भी केंद्रित हुआ है। इसीकारण वे विरक्ति युक्त तेजस्वी किन्तु दयाघन, मानो साक्षात् शिवरूप में ही प्रकट हुए हैं। इनकी वैवाहिक स्थिती शिव के समान ही है। विरक्ति तथा ज्ञानसिद्ध पार्वती का उमा जैसी लोपामुद्रा के साथ उन्होंने विवाह किया है। तथापि दक्षिण निवासी लोगों की जीवनदायिनी कावेरी नदी भी उनकी पत्नी है। जैसे भगवान शिवशंकर गौरी और गंगा के पति हैं, उसी प्रकार महर्षि अगस्त्य भी लोपामुद्रा और कावेरी के पति है। गौरी और गंगा दोनों भी शिवभक्त, शिष्या एवं पत्नियाँ, वैसे ही लोपामुद्रा और कावेरी अगस्त्यभक्त शिष्या एवं पत्नियाँ।''

''हे मुनिवर, महर्षि अगस्त्य के ये दोनो संबंध किस प्रकार जुड गए यह जानने के लिए हम आत्यंतिक उत्सुक हैं। अतः और अधिक विलंब किए बिना हमें उनकी यह कथा सुनाने का कष्ट करें।''

''तथास्तु, हे राम-जानकी, हजारों वर्ष पूर्व की यह कथा है। अगस्त्य आश्रम के पीठासीन देवता अगस्त्य एक बार तीर्थ यात्रा जा रहे थे, उन्हें सोमयाग करना था। पथ पर उन्हें एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया। उन्होंने अपने पितरों को एक घृणित कुएँ में अपना सिर नीचे लटकाते हुए देखा। अपने पितरों को ऐसी अवस्था में देखकर अगस्त्य बहुत दुखी हुएं।''

''हे पिताओं, आपको इस अवस्था में किसने रखा और क्यों? आप अगस्त्य गोत्री हैं। अगस्त्य गोत्रजों को ऐसी अवस्था प्राप्त होने का क्या कारण है? कुलपति ने महर्षि अगस्त्य से पृच्छा की।''

''वत्स, तुम अगस्त्य गोत्रज हो, इसलिए कहता हूँ। सुनो, अगस्त्यों का गोत्र हम बडे गर्व से धारण करते आ रहे हैं। इस गोत्र को अनेको राजाओं ने बडी श्रद्धा और गर्व के साथ स्वीकारा हैं। किन्तु मृत्यु के पश्चात हम सभी की यहीं स्थिती हुई हैं। ऐसे हजारों अगस्त्य पितर इसी अवस्था में लटक रहे हैं। किन्तु लोककल्याणकारी कार्य की चाह रखनेवाले परोपकारी शांत हृदय के मान अगस्त्यों को इस बात का स्मरण नहीं।''

यद्यपि, मान अगस्त्य मर्त्यलोक कें नश्वर संसार में मनुष्य के रूप में कार्य कर रहे हैं, वे अमानवी, मित्रावरुणी एवम् देव श्रेणी में हैं। इसलिए उनकी श्रेणी के पितरों को नरकयातना भोगने का कोई कारण नहीं। किन्तु गोत्र के रूप में उनका बंधन पुरुषार्थ पूर्ति के इस चक्र में फँस गया हैं। स्वीकृत मान मान्य मांदार्य, अगस्त्य नीति के अनुसार चारों पुरुषार्थ एवम् चारों आश्रम का पालन करना मनुष्य का कर्तव्य है। किन्तु ये चारो पुरुषार्थ अन्योन्याश्रित हैं। उनका पालन करना चाहिए। इसलिए हम इस नारकीय पीडा से तब तक नहीं बच पाएँगे, जब तक कि मान मान्दार्य अगस्त्य ऋषि संतान उत्पन्न न करें।''

''किन्तु मान मान्य अगस्त्य तो ब्रह्मचारी, तपस्वी, एवम् अतिवृद्ध महर्षि हैं। उनके लिए काम पुरुषार्थ कैसे?'' कुलपति अगस्त्य ने पुनः प्रश्न किया।

''हे अगस्त्य गोत्रज, मान मान्दार्य अगस्त्य ने आश्रम स्थापित करके एक प्रकार से घर गृहस्थी की स्थापना की है, इसलिए शास्त्र के अनुसार उन्हें पुरुषार्थ

का पालन करना ही चाहिए, और ये उन्हें भी ज्ञात है।'' पितरों ने कहा।

''हे पितरों, मेरे लिए क्या आज्ञा हैं? कुलपति अगस्त्य ने पूछा।''

''हे अगस्त्य पुत्र, तुम हमारी यह बाते उन्हे निवेदन करो।''

''हे पितरों, मान अगस्त्य इस समय कहाँ होंगे?''

''हे गोत्रज, महर्षि अगस्त्य ने तपस्या के लिए गंगागोदा परिक्षेत्र में ब्रह्मगिरी को चुना हैं। वहाँ से वे कभी-कभी पंचवटी आश्रम आते हैं। तथापि ब्रह्मगिरी पर शिवजी ने अपनी जटाओं को बिखेरकर गंगा का बहाव गोदावरी के रूप में करवा दिया। उस गुफा के समीप अगस्त्य ध्यानमग्न होकर देवताओं और राक्षसों के कर्मों पर दृष्टि बनाए रखे हुए हैं। मानवकल्याण तथा देवेन्द्र की सुरक्षा का उत्तरदायित्व को निभा रहे हैं। वहाँ पर जाओ और हमारी बातें निवेदन करो।''

''हे पितरों, आपकी अवस्था देखकर मैं व्यथित हूँ। दुखी मन से मैं आप से विदा लेता हूँ'' ऐसा कहकर कुलपति पितरों से विदा ली और योग सामर्थ्य से वे सीधे ब्रह्मगिरी पहुँच गए। मान मान्दार्य अगस्त्य को त्रिवार वंदन कर उन्होंने अगस्त्य मुनि को उनकी ध्यानमग्नता ते सचेत करने के लिए अगस्त्य महिमा गान आरंभ किया। अगस्त्य रचित सामगायन सुनकर अगस्त्यधीरे-धीरे सचेत हुए। अपने सम्मुख उन्होंने कुलपति गोत्रज अगस्त्य को पाया।

''हे गोत्रज वत्स, आप यहाँ पर क्यों आए हैं? निर्भय होकर निवेदन करें, क्यों कि आप जानते हैं कि, मेरे आश्रम निवासी पीठासीन अगस्त्य मेरे ही रूप होते है और वे सदा कार्यरत रहे यह मेरा नियम है, ये भी आप जानते हैं।'' मान्दाचार्य ने कहा।

''हे जगद्गुरू महर्षे, हमारे गोत्र के पितर उलटी अवस्था में लटक कर कष्ट झेल रहे हैं। उनकी रक्षा हो तथा उन्हें मोक्ष प्राप्त हों।''

''किन्तु यह अवस्था उन्हे किस कारण प्राप्त हुई?'' मान ने पूछा।

''हे ब्रह्मर्षे, मैं क्षमा चाहता हूँ, मुझे अभयदान दें, किन्तु आप तो त्रिकालज्ञानी हैं। आप सब जानते हैं, आप ही यदि इसका पता लगाएं तो उचित होगा।''

''नारायण-नारायण, हे मान्दार्य, मेरा प्रणाम स्वीकार करें। जब आप गोत्रज पितरों के बारे में पूछ रहे हैं, तो आपके द्वारा एक प्रमाद हुआ है।''

''कैसा प्रमाद?'' अगस्त्य ने कुछ अप्रसन्नता से पूछा।

''आप पुरुषार्थ पालन के लिए दृढ हैं, तथापि आप स्वयं पुरुषार्थ पालन

नहीं कर रहे हैं, ऐसा क्यों?'' नारदजी ने प्रतिप्रश्न किया।

''हे ब्रह्मर्षि नारद, मेरे द्वारा कैसा प्रमाद हुआ है, कृपया उसे स्पष्ट करें।'' अगस्त्य ने प्रार्थना की।

''हे महर्षे, आप धर्मरक्षक, महापराक्रमी, देवताओं के भी रक्षणकर्ता हैं। मनुष्य का स्वास्थ्य, बल, अन्न तथा जल के लिए निरंतर प्रयास कर रहे हैं। असुरों का संहार करके आपने मृत्युलोक तथा स्वर्गलोक को, इतना ही नहीं, इंद्रलोक, कैलाश तथा विष्णूलोक आदि सभीं को अभयदान दिया हैं। तथापि गोत्र स्थापित करने के पश्चात भी आप अपने गोत्रजों के पितरों को नरकपीडा सहने के लिए विवश कर रहे हैं। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो, जब तक गोत्र के मूल पुरुष द्वारा प्रजोत्पादन नहीं होगा तब तक अन्य पुरुषार्थ सिद्ध एवम् फलदायी होना असंभव हैं।''

''तात्पर्य आप विवाह करके संतति निर्माण कार्य नहीं करेंगे आपके पितरों का उद्धार नहीं होगा। इसलिए आपको चाहिए कि, आप एक अच्छे प्रतिभाशाली संतान को जन्म देकर अपने पितरोंका उद्धार करें। अन्यथा आपके पुरुषार्थ मे कमी रह जाएगी।''

''हे ब्रह्मर्षि नारद, अच्छा हुआ आपने मुझे सचेत किया। मैं अपने पितरों का अनंत अपराधी हूँ। आश्रम गुरुकुलवासी होकर भी मैंने पुरुषार्थों का पालन नहीं किया। अतएव मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि मैं अपने पितरों को नर्कपीडा से मुक्त कराऊँगा।'' इतना कहकर कुलपति अगस्त्य ने नारद और अगस्त्य मुनि को वंदन कर बडी प्रसन्नता से पितरों को समाचार सुनाने हेतु प्रस्थान किया। प्रत्यक्ष ब्रह्मदेव का संदेश सुनाकर ब्रह्मर्षि नारद भी धन्य हुए।

''मान मान्दार्य अगस्त्य सोचने लगे कि, अपनी संतान को क्षति न पहुँचे इसके लिए क्या करना चाहिए? बहुत सोच-विचार के पश्चात भी उन्हें कोई समाधान नहीं मिला। अंतदृष्टि से उन्होंने समूचा ब्रह्मांड ढूँढा, किन्तु उत्तम संतान देने योग्य स्त्री उन्हें नहीं दिखाई दी। अंत में उन्होंने अपने मन में एक निर्णय लिया।''

''विश्व की समूची मानवी स्त्रियों में से सर्वश्रेष्ठ शरीर के हिस्से इकट्ठा किए। अन्य प्राणियों के भी सर्वोत्तम गुण, शरीर के हिस्से एक साथ लाए और अथर्वण तथा अपनी तपस्या के बलपर कल्पना से एक अतिसुंदर, दिव्य पुत्र दे सके ऐसे

स्त्री का निर्माण किया। वह इंद्रलोक की अप्सराओं से भी रुपवती थी। बालिका तो तैयार की, किन्तु जब तक वह विवाहयोग्य नहीं होती, तब तक उसे संभालेगा कौन? यह प्रश्न अगस्त्य के मन में उत्पन्न हुआ।''

''विदर्भ देश के राजा मानी पुत्रश्रा संतान प्राप्ति हेतु तपस्या कर रहे थे। यही सुअवसर पाकर अगस्त्य, बालिका को लेकर उस विदर्भाधिपति के पास पहुँच गए। राजा को पूरी बात समझाकर उस बालिका को संतान के रूप में उसे सौंप दिया। विदर्भाधिपति को बालिका के निर्माण का प्रयोजन बतलाया। विदर्भ नरेश अतिप्रसन्न होकर अपने घर लौट आए। अपनी महाराणी को यह शुभसमाचार सुनाकर बालिका को उसे सौंप दिया।''

अगस्त्य द्वारा निर्मित अतिसुंदर - रुपवती कन्या राजमहल में राणी की ममता पाकर बडी हो रही थी। बिजली जैसी चंचल एवम् तेजस्विनी बालिका सब का ध्यान आकर्षित करती थी। देखते-देखते समूचे जम्बुद्वीप में यह समाचार पवन गति से चर्चा का विषय बना। अगस्त्य निर्मित यह अद्भुत-अलौकिक कन्या देखने तथा विदर्भनरेश का अभिनंदन करने हेतु राजा-महाराजाओं की भीड जमने लगी। विदर्भाधिपति ने कन्या का नामकरण विधी बडे धूमधाम से मनाया। उसका नाम लोपामुद्रा रखा गया।

अगस्त्य ने ही अपनी तेजस्विता के बलपर निर्माण की यह कन्या अग्निज्वाला दीप्तिमान तथा फुलों जैसी कोमल, उतनी ही लाडली थी। सभी प्रकार का ज्ञान उसे प्राप्त हो, इसलिए, मुनि वसिष्ठ को निमंत्रित किया गया था। अपने ज्येष्ठ भ्राता अगस्त्य ने संतान प्राप्ति हेतु निर्माण की गई इस अलौकिक कन्या को ज्ञान देने का प्रस्ताव वसिष्ठ ने तुरंत स्वीकार किया। विदर्भ राज्ञी लोपामुद्रा से राजा का महल खिल उठता था। चंद्रमा की कला समान कल्याणी बडी हो रही थी, वैसे उसका सौंदर्य खिल रहा था।

उसे निहारते देखकर सूर्य-चंद्र भी विस्मित हो जाते थे। कल्याणी की सेवा के लिए विदर्भ नरेश ने सैंकडो दासीयाँ नियुक्त की थी। उन दासियों के मध्य घिरी हुई लोपामुद्रा नभ के तारा-पुँज में रोहिणीसम शोभायमान लग रही थी।

''लोपामुद्रा के यौवन में प्रवेश करते ही उसका रूपसौंदर्य और अधिक खिलने लगा। उसकी सुंदरता से वह, दीप्तिमान तारका सम चमकती थी। सुलक्षणी, सुवचनी, सदाचारिणी, विद्यासंपन्न, सत्यनिष्ठ लोपामुद्रा अगस्त्य की

भांति प्रतिभासंपन्न थी। लोपामुद्रा विवाहयोग्य होते ही विदर्भ नरेश के मन में उसके विवाह के विचार आने लगे। विदर्भाधिपति चाहते थे कि, अप्सराओं से भी अधिक सुंदर अपनी लाडली के लिए देश-विदेश के पराक्रमी शूर वीर ज्ञानसंपन्न राजाओं से उसका हाथ माँगा जाए। उसने अपने विश्वसनीय मंत्रियों को राजप्रसाद में बुलाकर अनके सम्मुख लोपामुद्रा के विवाह का प्रस्ताव रखा।

''हे मान्य अधिकारी गण, लोपामुद्रा के विवाह के लिए हम उत्सुक हैं। हम चाहते हैं कि, उसका स्वयंवर रचा जाए। इस विषय पर आप परामर्श दें।''

''सभी मंत्रीगण सर झुकाए बैठे थे। किसी ने कुछ नही कहा। सभी चूप थे-मौन। कुछ क्षण कक्ष में निस्तब्धता थी। राजा कुछ चिन्तित, कुछ उद्विग्न हो उठा। कुछ क्रोधित स्वर में उसने कहा-

''हे मान्यवर, कन्या का स्वयंवर रचाना एक पिता का कर्तव्य होता है, मैंने आपसे परामर्श माँगा, किन्तु आप मौन हैं, क्यों?''

''हे राजन तनिक सोचिए। उग्र तपस्वी अनुशासनप्रिय, लोककल्याणकारी अथर्वण अगस्त्य ऋषि ने स्वयं इस कन्या का पुत्र प्राप्ति हेतु निर्माण किया था। जिस ऋषि ने अपनी इच्छानुसार मनचाही पत्नी का निर्माण किया, ईश्वर, मानव, ऋषि, दानव सभी ने उनके कार्य को नमन किया हैं। इस कन्या पर अगस्त्य मुनि का अधिकार है। उन्होंने आपको यह कन्या इसलिए दी है कि, आपके वंश की मनोकामना पूरी हो। हमें उनकी धरोहर लौटाकर उन्हें तथा स्वयं को गौरवान्वित करना चाहिए। प्रधानमंत्री ने परामर्श किया।

''हे मान्यवर, अगस्त्य एक उग्र तपस्वी ऋषि होने के साथ-साथ एक परोपकारी और व्रतधारी भी हैं। क्या हजारो वर्ष आयुवाले बुड्ढे अगस्त्य को नवजात पुत्री देना क्या घोर अन्याय नहीं होगा और एक ब्रह्मचारी के लिए अपनी वृद्धावस्था में बहुत ही छोटी कन्या के साथ विवाह करना तर्कसंगत और प्रशंसनीय कैसे हो सकता है?''

''विदर्भ नरेश का निवेदन सुन कर सभी मंत्रीगण पुनःश्च मौन हुए। तथापि राजा को उद्विग्न देख प्रधान मान्यवर तथा राजपुरोहित ने राजा से कहा कि वे अन्य राजाओं और प्रत्यक्ष अगस्त्यों से परामर्श लें।''

''विदर्भाधिपति के वदन पर चिंता के बादल घिरते देखे। अपनी कन्या किसे दी जाए इस पर सोचते रहें। उस सुंदर और दीप्तिमान युवती को देखने वाला

कोई भी योग्य युवा व्यक्ति लोपामुद्रा का हाथ माँगने के लिए तैयार नहीं था। अधिकांश राजाओं को समाचार प्राप्त हुआ था, किन्तु महर्षि अगस्त्य के भय से किसी ने भी लोपामुद्रा की माँग नहीं की। सभी अगस्त्यों के क्रोध से भली-भाँति परिचित थे।''

''अगस्त्य को लगा कि, लोपामुद्रा गृहस्थाश्रम योग्य हुई है, उनके मन में विवाह के विचार ने प्रवेश किया। वे पृथ्वीपति विदर्भाधीश से मिलने विदर्भ नगरी प्रस्तुत हुए। विदर्भ नरेश ने उनका यथोचित स्वागत किया।''

''हे राजन, मैंने संतान प्राप्ति हेतु कन्या निर्माण की, अब वह विवाहयोग्य हो चुकी है। तुमने और तुम्हारी पत्नी ने उसकी इतनी ममता से देखभाल की, पालनपोषण किया, इसके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ। तथापि अब मैं उस कन्या के लिए याचना कर रहा हूँ। इसलिए लोपामुद्रा को मेरी पत्नी के रूप में मुझे प्रदान करो। अगस्त्य ने अपनी मनोकामना स्पष्ट की।''

''विदर्भ नरेश को कुछ सूझाई नहीं दे रहा था। एक अनजाने आतंक ने उसके अन्तर-बाहर को उद्विग्न कर दिया। जिस क्षण का उसे भय था वही उसके सम्मुख उपस्थित हुआ। अगस्त्य का विरोध करने का सामर्थ्य उसमें नहीं था, और कन्या देने के लिए भी उसका मन नहीं हो रहा था। विदर्भाधिपति अपनी भार्या के साथ विचार-विमर्श करने उनके कक्ष में गए। दोनो आपस में चर्चा में इतने व्यस्त हुए थे कि, उन्हें ध्यान ही नहीं रहा कि बाहर प्रासाद में अगस्त्य प्रतीक्षा कर रहे होंगे। लोपामुद्रा राजा और राणी की बाते सुन रही थी।

''हे प्रिये, मैं अत्यंत व्यथित हूँ, दुःख से अभिभूत हूँ। कुछ भी समझ नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ? यदि हम महर्षि अगस्त्य को कन्या नहीं देते है, तो बलशाली वृद्ध महर्षि क्रोधित होकर शापाग्नि से हमें भस्म कर देंगे। और यदि हम देना चाहे तो लोपामुद्रा जैसी कोमल, अद्वितीय रूप-लावण्यमयी कन्या को हजारो वर्ष आयु वाले वृद्ध को दान देकर उस पर अन्याय होगा। तुम ही बताओ मुझे क्या करना चाहिए?'

''हे प्राणनाथ, मेरा विचार है, हमे ऋषिवर को ही विनम्र निवेदन करना चाहिए। लोककल्याण हेतु अपना जीवन व्यतित करने वाले महर्षि अगस्त्य हमें अवश्य कोई मार्ग दिखाएंगे।''

''किन्तु उन्होंने स्वयं लोपामुद्रा को माँगा है।''

‘‘हे नाथ, भगवान अगस्त्य वास्तव में परब्रह्मरूप ही, और उनका जन्म लोककल्याण हेतु हुआ था। अतः हमें उन्हीं की शरण में जाना चाहिए।’’

‘‘विदर्भाधिपति अपनी भार्यासमेत महर्षि अगस्त्य के सम्मुख आ गए। दोनों ने नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम किया।

‘‘हे भगवन् अगस्त्य ऋषे, हम आपकी शरण में है, हमें अभयदान दें।’’

‘‘हे राजन, निर्भय होकर, स्पष्ट शब्दों में तुम जो कहना चाहते हो कह डालो।’’

‘‘हे अगस्त्य ऋषे, आपने पृथ्वी के उत्तर और दक्षिण भाग को एकजूट किया है। इतना ही नहीं, आप ही है, जिन्होंने क्षीरसागर में पृथ्वी का संतुलन बनाए रखा है। श्रमजीवियों को सम्मान देनेवाले तथा शास्ताओं से भी लोककल्याणकारी कार्य करवा लेने की क्षमता आप रखते हैं। आप तेजस्वी एवम् दयालु युगपुरुष हैं। आप देवताओं के भी रक्षणकर्ता हैं। आपने असुरों पर भी शासन किया हैं। आपने विश्व को उज्ज्वल आर्यमय बनाने के लिए अगस्त्य आश्रमों की योजना बनाई हैं। आपने जनस्वास्थ्य का ही नहीं, अपितु प्रकृति के स्वास्थ्य के लिए अथर्वण एवं चिकित्सा ज्ञान का उपयोग किया हैं। आप युद्ध कला में कुशल हैं। सभी पापों को पचाने की शक्ति आप रखते हैं। आपने स्वयं निर्माण की कन्या हमें देकर हमें संतान प्राप्ति का सुख दिया हैं। इस ब्रह्मांड में ऐसा कुछ भी नहीं हैं, जो आपके लिए असंभव हो। इसीकारण हम आपकी शरण में आए हैं।’’

‘‘हे राज्ञी, तुम्हारे स्तुतिपाठ से मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारी मनोकामना शीघ्र निवेदन कर।’’

‘‘हे महर्षि अगस्त्य मुनिवर, हम चाहते हैं कि, आप लोपामुद्रा से विवाह करने का दुराग्रह ना करें । आप अतिवृद्ध हैं और लोपामुद्रा एक बहुत ही सुकुमार युवती है। इसके अतिरिक्त आप ही ने उसका निर्माण किया है। अर्थात...’’

‘‘हे राज्ञी, तुम अज्ञानता से बोल रही हो। लोपामुद्रा से विवाह करना मेरे लिए अनिवार्य है। इसलिए कि, मैंने संकल्पपूर्वक अपने प्रतिभाबल से उसे अपनी पत्नी के रूप में निर्माण किया है। इस कारण से वह मेरी कन्या नही हैं। और एक बात, योगीतपस्वी महर्षि देवत्व को प्राप्त करते हैं, अर्थात वे वृद्ध अथवा युवा नहीं होते। इसलिए मै लोपामुद्रा पर कोई अन्याय नहीं कर रहा हूँ। लोपामुद्रा कोई साधारण कन्या नहीं हैं। वह ब्रह्मज्ञान से सिद्ध स्त्री होने के कारण मेरी बात

को अच्छी तरह से समझ रही होगी। आत्मज्ञान को काल और समय की कोई सीमाएँ नहीं होती, वह कैवल्य होता है। इसलिए तुम यह हठ त्याग कर लोपामुद्रा को शीघ्र मुझे सौंप दो।''

विदर्भाधिपति किंकर्तव्यमूढ हुए थे। उन्होंने असहाय दृष्टि से लोपामुद्रा की ओर देखा।

''हे तात, हे पृथ्वीपते, मेरे अकेले के लिए ना सोचकर अपने राज्य के बारे में विचार करें। हे माते, तुमने मुझे अपनी कोख से जन्म नहीं दिया, अपितु उतना ही वात्सल्य दिया। तथापि, हे मातापिता, आप मेरे लिए दुखी ना हो। आप मुझे विश्ववंदनीय महर्षि अगस्त्यों को समर्पित करें। मैंने उनकी भार्या के रूप में ही जन्म लिया है। माते, अगस्त्य प्रकाश तथा दयार्द्रता से उत्पन्न हुए हैं।''

उन्हे अयोनिसंभव जन्म प्राप्त हुआ हैं और वे शिवतेज से पुनीत हुए हैं। यद्यपि उन्हे दैवी सामर्थ्य प्राप्त हैं, अपितु मर्त्यलोक कल्याण हेतु उन्हे संसार में संचार करना पडा। यह सत्य है कि, उन्होंने अगस्त्य गोत्र की रचना की। अगस्त्य गोत्रज मर्त्य होने के कारण उन्हें मरणोपरांत स्थिती प्राप्त होती हैं। इस स्थिती में मोक्षप्राप्ति हेतु उनके पौत्रौं ने कर्तव्य का पालन करना आवश्यक हैं। इस कर्तव्य का पालन करने के लिए ही महर्षि अगस्त्य ने मर्त्य विश्व के विभिन्न अंगों को एकसाथ जोडकर अपने प्रतिभासामर्थ्य से मुझे उनकी भार्या के रूप में निर्माण किया। हे माता, हे तात, मैं मर्त्य विश्व की हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं, किन्तु मेरा जन्म अयोनिसंभव एवम् अगस्त्यसंभव होने के कारण मेरा विवाह किसी अन्य के साथ करना कैसे संभव होगा? साथ ही आपने मेरा यथार्थ नामकरण किया है। लोपामुद्रा। जिसकी मुद्रा का लोप हुआ है ऐसी मैं वस्तुतः अगस्त्यों में ही समाविष्ट हूँ। प्रकृति नियमानुसार मात्र हम दोनों के शरीर भिन्न है। यह देखते हुए कि, मेरा कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, आप मुझे अगस्त्य गोत्रजों की मुक्ति के लिए महर्षि अगस्त्य को प्रदान करे। आप विलाप ना करें। आप दुखी ना हो। लोपामुद्रा ने माता-पिता को समझाया। विदर्भाधिपति और विदर्भ महाराणी अवाक् रह गए, निःशब्द होकर अपनी लाडली पुत्री की गहन बाते सुनते ही रहें। परंतु अगस्त्य ध्यानस्थ हुए थे।

''हे मुनिश्रेष्ठ, हमें अपनी भूल ज्ञात हुई, प्रभो! हम आपका विवाह धूमधाम से करवा देंगे। बस हमें आपके अनुमती की प्रतीक्षा है।''

‘‘तथास्तु!’’

‘‘राजा ने तुरंत डंका बजाकर अगस्त्य और लोपामुद्रा के विवाह की घोषणा की। देश-विदेश के राजा-महाराजाओं को निमंत्रण भेजे गए। वैदर्भीय भूमि का वातावरण गूंजित हो उठा। अगस्त्य विवाह का समाचार पलभर में समस्त विश्व में फैल गया।’’

‘‘ ‘नारायण नारायण’, सहसा नारदमुनि स्वयं विदर्भाधिपति के सम्मुख प्रकट हुए। उन्हें देखकर विदर्भाधिपति कुछ क्षण के लिए विस्मित रह गए। उन्हें अपनी भूल प्रतीत हुई। उन्होंने नारदजी को प्रणाम किया और दृढता से आलिंगन दिया।’’

‘‘नारदजी की बातें सुनकर विदर्भनरेश को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने प्रार्थनापूर्वक नारदजी पर ही निमंत्रण का उत्तरदायित्व सौंप दिया। नारदजी ने भी बडी प्रसन्नता से उसे स्वीकार किया।’’

‘‘विदर्भभूमि देवताओं के आगमन से पवित्र हुई। इस अनोखे समारोह में उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम समस्त दिशाओं से मानव वंश उपस्थित थे। जैसे ही अगस्त्य ने स्मरण किया, साक्षात शिव-पार्वती प्रकट हुए। मानवीय सामुहिक उत्सव का, एकता का, देवताओं और मनुष्य के एकीभाव का, ऋषिमुनि तपस्वी, इतना ही नहीं, समस्त पर्वत एवम् जलस्त्रोतका, ब्रह्मांड के पंचतत्वों को एकसाथ लानेवाला यह अपूर्व समारोह देखकर कैवल्य भी संतुष्ट हुए। सृष्टिकर्ता को भी सृष्टिनिर्माण की सफलता का अनुभव हुआ। लोपामुद्रा ने महर्षि अगस्त्य को वरमाला पहनाई। समस्त ब्रह्मांड अगस्त्य के विजयनाद से गूँज उठा। इस अवसर पर अर्धनारी नटेश्वर ने नृत्य आरंभ किया। सभी प्राणिमात्र अत्यानंद से शिवपार्वती के साथ नृत्य करने लगे। विदर्भ ललनाओं ने समूहगान आरंभ किया।

**‘अंबर ने दान दिया । धरती ने ले लिया ।**
**लोपामुद्रा का ब्याह । ब्रह्मा ने देख लिया ।।**
**लोपामुद्रा भार्या । भर्ता बना अगस्त्य ।**
**लक्ष्मीनारायण गा जोडा । देखा संसार ने समस्त ।।**
**लक्ष्मीनारायण का ब्याह । शिवपार्वती के समक्ष ।**
**अगस्त्य-लोपा का मिलन । दो शक्तियों का प्रत्यक्ष ।।**
**अंबर ने दान दिया । धरती ने ले लिया ।**

**लोपा–अगस्त्य के ब्याह से । मनुष्य का कल्याण हुआ ।।**
**देवताओं की साक्षी से । पंच तत्त्वों ने देखा ।**
**सूर्यनारायण की कृपा । समारोह हुआ चोखा ।।**
**अगस्त्य लोपा । जैसे शिवपार्वती का रूप ।**
**नारदमुनि का आशीष । मानो ब्रह्मस्वरूप ।।**
**लोपामुद्रा का निर्माण । अगस्त्य बडा जादूगर ।**
**दिया मोक्ष पितरों को । पी गया समंदर ।।**
**ब्रह्मा–विष्णु–महेश संग । सकौतुक देखे धरती ।**
**लोपा माता, अगस्त्य पिता । उतारे हे तुम्हरी आरती ।।**'

''समूचे सृष्टि ने अगस्त्य विवाह का आनंदोत्सव धूमधाम से मनाया। अगस्त्य मुनि के विश्वव्यापी आश्रमों मे उल्लास लहरे दौड रही थी। लोपामुद्रा अगस्त्य के साथ आश्रम में आएगी ऐसा अनुमान था। सभी ने अगस्त्यों को वंदन किया।

यथाविधि कन्यादान करके विदर्भाधिपति धन्य हुए।

''लोपामुद्रा का जैसे गौना का समय आया, तो विवाहमंडप का वातावरण भावुक हुआ। वधू के वेश में सजी लोपामुद्रा अत्याधिक सुंदर दिख रही थी। वह स्वर्गीय अप्सराओं से घिरी हुई थी। इन अप्सराओं के बीच उसका सौंदर्य खिल उठा था। यद्यपि अगस्त्य के तेजस्वी व्यक्तित्व के सामने उसका रूप कुछ फीका प्रतीत हो रहा था। मानो वहाँ पर भी वह लोपामुद्रा ही हुई थी। अगस्त्य ने उसकी ओर दृष्टि फेर ली हे सुलक्षणे, प्रिये, कल्याणी, राजमहल के इन कीमती बहुमूल्य वस्त्रों, तथा आभुषणों को त्याग दो। तुम अब ऋषिभार्या तपस्विनी हो।'' अगस्त्य ने कहा।

''जो आज्ञा नाथ।'' लोपामुद्रा ने स्वीकृति दर्शाई। स्वर्गीय अप्सराओं को लजानेवाली, विशालनेत्रा, सुनयना, हंसगामिनी, त्रिभुवन सुंदरी लोपामुद्रा ने सौंदर्योपासक दृष्टियों को लुभाने वाले दर्शनीय महीन वस्त्रों को विसर्जित कर आश्रमवासी योग्य वस्त्र अर्थात वल्कल एवम् कृष्णाजिन का स्वीकार किया। ऊँचे आभूषणों को त्याग कर पुष्पमाला परिधान किए और वह अगस्त्यों के साथ चलने के लिए निकल पडी। विशाल वृक्ष को खिलती हुई लताओं ने जैसे लपेटा हो, लोपामुद्रा वैसे ही सुंदर लग रही थी। किन्तु उसे इन वस्त्रों मे देखकर

सौभाग्यालंकार परिधान किए स्त्रियों के नेत्र छलछलाएँ।

''विदर्भ से पंचवटी और अमृतवाहिनी प्रवरा के किनारे अगस्त्य आश्रम में वास करते हुए, अगस्त्य ने लोपामुद्रा को आश्रमाचरण के पाठ पढाएँ। प्रतिभाशाली तेजस्वी लोपामुद्रा अगस्त्य की तरह आचरण करने लगी। इन आश्रमों मे कुछ दिन वास करने के पश्चात अगस्त्य मुनिवर लोपामुद्रा को काशीक्षेत्र के आश्रम में ले गए। महर्षि अगस्त्य का आश्रमकार्य देखकर लोपामुद्रा विस्मित होकर विचारमग्न हुई। उसने राजवैभव का जीवन भुलाकर आश्रम में कार्य किया। अपने मन में अगस्त्य की भांति उग्र तपस्या करने का निर्णय लिया।

''अगस्त्य मुनि ने पुनःश्च उग्र तपस्या करने का संकल्प किया। मुनिश्रेष्ठ भगवान अगस्त्य हिमालय के पदकमल पर स्थित अगस्त्य मुनिग्राम में आएं। वहाँ पर ग्रामवासियों ने लोपामुद्रा का सहर्ष स्वागत किया। लोपामुद्रा की तेजस्विता से ग्रामवासियों में नवचैतन्य की लहर जागी। आश्रम के गोत्रजों ने दीपोत्सव सजाया। अगस्त्य मुनिग्राम में यज्ञसत्र पश्चात अपनी अतिअनुकूल भार्या के साथ वे गंगाद्वार आएँ। वहाँ पर अगस्त्य मुनि ने उग्र तपस्या प्रारंभ की। लोपामुद्रा आनंदित होकर सम्मानपूर्वक पतिसेवा करने लगी। प्रभु अगस्त्य भी अपनी भार्या से स्वाभाविक भाव से प्रेम करने लगे। इस प्रकार चौबीस वर्ष (दो तप) बीत गए। किन्तु उनकी दिनचर्या में पति-पत्नी संबंध सुख के लिए कोई स्थान नहीं था।''

''अगस्त्य प्रतिदिन की तपसाधना के पश्चात विश्राम करने हेतु जब भी आश्रम आते, लोपामुद्रा पतिसेवा का अपना मानस प्रकट करती, उनके पुरुषत्व को आवाहन करती। तथापि व्रतभंग ना हो, इसलिए लोपामुद्रा ने भी व्रती रहना चाहिए ऐसा अगस्त्य मुनि का आग्रह था। लोपामुद्रा ने भी विचारपूर्वक दीर्घ सूर्यतपश्चरण प्रारंभ किया। उस तपश्चरण से उसकी कांति, उसका सौंदर्य और अधिक खिल गया। वह अधिक प्रफुल्लित दिखने लगी।''

अगस्त्य और लोपामुद्रा इसी तरह तपाचरण में निमग्न रहे, तो संतति कैसे संभव होगी? इस बात को लेकर गोत्रज चिंतित थे। उन्होंने मन ही मन में अगस्त्य और लोपामुद्रा की कामभावना जागृत हो, इसके लिए प्रार्थना की। सोमयाग सत्र संपन्न किए। अंत में उनके यज्ञ सफल हुए।

एक बार तपोबल से देदीप्यमान और ऋतुस्नात हुई लोपामुद्रा की ओर भगवान अगस्त्यमुनि का ध्यान आकर्षित हुआ। उसका सेवाभाव, संयम,

मनोनिग्रह, उसकी पवित्रता और रुपलावण्य से आनंदित होकर अगस्त्य ने उससे संभोग के लिए इच्छा प्रदर्शित की। तब उस रुपमती ने पुलकित होकर, तनिक लज्जित होकर, हाथ जोडकर अगस्त्यमुनि से प्रेमपूर्वक कहा,

''हे नाथ, महर्षि अगस्त्ये, इसमें कोई संदेह नहीं है कि, एक पति केवल संतान के लिए ही पत्नी प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है। मैं आपकी धर्मपत्नी होने के कारण संतान प्राप्ति हेतु मैं भी उत्सुक हूँ। आपने मुझे निर्माण करने के पश्चात राजमहलों में रखा। संभवतः ऐश्वर्य में रहना मेरा स्वभाव बन चुका था। तथापि ऋषिपत्नी के नाते मैंने आप ही के जैसा तपाचरण किया। किन्तु ऐश्वर्योपभोग के लिए आपसे मेरी एक प्रार्थना हैं, कृपया उसे स्वीकार करें।'' लोपामुद्राने प्रसन्न अगस्त्य को निवेदन किया।

''हे प्रिय अर्धांगिनी, तुम्हारी जो भी इच्छा हो, मुझे निवेदन करो। मैं उसे पूरा करूँगा।'' अगस्त्य मुनि के शब्दों से वह आनंदित हुई।

''हे नाथ, पीहर के राजप्रासाद में जिस तरह मेरी शय्या थी, उसी प्रकार की शय्या पर हमारा मीलन हो। मेरी इच्छानुसार आप मुझे आभूषणों से अलंकृत करें। मैं दिव्य शृंगार करके आपके पास आना चाहती हूँ। इस तरह वल्कलों के साथ आपके पास आना तथा ऐसी अवस्था में समागम करना मुझे उचित नहीं लगता। हे ब्रह्मर्षे, अलंकार, आभूषण किसी प्रकार से अपवित्र नहीं है।'' लोपामुद्रा ने प्रार्थना की।

''हे कल्याणी, रुपमती, लोपामुद्रे, जिस प्रकार तुम्हारे पिता के पास धन है, उस प्रकार तुम्हारे अथवा मेरे पास नहीं हैं।'' अगस्त्य ने उत्तर दिया।

''हे तपोधन, इस मृत्युलोक में जितना भी धन है, वह सब आप अपने तपोबल से एक पल में इस स्थान पर लाने की क्षमता रखते हैं।''

''हे प्रिये, तुम सत्य कहती हो। किन्तु ऐसा करना उचित नहीं। क्योंकि, ऐसा करने से मेरे तपस्या की क्षति होगी और वांछित कार्य सफल नहीं होगा। इसलिए उचित होगा कि, तुम कुछ ऐसा विकल्प दे, जिस से तपस्या की क्षति ना हों। इसलिए तुम या तो द्रव्यार्जन का हठ त्याग दे, अथवा जिस से द्रव्यार्जन संभव हो ऐसा कोई कार्य करने के लिए मुझे प्रेरित कर।'' अगस्त्य ने सुझाव दिया।

''हे तपोनिधे, मेरा ऋतुकाल अभी कुछ शेष है। जब तक आप ऐश्वर्यशाली

नहीं हो पाते, मैं आपके निकट आना नहीं चाहती। किन्तु में यह भी नहीं चाहती कि, इस के लिए आप किसी भी प्रकार से अपने धर्म को नष्ट कर दें। तथापि मेरी मनोकामना जब तक पूरी नहीं होती, मैं आप के समीप नहीं आऊँगी।''

''हे भद्रे, कामिनी, तुम्हारा मनोरथ यदि अटल है, तो धन जुटाने के लिए मैं अवश्य प्रयास करूँगा। ऋषिमुनि विप्र के लिए याचना करना कोई हीनता का भाव नहीं। मैं द्रव्य प्राप्त करने के लिए जा रहा हूँ। मैं अवश्य लेकर आऊँगा। तुम्हारी मनोकामना इसी आश्रम में पूरी होगी, और तत्पश्चात ही हम संतान प्राप्ति का विचार करेंगे।'' इस संकल्प के साथ अगस्त्य द्रव्यार्जन के लिए निकल पडे।

अगस्त्य श्रृतर्वा नाम के राजा के पास आएं, जिसका अगस्त्य के प्रति श्रद्धापूर्व भाव था। जैसे ही द्वारपाल ने अगस्त्य के आगमन की सूचना राजा को दी, श्रृतर्वा स्वयं उनके स्वागत के लिए द्वार पर आएं। अगस्त्य को वंदन कर वे उन्हें श्रद्धापूर्वक अपने महल में ले आएं। अगस्त्य को भव्य सुवर्ण आसन पर बैठा कर राजा ने राणीसमेत उनकी पाद्यपूजा की।

''हे मान मान्य मान्दार्य, अगस्त्यमुने आप प्रत्यक्ष सूर्यनारायण हैं। विष्णुरूप में आप समस्त जगत के कल्याण हेतु कार्य करते हैं। मनुष्य को उत्तम भोजन अन्न प्राप्त हो, इसलिए कृषकों को मार्गदर्शन पर आशीर्वाद देते हैं। वाणिज्य अभिकर्ताओं को आचरण संबंधि ज्ञान देते हैं। पृथ्वीपति मान्यवर तथा साधकों को सृष्टि का अगाध ज्ञान देते हैं। पीडानाश के सभी उपाय आपके पास हैं। प्राणिमात्र के स्वास्थ्य हेतु योग और चिकित्सा ये दोनों मार्ग आपको ज्ञात हैं। हे अगस्त्यमुने, आप के पास युद्धकौशल होते हुए भी आप संघर्ष टालने हेतु समझौता एवम् शांति का मार्ग अपनाते हैं। देव, मानव तथा दानव के लिए आप पूजनीय हैं। त्रिदेव भी आप को वंदन करते हैं। आप ही के कारण इस धरती पर शांति, सुव्यवस्था, स्वास्थ्य, धन-धान्य आदि सभी ऐश्वर्य प्राप्त हैं। आप प्रत्यक्ष भगवान हैं। हम दोनों तथा हमारा राज्य आप की शरण में हैं। हम आप की किस प्रकार सेवा करें, जिस से आप संतुष्ट होंगे, कृपा बताइएं।''

श्रृतर्वा राजा के हर प्रकार के स्तुतिस्तोत्र सुनकर अगस्त्य प्रसन्न हुए। उन्होंने राजा से कहा,

''हे राजन, तुम ज्ञानी, सदाचारी, प्रजाहित तत्पर तथा न्यायवान हो। तुम्हारी

विनम्रता से मैं अतिप्रसन्न हूँ। अगस्त्य ऋषिकुल से प्राप्त की शिक्षा को तुमने सार्थक सिद्ध किया। तुम्हारा कल्याण हो। किन्तु...

''किन्तु क्या भगवन्?'' राजा ने अधिरता से प्रश्न किया।

''मैं तुम्हारे द्वार पर याचक  बनकर आया हूँ।''

''आज्ञा भगवन''

''हे पृथ्ववते, समझ लो कि, मैं तुम्हारे पास धन माँगने आया हूँ।''

''हे प्रभो, आप आदेश दें। यह राजकोश तथा मेरी निजी धनसंपत्ति आप ही की है।''

''हे राजन, तुम्हारी उदारता महान है। तथापि धन लेने के लिए मेरी एक शर्त है।''

''कौन सी ऋषिवर?''

''हे राजन, अन्य किसी को क्षति न पहुँचे यह ध्यान में रखते हुए जितना संभव हो सके तुम्हारे धन का भाग मुझे दे दो।''

''हे प्रभो, जैसी आप की आज्ञा। मैं राज्य का पूरा आय-व्यय विवरण आपको दिखाता हूँ। उस में जो भी धन अवशिष्ट होगा आप लिजिए।''

''राजा की विनम्रता देखकर अगस्त्य प्रसन्न हुए। उन्होंने राज्य का आय-व्यय विवरण (राजस्व - राज्य की आय) देखा। उन्होंने पाया कि, जितनी जमा राशि है उतना ही व्यय हो चुका है। यदि उस जमा राशि से कुछ धन लिया जाता है, तो कई लोग पीडित हो सकते हैं।''

''हे राजन, मैं तुमसे धन नहीं ले सकता। मैं यह देखकर अति प्रसन्न हूँ कि, तुम बडी सावधानी से और निष्पक्ष रूप से शासन प्रबंध को सँभाल रहे हो। तुम्हारा निरंतर उत्कर्ष होता रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। अब हम यहाँ से व्रघ्नाश्व राजा के पास जाएँगे।''

महर्षि अगस्त्य की बातें सुन कर राजा धन्य हुआ। श्रृतर्वा स्वयं अगस्त्य के साथ व्रघ्नाश्व राजा के पास गया। वहाँ जाने से पूर्व ही उसने अपना दूत आगे भेज दिया था।

''व्रघ्नाश्व राजा अपनी राणी और अमात्य के साथ नगर की सीमा पर ही महर्षि अगस्त्य का स्वागत करने के लिए उपस्थित थे। उन्हें यथाविधि अपने महल में ले जाकर उनका पूजन किया, और विनम्र होकर उनसे कहा, 'मेरे लिए

क्या आदेश है ऋषिवर?' ''

''हे पृथ्वीपते हम धन की इच्छा से यहाँ पर आए हैं। किन्तु ध्यान रहे कि, किसी को पीडा न देते हुए अपने धन का कुछ भाग हमें दें।

अगस्त्य का वक्तव्य सुन कर व्रघ्नाश्व राजा ने भी श्रृतर्वा जैसा अपना विवरण (लेखा-जोखा) दिखाया और उसमें से जो भी अवशिष्ट (शेष) होगा वह लेने के लिए प्रार्थना की। व्रघ्नाश्वा के साथ भी अगस्त्य को श्रृतर्वा जैसा ही अनुभव आया।

तत्पश्चात महर्षि अगस्त्य श्रृतर्वा और व्रघ्नाश्व को साथ लेकर पुरुकुत्स, महाधनाढ्य त्रसदस्यू इनके पास गए। वहाँ पर भी उनका भव्य स्वागत हुआ। तथापि वहीं अनुभूति पाकर अगस्त्य एक ओर अति प्रसन्न भी हुए। अपने गुरुकुल तथा गोत्रजों के सभी राजाओं को लोककल्याण की चिंता है, और उन्हें प्रजाहितैषि देखकर अगस्त्य को बडा संतोष हुआ। किन्तु जैसे ही लोपामुद्रा का वचन उन्हें स्मरण हुआ, वे सहसा उद्विग्न हो उठे। लोपामुद्रा की शर्तों को कैसे पूरा करें, यह चिंता उन्हें सताने लगी। उनके वदन पर चिंता के बादल घिरते देख श्रृतर्वा, व्रघ्नाश्व, पुरुकुत्स, महाधनाढ्य और त्रसदस्यू सभी राजा एक साथ विचार करने बैठे। माता लोपामुद्रा और गुरुदेव अगस्त्य को हम सभीं पर पूरा विश्वास होगा, फिर भी वे हमारे पास क्यों आए? अपितु उनके इच्छा की आपूर्ति किए बिना उन्हें रिक्त हस्त जाने देना उचित नहीं होगा। कुछ सोच-विचार के पश्चात एक निश्चय करते हुए महर्षि अगस्त्य के सम्मुख उपस्थित हुए।

''हे ब्रह्मर्षे, इल्वल नाम का दैत्य इस पृथ्वी पर बडा द्रव्यसंपन्न माना जाता है। हम सब उसके पास जाकर द्रव्य की याचना करेंगे।'' अगस्त्य की अनुमती से राजाओं ने इल्वला के पास दूत भेजा।

अगस्त्य समेत सभी राजाओं के आगमन की सूचना पाकर इल्वल अपने अमात्यों के साथ स्वयं अपने राज्य की सीमा पर उनके स्वागत के लिए उपस्थित हुआ। अगस्त्यसमेत सभी राजाओं को विश्वास हुआ कि, उन्हें अवश्य धन प्राप्त होगा।

इल्वला ने सुअवसर देखकर अपने प्रिय वातापि दैत्य को मेष के रूप में बुलाया। उस मेषरूपी वातापि की बली देकर उसके मांस का उत्तम भोजन तैयार कर उस असुरश्रेष्ठ ने महर्षि अगस्त्य एवम् राजाओं को बडे सम्मान के साथ

भोजन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया। अगस्त्य इल्वला का कपट जान गए थे कि, मेष का रूप धारण करनेवाले महादैत्य वातापि का मांस पकाकर उन्हें खिलाया जा रहा है। एक अनजाने आतंक ने राजाओं को उद्विग्न कर दिया। अकल्पित त्रास से जब वे विचलित हो उठे, तो महर्षि अगस्त्य ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा,

''हे राजन, आप लोग चिंता ना करें। मैं इस महादैत्य को भक्षण करूँगा।'' ऐसा कह कर वे अग्रासन पर जा बैठे।

''हे महापराक्रमी राजाओं, आप भी भोजन ग्रहण करें।'' इल्वलाने कहा।,

''हे असुरश्रेष्ठ, महर्षि के भोजनोपरांत हम भोजन ग्रहण करेंगे।'' राजाओं ने उत्तर दिया।

अगस्त्य का समुद प्राशन सामर्थ्य इल्वला को ज्ञात था। अगस्त्य नष्ट हो जाता है, तो यह पृथ्वी तो क्या, हम संपूर्ण विश्व को जीत लेंगे। इस कुभाव से इल्वला ने स्वयं अपने हाथों से अगस्त्य को भोजन परोसना आरंभ किया। इल्वल मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। देखते ही अगस्त्य ने वातापि दैत्य पूरा भक्षण कर लिया।

जैसे ही अगस्त्य का भोजन समाप्त हुआ, इल्वला ने वातापि को पुकारा। अगस्त्य यह भी जानते थे कि, इल्वला ने वातापि का उपयोग करके कई महान ऋषियों, तपस्वियों, ब्राह्मणों को मार डाला था। लोपामुद्रा का द्रव्यार्जन के लिए भेजने का उद्देश अब उनकी समझ में आ गया। लोपामुद्रा की लोककल्याणकारी वृत्ति देखकर अगस्त्य अति प्रसन्न हुए। इल्वला ने वातापि को पुकारा तो था, किन्तु अगस्त्य ने अपना संपूर्ण योगसामर्थ्य दाँव पर लगा दिया। वातापि को बाहर आना असंभवसा प्रतीत हुआ। अगस्त्य के उदर में उसे अति कष्ट होने लगे। इसपर अगस्त्य ने दैत्य भाँति विकट हास्य करते हुए कहा,

''हे महादैत्य इल्वला, मैंने महादैत्य विशाल वातापि को पचा लिया है। अब तुम उसे कितना भी पुकारो, वह बाहर कैसे आएगा? उसका इस संसार में पुनःश्च लौट आना असंभव है।''

इल्वला ने वातापि का उपयोग करके बहुत सारा धन कमाया था। इस धनसंपत्ति के बल पर इंद्र पद भोगने की लालसा उसके मन में थी। अगस्त्य ने वातापि को नष्ट करने पर वह अनागत भय से काँप उठा। अब उसके सामने दो

ही विकल्प थे – या तो अगस्त्य की शरण में जाए, या उनके साथ युद्ध करें। उसने अगस्त्य की शरण में जाना उचित समझा। इल्वल अपने अमात्यों समेत हाथ जोडकर विनम्रता से अगस्त्य की शरण में गया।

''हे महर्षि अगस्त्ये, मैं और मेरा समस्त राज्य आपकी शरण में है। अब हमारी रक्षा करना, हमारा उद्धार करना आप पर ही निर्भर हैं।''

''हे महर्षि अगस्त्ये, आप किस उद्देश्य से आए हैं? मैं आप के लिए क्या कर सकता हूँ? कृपा करके आप की इच्छा प्रदर्शित करें। मैं उसे अवश्य पूरी करूँगा।'' इल्वला ने शरणागति स्वीकार कर अगस्त्य से प्रार्थना की।

''हे महादैत्य इल्वला, सभी जानते है कि, तुम सामर्थ्यशाली तथा प्रत्यक्ष कुबेर हो। मेरे साथ आए हुए इन राजाओं के पास पर्याप्त धन नहीं है, और मुझे वास्तव में धन की अति आवश्यकता है। इस कारण से तुम अपने धन से यथाशक्ति कुछ धन मुझे दें। किन्तु ध्यान रहे कि, इससे किसी को कोई कष्ट न हो।'' अगस्त्य ने आदेश दिया।

''हे मुनिवर, मेरे मन में आपको क्या देना चाहिए, इस बात को जानकर यदि आप मुझे बता देते हैं, तो मैं आपको धन दे दूँगा।'' इल्वला ने अगस्त्य के अथर्वविद्या को ललकारा।

''हे महादैत्य, तुम चाहते हो कि, इन राजाओं को प्रति राजा दशसहस्त्र गाय और उतना ही सुवर्ण दिया जाए। वैसे ही हे महासुर, आपने मुझे दुगुनी सुवर्ण और एक स्वर्ण रथ तथा मनोवेग से दौडने वाले दो अश्व देने के लिए सोचा है। यदि यह सत्य हैं या नहीं, यह तुम ही सोच-विचार कर बता दो। अब यह भी स्पष्ट है कि, जो स्वर्णरथ तुम मुझे देने जा रहे हो, वह यहीं है।'' अगस्त्य ने कहा।

''अगस्त्य का वक्तव्य सुनकर इल्वल अवाक् रह गया। उसके मन की कपट वृत्ति नष्ट हुई। यहाँ तक कि, वह अपना दैत्यत्व भी भूल गया। उसने महर्षि अगस्त्य को प्रचुर मात्रा में धन तथा धेनु देकर उन्हें सम्मानपूर्वक स्वर्णरथ में बैठाकर मनोवेग से दौडने वाले विराव और सुराव इन दोनों अश्वसमेत पलभर में महर्षि अगस्त्य के आश्रम में पहुँचाया। महर्षि अगस्त्य की अनुज्ञा पाकर वे पाँचो राजा अपने-अपने राज्य में चल दिए।

''स्वर्णरथसमेत प्रचुर धन-धेनु देखकर लोपामुद्रा लज्जित हुई। ''हे नाथ, आपका सामर्थ्य ज्ञात होते हुए भी, मैंने आपके शौर्य को ललकारा इसलिए मैं

आपसे क्षमा चाहती हूँ।'' लोपामुद्रा ने विनम्रता से प्रार्थना की। ''हे भगवन, आपने मेरी मनोकामना पूरी की; अब आप अति शक्तिशाली संतान को जन्म दे सकते है।'' लोपामुद्रा सलज्ज होकर अपनी इच्छा प्रदर्शित कर रही थी। उसके स्वर में कंपन था, नेत्रो में उल्लास। उसका रोम रोम पुलकित हो उठा था। लोपामुद्रा की इच्छा के विचार ने अगस्त्य को समागम के लिए प्रेरित किया।''

''एकांत में लोपामुद्रा ने अगस्त्य को कई प्रकार से उत्तेजित करने की चेष्टा की। ''हे महावीर्य, वृद्धावस्था के रसातल में गिरते हुए अपने शरीर को कष्ट देकर दिन-रात, प्रतिदिन कई वर्षों तक मैंने तपस्या की है। अब वृद्धावस्था के कारण गात्र क्षीण हो जाते है। शरीर की आभा फीकी पड जाती है। तथापि आप जैसे वीर्यशाली पुरुष को मुझ जैसे स्त्री का आकर्षण होना भी स्वाभाविक है।'' उसने अपने वक्तव्य को आगे बढाते हुए कहा, ''व्रतस्थ, सत्यनिष्ठ तथा तपस्वी जैसे प्राचीन ऋषि भी उत्सर्ग हेतु स्त्री का संग करते थे। आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करना उनके लिए भी संभव नही हो सका। ऐसी स्थिति में ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ भी पुरुषों के साथ संग करती होगी, इस पर आप ध्यान दें।''

''हमारी तपस्या व्यर्थ नहीं गई। देवताओं के कष्टसाध्य सुरक्षा कवच की सहायता से समस्त शत्रुओं को हमने परास्त किया है। संभोग की सहायता से पुत्रोत्पत्ति करने से हम इस संसार युद्ध में विजयश्री प्राप्त कर सकेंगे'' अगस्त्य ने भी उत्तेजना देकर कहा।

कामिनी लोपामुद्रा बडी प्रसन्नता से संभोगोत्सुक होकर आगे बढी। ''स्तंभित किए गए जल की भांति प्रमाथी जैसा कामविकार मेरे शरीर के अणुरेणुओं पर छा गया है। वीर्यशाली, प्राणायामी तथा सत्वस्थ अगस्त्य को चंचल लोपामुद्रा ने वश कर लिया है और वह तृष्णा का उन्माद लिए मेरे सर्वांग को भोग रही है।'' अगस्त्य लोपामुद्रा के कान में अति मंद स्वर में बोल कर उसे उत्तेजित कर रहे थे। अगस्त्य-लोपामुद्रा संभोग समाधि में निमग्न थे, आश्रम के बाहर उनके शिष्य प्रार्थना कर रहे थे कि, यदि अगस्त्य दंपत्ति द्वारा गलती से भी पापकृत्य हुआ हो, तो इससे वे मुक्त हो जाएं तथा उनकी अच्छी संतान हो।

'' 'अंतःकरणपूर्वक प्राशन किए सोम की मैं प्रार्थना करता हूँ कि, हम जैसे मर्त्य मनुष्यों के हाथों जाने-अनजाने में जो पातक घटित हुए है उसके लिए हमें क्षमा करें। दोनो वर्णों का उत्कर्ष सिद्ध करनेवाले, तथा अन्न, संतति और बल

की कामना करनेवाले शक्तिशाली, बलवान किन्तु उग्र अगस्त्य ऋषि ने कुदाल की सहायता से भूमि खोदी और उसे समतल किया। देवताओं ने उनके प्रयास को फलदायी होने का आशीर्वाद दिया था। ऐसे महर्षि अगस्त्य फलसिद्ध हो। शिष्य ने प्रार्थना की।'

संभोगनिमग्न अगस्त्य ने बडी कुशलता से लोपामुद्रा को पूछा,

**'सहस्त्रं ते स्तु पुत्राणां शतं वा दशसंमितम ।**
**दश वा शततुल्याः स्युरेको वापि सहस्त्रवते ।।**
**सहस्त्रसंमिताः पुत्र एको मे स्तु तपोधन ।**
**एको हि बहुभिः श्रेयान् विद्वान् साधुरसाधुभिः ।।'**

''हे नाथ, मुझे सहस्त्रों के समकक्ष एक ही पुत्र चाहिए। क्योंकि, अनेक दुर्जन पुत्र होने से तो अच्छा है कि, सज्जन और विद्वान ऐसा एक ही पुत्र होना अत्यधिक श्रेष्ठ सिद्ध होगा।'' लोपामुद्रा ने उत्तर दिया।

''तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।'' अगस्त्य ने रतिक्रिया की परमावधि पार कर दी।

''रतिक्रिया के परमानंद से तृप्त लोपामुद्रा निद्राधीन हुई। अगस्त्य लोपामुद्रा की ओर सकौतुक देख रहे थे। ब्रह्मा ने स्त्री और पुरुष की रचना की और मनुष्य को सुख और सृजन का अलौकिक मार्ग प्रदान किया। कैवल्य सुख का आनंद संभोग समाधि से भिन्न नहीं है। संभोग समाधि से वांछित कैवल्यासम प्रकटीकरण सहजसाध्य होने से मनुष्य को कैवल्यप्राप्ति का आनंद मिलता है। कैवल्य के इस अतर्क्य रूप के लिए अयोनिसंभव देवगण, निर्गुण तत्व, अमानवी शक्तियाँ यथार्थतः वंचित रह जाते हैं। संसार की जीवजगत की संभोगलीला, सृजनलीला वस्तुतः केवल लुभावनी ही है। परब्रह्मा का यह निष्काम साक्षात्कार कामक्रीडा के माध्यम से प्रतीत करने का अथर्वण केवल परब्रह्मा को ही ज्ञात है।

''यह मानते हुए कि, मेरी प्रेरणा इस संसार का आनंद शतगुना करने के लिए हुई है, मैं मनुष्य तथा प्राणिमात्र के लिए स्वास्थ्य और स्थिरता प्राप्त करने हेतु पुनःश्च तपस्या का मार्ग स्वीकार करूँगा। लोपामुद्रा को भी मेरा अनुसरण करना चाहिए। परब्रह्माने संभोग और सृजन के अलौकिक सुख का अनुभव करने का अवसर देकर हमें अनुगृहित किया हैं। हम जैसे देवमानवी मिश्र योनि के अयोनिसंभवों के लिए तपस्या सुरक्षा तथा परोपकार के अतिरिक्त अन्य

कौनसा मार्ग उपलब्ध हो सकता है?''

अगस्त्य संभोगसुख से तृप्ति पाकर हर तरह से चिंतन करने लगे। एक अनूठी तृप्ति एवम् चैतन्यमय आनंद की सूचक मुसकान लोपामुद्रा के मुग्ध सुंदर मुखकमल पर खेल रही थी। यह देखकर त्रिकालज्ञ तेजपुत्र अगस्त्य भी निश्चल रह गए। लोपामुद्रा गर्भवती हुई थी।

अगस्त्य भी सुखनिद्रावश हुए। हजारो वर्षों की उनकी आयु में इतने उदात्त और प्रगाढ सुख का अनुभव कदाचित वे प्रथमतः कर हे थे।

उषा ने प्राची गगन के द्वार खोले भास्कर की प्रकाशी किरणे जब तेजस्वी मुनिवर को धीरेसे जगाने लगी, तब लजीली स्नेहमयी दृष्टि फेर कर लोपामुद्रा अगस्त्य की ओर कौतुहलवश देख रही थी। मौन धारण कर उसने अपने प्रातः कर्म निपट लिए और अगस्त्य के समीप आ बैठी। निद्रा त्याग कर प्रसन्नता से अगस्त्य उसके सम्मुख हुए। उसके प्रीतिकर, आग्रही कमनीय संकेतों से अगस्त्य उल्लसित हुए। यदि प्राची ने उन्हें प्रतिबंध नहीं किया होता तो कदाचित कामोन्माद पुनःश्च उत्तेजित हो जाता। अनिर्बंध भावनाओं का निग्रहण कर अगस्त्य मुनि ने अपने प्रातःकर्म निपट लिए। प्रातःकर्म करते समय वैराग्य भाव ने उनपर आक्रमण किया। वे लोपामुद्रा के समीप आए। उनकी विरागी मुद्रा देखकर लोपामुद्रा समझ गई। लोपामुद्रा में भी अनाम परिवर्तन होने लगा।

''नाथ, क्या आपको कुछ कहना है?''

''हाँ प्रिये''

''निःशंक मनसे कह दीजिए नाथ।'' लोपामुद्रा ने कहा।

''हे योगिनी, तुम्हारे गर्भ में जीव अंकुरित हुआ है। संभोग योग से हम दोनो तृप्त एवम् कर्तव्यकृतार्थ हुए हैं। अब मैं पुनःश्च तपस्या हेतु विजनवास करना चाहता हूँ। परब्रह्मा के कार्य के लिए हम केवल कारण हैं। कारण के मोह में उलझना कहाँ तक उचित होगा?'' अगस्त्य ने पूछा।

''तो आपका क्या विचार है प्रभो?''

''तुम व्रतस्थ होकर गर्भ का परिपालन करे और मैं सप्तवर्ष तपस्या करूँगा जिससे हम दोनों के सभी गुण हमारे पुत्र में संभव होंगे और इस संसार को एक नया अगस्त्य दिखाई देगा। हे धर्मशालिनी, भाग्यविधात्री, तुम मुझे तपस्या हेतु विजनवास में जाने की अनुमती दें।''

''हे आर्य मुनिवर, आप भूत, वर्तमान और भविष्य को भी जानते हैं। जो उचित हैं, वह कुछ भी मुझे बताइएं। मैं अवश्य पालन करूँगी।''

''हे योगिनी, सामान्यतः इस मर्त्यलोक की स्त्रियां नौ मास तक अपने गर्भाशय में (गर्भ) का पोषण करती है। तत्पश्चात शिशु के जन्मउपरांत वह माता उसका पूर्ण मनुष्यरूप प्रकट होने तक उसकी देखभाल करती है तथापि तुम्हारे गर्भ में यह सात वर्ष वास करेगा और वह ज्ञानसंपन्न होने के पश्चात ही तुम उसे जन्म दोगी। हमारा पुत्र मुझ जैसे ही लोककल्याणकारी कार्यों में रुचि रखेगा। इसलिए अब तुम आश्रम में सात वर्ष रहकर कैवल्य का तथा गायत्री मंत्र का जाप करते हुए काल व्यतीत करो और मैं वन में जाकर एकांतवास में तपस्या करूँ, यह मेरी इच्छा है।''

''हे मुनिवर, आपकी आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है।'' लोपामुद्रा ने कहा।

''अगस्त्य पुनश्च तपस्या करने हेतु विजनवास चले गए। आश्रमवासी लोपामुद्रा की कोख में अगस्त्य का वंशज सात वर्षों तक पल रहा था। अगस्त्य की आज्ञानुसार लोपामुद्रा कैवल्य और गायत्री का जाप कर रही थी। दिनानुदिन वह अत्याधिक तेजस्वी लग रही थी। उसकी आभा से परिसर चमक ने लगा। आकाशमंडल का कोई तारा जैसे निशा को प्रकाशमान कर देता है, उसी प्रकार दीप्यमान परिसर से सभी का ध्यान उसकी ओर आकर्षित होता था। मनुष्य तथा अन्य प्राणिजगत की स्त्रियाँ गर्भवती लोपामुद्रा का तेजस्वी रूप कौतुहलपूर्वक निहारती थी। गर्भावस्था का उसका रूप केवल अलौकिक था। किन्तु लोपामुद्रा का इस ओर ध्यान तक नहीं था। जापतप से प्राप्त ज्ञान-संवेदना पर ही उसका ध्यान केंद्रित था। अलौकिक ज्ञान से गर्भ संस्कारित हो रहा था। एक दूसरे अगस्त्य का निर्माण हो रहा था। सात वर्षतक वह गर्भ विकसित हो रहा था। सात वर्ष पश्चात वह गर्भ माँ की कोख से बाहर आया। वह सुसंस्कारित गर्भ प्रदीप्त अग्निसमान दिख रहा था। महातेजा, महाब्राह्मण तथा महातपस्वी ऋषि का वह पुत्र वेदों के अंग, उपांग तथा उपनिषदोंसमेत कैवल्य का मानो जाप करते हुए माता के उदर से बाहर आया। मौखिक परंपरागत ऋषियों का देवता और शक्तिविषयक ज्ञान उसे जन्मजात ही प्राप्त हुआ था। इसीलिए उसे इध्मवाह नाम से संबोधित किया जाने लगा। इसी नाम से वह प्रख्यात हुआ।''

''अगस्त्य पुत्रमुख देखने आएं। उस तेजस्वी पुत्र को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। जैसे ही पुत्र का जन्म हुआ, पितरों को मुक्ति मिली और अगस्त्य गोत्रज

समृद्ध हो गए।''

''अगस्त्य ने लोकाग्रहास्तव नामकरण संस्कार करने का निश्चय किया। शिवपार्वती, विदर्भाधिपति इनके साथ अगस्त्याश्रम के सभी गोत्रज, विभिन्न देशों के राजा, तपस्वी, पंचतत्व (आकाश, पृथिवी, जल, वायु, अग्नि) ये सभी गंगा मार्ग से इस समारोह में उपस्थित हुए।''

अतुलनीय नामकरण संस्कार को देख साधारण महिलाओं को बडा विस्मय हो रहा था। सात वर्ष के परिपूर्ण सर्वज्ञानी इध्मवाह को पालने में सुलाकर उसके लिए गीत गाते समय उन्हें हँसी आती थी। वैसे बडे उत्साह से कुछ महिलाएँ, विशेषतः आश्रमवासी महिलाएँ जन्मोत्सव गीत गा रही थी।

**अगस्ती का तेज लोपामुद्रा ने झेला**
**गोद में संभाला, नाम अगस्ती का सर्वदूर फैला**
**'इध्मवाह' बालक सर्वज्ञ जन्मजात**
**माता ने नाम रखा 'दृढस्यूत'**

**अगस्ती अगस्ती तुम्हारा करतब अनूठा**
**मनुष्य उध्दार के लिए जीवन की पराकाष्ठा**
**अगस्ती अगस्ती तुम्हारा करतब अनोखा**
**जन्म लेते ही पुत्र तुम्हारा हुआ विश्व का**

**विश्ववंद्य बालक लोपामुद्रा ने संभाला**
**अगस्ती को वास्तव में उत्तराधिकारी मिला**
**उत्तराधिकारी 'इध्मवाह–दृढस्यूत'**
**अगस्ती का नाम गंगामाता को अर्पित**

**अगस्ती के रूप में परब्रह्म अवतरित**
**जंबुद्वीप में मान ने संभाली मनुष्यत्व की रीत**
**अगस्ती का पुत्र बडा भाग्यवान**
**पतिव्रता लोपामुद्रा जिसकी माता हैं महान**

**लोपामुद्रा का पुत्र दिन–प्रतिदिन बढ़ने लगा**
**रवि चंद्रमा ने देखा, धरती माता ने संभाला**
**पुत्र का नाम हुआ, विश्व को ज्ञान मिला**
**पालने में हंसता है 'दृढस्यूत' लाडला!**

सुवासिनी स्त्रियां, माताएं बडे उल्लास से जन्मोत्सव मना रही थी, व्योम में मेघों का ताँता लगा था, वायु के झोंके लगते ही बरस पडते। प्रकाश ने इंद्रधनु उठाया था। मरुत ने पालना झुलाया। ब्रह्माविष्णूमहेश ने ग्रीवा हिलाकर स्मितहास्यपूर्वक विश्वकल्याण का विश्वास दिलाया। इस आनंदोत्सव में मार्ग निकालते हुए नारदजी सीधे इंद्रदेव समीप पहुँच गए।

''हे देवेंन्द्र, अगस्त्य के जन्मोत्सव में आप तो अपने आपको खोए हुए प्रतीत होते हो।''

''क्या हुआ ब्रह्मर्षे?''

''आपको पता भी है कि, आपके इंद्रपद और देवलोक का अंत अब समीप आने के संकेत मिलने लगे है।'

''यह आप क्या कह रहे है नारदमुने?'' निकट आकर अगस्त्य ने पूछा।

''हे लोककल्याणकारी, त्रिकालज्ञ ऋषे, यहाँ इस जन्मोत्सव में, पुत्रप्रेम ने आपको मोह लिया है, परंतु वहाँ पर कुछ महत्वाकांक्षी इसी अवसर का लाभ उठा रहे है।'' नारदजी ने और अधिक जिज्ञासा बढाई।

''हे देवर्षि नारद, आप स्पष्ट कहें। आज इस उत्सव में समस्त देवगण, अनेक प्रतिष्ठित राजा यहाँ उपस्थित हैं। पंचतत्व ने भी सुफलन का विश्वास दिलाया है, फिर भी...।'' इंद्र ने पूछा।

''हे ऋषिवर, या निशा सर्व भूतानाम तस्या जागर्ती संयमी'' यह तो आप जानते ही हैं। तो आप स्वयं इसकी खोज करें तथा जानकारी प्राप्त करें। उधर दक्षिण में भगदड मची है।

''ऐसा क्या हुआ है?''

''शूरपद्मा ने महान तपस्या कर प्रत्यक्ष वरुणराज अर्थात वर्षा को रोके रखने की शक्ति प्राप्त की है और इंद्रदेव के प्रति द्वेषभाव से प्रेरित शूरपद्मा ने वहाँ दक्षिण में भयंकर स्थिति निर्माण की है। आपने स्थित किया हुआ जलाशय तथा नदियों का प्रबंधन उद्ध्वस्त किया है।''

''हे अगस्त्यमुने, ब्रह्मर्षि नारद का कथन पूरी तरह से सत्य है। वास्तव में शूरपद्मा के विषय की बात को लेकर ही मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।''

''हे ब्रह्मर्षे, आपको भलीभाँति ज्ञात है, कि लोककल्याण एवम् समस्त चराचर समेत पृथ्वी का रक्षण, कृषिवलों का,कृषकों का पोषण आदि कार्य हेतु

ही परब्रह्माने अगस्त्य की प्रेरणा की है। अतः आप तनिक भी चिंता ना करें। मैं तुरंत दक्षिण की ओर प्रस्थान कर रहा हूँ।''

अगस्त्य ने आश्वस्त किया। शिवपार्वती, त्रिदेव, पंचतत्वों को वंदन कर, लोपामुद्रा को भी आश्वस्त करते हुए अगस्त्य मुनि ने कहा,

''हे पतिव्रते, मुझे अकालस्थिति दूर करने हेतु शूरपद्मा के अहंकार को मिटाकर दक्षिण को जलसमृद्ध करना चाहिए। अतः उत्तर का व्यवस्थापन तुम और इघ्मवाह दोनो मिलकर सँभालो। मैं दक्षिण की ओर जा रहा हूँ।''

लोपामुद्रा को सूचित कर, अगस्त्य पुनःश्च दक्षिण की ओर सह्याद्रि के अंतिम शिखर पर तपस्या करने निकल पडे। मार्ग पर ब्रह्मगिरी जाकर उन्होंने कावेरा ऋषि का हालचाल पूछा।

गोदावरी का जलौघ देखकर इस प्रकार का जलौघ दक्षिण में निर्माण होना चाहिए। इस विषय पर कावेरा ऋषि के साथ उन्होंने विचारविनिमय किया। उनका लोककल्याणकारी चिंतन चल ही रहा था कि, सहसा छोटी बालिका, कावेरी ने उन्हें प्रश्न किया।

''हे ऋषिवर, क्या मैं आपके साथ लोककल्याणार्थ कार्य नहीं कर सकती?''

''महर्षि अगस्त्य ने कौतुहलपूर्वक उसकी ओर देखकर कहा, तुम अभी छोटी हो, तथापि, सही समय आने पर तुम्हें अवश्य अवसर दिया जाएगा। मुझे बताओ, तुम्हें कौनसा कार्य करना अच्छा लगेगा? तुम्हारी मधुर वाणी से मैं अति प्रसन्न हूँ।''

''हे महातपस्वी, मैं यदि इस गोदावरी की भाँति नदी बन जाऊँ, तो कितना अच्छा होगा!'' कावेरी ने कहा। अगस्त्य चौंक गए, तथापि अंतर्ज्ञान से बहुत सोच-विचार कर उन्होंने 'तथास्तु!' ऐसा वरदान दिया। उनके इस आश्वासन से ऋषि कावेरा अति प्रसन्न हुए।

''हे ब्रह्मन, आपका यहाँ पुनःश्च आगमन कब होगा? हमें आपके कृषि कल्याणकारी कार्य में अवश्य सम्मिलित करें।''

''हे ऋषिवर, उचित समय आने पर मैं अवश्य आऊँगा।''

''हे महर्षे, इस कन्या की बातें गंभीरता से न लें। वह तो अभी असमंजस है।'' कावेरा ऋषि ने महर्षि अगस्त्य को रोकते हुए कहा।

‘‘हे ब्रह्मगिरी क्षेत्र के राजा, कठोर तपस्या पश्चात आपने ऋषिपद प्राप्त किया है। मुझे आश्चर्य है कि, आप इस कन्या के भाषण के निहितार्थ को भी नहीं जान सके।’’

‘‘हे मुनिवर, विगत पाँच वर्षों से दक्षिण में भयंकर अकाल पडा है। तीनों दिशाओं में समुद्र होते हुए भी भूमि जल की अभाव से तडप रही है। कृषकों की स्थिती तो अति गंभीर है, पूरी तरह से टूट चुके है। किन्तु चिंता के अतिरिक्त हम कर भी क्या सकते हैं। ब्रह्मगिरी क्षेत्र का राज्य छोड कर हम गोदावरी के उगम स्थान पर तपस्या हेतु आए हैं। गोदावरी का कार्य देखकर कावेरी के मन में गोदावरीसम कार्य करने का विचार आया।’’ कावेराने कहा।

‘‘हे ऋषि कावेरा, आपकी चिंता निवारण करने हेतु ही मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। शूरपद्मा ने अपने तपोबल का उपयोग परोपकारार्थ को छोड कर परपीडा के लिए किया है। इसे रोकने के प्रयास किए बिना दक्षिण में जलप्रबंधन कार्य संभव नहीं हैं। मेरे द्वारा बनाए गए जल क्षेत्रों और झीलों की योजना, पर्वत के ढाल को समतल कर किया गया जल व्यवस्थापन शूरपद्मा के वर्षा को रोकने के कारण व्यर्थ हुआ है।’’

‘‘इसलिए अब मुझे वर्षा को मुक्त करना होगा। अतः हे ऋषिवर, आप भी मेरी तरह अपनी कन्या के साथ पुनःश्च आपके ब्रह्मगिरी पर्वत पर जाइए और वर्षा राहत के लिए तपस्या आरंभ कीजीए। मैं भी वहीं पर आऊँगा।’’ इतना कह कर अगस्त्य सीधे अगस्त्यकूट आ गए। वहाँ उन्होंने एक आश्रम की स्थापना की और तपस्या करने लगे।

पृथ्वी त्रस्त हुई थी। अगस्त्य को तपस्या करते देख वह हर्षित हो उठी। गत सात वर्षों से पृथ्वी की स्थिती भयानक हुई थी।

पशु और पक्षी जल के लिए दूर-दूर तक भटकने लगे। गाँव उजड चुके थे। भूमि फट गई थी। कृषकों को निराशा ने घेर लिया था। कौएँ-चिडियाँ भी न जाने कहाँ लुप्त हुई थी। चारों ओर दुर्भिक्ष का साम्राज्य था। वर्षा ऋतु में जमा हुए लघु जलाशय से जैसे तैसे निर्वाह हुआ था। किन्तु अब असंभव था। अपने ही भूखे-प्यासे जीवों की पीडा देख कर पृथ्वी व्यथित हो रही थी।

अगस्त्यों ने तपाचरण आरंभ किया। वर्षा ऋतुकाल में कुछ मात्रा में वर्षा हुई। किन्तु अधिक तर वर्षाकाल शुष्क रहा। गिरता हुआ पानी बह गया। कृषक

यह सारा चमत्कार देख रहे थे। अगस्त्य नाम के कोई मान्दार्य ऋषि वर्षा लाने के लिए तपस्या कर रहे हैं, यह जानकर उन्हें प्रसन्नता हुई। उनके मन में महर्षि अगस्त्यों के लिए आदर भाव जागृत हुआ। तथापि वर्षा का भूमि पर गिरा हुआ पानी बह जाता है और वर्षा काल शुष्क होता देख कृषक निराश होने लगे। अगस्त्यकूट पर्वत पर तपस्या कर रहे अगस्त्य भी चिंताकुल हुए। वर्षा का पानी इस तरह बह जाना ठीक नहीं। कुछ तो उपाय करना चाहिए, पृथ्वी की सहायता करनी चाहिए, इस पर उनका चिंतन चल रहा था। अगस्त्यकूट पर कृषकों की भीड प्रति दिन बढती जा रही थी। हर कोई चाहता था कि, हम अगस्त्य की तपस्या में भाग लें और उनकी तपस्या को और अधिक शक्ति दें। अगस्त्य दक्षिण द्वीप के कृषकों को धीरज देकर मनाने के लिए और अधिक प्रयास करने की सोच रहे थे। वे सोच रहे थे कि, अपनी तपस्या में किसानों को कैसे समायोजित किया जाए। उन्होंने पृथ्वी की आराधना की।

''हे धरती माते, आपके सिर पर जो जल गिरता है, वह आपके फैलाव से पूर्व की ओर बहता है और सीधे समुद्र में पहुँच जाता है। तो महासागरों द्वारा बनाई गई भाप का क्या उपयोग हैं?''

''हे ब्रह्मर्षे, तुम वर्षा के लिए तपस्या कर रहे हो और उसके लिए समुद्र, इंद्र, मरुत भी तुम्हारी सहायता कर रहे हैं। तथापि, पर्वत ढाल की मेरी स्थिती से वह वर्षा का जल बह जाता है।''

मैं कई वर्षों से वृक्ष निर्माण कर इसे बचाने का प्रयास कर रही हूँ, तथापि इस शूरपद्मा द्वारा उत्पन्न किए गए अकाल के कारण वे सभी वृक्ष नष्ट हो रहे हैं। नई जडे रूक गई हैं। झीले शुष्क हो चुके हैं। अतः यह बहता हुआ जल जमा होकर मेरे उदर में समा जाएगा यह देखना चाहिए। मुझे तो दुख इस बात का है कि, आकाश मुझे नहलाता है, किन्तु मैं सृष्ट, हरीभरी नहीं हो पाती। तो क्या पर्वत ढाल पर कोई समाधान नहीं?'

''मैं जानती हूँ, आपने मेरी इस अवस्था को सुधारने का कार्य आरंभ किया है, उससे मुझे पीडा तो होती है, किन्तु जिस प्रकार रोगी को रोग से मुक्ति पाने के लिए कडवी औषधि का सेवन करना अनिवार्य होता है, उसी प्रकार आपका प्रयास मेरे ही सुख के लिए है। अतः इस पर आप ही कोई समाधान ढूँढ निकालिए।'' पृथ्वी ने अगस्त्यों से प्रार्थना की।

''हे माते, आपके उपरी तलपर यदि लाखों समतल गड्ढे लेते हैं, तो जल के प्रवाह में बाधा उत्पन्न होगी और जल आपके उदर में समा जाएगा। समझ लेना कि, ये आपके मुख विवर है, और ऐसे अनगिनत मुख विवरों से आकाश से आनेवाली वर्षा की हर एक बूँद आपको प्राप्त होगी। आपके लिए समुद्र द्वारा भेजा गया जीवन सफल होगा। तो इस तरह के गड्ढे खोदने की अनुमति, यदि आप मुझे देती हैं, तो मुझे लगता है यह संभव होगा। अर्थात निश्चित रूप से यही इसका समाधान है।'' अगस्त्य ने उपाय सुझाया।

''हे अगस्त्य, आप मेरे जीवन सृष्टि के लिए तपस्या कर रहे हैं। अकाल की पीडा सहन करने से तो अच्छा है कि, गढ्ढों का दर्द सह लूँ। हे अगस्त्य, मैं जानती हूँ कि आपके पास जल के प्रवाह का अवरोध करने की शक्ति हैं, इसलिए मैं आपके प्रयास को आशीर्वाद देती हूँ।''

पृथ्वी की अनुमति प्राप्त होते ही अगस्त्य आगे बढे और उन्होंने सैंकडो कृषकों के झुंड के सामने हाथ में कुदाल लेकर ढलान पर समतल गड्ढे खोदना आरंभ किया। वास्तव में समुद्र प्राशन करने वाले अगस्त्यों के लिए अपने अथर्वण शक्ति से पृथ्वी को हिलाकर पलभर में यह कार्य करना सहज संभव था, तथापि वे चाहते थे कि, अपनी तपस्या में कृषकों का भी सहभाग हों। उन्हे दिखाना था कि, हर एक भूमिपुत्र (कृषक) हर प्रकार धरती माता की सेवा करके उसे प्रसन्न और तृप्त रख कर उसके आशीर्वाद से स्वयम् संतुष्ट रह सके। ऋषिवर तथा कृषकों को समय-समय पर होनेवाली वर्षा पर निर्भर रहने का अभ्यास था। वर्षा आने पर जलप्रबंधन किया जा सकता है, यह कृषकों को ज्ञात नहीं था। अगस्त्य को अपने हाथ में कुदाल लेकर ढलान पर समतल गड्ढे खोदते देख अगस्त्यों के विभिन्न आश्रमों से आए शिष्यों ने हाथ में अगस्त्यों की कुदाल लेते हुए मौन होकर उनका अनुसरण किया।

यह देखकर वानर, कृत, पौलस्त्य, पांड्य, चोल आदि कृषकों के समूह आगे बढे। वानर प्रमुख ने तनिक उत्सुकतावश अगस्त्य ऋषि से पूछने का साहस किया और अन्य लोगों ने कान खडे कर दिए।

''हे अगस्त्य मुनिवर, आप क्या कर रहे हैं?'' अगस्त्य को इसी प्रश्न की प्रतीक्षा थी।

''हे कृषकों, आप भलीभाँति जानते हैं कि, वर्षा द्वारा मिलने वाला जल

अत्यंत अल्प है। जैसे ही वर्षा होती है, जल तुरंत अति शीघ्र गति से पुनःश्च समुद्र को जाकर मिलता है, यह आप देखते हैं और निराश हो जाते हैं। धरती माता ने हमें आदेश दिया है कि, जल के प्रवाह को रोक कर उसे संग्रहित करें, और उसे धरती माता के उदर तक ले जाएँ। धरती के वक्षःस्थल उत्छेद कर हम कूप तैयार करके उसके उदर का जल खींच लेते हैं। तो क्या उसके उदर में जल संग्रहित करना आवश्यक नहीं? इसके लिए मैं अपनी ओर से भरकस प्रयास कर रहा हूँ।'' अगस्त्य मुनि समझाया।

''हे मुनिश्रेष्ठ, आप हमें इस उपाय की विधि और परिणाम बताएं ताकि हम भी यह उपाय कर सकें।''

''हे कृषकों, वर्षाकाल अब समाप्त हुआ है। पृथ्वी पर का जल बह गया है। जल बिना मनुष्य का लहू सुख रहा है। पशु पक्षियों के लिए भी जल उपलब्ध नहीं। जहाँ कहीं भी जल उपलब्ध होता हैं, वहाँ से जल लाकर हम जैसे-तैसे हमारा निर्वाह कर रहे हैं। कूपों मे उपलब्ध जल और दूर-दूर से कुंभ में लाया गया जल हम बडी सावधानी से उपयोग में लाते हैं। जिन कूपों और झरनों से जल लाया जाता है, वे भी धीरे-धीरे सूखने लगेंगे तो हम निराश हो जाएंगे। क्या यह वर्तमान की समस्या है? सहस्त्रों वर्षों से यह चल रहा है। ईश्वर की इच्छा मानकर हम चूप रह जाते हैं, निराश हो जाते हैं। परंतु अब हमें वर्षाकाल समाप्त होने तक आकाश से बरसने वाली वर्षा की एक-एक बूँद को इन गड्ढोमें अवरोधित करना होगा। ये समतल गड्ढे मानो धरतीमाता के लाडले पुत्रों ने लाखो मुख द्वारा जल पहुँचाने जैसा हैं। कूपों में आने वाला जल पृथ्वी के पृष्ठतल से चुनकर संग्रहित होता है। परंतु उदर तक जल को ले जानेवाला मार्ग यदि प्रशस्त ना हो तो जल संग्रहित कैसे हो पाएगा? इसके लिए आइए हम अथक परिश्रम से सीधे प्रवाहित होने वाले लाखो वर्षों की जल की इस परंपरा को रोक दें। यह भी एक यज्ञ है।'' अगस्त्य ने कृषकों को समझाया। लाखो कृषकों ने समतल गड्ढे तैयार करने का संकल्प लिया।

''हे मुनिश्रेष्ठ, ये समतल गड्ढे कहाँ खोदने है, कृपया बताइएं।''

''हे वानरराज, आप सभी अपने-अपने गाँवो में जाए और अनुमान लगाए कि हमारे गाँवों के आसपास कृषि क्षेत्र में जल कहाँ से आ सकता है और सामुहिक रूप से समतल करना आरंभ कर दें।'' अगस्त्यों ने आदेश दिया।

वयोवृद्धों को भी यह प्रस्ताव अच्छा लगा। अगस्त्यकूट पर आए कृषकों के झुंड सफलता की कुंजी प्राप्त करने के हर्षोल्लास के साथ अगस्त्य मुनि से आज्ञा लेकर लौट गए।

''चिलचिलाती धूप में कृषक परिवार सिर पर जलकुंभ और पाथेय लेकर गाँव से ढलान की ओर आने लगे। सभी के हाथों में अगस्त्य का अस्त्र कुदाल था। ग्रामस्थों के झुंड के नायक ने बडों से परामर्श लेकर योजना बनाई और जलप्रबंधन का कार्यारंभ हुआ। पहाडी ढलानों पर समतल की रेखाएँ दिखने लगी। यह रेखाएँ शिवजी के शरीर पर लगाए गए भस्म पट्ट जैसे भासमान हुई।''

**कुदाल से खोदी, ढेर सारी मिट्टी।**
**राजा ने पाया, माणिक मोती ।।**

आनंद और सुख की सूचक मुसकान कृषिवल के प्रत्येक स्त्री-पुरुष के मुख पर खेल रही थी।

**सूर्य की कृपा से । समुंदर ने दे दिया।**
**पवन ने ढोया। गगन में बादल आया।**
**व्योम में उमड़ता। मेघों का ताँता।**
**अक्षय निकल-निकल कर। गगन को ढँक लेता।।**
**पर न बरसा पानी। ना वर्षा की धारा।**
**शूरपद्म राक्षस ने बिगाडा। सृष्टि का खेल सारा।।**
**कहीं अधिक पानी। तो कहीं बरसा कम।**
**कभी कहीं बाढ। तो कहीं था सूखापन ।।**
**प्यासी धरती। लाचार कृषिवल।**
**शिव-पार्वती की कृपा से। अगस्ती ने दिया मनोबल।।**
**अगस्ती की कुदाल। बडी प्रभावशाली।**
**धरती के उदर में जल। खिल गई हरियाली।।**
**अगस्ती अगस्ती तुमने। जन्म लिया मान कुंभ से।**
**धरती की गोद भरी। मानसी के शिवतीर्थ से।।**
**धरती माता के आंचल में। आकाश का भाग्य।**
**अगस्ती के कुदाल ने। संवारा हमारा सौभाग्य।।**

पहाड की ढलान पर समतल गड्ढे मकड जाल भाँति दिख रहे थे। वर्षाकाल

आरंभ हुआ। शूरपद्मा ने अपने मायावी शक्ति का उपयोग वर्षावरोध के लिए करना आरंभ किया। अगस्त्य ने पुनःश्च अथर्वण का प्रयोग आरंभ किया। इंद्रमरुतों का नृत्य का भी प्रारंभ हुआ। विद्युल्लता ने इंद्रदेव को वरमाला पहनाई। आकाश ने शूरपद्मा पर उपहास दृष्टि फेरी। वरुणराज वर्षाधारा से झरना होकर धरती पर उछल पडे। वर्षा द्वारा आकाश से गिरा जल समतल गड्ढों में संग्रहित होता गया। समुद्र ने गहरी साँस ली। शूरपद्मा को लगा कि उसके मायावी शक्ति का जल नष्ट हो रहा है। धरती जल से प्रसन्न हो रही थी।

शूरपद्मा को वास्तव का ज्ञान हुआ। उसने अपनी संपूर्ण मायावी शक्ति दाँव पर लगा दी। महर्षि अगस्त्य के अथर्वण को (यातुशक्ति को) असुरी शक्ति से ललकारा। वर्षा सहसा थम गई। पशुपक्षी, कृषक तनिक संतुष्ट हुए। शूरपद्मा के मन में क्रोध की ज्वाला भडक रही थी। उसने महर्षि अगस्त्य की शक्ति को अवरुद्ध करने के लिए अपनी घोर तपस्या का उपयोग किया, ताकि इंद्रपद को प्राप्त किया जा सके। अगस्त्य को इसका ज्ञान हुआ। उन्हे मन ही मन विश्वास हो गया था कि, अब उनका शिवतांडव करने का समय आ गया है।

''हे महादेव, आपने मुझे मानव जति के कल्याण हेतु दक्षिण क्षेत्र में भेजा हैं। मैं आपकी कृपा और मानव शक्ति का अपने ढंग से उपयोग कर रहा हूँ। तथापि आपकी कृपा से शक्तिमान हुआ शूरपद्मा आप ही की शक्ति को ललकार रहा है। तब आप ही हमारा मार्गदर्शन करें।''

अगस्त्य की प्रार्थना सुनकर शिवपार्वती प्रसन्न हुए।

''हे वत्स अगस्त्ये, तुम शक्तिशाली होते हुए भी इतने निराश, दुखी क्यों हो? एक ही आचमन से समुद्र प्राशन करके तुमने अपनी अपार शक्ति का बहुत ही अच्छा प्रदर्शन किया है। तुम्हारी अद्‌भूत शक्ति के सामने इस शूरपद्मा की मायावी शक्ति पूर्णतः तुच्छ है। अतः तुम अपनी इस शक्ति का उपयोग करें।''

'' 'हे माते, मेरे मन में एक आशंका है।' अगस्त्य ने माता पार्वती से कहा,

''कोनसी वत्स?''

''हे माते, यदि मैं एक दानव को नष्ट करने के लिए अपनी तपस्या शक्ति का व्यय करता हूँ, तो मेरी शक्ति और व्यक्तित्व में बाधा आ सकती है। फिर मेरी परब्रह्मस्वरूप इच्छा का क्या होगा?''

''हे वत्स, तुम्हारा संदेह व्यर्थ है, क्योंकि, तुम उनकी इच्छा से ही यह कार्य कर रहे हो। इस कारण से तुम्हारा तप बाधित नहीं होगा। लोककल्याणकारी कार्य के लिए किया गया तप सौ गुना फलदायी होता है। हे वत्स, तुमने अपने कार्य में कृषक समुदाय को सहभागी करके बहुत अच्छा कार्य किया है। नारायण लोकबंध चाहते हैं कि, मनुष्य आत्मनिर्भर बने और स्वयं देवत्व पद को प्राप्त करें। और तुमने वह कार्य कर दिखाया है।''

''हे माते, मेरी आशंकाओं का समाधान करके मेरे कार्य में मेरी उत्सुकता और मेरा धैर्य आपने बढा दिया है।''

''हे वत्स, अगस्त्य ऋषें, मेरा स्वरूप ही मैंने तुम्हें प्राप्त करके दिया है। दक्षिण क्षेत्र के सभी पर्वत, पहाडियाँ तुम्हारे मार्गदर्शन में शिवरूप बन गए हैं। तुम निश्चित रूप से अपने कार्य में सफल होंगे और जब मेरा स्वरूप तुम्हे नित्य स्मरण रहता है, इसी कारण दक्षिण क्षेत्र में दूर-दूर तक मेरा लिंगरूप तुम्हारा स्वरूप मानकर उसकी पूजा की जाएगी। शिवपद्म शरण आते ही तुम्हें इसका प्रत्यय आएगा।''

''हे शिवप्रभो, पार्वतीमाते, आपके दर्शन पाकर मैं धन्य हूँ। अब मैं शूरपद्मा का अवश्य संहार करूँगा।''

'' 'तथास्तु!' शिवपार्वती अगस्त्य को आशीर्वाद देकर चले गए। कृषक समूह के झुंड पुनःश्च अगस्त्य आश्रम की ओर आने लगे। अगस्त्यों का दर्शन पाकर वे धन्य हो जाते थे।''

''हे महाप्रतापी अगस्त्य मुने, आपकी कृपा से दक्षिण क्षेत्र के समस्त कृषिकुल संतुष्ट हुए हैं।'' तथापि... पाण्ड्य नरेश ने अपना अनुभव कथन किया।

''हे महर्षे, शूरपद्मा ने अपनी मायावी शक्ति से हम भक्तों की खडी फसले भस्मसात करने का षडयंत्र रचा है। संचित किया जल विष बन गया है। कूप से कुंभ में लाया गया जल गले में दाह उत्पन्न करता है। संतुष्ट एवम् आनंदित ईश्वर और अगस्त्य भक्तों का शोषण आरंभ किया है। यदि इसे समय पर नहीं रोका गया तो बडा अनर्थ होने की संभावना है, तथा आप के सभी प्रयास व्यर्थ सिद्ध होंगे।'' पाण्ड्याने अपनी दुखगाथा सुनाई।

''हे पाण्ड्यनरेश, शिवपार्वती की कृपा से शूरपद्मा का दमन करने में हम

अवश्य सफल होंगे। आप भी मेरे साथ शिवजी का चिंतन करें। उनकी शक्ति से ही शूरपद्मा की मायावी शक्ति नष्ट होगी।''

अगस्त्य मुनि ने तुरंत आश्रम में शिवलिंग की स्थापना की। यथाविधी अभिषेकपूर्वक शिवआराधना आरंभ की। शिवनामस्मरण में समूचा आसमंत निमग्न हुआ था।

तब अगस्त्य ने उग्र रूप धारण किया। उनके अथर्वण से समुद्र में भाप जमने लगी। धीरे धीरे आकाश में मेघों का ताँता लग गया। इंद्रकृपा से आकाश झुकने लगा। मरुत ने प्रयास करना आरंभ किया। यद्यपि शूरपद्मा ने इंद्रमरुत को मायावी शक्ति से रोकने का भरकस प्रयत्न किया। किन्तु मरुत इंद्र तक पहुँचना उसके लिए असंभव था। तब अगस्त्यों ने अत्याधिक उग्र रूप धारण किया। उन्होंने ब्रह्मदत्त मेखला को अपनी कमर में बाँध लिया और अथर्वण की अपार शक्ति से शूरपद्मा की मायावी शक्ति को ही प्राशन करना आरंभ किया। शूरपद्मा को ही निगलकर भस्म करने का उनका निश्चय था। किन्तु तब शूरपद्मा अगस्त्यों की शरण में आया। उसने अगस्त्यों के सामने आत्मसमर्पण किया।

''हे ब्रह्मर्षे, मैं आपकी शरण में हूँ, कृपया मुझे अभयदान दें।''

''हे राक्षसी प्रवृत्ति प्राप्त तपस्वी शूरपद्मा, तुम्हारे अहंकार से तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हुई है। तुम पृथ्वीपुत्र होते हुए भी तुमने इंद्रपद की अभिलाषा से पृथ्वी को ही अवशोषित किया है। माता को कष्ट देनेवाला पुत्र क्षमा के पात्र नहीं हो सकता, अतः तुम्हें नष्ट करना ही उचित होगा।''

''हे ब्रह्मन, मुझे मेरे अपराध का ज्ञान हुआ है। आप के अपार सामर्थ्य की अनुभूति पाकर मैं अभिभूत हुआ हूँ। मेरी मायावी विद्या आपके अथर्वण के सम्मुख तुच्छ है। अतः आज से ही मैं आपकी आज्ञा में रहूँगा। आप जो कहेंगे वह प्रायश्चित्त करने के लिए मैं तैयार हूँ।''

''हे शूरपद्मा, तुम इंद्रमरुत और धरतीमाता के शरण में जाओ। वे यदि तुम्हें क्षमा करते हैं, तो ही मैं तुम्हे क्षमा करूँगा।''

''जैसी आपकी आज्ञा।''

''महर्षि अगस्त्य द्वारा शूरपद्मा पराजित होते ही, गत अनेक वर्षों से इतनी वर्षा नहीं हुई थी, जो अब होने लगी। दक्षिण दिशा को मानो आकाश ने नहलाया।'' वृक्ष पुनःश्च पल्लवित हुए। पशुपक्षी अपने स्थान पर लौट आए।

वन-उपवन, अरण्यों में हरियाली छा गई। पृथ्वीने सद्गद् होकर अगस्त्यों को वंदन किया।

''हे अगस्त्ये, तुमने वास्तव में मेरे अभिलाषाओं की पूर्ति की है। कोई भी माता अपने सभी पुत्रों के लिए अच्छा स्वास्थ्य तथा समृद्ध जीवन की कामना करती है। शूरपद्मा की मायावी शक्ति से दक्षिण दिशा भस्मसात होने जा रही थी। हे भगवन्, आपके इस महान कार्य से आप 'दक्षिणभास्कर' नाम से जाने जाएँगे। हे पुत्र, तुम्हारे दयाभाव से शूरपद्मा जैसे दानव को पुनःश्च मनुष्य रूप प्राप्त हुआ है।''

''हे माते, मैं तो केवल अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ।''

''हे अगस्त्ये, मेरी और एक इच्छा है, मैं चाहती हूँ, तुम उसे पूरा करो।''

''आज्ञा माते!''

''हे महर्षे, वर्षाकाल में धरती पर गिरने वाला जल प्रवाही होकर समुद्र में जाकर मिलता है और पुनःश्च हमें वर्षा ऋतु की प्रतीक्षा करनी पडती है। यदि उत्तर की गंगा की तरह यहाँ पर भी गंगा का उद्गम होता है तो जल का दुर्भिक्ष नष्ट होगा। मुझे विश्वास है, यह कार्य केवल तुम ही कर सकते हो।''

''किन्तु माते!''

''तुम्हारी तपस्या से यह अवश्य संभव होगा वत्स।''

पृथ्वी की प्रार्थना सुनकर अगस्त्य कुछ क्षण के लिए सोच में उलझ गए। सहसा उन्हें कावेरी का हठ स्मरण हुआ। और उन्हें प्रतीत हुआ कि, कावेरी को दिया हुआ आशीर्वाद सिद्ध करने का यही अवसर है।

''मुझे स्वीकार है माते, मेरी तपस्या के बल पर गंगा को यहाँ लाने के लिए मैं अवश्य प्रयास करूँगा।''

''हे वत्स, यशस्वी भव!'' पृथिवी ने आशीर्वाद दिया।

इंद्र और मरुत की शरण में गया हुआ शूरपद्म अगस्त्य मुनि के पास लौट आया।

''हे ब्रह्मर्षे, देवेन्द्र और मरुत देव ने मुझे प्रायश्चित्त करने के लिए आपके पास भेजा है।''

''हे शूरपद्मा, तुम ब्रह्मगिरी क्षेत्र में स्थित ब्रह्मगिरी पर्वत पर जाओ। वहाँ कावेरा नाम के ऋषि हैं। उनकी कन्या, कावेरी महातपस्विनी है, उसकी शरण में

जाकर उसे मेरा संदेश देना।''

''कौनसा संदेश ब्रह्मवर?''

''तुम्हे ब्रह्मगिरी से पूर्वदक्षिण के समुद्र तक साष्टांग नमस्कार करते हुए जाना है। समुद्र तक जाने का मार्ग तुम्हें कावेरी से पूछना होगा। वह जो मार्ग बताएगी उस मार्ग पर साष्टांग नमस्कार करते हुए तुम्हें मार्गक्रमण करना है।''

'जो आज्ञा मुनिवर।''

शूरपद्म ब्रह्मगिरी आ गया। उसने कावेरा ऋषि को वंदन कर अगस्त्यों के साथ जो हुआ वह विस्तृत रूप से कथन किया। ऋषि कावेरा ने कावेरी को बुलाकर शूरपद्म का वहाँ आने का उद्देश स्पष्ट किया। कावेरी को संतोष हुआ। कावेरी अब विवाहयोग्य हुई थी। उसका रूप सौंदर्य देखकर कोई भी उसपर मोहित हो जाता। परंतु उसके शांत गंभीर मुद्रा पर तपस्या का तेज झलकता था। लोककल्याण की उसकी प्रबल कामना स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

''हे शूरपद्मा, क्या यह सत्य है कि, महर्षि अगस्त्य ने मेरा ही परामर्श लेने के लिए कहा है?''

''हाँ ब्रह्मवादिनी, यह सत्य है। आप ही का आदेश लेने के लिए मुझे कहा गया है।''

''तो अब यहाँ से साष्टांग नमस्कार करते हुए महर्षि अगस्त्य तक जाओ, तत्पश्चात पूर्वदक्षिण की ओर जाना है। महर्षि अगस्त्य को अवश्य बता देना कि, कावेरी उनके आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही है।''

''जो आज्ञा देवी।''

शूरपद्मा साष्टांग नमस्कार करते हुए निकल पडा। जिस मार्ग से वह जा रहा था, वहाँ एक विशिष्ट प्रकार का जलौघ मार्ग निर्माण होने लगा। शूरपद्म विस्मित हुआ। कावेरी सोचने लगी कि, इसके पीछे महर्षि अगस्त्य का कोई लोककल्याणकारी विचार होना चाहिए। शूरपद्म अखंड साष्टांग नमस्कार करते हुए अगस्त्य तक पहुँच गया। उसने अगस्त्यों को पूरा निवेदन किया। पूरा समाचार सुनकर अगस्त्य प्रसन्न हुए। उन्होंने शूरपद्म को आगे मार्गक्रमण करने के लिए कहा और वे ब्रह्मगिरी की ओर निकल पडे।

महर्षि अगस्त्य ब्रह्मगिरी आएं। सभी ऋषियों ने बडी विनम्रता और भक्तिभाव के साथ उनका स्वागत किया। कावेरी ने ब्रह्मगिरी के सीमा पर उनका स्वागत

किया और सम्मानपूर्वक उनको आश्रम में ले आई। आश्रम पहुँचने पर कावेरा ने उनका पूजन किया और अगस्त्य मुनि से प्रार्थना की, कि वे कावेरा और कावेरी को लोककल्याणार्थ अपने परिवार में समाविष्ट कर लें।

''हे महातेजस्वी महर्षि अगस्त्यमुनिवर, आपने दुर्भिक्ष दूर कर के एक बार पुनःश्च दक्षिण दिशा की रक्षा की है। साथ ही शूरपद्म को अपनी शक्ति का परिचय कराया तथा देवेन्द्र और देवलोक को भी निष्प्रभ किया है। आपके ज्ञान और पौरुषत्व को हमारा प्रणाम। यदि आप की आज्ञा हो, तो आप हमारा एक निवेदन स्वीकार करें।''

''कहिए मुनिवर, लोककल्याण के लिए आपकी मनोकांक्षा सुनकर हम प्रसन्न हुए।''

''हे लोकहितैषि, मेरी कन्या कावेरी आप की प्रतीक्षा कर रही है। आपके साथ विवाह करने की उसकी मनोकामना हैं। यदि उसका विवाह आप के साथ हो जाता हैं तो वह आपके लोककल्याण कार्य में योगदान दे सकती हैं। अतः आप से प्रार्थना है कि, आप उसका स्वीकार करें। आप जैसे महान ऋषि की पत्नी होने का सौभाग्य आप उसे प्रदान करें।''

''हे महर्षे, उचित समय आने पर हमारे कार्य में उसे समाविष्ट करने का वचन हमने दिया हैं, तथापि हमारा विवाह हो चुका है और हमें एक पुत्र भी हैं। अतः''

कावेरी सब सुन रही थी। आगे बढकर उसने कहा,

''हे महर्षे, पौरुष का अंत नहीं होता। विवाह एक सामाजिक मर्यादा है। तथापि समाजकल्याण की कोई मर्यादा नहीं होती। समाजकल्याण हेतु यदि आप मुझ से विवाह करते हैं तो ब्रह्मवादिनी महातपस्वी लोपामुद्रा को भी अत्याधिक प्रसन्नता होगी।''

''हे लोकहितैषि, त्यागशील तपस्विनी युवती तुम्हारा मंतव्य इतना शुद्ध है कि, मैंने तुम्हारा विवाह प्रस्ताव स्वीकार किया है।'' अगस्त्य मुनि ने अनुमती दी।

ऋषि कावेरा ने अपनी कन्या का विवाह अगस्त्य से कराने का नियोजन करना आरंभ किया। इस विवाह से इंद्रमरुत बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कावेरा से मिलकर उन्हें दक्षिण क्षेत्र के सभी राजाओं तथा सभी देवताओं, ऋषिमुनि और

साक्षात लोपामुद्रा को भी विवाह का निमंत्रण देने संबंधी सूचित किया। कावेरा ने ब्रह्मगिरी पर विवाह समारोह का उत्तम प्रबंध किया।

लोपामुद्रा इध्मवाह के साथ आई, आते ही उसने कावेरी को बधाई दी। कावेरी ने अपना संकल्प लोपामुद्रा के पास व्यक्त किया।

अगस्त्य लोपामुद्रा से मिले। कई दिनों के पश्चात वे मिल रहे थे। ब्रह्मगिरी की उनकी यह भेंट अपूर्व थी। भाषा थी पर मूक, भाव थे पर निःशब्द।

''हे ब्रह्मवादिनी पतिव्रते, क्या इस विवाह से तुम्हारे मन में ईर्ष्या नहीं हुई। तुम्हारा समंजस व्यवहार देखकर तो मैं कुछ क्षण के लिए विस्मित रह गया। क्या मैं जान सकता हूँ, इसका रहस्य क्या है?'' अगस्त्य मुनि ने लोपामुद्रा से पूछा।

''नाथ, आप भी इसका रहस्य जानते हैं। स्त्रीत्व और पुरुषत्व निमित्तमात्र है। पतिपत्नी, पातिव्रत्य, पत्नीव्रती ये सब हमने समाज और परिवार हितैषि के रूप में ही तो निर्माण किए है। ये सभी बाते मायावी है। प्रकृति और पुरुष के ही रूप हैं। तथापि इस सृजन का आनंद सत्वयुक्त होकर कर्तव्यबुद्धि से लेना चाहिए।''

''इसी कारण तो कावेरी आपसे विवाह करना चाहती है, तो इसमें क्या बुराई है? आपका पौरुष लोककल्याणार्थ असंख्य रूप में प्रकट होना चाहिए और इसके लिए सृजनशक्ति आगे आती है तो इसमें क्या अनुचित है?''

''हे ब्रह्मवादिनी, यदि हम ही ऐसा विचार करने लगे तो झुंड में रहने वाले प्राणि और मनुष्य में क्या भेद रह जाएगा?''

''हे ऋषिवर, मानव स्थिती के लिए संस्कृति निर्माण करना है। मानव स्थिति त्रिगुणात्मक शरीर से बंधी हुई है। उन्हें सांस्कृतिक मानदंडो द्वारा संतुलित किया जाता है। इसलिए संस्कृति धारण हेतु कालक्रमानुसार मानदंड देने ही होते है। दिव्य शक्ति से संपन्न ऋषि, तपस्वी, प्रतिभावंत और देवगण मानव स्थिती से परे रहते है। मानव कल्याण के लिए उन्हे व्रतस्थ तथा त्यागी रहना पडता है। इसीलिए उनका नाता इहतत्व से नहीं अपितु परतत्व से होता हैं। परतत्व बंधमुक्त होते है। मनुष्य के सम्मुख वे मानवी आदर्श निर्माण करने तक इहतत्व से जीवन व्यतित करने का आभास निर्माण करते हैं।''

''हे ब्रह्मवादिनी, चराचर के परे अनंत विषयक शाश्वत सत्य की बाते सुनकर मैं धन्य हूँ। अब हम उभयतः का जीवन केवल लोककल्याणार्थ ही रहा है।''

''हे ब्रह्मन, इस मानव स्थिती में कावेरी से विवाह पश्चात उसे भी संतति

प्राप्ति का सुख देना आपका कर्तव्य है। इस कर्तव्यपूर्ति के पश्चात ही आपको मुक्ति मिलेगी।''

''हे ब्रह्मवादिनी, यह कर्तव्य भी मैं शीघ्र ही पूरा करूँगा।''

''नारायण, नारायण, हे ब्रह्मर्षि अगस्त्ये, मेरा वंदन स्वीकार करें।''

''आइए, आइए ब्रह्मर्षि नारद, आप का स्वागत है।''

''हे भगवन् अगस्त्ये, आप किस कर्तव्य विषयक भाष्य कर रहे हैं?''

''हे नारद, ब्रह्मवादिनी कावेरी को संतान प्राप्ति करा देने का कर्तव्य?''

''नारायण, नारायण, इसी कारण तो मैं विस्मित हूँ। यह कर्तव्य आपके द्वारा पूरा होना कैसे संभव है? तो आपने कावेरी को जो आशीर्वाद दिया उसका क्या?''

''मेरा कर्तव्य भी मैं पूरा निभाऊँगा और मेरा आशीर्वाद भी सत्य सिद्ध होगा।'' अगस्त्य मुनि ने पूरे विश्वास के साथ कहा।

''हे महर्षे,आपने अहंकार को मिटाकर आर्य संस्कार जगाने के जीवित कार्य को स्वीकार करने पर अहंकार से बोलना आपके लिए कहाँ तक उचित है?''

''हे नारद, मेरा भाष्य अहंकार से नहीं है। यह मेरा आत्मविश्वास है। मैं देखूँगा कि प्रयत्नपूर्वक ये दोनो कार्य सिद्ध हों।''

''ईश्वर करे ऐसा ही हो।''

यद्यपि नारद संदिग्ध होकर वहाँ से गए, फिर भी अगस्त्य के मन में संदेह निर्माण करने में वे सफल रहें।

ब्रह्मर्षि अगस्त्य ने शिवपार्वती, गंगागोदावरी, लोपामुद्रा, दृढस्यू, ऋषिमुनि और अगस्त्य गोत्र में समाविष्ट हुए ऋतु, पुलह, पुलस्त्य तथा दक्षिणाधिपति इनके साथ विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ आदि प्रसिद्ध गोत्र संस्थापक ऋषिगण, समस्त देवता और दाक्षिणात्य नरेश तथा उत्तर दिशा के आश्रमाचार्य इन सभी का यथोचित सम्मान करके सभी की उपस्थिति में कावेरी से विवाह किया।

कावेरी का अगस्त्य मुनि से विवाह करा देने से अपने जीवन का लक्ष्य पूरा हुआ देखकर कावेरा संतुष्टि अनुभव कर रहे थे। अगस्त्य मुनि ने ब्रह्मगिरी पर ही अपना आश्रम बनाया। और वहीं पर वे जाप करने लगे। कावेरी का अगस्त्य

के साथ वैवाहिक जीवन आरंभ हुआ। वह आनंदित थी किन्तु, उसके मन में विश्वकल्याण का विचार उसे बारंबार उद्विग्न कर देता। जिस उद्देश से वह अगस्त्य से विवाहबद्ध हुई थी वह साध्य सिद्ध ना होते देख वह चिंतित थी।

''नाथ, आप महान तपस्वी, त्रिकालज्ञ ब्रह्मऋषि हैं। मेरा संकल्प आप जानते हैं, तथापि मेरे मन की एक बात आप से कहने की अनुमति दें।

''हे ब्रह्मवादिनी, निःसंदेह अपना मन्तव्य व्यक्त करो।''

''हे सर्वज्ञ, विश्वकल्याणकारी सेवाकार्य करने की मेरी मनोकामना है। मुझे घरगृहस्थी में रुचि नहीं हैं। मैं वैवाहिक सुख की अभिलाषा नहीं रखती। मेरा लक्ष्य निरंतर मुझे स्मरण दिलाता है और मैं अपने आपको अपराधी अनुभव करती हूँ।'' कावेरी ने स्पष्ट किया।

''हे प्रिय भार्ये, प्रत्येक कार्य के लिए एक उचित समय होता है। अतः वह समय अवश्य आएगा। तुम निश्चिंत रहो। पतिपत्नी का पारिवारिक कर्तव्य भी होता है और क्या वह भी इतना ही महत्वपूर्ण नही हैं? अन्यथा विश्वकल्याणार्थ सेवा करने के लिए विवाह की क्या आवश्यकता है?'' अगस्त्य ने कावेरी को समझाया।

''हे नाथ, क्या पारिवारिक कर्तव्य ही सृष्टिसेवा है?''

''सत्य वचन, संतान निर्माण करना भी एक साध्य है। वह भी एक कर्तव्य, अन्यथा गोत्रज के पितरों को मोक्ष प्राप्ति नहीं होती।''

''परंतु नाथ, तो क्या सृष्टि के सृजन की सेवा उसी प्रकार का कार्य नहीं?'' उसने प्रतिप्रश्न किया।

''हे कावेरी, तुम्हारा वचन तर्कसंगत है। मैं उस पर अवश्य विचार करूँगा। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध मैं किसी कर्तव्य का दायित्व तुम पर नहीं सौंपूँगा।''

''हे नाथ मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ। आप अपना संपूर्ण जीवन विश्वकल्याण के लिए व्यतित कर रहे हैं। अतः आप जो करेंगे वह उचित ही होगा। मैं आपका अनुसरण करूँगी।''

''हे देवी, मेरे मन में तनिक भी संदेह नहीं। प्राप्त कर्तव्य से कोई विचलित ना हो यही मुझे कहना है।'' इतना कह कर अगस्त्य विचारमग्न हुए। कावेरी को भी कुछ सूझ नहीं रहा था। ऐसे ही कुछ दिन बीत गए। किन्तु अगस्त्य एक पल के लिए भी कावेरी को नहीं भूले। वे कावेरी को हर जगह अपने साथ ले जाने

लगे। अगस्त्यों के व्यवहार में हुआ यह परिवर्तन कोई समझ नहीं पाया।

उस दिन प्रातःस्नान के लिए उन्हें सरोवर जाना था। कावेरी कुछ अस्वस्थ थी। अगस्त्य मुनि के लिए उसे न तो अकेला छोडा जा सकता था और न ही उसे साथ में ले जाया सकता था। इन दिनों अगस्त्य का व्यवहार किसी साधारण मनुष्य जैसा हुआ था। कोई पत्नीलुब्ध मनुष्य जैसे अपनी पत्नी को पल भर के लिए भी अकेला नही छोडता उसी प्रकार अगस्त्य की स्थिति हुई थी। अंत में कुछ सोच-विचार कर उन्होंने एक योजना बनाई। कावेरी को उन्होंने जलरूप में परिवर्तित किया। उसे अपने कमंडल में रखा और कमंडलु लेकर सरोवर चले गए। उस कमंडलु को उन्होंने एक शिलाखंड पर रखकर वे स्नान करने गए।

अगस्त्य के विवाहोपरान्त के व्यवहार पर देवेन्द्र, मरुत और पृथ्वी का ध्यान था।

उन्हें ज्ञात था कि, दुर्भिक्ष निवारण के लिए ही कावेरी का विवाह अगस्त्य से हुआ है। परंतु अगस्त्य के कर्तव्यतत्परता के कारण नारदजी ने कावेरी को चिंता का विषय बना दिया था। देवेन्द्र, मरुत, पृथ्वी शिवपार्वती के पास गए। उन्हें पूरा वृत्तांत निवेदन किया। शिवजी ने सुझाव दिया कि, गणेश इसका समाधान कर सकता है। देवेन्द्र के साथ पृथ्वी गणेशजी के पास गई।

''हे विनायक, आप विघ्नहर हैं, अगस्त्य के कर्तव्य तत्परता के कारण एक बडा विघ्न निर्माण हुआ है। कृपा कर उसे निवारण करें।''

''हे इंद्रमरुत, पृथ्वी माता के कल्याण के लिए, मैं अगस्त्य के मार्ग में निर्माण हुई कर्तव्यतत्परता की बाधा को अवश्य दूर करूँगा। किन्तु सुअवसर देखकर मेरा स्मरण करो। तुम्हारे स्मरण करते ही मैं उपस्थित हो जाऊँगा और आपकी आज्ञानुसार कार्य पूरा करूँगा।''

''हे गणनायक, विघ्नहरण करने की शक्ति केवल आप ही के पास है। अतः हम चाहते हैं कि, आप ही इस कार्य के लिए अगुआई करें।''

''हे देवेन्द्र, भगवान अगस्त्य मेरे लिए पितासमान है। उनके कर्तव्यतत्परता के मार्ग में मेरा आना शोभनीय नहीं है। इसके अतिरिक्त वे उग्रऋषि है। शापादपि शरादपि है। मेरी एक भूल से विघ्न नष्ट होना तो दूर अपितु विघ्नश्रृंखला निर्माण होने का भय है।''

''हमारी दृष्टि से भी अगस्त्य की यही योग्यता है, तथापि संसार के

प्राणिमात्र के रक्षणार्थ जो उचित है वो करें।''

''ठीक है, हम सभी अगस्त्य के पास चलते है।''

''देवेन्द्र-मरुत ने पृथ्वी को आश्वासित कर विनायक समेत ब्रह्मगिरी की ओर प्रस्थान किया और वहाँ पर अनायास ही उन्हें एक सुअवसर प्राप्त हुआ।''

उन्होंने देखा कि, एक शिलाखंड पर अगस्त्य ने जलरूपी कावेरी से भरा हुआ कमंडल रखकर वे स्नान करने गए हैं। जैसे ही उन्होंने सुनिश्चित किया कि अगस्त्य स्नान करने चले गए हैं, तुरंत रिद्धि-सिद्धि की देवता विनायक से प्रार्थना की।

''हे भगवन् विनायक, सौभाग्यवश एक अच्छा सुअवसर है, कावेरी को शीघ्र कमंडल से मुक्त करें ।''

''तथास्तु!'' विघ्नहर ने ग्रीवा हिलाकर संकेत दिया।

''मैं अभी उसे मुक्त करता हूँ।''

''विनायक ने कौवे का रूप धारण किया और पलभर में कमंडलु की ओर उछलकर उसे लुढका दिया। कमंडलु का पानी बहने लगा, जैसे नदी के रूप में उसे नया जन्म प्राप्त हुआ हो।''

पृथ्वी, इंद्र, मरुत आनंदित हुए। शूरपद्म साष्टांग नमस्कार करते हुए जिस मार्ग से समुद्र तक गया था, उसी मार्ग पर कावेरी उछलकर बहने लगी। प्राची की ओर समुद्र से जा मिली।

स्नानसंध्या आदि कर्म के पश्चात जब अगस्त्य लौट रहे थे तो उन्होंने देखा कि, कमंडल से निकलकर कावेरी उछलकर बह रही है। कावेरी अति प्रसन्न थी। हर्ष और उन्माद से बह रही थी।

उसकी धारा से लहर उठती, कहीं कहीं पर वृत्ताकार तरंगे उठती। कलकल-छलछल करती कावेरी के चमचमाते जल के दर्शन नयनाभिराम प्रतीत होते थे। रविरश्मियों के स्पर्श से जलप्रपात से उठते असंख्य नीहारों में अनेक रंग रह-रह कर चमक उठते। यह सारा दृश्य देखकर अगस्त्य को लगा कि, वे कर्तव्यच्युत हुए हैं।

''कावेरी, कावेरी, तुम मुझे ऐसे छोडकर नहीं जा सकती। विलाप करते हुए वे उसे पुकार रहे थे। तब तक कावेरी समुद्र से जा मिली थी। फिर भी पति की पुकार सुनकर वह उनके सम्मुख प्रकट हुई।''

‘‘हे महर्षे, मुझे आपसे आज्ञा लेने का अवसर ही नहीं मिला, मुझे क्षमा करें। तथापि आपने मुझे दिया हुआ वरदान सत्य सिद्ध हुआ है। मैं भी अपना कर्तव्य अवश्य निभाऊँगी’’ कावेरी ने विनम्रता से कहा।

‘‘नहीं कावेरी, मायावी प्रणाली से ऐसा होना उचित नहीं। मेरे साथ छल हुआ है। मैं इसे सहन नहीं कर सकता। तुम पुनःश्च कमंडलु में समा जाओगी’’ ऐसा कह कर उन्होंने अथर्वण क्रिया आरंभ की। उसी समय इंद्रदेव, विघ्नहर विनायक, सभी देवताओं के साथ प्रकट हुए। सभी ने विनम्रता से अगस्त्य मुनि को प्रणाम किया और कहा,

‘‘हे महर्षि अगस्त्ये, आप सर्वथा दुःखी ना हो। आपकी कृपा से ही सभी प्राणिमात्र के कल्याण हेतु कावेरी नदी के रूप में बह रही हैं। उसके पिता और वह स्वयं इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे। कावेरी का नदीरूप दोनों के मनोकामना की पूर्ति है। धरती पर जब तक जीवन है, कावेरी कोटि-कोटि प्राणियों के लिए अन्न-जल का प्रबंध करती रहेगी। प्रभो हम सभी चाहते हैं कि, कावेरी एक महान, पवित्र नदी सिद्ध हो। आपकी आज्ञानुसार ही शूरपद्मा के प्रायश्चित्त के रूप में पूर्ववाहिनी का मार्ग प्रशस्त किया है।’’

‘‘अगस्त्य सहमत हुए। उन्होंने अपने अथर्वण कार्य को रोक दिया। वास्तव में कावेरी ने न जाने कितने लोगों के प्राण की रक्षा की है। वह तो मनुष्य जाति की माता बनी हुई है। कावेरी को आशीर्वाद देकर उन्होंने देवताओं से आज्ञा ली। कावेरी अगस्त्यपत्नी दक्षिणगंगा के रूप में प्रख्यात हुई। अगस्त्य पुनःश्च अपने आश्रम में तपस्यालीन हुए।’’

‘‘क्रतु, पुलह, पुलत्स्य आदि ऋषि, श्री गणेश के साथ ब्रह्मगिरि आए थे। शूरपद्मा को शरण आने के लिए बाध्य करने से समूचि दक्षिण दिशा सुरक्षित हुई थी। इसी कारण वानर, क्रतु, पुलह, पुलस्त्य, पाण्ड्य, ब्रह्म आदि सभी कुल अगस्त्य की ओर आकर्षित हुए थे। अगस्त्य पुत्र इध्मवाह और अगस्त्य मानसपुत्र दृढस्यूत आदि के प्रति विशेष प्रेम इन कुलों में निष्पन्न हुआ था। पुलत्स्य तो अगस्त्य को अपने ही कुल के मानते थे। अगस्त्य को अपना पुत्र मानकर पुलस्त्यपत्नी हविर्भू ने अपने सभी अधिकार उन्हें प्रदान किए थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो क्रतु और पुलहों ने अगस्त्य परंपरा के पुत्रों को गोद लिया हो।’’

पुलहों के पुत्र पुलहों से दूर अहंकारी राक्षस बन गए थे। इन सभी ऋषियों

ने अगस्त्य को वंदन किया। उन्होंने अगस्त्य मुनि से उन्हें अगस्त्य परंपरा में समायोजित करने का अनुरोध किया। अगस्त्य, वसिष्ठ और इध्नवाह ने तारकापुंज में अपना स्थान दिया। क्रतु इध्नवाह बने, पुलत्स्य अगस्त्य तो पुलह वसिष्ठ बने।

''हे ऋषिगण, आपका सहयोग मेरे लिए अनमोल है तथापि ब्रह्मदेव के आज्ञाबिना हम ऐसा कुछ नहीं कर सकते।''

''हे ब्रह्मर्षे, आप अयोनिसंभव, परब्रह्मस्वरूप हैं और ब्रह्माजी की इच्छानुसार बनाए गए हैं। ब्रह्मांड के व्यवस्थापन से दक्षिण का उत्तरदायित्व शिवविष्णु और ब्रह्मा को दिया गया है। तो दक्षिणी सप्तर्षियों में हमारा अंतर्भाव किस लिए? हम अपनी परंपरा में आएंगे और अपनी इच्छानुसार कार्य करेंगे।'' ऋषियों ने कहा।

सभी ऋषिगण श्री गणेश के साथ ब्रह्माजी के पास गए। अपने मानसपुत्रों को श्री गणेश के साथ आते देख ब्रह्माजी के वदन पर स्मित झलका। सभी ऋषियों ने आदिऋषि ब्रह्माजी को वंदन किया।

''हे ऋषियों, अगस्त्य के साथ वर्तमान श्री गणेश को लेकर यहाँ ब्रह्मलोक आनेका क्या कारण है? क्या सृष्टिव्यवस्थापन में कोई बाधा निष्पन्न हुई है?''

''हे पिताश्री, आप पूर्णब्रह्म है। सबकुछ जानते है। आप ही की इच्छा नुसार प्रजापति ने हमें निर्माण किया है। तथापि संभोग मैथुन से ऋषियों को भी महततत्व से सीधा संबंध स्थापित करना संभव नहीं होता। तथापि आप ही की इच्छानुसार मित्रावरुण द्वारा निष्पन्न हुए अगस्त्य और वसिष्ठ को प्रत्यक्ष ब्रह्मा-विष्णु-महेश जैसा सम्मान प्राप्त होता हैं। उनका अधिकार श्रेष्ठ हैं। अगस्त्य के अथक प्रयास से ही दक्षिण में शांति और समृद्धि का वास है। वसिष्ठ के कारण अगस्त्य ने दक्षिण में पाण्ड्या का पौरोहित्य स्वीकार कर लिया है। अतः हे ब्रह्मदेव, आप हमारी परंपरा अगस्त्यों की परंपरा में सभी विद्याओं के साथ अंतर्भूत करने की हमें अनुमति दें। उसी में लोककल्याण है।'' पुलस्त्यों की यह विस्तृत वाणी सुनकर ब्रह्माजी के सस्मित वदन पर सूचक मान्यता स्पष्ट प्रतीत हो रही थी।

''हे ऋषिश्रेष्ठ, आप निरहंकारी होकर निरंतर लोककल्याण का ही विचार करते हैं। इसलिए मैं आपको अपनी परंपराओं को अगस्त्य की परंपरा में अंतर्भूत करने की अनुमति देता हूँ। वसिष्ठों की परंपरा उत्तर की ओर होते हुए भी दक्षिण में उनका अधिक उपयोग किया जा रहा हैं। इसलिए उन्हें भी तारकापुंज में सर्वत्र

स्थान प्राप्त होगा। तथापि हे श्रेष्ठ ऋषिगण, स्वयंप्रकाशी ऋषि श्रेष्ठ का कार्य परब्रह्मासमान समस्त सृष्टि निर्माण का है, इसीलिए मैं अपने चारों मुख्य सम्मुख आप सभी को यथामति प्रकाशमान होने की आज्ञा देता हूँ।''

''सप्ततारकापुंज न केवल दिशादर्शक रहेंगे, अपितु विभिन्न रूपों मे अंतरिक्ष में पृथ्वी वासियों सहित सभी लोगों को अंतरिक्ष देवता के रूप में मार्गदर्शन करती रहेगी।'' ब्रह्मा के इस वक्तव्य को सुनकर ऋषिगण प्रसन्न हुएं।

''हे अगस्त्ये, आप ब्रह्मा-विष्णु-महेश हैं। आपकी शक्ति प्रत्यक्ष प्रकृतिरुपिणी है। लोपामुद्रा और कावेरी सहित कई रूपों में वह समूचे विश्व में प्रकट होती हैं। तब तुम शिव कहलाओगे और शिव रूप में ही पूजे जाओगे। अग्नि के रूप में आप यज्ञ सत्र चलाएंगे और विष्णु रूप में आप सभी प्राणियों की रक्षा करेंगे। प्रकृतिशक्ति रूप की साधना से आप सभी लोगोंका आधार बन कर दुष्टों का सदैव निर्दालन करेंगे। शूरपद्मा को शांत करने और उसे अपनी परंपरा में अंतर्भूत करके आपने प्रत्यक्ष परब्रह्मा के लीलाकार्य का अनुसरण किया है।'' ब्रह्मा ने अगस्त्य की प्रशंसा की।

''हे ब्रह्मदेव, अगस्त्य अस्तित्व, केवल एक कारण है। इस अस्तित्व का उपयोग त्रिदेवों के साधन रूप में होना आपको अभिप्रेत तो नहीं?'' अगस्त्य मुनि ने निवेदन किया।

''हे अगस्त्ये, आपके वक्तव्य से मैं धन्य हूँ। सभी के आग्रह पर कावेरी माता को प्रवाहित करने का साहस तो मैंने किया, तथापि आपके उग्रकोप का भय मेरे मन में रुद्रावतार समान बलिष्ठ था। किन्तु अब आपके वक्तव्य से वह नष्ट हुआ। आप वास्तव में शिवरूप हैं आपको मेरा त्रिवार वंदन।।'' गणेश ने आगे बढकर कहा।

निद्रावश ब्रह्मदेव परब्रह्मा की आज्ञा से जागृत हुए। नए मन्वन्तर चक्र की स्थापना करने का आदेश परब्रह्म ब्रह्मदेव को दे रहे थे।

''त्रिवार वंदन कैवल्यरूपा परब्रह्मा। आज्ञा...''

''हे ब्रह्मदेव, नए मन्वन्तर चक्र का आरंभ करने की भावना हमारे अस्तित्व में संवेदित हुई।'' परब्रह्मा के शब्द गुंज उठे.

''हे परब्रह्म कैवल्य, कितने मन्वन्तर चक्रों के बाद यह मन्वन्तर चक्र समाप्त होने जा रहा है?''

''हे ब्रह्मा मैं विस्मित हूँ कि, तुम मेरा ही रूप होते हुए भी यह प्रश्न पूछ रहे हो। केवल स्थिति का आदि मध्य अंत नहीं होता। गुण–आकार भी नही होता, इतना ही नहीं अंतरिक्ष का भी अस्तित्व नहीं होता।''

''अर्थात यह चक्र अनादि अनंत है।''

''हे ब्रह्मा कैवल्य से चैतन्य शक्ति का प्रकाशित होना यह कैवल्य की प्रकृति है। उसी चैतन्य शक्ति से एक ही कैवल्य के असंख्य रूपों की रचना कैवल्य की क्रीडा है। ब्रह्मांड विस्तार, इस क्रीडा का एक अतिसूक्ष्म आविष्कार है। यह आविष्कार सूर्यरूप चैतन्य आविष्कार से प्रकट होता है। कैवल्य से निष्पन्न चैतन्य धाराओं की एक धारा में असंख्य सूर्याविष्कार हैं। उनमें से एक सूर्याविष्कार से निष्पादित, ब्रह्मांडीय रूप से संबंधित मेरे सूक्ष्म रूप, कैवल्य से सूक्ष्म कैवल्य अर्थात परमात्मा से सूक्ष्म परमात्म तत्त्व चैतन्याविष्कार अर्थात विष्णुरूप हैं। इन आविष्कारों का दूसरा रूप अर्थात शिव और तिसरा रूप ब्रह्म हैं। ये तीनों आविष्कार केवल भासमान हैं। विष्णुतत्त्व प्रेरक एवम् धारक तत्त्व हैं। ब्रह्मतत्त्व शाश्वत सत्य है और प्रत्यक्ष कैवल्य की क्रीडा उसके साधन रूप से होती है, जब कि प्रत्यक्ष अहंकार युक्त साध्य आकार और विलय कारण शिव है। इन तीनों तत्त्वों में श्रेष्ठ–कनिष्ठ भेद नहीं हैं, कोई क्रम नहीं और उनमें अहंकार भी नहीं हैं। परंतु ये तीनों तत्त्व कैवल्य के ही परमात्मतत्त्व रूप हैं। कैवल्य की दीप्तिमान चेतना शक्ति ही, इन तीनों की सत्यरुपिणी शक्ति हैं। यह परमात्म रूप ही सत्य है। हे ब्रह्मा, कैवल्य के ही चार सत्य रूप विकसित होकर सृष्टि निर्माण, धारणा एवम् विलय का कार्य करते हैं, परंतु अर्थात ब्रह्मा को इस पराशक्ति की प्रेरणा से प्रकृति–पुरुष, शिवशक्ति, विष्णु–लक्ष्मी के रूप धारण कर निर्माण कार्य करना होता हैं, अर्थात कैवल्य ही केवल आदि मध्य अंत स्वरूप में विकार दर्शाने वाला अद्वैत तत्त्व हैं। द्वैत उसका आभास है। हे ब्रह्मा, इसलिए आप निः शंक होकर नवमन्वंतर का कारण बनें।

''इस ब्रह्मज्ञान से मुझे कैवल्य के साक्षात दर्शन हुएं। फिर भी, मैं सृष्टि को किस रूप में निष्पन्न करूँ, इस संबंधी आप मुझे आज्ञा करें।''

''हे ब्रह्मा, आप इस नवमन्वंतर में कैवल्य की प्राप्ति और कैवल्य के रूप की अहंकारी महत्वाकांक्षा रखनेवाले प्राणि, चलविचल, अविचल सृष्टिरूप से जड़ चेतन रूप में करें। कैवल्य के मन्वंतर संवेदना को उनके अहंकार, शक्ति

के खेल को देखने की इच्छा हुई है। इस निर्माण कार्य के लिए आप ही ने, पिछले मन्वंतर के आरंभ से कैवल्य महत्‌तत्वरूप पंचमहाअस्तित्व, पंचतत्त्वों का अविनाशी रूप में निर्माण किया हैं। आपको ज्ञात हैं कि, वे सभी अर्ध निद्राधीन, अर्धचेतन अवस्था में हैं। पिछले मन्वंतर चक्र समाप्ति के अवसर पर, निद्रावश विष्णुतत्त्व को अर्धनिद्रा में, उनमें चैतन्यपूर्ण चलन होने का मानसचित्र स्पष्ट प्रतीत हो रहा था। इसलिए विष्णुतत्त्व के नाभिकमल से आपकी प्रेरणा हुई हैं। आप कैवल्य चेतना शक्तिरूप से निष्पन्न मायाशक्ति की सहायता से पुरुष और प्रकृतिरूप होकर उत्पत्ति का प्रारंभ करें। पिछले मन्वंतर से अनावश्यक रूपों के रूप बदलकर उन्हें इस कार्य में अंतर्भूत करें। इसके लिए इस ब्रह्मांड में उपरी और निचले वाले भाग में लोगों को स्थापित करें। पंचतत्त्वात्मक देवतावस्था निर्माण करें। उर्ध्व और अधर दोनों स्थानों पर आप प्रकट, प्रेरक, कारक होने वाली भोगप्रवर्तक शक्तियाँ अर्थात देवताओं का निर्माण करें। उनकी सहायता से आकाश, भू और जल में क्रीडा करने वाले प्राणियों का निर्माण करें। उनके मनमें पारस्परिक भोगने की कामना निर्माण करें। इसके लिए विष्णुतत्त्व अर्थात सत्ता, धन, सुरक्षा, स्वायत्तता एवम् स्वत्व आकांक्षा की कामना निर्माण करके उसे भोगने की कामना उत्पन्न करें। उन्हें स्वप्रेरक निर्माण का ज्ञान दें। पुरुष और प्रकृति रूप से भोगपूर्वक परिवर्तन की शक्ति दें। भोगलालसा निष्पन्न होने के पश्चात काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, स्वरूप अहंकार प्रवृत्त करें। ब्रह्म-परब्रह्म, मन्वन्तर, प्रलय से उन्हें अवगत करा दें। इससे सुख-दुःख की भावना प्रेरित करें। भय और मैथुन विकारों से शरीर के साथ उत्पत्ति, स्थिति एवम् विलय के सिद्धांतों का निर्माण करें। इन विकारी अवस्था में जलचर, भूचर, अंतरिक्षचर एवम् सर्वचर अवस्था कें जीव निर्माण करें। उनमे सत्त्व, रज, तमात्मक अहंकार विकार निर्माण करें। भूचर सृष्टि की स्थापना करें। इस सृष्टि के व्यवस्थापन के लिए यज्ञकर्म प्रस्थापित करें। इस सृष्टि में असंख्य अविनाशी योनि निर्माण करें; उन्हें मैथुन की प्रेरणा दें। इससे सृष्टि चक्र घूमता रहेगा। उनके लिए शास्त्र, कला, साहित्य का भी निर्माण करें। इन सब बातों के आधार पर सुख-दुःख की भावनाओं के साथ जीने की प्रवृत्ति प्रदान करें।''

''हे कैवल्य, आपकी आज्ञा के अनुसार मैं सभी कार्य करूंगा। इसके लिए ऋत्विज करने वालों का ऋषिलोक निर्माण करना होगा। मनस्वरूप के तपस्वी

ऋषि इसका व्यवस्थापन एवम् संदेश का प्रबंधन करेंगे। गुरुकुल और तपस्या से देवताओं से शक्ति प्राप्त की जा सकती है।''

''हे ब्रह्मा, मन्वन्तर चक्र का चलन कैसे हो, यह हमारे आविष्कार रूप का एक भाग हैं। तथापि ब्रह्माविष्णुमहेश स्वरूप ऋषियों का आविष्कार स्वाभाविकतः मेरे स्वरूप का ही आविष्कार होगा। उससे ये ऋषि मेरे स्वरूप में लीन होने के लिए त्रिदेवों की भांति प्रयत्नशील रहेंगे और इसी कारण अंतरिक्ष में वे स्वयंप्रकाशी तारा होकर झलकते रहेंगे।'' परब्रह्म ने कहा।

''हे कैवल्यरूपा, आपकी आज्ञा से आप ही के द्वारा यह सब निष्पन्न हो रहा हैं। मैं कैवल्य स्वरूप विष्णु और शिव को आपके द्वारा दी गई सृष्टिरचना की आकृति निर्माण करने के लिए आमंत्रित करता हूँ।''

ब्रह्मदेव ने विष्णु और शिव दोनों से परामर्श किया और माया की रचना प्रारंभ हुई। विष्णु के नेतृत्व में जलसृष्टि निर्माण हुई, जब कि शिवजी ने अंतरिक्ष सृष्टि की रचना की। ब्रह्मा के निमंत्रण पर जल भूचर विष्णुरूप कछुए ने पृथ्वी को संतुलित कर उपर की ओर ले आएं। ब्रह्मदेव ने सृष्टि निर्माण का प्रारंभ किया। पंचतत्त्वों का आवर्तन आरंभ हुआ। भूगर्भ से पर्वत, पर्जन्य, अरण्य निष्पन्न हुए। पशु, पक्षी, सरीसृप प्राणि प्रचुर संख्या में निर्माण हुए। भयावह जंगलों में पशुओं का पाशवी जीवनसंग्राम आरंभ हुआ। फिर भी ब्रह्मतत्त्व को परब्रह्मतत्त्व का समाधान करना संभव नहीं हुआ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, माया आदि से लेकर द्युलोक, अंतरिक्ष लोक और भूलोक निर्मित देवकोटि की शक्तियों ने पशु, पक्षी, जलचर, सर्प आदि को वाहन के रूप में स्वीकार कर उन्हे कैवल्य के आविष्कार का दर्शन कराया। वनस्पतियों को भू देवताओं के रूप में स्थान देकर भूचर प्राणियों का व्यवस्थापन किया गया। फिर भी माया समेत त्रिदेव अशांत थे। ब्रह्मदेव ने भगवान विष्णु का विष्णुशक्ति प्रतिरूप धारकशक्ति युक्त सृष्टि की रचना करने के लिए अनुरोध किया। पुरुष प्रकृति ने स्वीकृति दर्शाई। शिव जी ने मान्यता दी। कैवल्य से जहाँ अहर्निश लास्य अर्थात नृत्य रहेगा ऐसे स्थान पर कैलाश स्थापित करने के लिए प्रकृति प्रवृत्त हुई। शिवस्वरूप शेष ने कहा कि, विष्णु स्वरूप धारकशक्ति युक्त जीवसृष्टि निर्माण करने के लिए उपयुक्त हिमवान पर्वत अलावरण से बाहर निकालना आवश्यक है। विष्णुस्वरूप वराहों ने शेष नाग की सहायता से जलावरण में हलचल की और हिमवान ने जल से बाहर झाँका।

हिमवान हिमालय सहस्त्रों पर्वत फुलो की शृंखला में अपनी विशिष्टता के साथ मेरू प्रतीत होने लगा। इसीलिए ब्रह्मदेव ने उसका 'मेरूपर्वत' ऐसा नामकरण किया। प्रकृति और पुरुष अर्थात शिवपार्वती ने इस पर्वत पर कैलाश स्थापित किया। मेरू बढता गया। हिमाच्छादित हिमालय पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी लुब्ध हुए। सूर्य और चंद्रमा उसका तेज देखकर कैवल्यरूप पर्वत की परिक्रमा करने लगे। ब्रह्मलोक में अत्यानंद हुआ। ब्रह्मरूप को भगवान विष्णु की स्तुति करने की भावना हुई और उन्होंने ब्रह्मर्षि नारद और वीणावादिनी की स्थापना की। ब्रह्मदेव की इस लीला से शब्दब्रह्म, नादब्रह्म, प्राण ज्योतिब्रह्म निर्माण हुए। उन्होंने विष्णुरूप के साथ कैलाश के निर्माता शिव प्रकृति की स्तुति करना आरंभ किया।

इतना कुछ होने के पश्चात भी ब्रह्मदेव अस्वस्थ थे। उन्होंने विष्णु, शिव और माया के साथ पुनःपरामर्श किया और प्रकृति को पुरुष के माध्यम से मनः स्वरूप सृष्टि निष्पत्ति कथन की। हिमवान ने अपनी सृष्टिरुपिणी कन्या शिवजी को अर्पित की और प्रकृति पुरुष ने ब्रह्मा को मानसपुत्र के निर्माण का संदेश दिया। ब्रह्मदेव ने स्वयं यज्ञ का प्रबंध किया। सूर्य ने सूक्तों का गायन किया। प्रकृति और पुरुष के माध्यम से भगवान शिव ने लिंग रूप धारण किया। प्रकृति ने योनिरूप धारण करके ब्रह्मदेव ने विष्णुतत्त्व के साथ कैवल्यमय आत्मतत्त्व की प्रेरणा की और कैवल्य प्रतिरूप ब्रह्मस्वरूप मानव बन गया। आकाश में हिमवान की गोद से 'अहम् ब्रह्मः अस्मि!' शब्द उत्पन्न हुए। ब्रह्मा द्वारा रचा गया यज्ञ सफल रहा। प्रथम निर्माण हुए पुत्रों ने परब्रह्म स्वरूप होने की इच्छा प्रदर्शित की। सृष्टि के उपभोग के साथ जीवन को नकारा। प्रजनकों की उपेक्षा की। केवल, संकल्प, स्पर्श, यज्ञ से प्रजा निर्माण की, किंन्तु व्यर्थ। ब्रह्मदेव ने पुनश्च यज्ञ का आयोजन किया और परब्रह्मस्वरूप को आवाहन करके विष्णुस्वरूप और शिवस्वरूप प्रजापति की मानसनिर्मिती की। स्वयं द्वारा रचे गए मानसयज्ञ से देवता, ऋषि निर्माण किए। परंतु प्रजा का निर्माण अपने आप हो इसलिए कोई यज्ञ सफल नहीं हो रहा था। पुनश्च एक बार प्रकृति और पुरुष ने योनि और लिंग के मैथुन द्वारा ब्रह्मस्वरूप शक्ति आविष्कारों की निष्पत्ति होने का वरदान दिया। प्रजापति ने ऋषि को कन्या अर्पण की और प्रजनन करने के लिए कहा। प्रतिब्रह्मरूप मानव वंश बढने लगा। मैथुन में रुचि निर्माण हुई और कई कन्याओं से कई प्रकार की

प्रजा निर्माण हुई। उसमें मानव, दानव, गंधर्व, यक्ष पिशाच्च, राक्षस आदि देवता प्रतिकृति रूप मानव उत्पन्न हुए। उनमें विकार और अहंकार निर्माण हुए। मेरुमणि से लेकर पृथ्वी के सभी क्षेत्र मे मनुष्य फैलने लगे। राज्य, समाज, कुल, परंपरा, देवताओं की उपासना आरंभ हुई, फिर भी विभिन्न कोटि के मानवों में स्त्री, भूमि एवम् संपत्ति को लेकर संघर्ष होने लगे। देवताओं का साम्राज्य इंद्र के पास गया। ब्रह्मदेव ने इंद्र को स्वर्ग अथवा देवलोक का राज्य उपहार के रूप में दे दिया। कई दानव, मानव, यक्ष, गंधर्व, ऋषि इंद्र का यह पद हथियाने के लिए प्रयास करने लगे। जब कि इंद्र ने अपने राज सिंहासन से शत्रुओं को हटाने के आदेश दिए तथा ऋषिगण अपने तपोबल से इंद्रपद को प्राप्त न कर सके, इसके लिए इंद्र ने उनकी तपस्या भंग करने के लिए कामवासना, मैथुन भावना निर्माण करने के उपाय किए। अक्षय यौवना और अतिसुंदर सृष्टि कन्या का अन्नदाता, प्रत्यक्ष पर्जन्यदेवता होने के कारण त्रिदेवों को सृष्टिनिर्माण तथा ऋषियों को लोककल्याण के लिए प्रिय थे। उनकी रक्षा के लिए कई युद्ध लड़े गए। कैवल्य अर्थात परब्रह्म को अपेक्षित लीला सौरमंडल के भूलोक में तथा ब्रह्मांड में आरंभ हुई।

अगस्त्यों ने दक्षिण में समग्र भूक्षेत्र जलसंपन्न करके पुनर्गठन कार्य आरंभ किया। दक्षिणी छोर पर अगस्त्यों ने पाण्ड्य देश के कुलपति पद, पुरोहित पद स्वीकार किया था। इस पाण्ड्य देश की अंतिम सीमा पर श्रीलंका की ओर जाने वाले मार्ग में उन्होंने श्रीलंका और पाण्ड्य देश के साधकों के लिए उपयुक्त एवम् श्रीलंका जाते समय विश्राम हेतु एक आश्रम की स्थापना की। आश्रम का व्यवस्थापन पाण्ड्य राजा को सौंपा गया था। आश्रम में उन्होंने धनुर्विद्या, खड्गविद्या, आयुर्वेदविद्या, यज्ञसंस्था एवम् सोमयाग सत्र आदि पाठ्यक्रम आरंभ किए। अथर्वण को विशेष प्राथमिकता दी गई। वंग और नेपाल के पशुपतिनाथ से प्राप्त अथर्वण विद्या, माया विद्या का अध्ययन इन्हीं आश्रमों से प्रारंभ हुआ। अगस्त्यों की तपस्या के कारण इन सभी विद्याओं को इस आश्रम में अति उन्नत रूप में पढाया जाता था। पाण्ड्य के साथ-साथ क्रतु, पुलह और पुलस्त्य जैसे कई दक्षिणी लोगों ने इस आश्रम में सीखना आरंभ किया। अगस्त्य मुनि ने आश्रम में अगस्त्य विद्या पढाने के लिए उत्तर की लोकभाषा, परंपरा एवम् दक्षिण की लोकभाषा का उपयोग किया। प्रत्यक्ष परब्रह्म और ब्रह्मदेव के आशीर्वाद से उन्हें पहले से ही चतुर्मुखी भाषाएं ज्ञात थी। अगस्त्यों की वाणी चतुर्मुखी देवता की

कृपा से पुनीत हुई थी। जब कि सागर से शिखर तक उनका भ्रमण और इंद्र, मरुत, अग्नि एवम् वरुण देवताओं के अंशात्मकता के कारण दशदिशाएँ उनके लिए शिवास्पद बनी थी। दक्षिण में दक्षिण के लोगों का सीधा संबंध 'लोकभावन' ऋषि से था। अगस्त्यों ने स्वयं विद्या की परंपरा आरंभ की थी।

पाण्ड्य देश में उन्होंने 'मणिमति' अर्थात 'दुर्जया' में एक आश्रम की स्थापना की और वैदुर्य पर्वत पर अगस्त्य विद्या केंद्र का प्रारंभ किया। समुद्री मार्ग से यात्रा विद्या भी उन्होंने आत्मसात की थी। समुद्र नित्य उनका सम्मान करता था। उन्होंने स्वयं आयुर्विद्या की साधना के संदर्भ में जम्बुद्वीप के आसपास के सभी द्वीपों का भ्रमण करके अध्ययन केन्द्रों का आरंभ किया और वहाँ के लोगों को अपनी परंपरा में जोड दिया। अगस्त्यों ने आसपास के किसी भी द्वीप को नहीं छोडा। भगवान शिव जी की आज्ञा के अनुसार समुद्र तट और समुद्र से सभी विदेशी वनस्पतियों, प्राणियों, चट्टानों, शंख, सीपों का अगस्त्य विद्या के अंतर्गत लाया गया। वे स्वतंत्र अगस्त्यविद्या के प्रसार के लिए नित्य भ्रमण करते थे और नए आश्रमों को भी स्थापित करते थे। उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और मुख्य रूप से महेश से लोककल्याण हेतु अथक परिश्रम एवम् सहस्त्रों वर्षों की तपस्या का व्रत स्वीकार किया था। त्रिदेवों को गुरू मानकर वे स्वयं ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। इसलिए त्रिदेव भी उन्हें सुगमता से ज्ञान प्रदान करते थे। उन्होंने अपना ध्यान हिमाचल से श्रीलंका और सिंधु घाटी से परे के क्षेत्र से ब्रह्मवर्त तक केन्द्रित किया था। दक्षिण के लिए उनका विशेष प्रेम था, मानो अन्य ऋषियों ने उन्हें दक्षिणाधिपति नियुक्त किया हो। उन्होंने दक्षिण के बदामी आश्रम को केन्द्र स्थान पर निश्चित किया था। वहाँ से उन्होंने दक्षिण के सभी स्थानों को आपस में जोड दिया। तंजावर में नेरोल के पास अगस्त्यस्थान, कालंजर पर्वत पर अगस्त्यकूट, अगस्त्यकूट जहाँ से ताम्रपर्णी का उद्‌गम होता है, अगस्त्यशैल, अगस्त्यशृंग, अगस्त्यसरसतीर्थ, कुछ ऐसे स्थान थे, जिन्हें उन्होंने पूर्व-पश्चिम तट के साथ सुशोभित दक्षिण में स्थापित किए। किन्तु उत्तर-दक्षिण पर ध्यान रखने के लिए केन्द्रीय स्थान के रूप में उन्हें त्र्यंबकेश्वर, ब्रह्मगिरी, पंचवटी, तपोवन आदि गंगाघाटी के स्थान ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुए। इनमें सह्य पर्वत की गोद से उत्पन्न होने वाली अमृतवाहिनी से भी उनका विशेष प्रेम था। इसलिए उन्होंने अमृतवाहिनी के सान्निध्य में स्थित शिवभूमि में अगस्त्यनगर की स्थापना की।

इस नगर का निर्माण अमृतवाहिनी अर्थात प्रवरा तट पर हुआ था। इस आश्रम में कोई शिक्षा केन्द्र की योजना नहीं थी। यह आश्रम उन्होंने अपने निवास के लिए रखा था, जैसे उत्तर में गंगाद्वार और काशी, प्रयाग, बंग, इसी प्रकार दक्षिण में अगस्त्यनगर (अकोले), बदामी और अगस्त्यकूट, पाण्ड्य। दक्षिणाधिश के आश्रम में कई अगस्त्य बनें। प्रत्येक शिष्य विशेष रूप से व्यक्तिगत शिक्षा में निपुण था। इस प्रकार महर्षि अगस्त्य के व्यक्तित्व में भाषा, मौखिक परंपरा और चौदह विद्या, चौसठ कलाएँ एक साथ आई।

*

''हे ब्रह्मर्षि नारदमुने, अगस्त्य मुनि को शल्यचिकित्सा और रसचिकित्सा का ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ? उन्हें यह ज्ञान किसने दिया? कृपा करके हमें बताएं। क्यों कि, विश्पला के शल्यचिकित्सा से हमारी उत्सुकता चरम सीमा तक पहुँच चुकी है।''

''हे रामचंद्र, आपको यात्रा के दौरान धीरे-धीरे यह सब ज्ञात होगा, तथापि अगस्त्यों द्वारा आयुर्विद्या की परंपरा को जानना, वास्तव में आपके लिए श्रेयस्कर होगा।''

''हे मुने, हमें लगता है कि आप उस परंपरा को यथोचित बता सकते हैं। इसलिए हम इसे आपके ही मुख से सुनना चाहते हैं।''

''हे श्रीरामचंद्र, यह सत्य है कि, त्रिदेवों ने अगस्त्यों को आयुर्विद्या प्रदान की हैं। अगस्त्य प्रकाशपुत्र है, इसलिए उन्हें कई विद्याएं आत्म प्रकाशित हुई हैं। इसमें योग विद्या, उन्हें स्वयंप्रकाश से प्राप्त हुई है।

''हे भगवन् नारद, यह विद्या तो केवल तपस्या से प्राप्त होती है।''

''आपने सत्य कहा, तथापि अगस्त्य में वास्तविक योगी शिव अपनी योग शक्ति से प्रकट होते हैं। जब कि प्रत्यक्ष ब्रह्म कृषि विद्या द्वारा प्रकट हुए है, भगवान विष्णु लोककल्याणकारी वृत्ति से प्रकट हुए हैं। यद्यपि अगस्त्य मित्रावरुणी है, फिर भी वे मुख्यतः शिवपुत्र और ब्रह्मा विष्णु के स्वतेज हैं। महर्षि अगस्त्य का यह व्यक्तित्व परब्रह्मा की स्वयंप्रेरणा से विकसित हुआ है। इसलिए अगस्त्य विद्या को एक व्यामिश्र अथवा संश्लिष्ट के रूप में माना जाता हैं। उनके

लोककल्याणकारी कार्य के लिए त्रिदेव भी आगे आएं हैं।

''हे मुने, आपके इस निवेदन से हमारी उत्सुकता को और बढा दिया हैं।''

''हे राम, वैदेही-लक्ष्मण आप जैसे श्रोताओं के कारण ही मैं बारंबार कथा निवेदन करने का साहस कर सकता हूँ। हे रामचंद्र, आयुर्वेद के शल्य, शालाक्य, कायाचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायन तंत्र, वाजीकरण विद्यातंत्र, आठ अंग बताएं गए हैं। ये सभी अंग उन्हें ज्ञात थे। तथापि वे शल्य, शालाक्य, भूतविद्या, अगदतंत्र में विशेष रूप से पारंगत थे। इतना ही नहीं उनके इस अगाध ज्ञान के कारण एक वृक्ष भी अगस्त्य नाम से ख्यात हुआ। अगस्त्य अर्थात हदगा उस वृक्ष का नाम है। इस वृक्ष के फूल अगस्त्य मुनि के समान होते हैं, तथापि वे अगस्त्यविद्या के लिए लाभदायी हैं।''

''हे मुने, हमें यह बताइए कि अगस्त्य मुनि ने यह कैसे प्राप्त किया।'' नारद कहने लगे,

''हे श्रीरामचंद्र, एक समय अगस्त्य तपस्या में निमग्न थे कि, सहसा उन्हें प्रतीत हुआ कि, किसी सर्प जैसे प्राणि ने उनकी दाहिनी पिंडली को दंश किया है। उनकी तपस्या भंग हुई। शरीर में असह्य जलन होने लगी। प्रकाशमान अगस्त्यों को संदेह हुआ कि, उन्हें विषबाधा हुई है। जैसे ही उन्होंने इससे छुटकारा पाना चाहा, उन्होंने तुरंत उस विषैले जीवाणु को अपना विष फिर से सोखने का आदेश दिया। वह कोई साधारण जीवाणु नहीं था। शेष वंश का वह विषाणु महर्षि अगस्त्य के दर्शन हेतु आया था। यह देखकर कि अगस्त्य तपस्या में निमग्न है, तथा उनके दर्शन करना संभव नहीं, इसलिए उसने अपनी स्वाभाविक प्रकृति नुसार उनके पिंडली को काटा था। जब उसे ज्ञात हुआ कि, अगस्त्य मुनि की तपस्या भुंग हुई हैं, तो वह भयभीत हुआ।

''हे महातपस्वी, शिवरूप प्रकाशमान अगस्त्ये, मुझे क्षमा करें। मैं आपकी शरण में हूँ। जब आप इंद्रादि देवताओं का अहंकार नष्ट कर देते हैं, तो मेरे विष को निकालना आपके लिए कठीण नहीं हैं। आप ही उसे नष्ट करें। आपने मुझे जो आज्ञा दी है वास्तव में उसका पालन करना मेरे लिए असंभव हैं।''

''मैंने आज्ञा दी हैं, अब यह व्यर्थ नहीं जाएगी। इसलिए अब तुम इस विष को अवशोषित करने के लिए आगे आओगे, अन्यथा मैं श्राप देता हूँ कि, आज

के पश्चात तुम सरीसृपों का विष नष्ट हो जाएगा।''

''हे महर्षे, विष ही हमारा जीवन है। उसके माध्यम से हम पृथ्वी और पाताल में संचार करते हैं। इस विष के कारण ही समस्त जीव जगत हमसे डरता है और हम सुरक्षित हैं। इसलिए अब मैं मेरा विष पुनःप्राशन करता हूँ। परंतु हे महर्षे, मुझे संदेह हैं कि, क्या जिसे हमने एकबार विसर्जित अथवा उत्सर्जित कर दिया उसी को पुनः अवशोषित करना उचित होगा? अथवा क्या वही विष मेरे मृत्यु का कारण बनेगा?''

''हे शेष, बिना किसी संदेह के तुम कार्यरत हो। क्यों कि यद्यपि तुमने ऐसा नहीं किया तो भी तुम्हारी मृत्यु अटल है। इस विष से तुम्हें कोई नुकसान नहीं होगा।''

''परंतु हे...''

''हे शेषयोनि धारक, तुम मेरे दर्शन करने हेतु यहाँ आए हो। दंश करने के पीछे तुम्हारा उद्देश शुद्ध था। इसलिए यदि तुम इस कर्म का प्रायश्चित्त करते हो, तो तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। इसके लिए मैं एक मंत्र का उच्चारण करता हूँ,

''ॐ ब्रह्मविष्णु शिवा यैनः विषशङ्कावान अगस्त्यः प्राब्रवीत'

''महर्षि अगस्त्य ने मंत्र का उच्चारण किया और आकाश काँपने लगा। अगस्त्य पुनः पुनः उच्चारण करते गए। मंत्र जाप शांति से हो रहा था। अगस्त्य मुनि के शरीर की आग थम गई। शेष ने पूरा विष अवशोषित कर लिया। तत्पश्चात सहसा उसका शरीर शिथिल होने लगा।

''हे अगस्त्य नारायण, संभवतः मेरी मृत्यु समीप है। आप ही मेरी रक्षा कर सकते हैं।''

''हे शेष, यह केवल तुम्हारे विष का परिणाम है। तुम शीघ्र ही पूर्ववत हो जाओगे।'' इस प्रकार वास्तव में शेष पूर्ववत हुआ। अगस्त्य शेष के विष को नियंत्रित करने में सफल रहें। तथापि वहीं न रुकते हुए उन्होंने भगवान विष्णु का आवाहन किया। उन्होंने प्रार्थना की कि, वे ब्रह्मा और शिव जी के साथ उन्हें दर्शन दें। अगस्त्य मुनि की प्रार्थना के अनुसार त्रिदेव प्रसन्न हुएं।

''हे अगस्त्ये, तुमने हमें क्यों बुलाया है? भगवान विष्णु ने पूछा।

''हे भगवन्, आपने विभिन्न प्रकार के प्राणि निर्माण किए हैं, तथापि उनका जीवन एक-दूसरे पर निर्भर है। ऐसा करते हुए रचयिता द्वारा कुछ पाप हुए हैं। उन

पापों का प्रक्षालन करने के उपाय आप ही कथन करें।''

''पाप और ब्रह्मदेव ने किए! हे अगस्त्ये, तुम तो अहंकार को मिटा देते हो। क्या तुम्हें अहंकार तो नहीं हुआ?'' शिव जी कुछ क्रोधित स्वर में कहा।

''क्षमा करें, भगवन्, क्षमा करें! प्राणियों में हलाहल अर्थात विष की योजना बनाई गई है, इसे शस्त्र के रूप में उपयोग में लाना, क्या पाप नहीं हैं? वास्तविक विषोत्पत्ति यह औषधि रूप शरीर की रोगव्याधि नष्ट करने के लिए होती है?

''अर्थात, विषप्रयोग से भक्ष्य को प्राप्त करने में अनुचित क्या है?''

''हे भगवन् सृष्टि के सभी रूप यदि आप ही के है तो ये कहाँ तक उचित है कि, आपने जो सिद्धांत बनाएं हैं, उसका उपयोग एक जीव दूसरे जीव का जीवन लेने के लिए करें?''

''हे अगस्त्ये, उत्पत्ति, स्थिति और लय सृष्टि के मूल सिद्धांत हैं, जिसके लिए शरीर और शरीर के भीतर धातु, रस आदि निर्माण किए जाते हैं। तुम इस बात को पहले समझ लो। इन रस धातुं नुसार प्राणियों में सत्वरजतमात्मक जीवनाशय होता है इसलिए ब्रह्मनिर्मिति में कोई पाप नहीं है। तथापि तुम्हारा प्रश्न लोककल्याणकारी होने से विषप्रयोग के विषय में यदि हमारा अर्थात त्रिदेवों का और तुम्हारा स्मरण करके मंत्रोच्चारण होता है तो विष को अवश्य नष्ट किया जा सकता है।''

''हे भगवन्, मैंने वास्तव में अपने स्वार्थ से आपको कष्ट दिया। आप जो चाहे दंड दे सकते हैं। आप आज्ञा करें।''

''हे अगस्त्ये, सृष्टि के प्राणियों एवम् मनुष्यों की रक्षा करने के लिए तुम्हारी प्रेरणा है। इसलिए मानव कल्याण के लिए तुम्हें जो चाहिए वह माँग लो।'' भगवान विष्णु ने कहा।

''हे भगवन्, किसी विषबाधित निरपराध व्यक्ति का विष अभी सिद्ध किए गए मंत्र से नष्ट हो। साथ ही आपकी आज्ञा के बिना कोई विषधर जीव किसी अन्य जीव पर दंश न करें।''

''हे लोककल्याणहितैषि अगस्त्ये, तुम्हारी माँग अत्यंत प्रेममय होने से इस मंत्र के उपाय से विषबाधित निर्दोष व्यक्ति का विष नष्ट किया जाएगा। तुम्हारा कल्याण हो!'' इस आश्वासन के साथ भगवान ब्रह्मा-विष्णु-महेश अंतर्धान

हुएं। तब से, अगस्त्य मुनि ने मंत्रों की विस्तार से रचना की और विषविद्या के बदले मधुविद्या नाम से विषविरोधी विद्या प्रसिद्ध की।''

''मधुविद्या के उपाय से विष पूरी तरह से निकल जाता है। मधुविद्या के अनुसार अगस्त्य आश्रम से प्राणि, पशु, पक्षी, जिवाणु, नदियाँ, विशिष्ट संकल्प के साथ लिए गए जल का उपयोग किया जाता है। इतना ही नहीं परंतु 'ॐ अगस्त्ये नमः।।' इस मंत्र के जाप से भी विष से मुक्त हो सकते हैं। अगस्त्य मुनि ने अपनी विद्या का पुनर्गठन किया। अपने कौशल का उपयोग करते हुए उन्होंने 'जीवोजीवस्यजीवनम्' इस सूत्र के अनुसार विषनिरसन के लिए देवताओं का आवाहन किए बिना ऐसी प्रणाली विकसित की, जिससे विषधारक प्राणियों के, शत्रु प्राणियों के विष निवारण के लिए उसका उपयोग हो सके।

''हे महामुने, ऐसा प्रतीत होता है कि, अगस्त्यों के हर एक कृति में प्राणि जीवन का हित समाया हैं। आपने कहा था कि, अगस्त्य विद्या से मानसिक रोग एवम् माया की मनोविकृत अवस्थाओं को नष्ट करने के उपाय किए हैं, वो कैसे?

''हे प्रभो, महर्षि अगस्त्य का औषधि, जादू एवम् मंत्र-तंत्र का ज्ञान और कार्य भी बहुत महान है। उन्होंने ब्रह्माजी की तपस्या से निर्माण हुई मेखला प्राप्त की थी।

''उन्होंने यह मेखला किस लिए प्राप्त की?' प्रभु श्रीराम ने पूछा। इसपर ब्रह्मर्षि नारद ने कहा,

''हे प्रभो, महर्षि अगस्त्य यज्ञसत्रों का आयोजन करने में प्रख्यात हैं। प्रायः उनके यज्ञसत्र शतर्चिन को साथ लेकर होते थे। मानव कल्याण हेतु पंचतत्त्वों और इंद्र, सूर्य, वरुण, लोकपाल एवम् अन्य देवताओं से संवाद होता था।

एक समय की बात है, एक प्रदीर्घ सोमयाग के अवसर पर कुछ गुप्त शक्तियाँ ऋषियों के अथक प्रयास से तैयार सोमरस प्राशन करने लगी। अगस्त्य मुनि को अंतर्ज्ञान से ज्ञात हुआ कि, ये मानवी वासना की शक्तियाँ थी और वे सोम लेकर भाग रही थी। उस सोम से उनकी वासनाओं की तृप्ति करके वे मुक्त होने का प्रयास कर रही थी। महर्षि अगस्त्य जानते थे कि, मनुष्य जन्म में योग और तपस्या से माया की शक्ति प्राप्त करके जादू का ज्ञान प्राप्त होता है। तथापि उन्हें विश्वास था कि, ऐसी शक्तियों को वे योगसामर्थ्य के अथर्वण से बद्ध कर

सकते हैं। उनके लिए यह नया अनुभव नहीं था कि, मानवी वासनाएं अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए सर्प, कौवे, चतुष्पाद हिंस्त्र पशु के रूप में आते हैं। उन्हें यह सत्य भी ज्ञात हुआ कि, ये वासना रूप मृतकों की अधर आत्मा होती हैं। उन्होंने यह भी देखा कि, मध्यरात्रि, मध्यान्ह, सूर्यास्त का समय वासना रूप स्वीकार ने के लिए उपयुक्त होता हैं। उन्होंने अपनी तपस्या और योगबल से ये सब रोक दिया। उन्होंने सप्तर्षियों के उदाहरण से सीखा था कि विभिन्न ऋषियों के यज्ञसत्रों के दौरान राक्षस, दानव हिंसक रूप से पीडा देतै हैं और इसके लिए दिव्यशक्ति पात्र क्षत्रियों का उपयोग किया जा सकता है। तथापि मानवी जीवन के अतृप्त आत्मा वासना रूप से सत्रों की वस्तुएँ, सोमरस लेकर भागते हैं। उन्होंने विचार किया कि यदि यत्र सत्रों में इतना साहस दिखाते है तो साधारण मनुष्यों को कितनी पीडा देते होंगे। इस विचार से इस विषय का संपूर्ण ज्ञान पशुपतिनाथ से प्राप्त करने की इच्छा उनके मनमें निर्माण हुई। अगस्त्य जानते थे कि, शिवशंकर के कालरूप को इन बातों का ज्ञान था। वे यह भी जानते थे कि शिव चिताभस्म से भूतों को अपने वश में रखते हैं; इसलिए वे शिव जी के पास गए।''

''हे मुनिवर, क्या शिव जी ने अगस्त्य मुनि को अथर्वण भूतविद्या प्रदान की?''

''सहसा यह संभव नहीं हो सका; अगस्त्यों को घोर तपस्या करनी पडी?''

''वह क्यों?''

''हे प्रभो, अगस्त्य दिव्य, अमानवी हैं। भूतविद्या यह मर्त्य के संदर्भ में एवम् शिवगणों के संबंध में ही होती है। मनुष्य का जीवन इन शक्तियों से बाधित एवम् बद्ध होता हैं। माया का जाल उसके चारों ओर लिपटा हुआ हैं, जिसका अध्ययन करना अगस्त्य मुनि के लिए आवश्यक था।

''हे मुने, अगस्त्य मुनि ने उसके लिए क्या योजना बनाई थीं?''

''हे रामचंद्र, अगस्त्य मुनि ने जंबुद्वीप के पूर्वांचल के नेपाल, भूतान, तिबेट, आसाम, और वंग क्षेत्र से शिवस्थानों की यात्रा की। उन्होंने कई शिवभक्तों को विभिन्न प्रकार के तंत्रमंत्र का अभ्यास करते हुए देखा। ये तांत्रिक कालिरूप में पार्वती एवम् कालभैरव रूप में शिव का जाप करते थे। उनको विभिन्न वनस्पतियों, मनुष्यों एवम् पशुओं के मांस, अस्थियों का उपयोग करते हुए पाया

गया। विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगी भी दिखाई दिए। इसलिए अगस्त्य मुनि ने इस विषय में प्रत्यक्ष शिवपार्वती से पूछने का निश्चय किया और वे सीधे कैलाश आएं।

''महर्षि अगस्त्य ने अगस्त्य मुनिग्राम के उत्तर में भूतेश्वर की स्थापना करके घोर तपस्या आरंभ की। 'ॐ नमः शिवाय, भूतनाथाय नमः' के जाप से हिमालय कांप उठा। हिमशिखर कांपने लगे। कालभैरव और काली के लिए सोमयाग का प्रारंभ हुआ। मित्रावरुण का यह हठ सरल नहीं था। उन्हें लोककल्याण हेतु पृथ्वीभ्रमण करना था। अगस्त्य जान चुके थे कि, उसके लिए भूत विद्या आवश्यक है। अघोरी विद्या के लिए अघोरी तपाचरण आवश्यक था। अगस्त्यों ने यज्ञसत्र में विभिन्न वनस्पतियों एवम् पशुपक्षियों की आहुतियाँ देना आरंभ किया। उन्होंने उनका शरीर सीधे अपने उदर में स्वीकार करना आरंभ किया। ब्रह्मदेव विचार करने लगे कि, उनके द्वारा निर्माण की गई सृष्टि अब अग्निरूप अगस्त्य के क्रोध से उजड़ जाएगी। इस कालपुत्र ने जन्म लेने के पश्चात केवल कुछ सहस्त्र वर्षों में ही मानो काल का तांडव आरंभ किया था। भगवान वसिष्ठ ने अगस्त्य मुनि को रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ, देवेन्द्र और मरुतों एवम् मित्रावरुण ने भी उन्हें समझाने का प्रयास किया परंतु विश्वशक्ति का अद्वितीय कोष अगस्त्यों में संचित हो रहा था। वे किसी की बात सुनना नहीं चाहते थे। अंततः यह देखकर कि, भूतनाथ, कालभैरव एवम् काली माता प्रसन्न नहीं हो रहे है, तो उन्होंने एक विराट अग्निरूप प्रकट किया और भूतमात्र के स्वाहाकार का आवाहन किया। समग्र पृथ्वी कांप उठी। हिमालय, समुद्र, पृथ्वी, देवता एवम् मनुष्य अगस्त्यों से प्रार्थना करने लगे। ऐसा लग रहा था मानो प्रलय होने जा रहा है। प्रत्यक्ष सूर्यमंडल ग्रसित होने लगा था। ब्रह्मदेव, भगवान विष्णु शिव जी के पास आए। शिव जी कालीमाता के साथ अतर्क्य योगासन में स्मितपूर्वक निमग्न थे। शिवगणों ने प्रत्यक्ष ब्रह्मा विष्णु के आगमन की सूचना शिव जी तक पहुँचाने का प्रयत्न किया और विकराल रूप धारी कालभैरव एवम् कालीमाता प्रकट हुए।

''हे महाकालिनाथ कालभैरव, समग्र विश्व आपकी शरण में हैं। आपका पुत्र मित्रावरुणी अगस्त्य घोर अघोरी तपाचरण कर रहा है। क्या आपका उसपर ध्यान नहीं?'' ब्रह्मा ने पूछा।

''हे ब्रह्मदेव, आपके द्वारा दशदिशाओं में रचना की गई सृष्टि में, आपने

आत्मस्वरूप मानव की उत्पत्ति जीवसृष्टि के साथ करके यातुशक्ति से समग्र जीवसृष्टि का संबंध माया के आवरण से जोडकर भूतलोक रूपि ब्रह्मांड निर्माण किया और अमर्त्य का मार्ग जटिल कर दिया है। यह सत्य है कि, अपने द्वारा निर्माण किए गए इस दुःखमय नश्वर जीवन की रक्षा करने के लिए, आप अनेकों उपाय कर रहे हैं, तथापि परब्रह्म ने मुझे उसे संभालने तथा उसे काल के उदर में प्रवाहित करके प्रलयांकित करने के अघोरी कर्म का उत्तरदायित्व सौंपा है। इसकी संरचना का कार्य करते समय अघोर योग करना पडता है। मेरा पुत्र अगस्त्य इसी कार्य का एक भाग है। उसकी विद्या सिद्ध हो, इसीलिए हम महाकाली के साथ योगसमाधि में निमग्न थे। आप ही का स्मरण हो रहा था कि, आप स्वयं यहाँ उपस्थित हुए।''

''हे कालभैरवनाथ, लगता है अगस्त्य ने भूत मात्र के कल्याण हेतु घोर युद्ध छेडा है। इसे हठ कहा जाए या तपस्या?'' भगवान विष्णु ने पूछा।

''हे भगवन् विष्णो, हम तीनों के एक साथ आए बिना सृष्टि का संतुलन संभव नहीं है। संतुलन बनाए रखने का मुख्य कार्य मनुष्य का मन करता है। आत्मा के अस्तित्व को मन से ही समझा जाता है। यह सत्य है कि, लोकबंधन में उस मन को बांधना हमारा काम हैं, किन्तु यदि हम नश्वर प्राणियों को इसके माध्यम से अर्थात मोक्ष के मार्ग से नहीं ला सकते है, तो हमें चौरासी लक्ष योनि के माध्यम से, परब्रह्मरूप आत्मा को भटकाकर मर्त्य रूप में जीना होगा। इस जन्म-मरण के चक्र को शरीर के माध्यम से बाधा होती है। यदि वासनारूपी देह से वासना फलीभूत नहीं होती हैं, तो वासना के अधर रूप वायुलहरी की भांति विहार करते हुए हमारे गणों के आश्रय में आते हैं। आप जानते हैं कि, जड़ शरीर और यातुशक्तियों द्वारा प्राप्त वासनाओं के बीच का संबंध भूतविद्या को अवगत कराता है। इतना होने पर भी, देवकोटी के अतियोनि यह कार्य नहीं कर सकते। मानवी देहप्राप्त यातुधान से ही यह कार्य करना होता है। इसके लिए संपूर्ण जीवसृष्टि का साधन रूप उपयोग करना होता है। इस अधर अवस्था में वासना को शरीर के माध्यम से चर अवस्था प्राप्त होती है और जल पर बुलबुले की भांति, मृगतृष्णा की तरह कई मिथ्या प्रतीत मर्त्य निर्माण हुए। इस अवस्था का व्यवस्थापन, नियंत्रण तथा अधर अवस्था से मुक्ति पाने के लिए ऋषियों को अथर्वण विद्या अर्थात भूतविद्या और आयुर्वेद विद्या का ज्ञान प्राप्त होना आवश्यक है। परंतु इसे

प्राप्त करने के लिए केवल ब्रह्मरुपिणी मेखला की ही आवश्यकता होती है। हे ब्रह्मदेव, उस मेखला का रहस्य और उस मेखला को प्राप्त करने के लिए अगस्त्य घोर तपस्या कर रहे हैं। अब इस तपस्या के समाप्ति का समय निकट आ रहा है। इसलिए हम महाकाली के साथ अगस्त्य को समझाते हैं।''

''त्रिदेव कालीमाता के साथ भूतशिखर पर प्रकट हुए और भूतशिखर प्रकाशमान हुआ। स्वाहाकार शांत हुआ। अग्निज्वाला अंतर्धान हुई। अगस्त्य मुनि के नेत्रो में अश्रु अनायास ही छलछला आए। उन्होंने शीघ्रता से भूतनाथ और कालीमाता के चरण चूमें।

''हे माते, हे पिताश्री, हे साक्षात ब्रह्मन, हे महाविष्णो, मैं आप सभी का अपराधी हूँ। मुझे लगा कि, भूतविद्या और आयुर्विद्या जानना मेरा प्रथम कर्तव्य है। इसलिए मैंने हठपूर्वक इस यज्ञ का प्रारंभ किया। मैं आपकी शरण में हूँ। मुझे भूतविद्या और आयुर्विद्या का दिव्य ज्ञान प्राप्त हो, यही मेरी आपसे प्रार्थना है।'' भूतशिखर पर सभी के साक्षी में भूतनाथ के आशीर्वाद प्रकट हुए।

''हे वत्स, हम सब तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हैं। मर्त्य लोक के लिए भूतविद्या आवश्यक है, वह तुम्हें अवश्य प्राप्त होगी। आयुर्विद्या तुम्हें प्राप्त हो, इसलिए प्रत्यक्ष आयुर्विद्या, भगवान विष्णु के रूप में प्रकट हुई है। हे अगस्त्ये, ये दो विधाएं शिव, शक्ति, विष्णु रूप हैं। ये सारी शक्तियां अब इसी क्षण से तुम्हारे अंतर में प्रकट हुई हैं। तुम्हारे दिव्य दृष्टि को नदियों के प्रवाह, पर्वतों के मानव रूप, वृक्षलताओं की अतर्क्य दिव्य शक्ति, भूतमात्र की वासना, अधर वासनात्मा के दर्शन होंगे। इससे मानव शरीर और मन को लाभ होगा।''

''तुम मानव शरीर निर्माण कर सकते हो। समग्र विश्व तुम पचा सकते हो। इतना ही नहीं, तुम्हें राक्षसों, दानवों, यक्षों के अमानवी एवम् मानवी रूप अवगत होंगे। तुम पृथ्वी के अनमोल खजाने को देख पाओगे, उसके लिए हे अगस्त्ये, तुम्हारी आज्ञा के अनुसार सभी प्रकार के जीव तुम्हारी सहायता करेंगे। इंद्र की इंद्रजला शक्ति तुम्हें प्राप्त होगी। परंतु उसके लिए तुम्हें अथर्वण विद्या के साथ शिव, शक्ति, विष्णु और उनके ग्राम रूपों की स्थापना करनी होगी। ऐसा करने के लिए स्वयं ब्रह्मा उनके द्वारा तपोबल से प्राप्त की अथर्वण मेखला तुम्हें प्रदान करने के लिए लेकर आएं हैं। मृत्यु की दिशा दक्षिण है, इसलिए तुम इस मेखला के साथ दक्षिण से लोकोद्धार कार्य का प्रारंभ करो।

‘‘हे सृष्टिरचयिता ब्रह्मदेव, आप सृष्टि के देवता हैं, मेरी आप से प्रार्थना है कि, आप मुझे मेखला का रहस्य बताएं और मुझे इस मेखला से अलंकृत करें।’’

‘‘हे अगस्त्ये, वत्स मुंज नामक घास से यह मेखला बनी है यह घास बहुत ही जटिल जडों से बनी हुई हैं और सृष्टि उत्पत्ति के साथ निर्माण हुई है। वह सभी काल की साक्षी है। यह मेखला किसी भी भूतविद्या के प्रयोग में अंश रूप से भी क्यों न हों, यातुधान के कमर में बंधी होनी चाहिए, ताकि, उसे मर्त्य रूप में, अधर वासनारूप आत्मा, मायावी रूप, पूर्वजन्म, भूत, वर्तमान और भविष्य अवगत हो सके। उसके यातुविधि सफल होकर यज्ञ की भांति मंत्रतंत्र के फल प्राप्त होंगे।’’

‘‘यह मेखला सृष्टि के प्रारंभ में, सृष्टि के लिए चल रही तपस्या का परिणाम है और यह मेखला मानव आस्था की कन्या है, इसलिए वह मन को सीमित कर सकती हैं। यह मेखला मेरी और मेरे ऋषि गणों की भगिनी है। इसलिए इस मेखला की यज्ञ कर्म में सहायता मिलती है। इसका अस्तित्व भूतमात्र के वासनाओं को रोक देता है। यह मेखला हमें शिव, शक्ति, बुद्धि, कल्पना, चमत्कृति, प्रतिभा और जादू का सामर्थ्य देती है।

‘‘जब कि यह सृष्टि माया है, इसलिए इसका दिव्य दर्शन इसी मेखला से होता है। मैं तुम्हें ऐसी ब्रह्म निर्मित मेखला प्रदान करता हूँ।’’

‘‘हे ब्रह्मदेव, मैं धन्य हूँ। अब आपकी आज्ञा के अनुसार मैं मनुष्य की रक्षा के लिए सिद्ध हो जाऊंगा, परंतु हे भगवन् विष्णो, मर्त्य जीव, मनुष्य एवम् अन्य प्राणि वात-पित्त-कफ युक्त एवम् सत्व-रज-तम युक्त हैं। वे शरीर और आत्मा में बद्ध हैं। उनके गुणात्मक संतुलन के लिए उन्हें स्वस्थ शरीर और प्रसन्न मन की आवश्यकता होती है, अतः उसके लिए हमें आयुर्विद्या का दान करें।

‘‘हे वत्स अगस्त्ये, वास्तव में यह बडे गर्व की बात है कि, तुम लोककल्याणकारी ऋषि के रूप में कार्य आरंभ करने के पूर्व बहुत सोच-समझकर सार्वभौमिक शक्तियों की अपेक्षा कर रहे हो। इसलिए हे अगस्त्ये, तुम धमनी को छूते ही चिकित्सा कर सकोगे। तुम मर्त्यों के दिव्य अंगों को पुनः उत्पन्न करोगे और तुम्हारे पास मृतकों को पुनः सक्रिय करने की शक्ति होगी। इतना ही नहीं, वनस्पति, प्राणि और विभिन्न धातु एवम् रस, औषधि के रूप में तुम्हारी सहायता

करेंगे। यह मेरा आशीर्वाद है कि, इस ज्ञान की सहायता से तुम दिव्य अन्न उत्पन्न कर सकोगे तथा दिव्य औषधि रूप तीर्थ की निर्मिती कर पाओगे।''

''भगवान विष्णु ने अगस्त्यों को आयुर्विद्या दी। त्रिदेव द्वारा मर्त्यों के लिए दिए गए वरदान को स्वीकार करते हुए अगस्त्यों के मुख पर आनंद और प्रसन्नता की सूचक मुसकान खेल रही थी।''

''हे पिताश्री, परमपूजनीय, शिरोधार्य गुरू सद्गुरो, महादेव, हे महाकाली माते, यदि मैं और अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेता हूँ, तो क्या मुझे लोक कल्याणकारी कार्यों में सफलता प्राप्त होगी?''

''हे वत्स, अगस्त्ये, तुम शिव के पुत्र हों, वास्तविक प्रत्यक्ष शिव जी से गुरुपदेश प्राप्त करना अति दुर्लभ है। यद्यपि तुमने भगवान शिव से भूतविद्या और आयुर्विद्या का ज्ञान प्राप्त किया है, किन्तु भगवान शिव प्रलयंकर हैं। यदि प्रत्यक्ष शिव युद्ध का तांडव छेड दिया तो ब्रह्मांड में कुछ भी नहीं बचेगा। मैं प्रकृतिरुपिणी काली, भगवान विष्णु, देवगण सभी ने शिवजी से युद्ध कला प्राप्त की है। युद्ध समय काल का कारण है, इसलिए हे अगस्त्ये, तुम्हे युद्ध विद्या में पारंगत होना चाहिए। महाकाली ने अगस्त्यों को बताया।

''हे माते, मुझे कौन सा तपाचरण करना होगा?''

''हे अगस्त्ये, तुम कार्तिकेय, गणेश और ब्रह्मपुत्री शारदा से साहित्य और संगीत का ज्ञान अवगत कर लो। इन कलाओं में नर्तन, वादन, गायन, नाट्य अंतर्भूत है। उनकी उपासना करके अथक साधना से तुम शिवतत्त्व को प्रसन्न करो। तत्पश्चात ही तुम युद्ध विद्या प्राप्त करोगे। शिव जी, जो अस्त्र और शस्त्र के कारण हैं, त्रिशुलधारी भी हैं। त्रिशुल ब्रह्मज्ञान, कला और काल का ज्ञान देनेवाले शिवायुध हैं। इसमें ब्रह्मज्ञान और कला को आत्मसात किए बिना जो केवल कलोपासना करते हैं वे दानव, दैत्य स्वरूप को प्राप्त होते हैं, और जो केवल ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते हैं, वे केवल तत्वोपासना करके मोक्षप्राप्ति करते हैं। जो केवल कलोपासना करते हैं, वे गंधर्वस्थिति को प्राप्त होते हैं। इसलिए इन तीनों को जो आत्मसात करते हैं वे प्रत्यक्ष शिवरूप बनकर मर्त्य-अमर्त्य, दृश्य-अदृश्य लोककल्याण का कार्य करते हैं, वे ही वास्तव में शिवतत्त्व, ब्रह्मतत्त्व, विष्णुतत्त्व, ॐकार स्वरूप परब्रह्म तत्त्व होते हैं। अतः हे अगस्त्ये, तुम इन सभी को प्राप्त करने के पश्चात ही लोकोद्धार कार्य के लिए विश्वसंचार करो।'' कालीमाता ने

अगस्त्य को मातृवात्सल्य से समझाया।

''हे माते, मैं तुरंत श्री गणेश, कार्तिकेय एवम् ब्रह्मवादिनी सरस्वती माता का अनुग्रह प्राप्त करके साधना आरंभ करता हूँ।'' इतना कहकर अगस्त्य ने त्रिदेवों को वंदन किया और श्री गणेश जी से मिलने निकल पडे।

''हे काली भगवती, मातृरुपिणी, ऐसा लगता है, आपने अगस्त्य का मार्गदर्शन कर उनका लोककल्याण का मार्ग अवरुद्ध कर दिया है।'' भगवान विष्णु ने संदेह उपस्थित किया।

''हे जगत्चालक, लोकबंध, परब्रह्म के स्वप्न की पूर्ति करना आपका उत्तरदायित्व है। उस स्वप्नपूर्ति में हम तो बस निमित्त मात्र हैं। ज्ञान, कला और काल उस परब्रह्म के ही रूप हैं। ये तीनों अवस्थाएँ त्रिदेवों में वास करती हैं, जिसके कारण, वे विश्व के लोगों, देवताओं, दानवों, मनुष्यों एवम् मानवी अवस्थाओं तक पहुंचते हैं। तब अपने पुत्र अर्थात ऋषि, मुनि, तपस्वी, तत्त्वज्ञ, वैज्ञानिक, दार्शनिक जिनके शक्ति माध्यम से स्वप्नपूर्ति का प्रत्यक्ष कार्य करना है, उन सभी को सर्व शक्तिमान अवस्था प्राप्त होनी चाहिए। उसके उदाहरण स्वरूप मैंने अगस्त्य को यह साधना करने का आदेश दिया है।'' पार्वती कालीमाताने विस्तार से निवेदन किया।

''हे माते, हम धन्य हैं, जिस कारण से हमने आपको योग समाधि से जागृत किया, वह सार्थक हुआ!'' ब्रह्मा-विष्णु ने उमा-महेश के दर्शन किए और प्रसन्नचित्त होकर वे स्वलोक लौट गए।

*

अगस्त्य शिवलोक आएं। उन्होंने श्री गणेश के दर्शन किए। उन्हें अनन्यभाव से शरण जाकर श्री गणेश की आराधना की।

''हे शिवस्वरूप, श्री विष्णु अवतार, सकलविद्या के अधिष्ठाता, परात्पर गुरौ, मैं आपकी शरण में हूँ। आप शिवपुत्र हैं। मेरे ज्येष्ठ भ्राता है, ज्येष्ठ भ्राता गुरू स्वरूप ही होता है। अतः आप मुझे साहित्य, संगीत आदि कलाओं और विद्याओं का ज्ञान देकर यथोचित मार्गदर्शन करें।''

''हे अगस्त्ये, आप हमारे भ्राता हैं। महाकाली ने ही आपको हमारी ओर

प्रेरित किया है, इसलिए आप को साहित्य संगीतादि कला, क्रीडा, आदि अन्य विद्याओं का मार्गदर्शन करना हमारा कर्तव्य ही हैं। आइए हम भ्राता कार्तिकेय से परामर्श लेते हैं।'' श्री गणेश ने कहा।

श्री गणेश अगस्त्य को लेकर कार्तिकेय के पास गएं। कार्तिकेय ने भी अगस्त्य और गणेश का यथोचित स्वागत किया और गुरुत्व स्वीकारने के लिए स्वीकृति दी। तीनों श्री शारदा सरस्वती से परामर्श करने ब्रह्मलोक गए। देवी शारदा वीणावादिनी शिव के तीनों पुत्रों को देखकर प्रसन्न हुई। श्री सरस्वती ने कालीमाता द्वारा बनाई गई योजना को स्वीकार कर लिया।

कैलाश पर शिव की सान्निध्य में देवी काली के साक्षी के साथ, अगस्त्य ने साहित्य, नृत्य, वाद्य, गायन, नाटक आदि कलाओं की साधना आरंभ की। अगस्त्य अपने योग बल एवम् घोर तपस्विता से सर्व शक्तियों के साथ साधना करने लगे। शिवपार्वती सकौतुक दृष्टि से अगस्त्य की साधना देख रहे थे। कुछ ही अवधि में अगस्त्य सभी कलाओं में निपुण हुए। प्रतिभा और प्रज्ञा दोनों श्रीशारदा की कृपा से उन्हें प्राप्त हुई। हजारों वर्षों की इस तपस्या के साथ शिवाराधना करके कालविद्या को आत्मसात करने का समय निकट आया।

प्रत्यक्ष श्री गणेश, कार्तिकेय, श्रीशारदा इन सभी का आशीर्वाद लेकर शिवगण के साक्षी में सोमयागसत्र आरंभ किए। सोम सिद्धं करके इंद्रादि सर्व देवताओं को आमंत्रित किया। ऋषिमंडल के श्रेष्ठ ऋषियों को भी सोमयाग सत्र में निमंत्रित किया। अग्नि, लोकपाल, दिक्पाल, ग्रह, तारका, नक्षत्र, आकाश, कैवल्य और काल इनको भी आमंत्रित किया गया। याग सत्र आरंभ हुए। आहुति देने से देवता प्रसन्न हो रहें थे। इन सत्रों का समाचार भूतनाथ के गणों द्वारा दानवरूपी विद्यासंपन्न अहंकारी मनुष्य तक पहुँच गया। यदि ऐसा यज्ञ अगस्त्य द्वारा संपन्न किया जाता है, तो संपूर्ण विश्व अगस्त्य पादाक्रांत करेंगे और प्रलय होगा ऐसा सोचकर राक्षस यज्ञ में बाधा डालने के लिए सिद्ध हुए।

अब सभी को विदित हुआ था कि, भूतविद्या प्राप्त, शिवस्वरूप एवम् भगवान विष्णु का ही अग्निसंभव प्रकाशरूप अवतार अर्थात प्रत्यक्ष अगस्त्य ही हैं।

वरुण की सहायता होने से उन्हे पर प्रकार की विद्या का ज्ञान और अंतर्ज्ञान प्राप्त है। इसलिए अधर मायावी शक्तियों ने उनके सोमयाग में विघ्न डालने का

निश्चय किया।

सोमयाग सत्र सुचारू ढंग से संपन्न हो रहे थे कि, सहसा यज्ञस्थल पर पर्जन्य, सर्पास्त्र, अग्निस्त्र का वर्षाव होने लगा। प्रत्यक्ष भगवान शिवशंकर की कृपा से यह हो रहा था। कालीमाता के तंत्र, यंत्र और मंत्रों का उपयोग करके कई यातुधान इस सोमयाग सत्र में बाधाएँ उत्पन्न करने का प्रयास कर रहें थे।

अगस्त्य तनिक भी डगमगाए नहीं।

श्री गणेश की शांतगंभीर मुद्रा से उन्हें बल मिला। कार्तिकेय के निष्ठायुक्त प्रतिज्ञित अवस्था से अगस्त्य को दृढ समर्थन मिला और उन्होंने सोमयाग सत्रोत्तर नर्तन, वादन, गायन तपस्या आरंभ की। माता सरस्वती उन्हें प्रेरणा दे रही थी। ब्रह्ममेखला उन्हें प्रतिरोध करने की शक्ति दे रही थी। महातेजस्वी, महातपस्वी, ऋषिवर नर्तन, वादन, गायन तीनों कार्य एक ही समय में बडी कुशलता से करने लगे। समूचा कैलाश उनकी भावमुद्रा, उनके आलाप, उनकी लयबद्ध हरकतों से मंत्रमुग्ध हो गया। अंतरिक्ष देवी-देवताओं से भरा हुआ था। उनके कलाविष्कार से भूतमेला, शिवगण, विक्षेपक दानव भी अपने रंग में रंग गए थे। कलाविष्कार के अपूर्व अनुभव से ब्रह्मांड हर्षोन्मत्त हुआ था। परब्रह्मा के नेत्र में आँसू छलकने लगे। कैवल्य भावुक हुआ। समय थम गया।

अगस्त्य ने शिवतांडव नृत्य का प्रारंभ किया और पदन्यास के कुछ आविष्कार के पश्चात ही उन्होंने विश्वचैतन्य, विश्वात्मक शक्तिरूपिणी काली और शिवतत्व के संचार से अतिआवेशयुक्त नृत्य का प्रारंभ किया जैसे सहस्त्ररश्मि का सहस्त्र गुनासे प्रकाशित होना, प्रलंयकर का तांडव देखने कल्पांति के आदित्य का प्रकट होना, उसी प्रकार अगस्त्य प्रकट होने लगे। उनके आविष्कार ने सृष्टि के जीवों के नेत्रों को चकाचौंध कर दिया। वादन, गायन, नर्तन की एकरूपता से सिद्ध संगीत साधना केवल अतर्क्य थी। शब्दस्वरों का मंत्रबल प्राप्त हुआ था। भावाभिव्यक्ति, पदन्यास को मानो यंत्रबल प्राप्त हुआ था। कला का ऐसा अद्‌भूत आविष्कार महाकाली ने केवल महादेव में अनुभव किया था और क्या आश्चर्य! श्री गणेश, कार्तिकेय, शिवगण भी नृत्य में दंग रह गए। ब्रह्मदेव ने दशदिशाओं की ओर देखा। अपने लोकपाल के साथ दिशाएँ भी नृत्य कर रहीं थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे समूचा शिवलोक ही पलयंकारक तांडव में दंग रह गया हो। विश्व व्याकुल हो उठा, सृष्टि दोलायमान हुई। संसार का समुद्र हिलोरने लगा। समूचे

विश्व की दृष्टि कैलाशरूप शिवलोक पर केंद्रित हुई। एक क्षण ऐसा भी आया जब कि, समूचा आकाश थरथराने लगा और अपने स्वाहाःकार से विश्व को प्रलयित करने की क्षमता रखने वाले विक्राल विश्वव्यापी शिवयोगी निद्रा से जागृत हुए और नृत्यविष्कार के साथ लीलया अगस्त्य के सम्मुख प्रकट हुएं। कैलाशनाथ सहसा इस प्रकार प्रकट हुए, जैसे प्रत्यक्ष चैतन्य विश्व का सकल तेजोगोल केंद्रित होकर सम्मुख प्रकट हुआ हो। आकाश चमक उठा। परब्रह्म अपने ही इस अतर्क्य आविष्कार से चकित थे। ब्रह्मा का विष्णु-शिव में विलय हो गया था। अगस्त्य की साधना इस शक्ति से विचलित हुए बिना चलती रही।

''हे महातेजस्वी पुत्र, आज वास्तव में तुम्हारा नया जन्म हुआ है। हम प्रसन्न हैं। तुम स्वयंप्रकाशी, महातेजस्वी, निरभ्र आकाश में सुस्पष्ट दीप्तिमान, शिवतेज से, और अधिक तेजस्वी तारा बनकर आकाश के अंत तक चमकते रहोगे। न केवल दक्षिण में अपितु पूरे संसार में लोग तुम्हारी शिव के रूप में आराधना करेंगे। तुम्हें सभी प्रकार की युद्ध कला अवगत हुई है। प्रत्यक्ष युद्ध ना करते हुए भी केवल कलाविष्कार से तुम शत्रुओं का विनाश करोगे। श्री गणेश, कार्तिकेय और देवी सरस्वती की कृपा से तथा मेरे स्थायी स्वभाव से तुम्हें सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त हुआ है। मेरी सभी शक्तियाँ अब तुम्हारे पास भी स्थित होगी। त्रिदेव का लोककल्याण का कार्य अब तुम्हारे द्वारा युगो-युगों तक होता रहेगा।'' शिवजी ने दिव्य आशीर्वचन का उच्चारण किया।

शिवाशीर्वाद से अगस्त्य भावुक हुए। कैलाश शांत हुआ। कार्तिकेय, श्री गणेश, माता सरस्वती सभी प्रसन्न थे। महाकाली ने पुत्रवात्सल्य से अगस्त्य को प्रेमालिंगन दिया। साक्षात शिवजी भी यह वात्सल्यपूर्ण आविष्कार देखकर भावुक हुए। चंद्रमौलीश्वर ने अगस्त्यों को शिव शक्ति में समाहित कर ऋषि के रूप में मानव सेवा का मार्ग प्रशस्त किया। उन्हें आकाशगंगा में स्थान देकर विश्व मार्गदर्शक बनाया।

समस्त विद्याओं में पारंगत होकर अगस्त्य मुनि ने गंगाद्वार प्रस्थान किया। उन्होंने वहाँ पर काशी विश्वेश्वर के सान्निध्य में एक आश्रम स्थापित करके कार्यपूर्ति करने का निश्चय किया। अब तक अखिल विश्व को अगस्त्य के व्यक्तित्व का परिचय हो चुका था। परिणामस्वरूप अनेक कुल, राजा उनसे जुड गए। विद्यापारंगत होने के लिए शिष्यों का ताँता लगने लगा। प्रयाग और वंग दोनों

स्थानों पर गंगामाता की आश्रय में अगस्त्य मुनि ने गुरुकुलों की स्थापना की। इन स्थानों पर वे स्वयं अथर्वण की साधना करने लगे। उनके शिष्यों को धनुर्विद्या और आयुर्विद्या का प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त होने लगा। दक्षिण के क्रतु, पुलह, पुलस्त्य, पाण्ड्य आदि कुल वंग में आकर, अगस्त्य कुल में समा गए। दक्षिण में अगस्त्यों के गुरुकुल स्थापित करने की मानो स्पर्धा निर्माण हुई थी। वंग के आश्रम में एक समय शांत बैठे थे कि, सहसा कुछ द्विज अर्थात पक्षीगण आश्रम में आए। उन्होंने अगस्त्य को वंदन किया।

''हे अगस्त्य ऋषें, हम आपकी शरण में हैं।''

''आप सुरक्षित हैं। कहिए मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ।''

''हे ऋषें, अनेक मायाविद्याप्राप्त राक्षस, दानव, तांत्रिक हमें आत्मसंयम या विषप्रयोग के लिए, भविष्यकथन के लिए, यहाँ तक कि जारणमरण में बलि चढाने के लिए भी उपयोग में लाते हैं। इसमें लोककल्याण तो होता नहीं किन्तु लोकसंहार की संभावना ही अधिक होती हैं। इसी कारण हमें द्विजयोनि से मुक्ति नहीं मिलती। हम चाहते हैं कि, हमारा जीवन लोककल्याण के लिए सार्थक सिद्ध हों। अतः हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि, इसपर आप कुछ उपाय करें।''

''हे द्विजगण, आप सभी ब्रह्माजी के दूत हैं। आप कई प्रकार के मानवी संकेतों के साक्षी है। आकाश में विहार करने की कला आपको अवगत हैं, वास्तव में आप वायुपुत्र हैं। क्या आपने आपकी समस्या से ब्रह्मदेव और वायु को अवगत कराया है?''

''हाँ ऋषिवर, वायुदेवता ने हमें आपके पास भेजा है।''

''ठीक है, हे वायुपुत्रों आप देवताओं का वाहन है। तथापि गरुडराज को अवगत कराना आवश्यक हैं।''

''हे ऋषिश्रेष्ठ, उनके परामर्श से ही हम आपके पास आए हैं, इसलिए...''

''हे द्विजगण, जब कि आप मेरी शरण में आए हैं तो मैं अवश्य आपकी सहायता करूँगा। वास्तव में देव, दानव अथवा मानव ने आपकी शक्तियों का उपयोग केवल विधायक कार्यों के लिए ही करना चाहिए। आप आपके विहार में प्रतिवर्ष कम से कम एक समय के लिए इस कुंड में स्नान करें, ता कि आपकी शक्ति अबाधित रहेगी और यदि कोई आपका उपयोग हिंसक या दुष्ट कार्य के

लिए करता हों तो, उसका प्रयास विफल होगा, इसके लिए मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ। तथापि मेरा भी आपसे एक निवेदन है। जगत्कल्याण हेतु ऋतुचक्र और भविष्य संकेत देने का सामर्थ्य आपके पास है, मैं चाहता हूँ, आप निरंतर उसका उपयोग करें।''

''हे ऋषिवर, आपके जगत्कल्याण की दृष्टि से हम धन्य हुए। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि हम अवश्य हमारी शक्तियों का उपयोग निष्ठापूर्वक करेंगे।''

''हे द्विजगण, आप समय समय पर मुझे तथा मेरे शिष्यों को दुष्कर्मों का समाचार देते रहिए ताकि पूर्वसूचना पाने से उन दुष्कर्मों का दमन करना संभव होगा।''

द्विजगण की इस भेंट से अगस्त्य का आत्मविश्वास बढ गया। साक्षात शिवजी ने उन्हें शिवरूप देने से वे अतिप्रसन्न थे। माता पार्वती ने भी उन्हें अज्ञान के अंधकार रूपी पहाड को तोड कर ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करने के लिए प्रेरित किया था, जिस से उनके मन में सृष्टिस्वरूपिणी के प्रति कृतज्ञता भाव जागृत हुआ। वे भावुक हुएं। विश्वकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उन्होंने काशीक्षेत्र पर महासोमयाग संपन्न करने की योजना बनाई और अगस्त्य उस कार्य में जुट गएं।

महासोमयाग के लिए आश्रम में यज्ञशाला स्थापित की। हिमालय और परिसर से सर्वोत्तम ताजा सोमवल्ली लाने की व्यवस्था की गई। सोम सिद्ध करने के लिए हर प्रकार की सहायता करने वाले ऋषिगण, शिष्यगणों को निमंत्रित किया गया। सोमनिष्पादन तथा प्राशन के लिए आवश्यक सामग्री जैसे चमू, कलश, चमस, कोश, पान, द्रोण, पवित्र, शुक्र, मंथी, अमत्र, ब्रु, सोममापन पात्र जमा किए गए। उनका शुद्धिकरण किया गया। इन वस्तुओं के साथ गेहूँ का आटा, जल, कुसुमासव, सुवर्णकण, घृत, दुग्ध, दही ऐसे पदार्थ भी लाए गएं, जिससे थवाशिर, गवाशीर, दध्याशीर, त्र्यांशीर, मधुमत, मधु, पीयूष जैसे उपाधि का सोम बनाया जा सके ऐसी व्यवस्था की गई।

परिपूर्ण प्रबंध के पश्चात अगस्त्य ने सोमयाग प्रारंभ करने के पूर्व प्राणिमात्रों के कल्याण के लिए संकल्प किया। प्रत्यक्ष अग्निनारायण यज्ञस्थल पर उपस्थित थे। सोम सिद्ध हुआ। सोमपान आरंभ हुआ। आहुतियाँ सिद्ध हुई। यज्ञापवित

प्रारंभ हुआ। देवताओं के अग्निमुख से आहुतियाँ प्राप्त होने लगी और अगस्त्य का वदन दीप्तिमान हो रहा था। अंतरिक्ष में सभी देवताओं के आशीर्वचन गुँजने लगे। सोमदेवता प्रसन्न हुई।

''हे अगस्त्ये, आजतक अनेक यज्ञ सत्रों का आयोजन किया गया था, किन्तु उन सत्रों के उद्देश्य वास्तव में भिन्न थे। मैं आज विशेष रूप से अति प्रसन्न हूँ कि, यह पहली बार हुआ है कि, केवल संसार के प्राणिमात्रों के कल्याण हेतु एक स्वतंत्र यज्ञ किया जा रहा है। मुझे भी अपने लोककल्याणकारी कार्य में सहभागी कराइए।''

''हे सोमदेवी, आप यज्ञ संस्था की अधिष्ठात्री पूरक देवी हैं इसलिए आप हमारे कार्य में सहभागी हैं।''

''हे ऋषिवर, यज्ञ सिद्ध होने से प्राणिमात्रों का कल्याण कैसे होगा यह मुझे स्पष्ट रूप से समझाइएं।''

''हे सोमदेवते, यज्ञ संपन्न हुआ, तो इंद्र, मरुत, वरुण आदि देवता प्रसन्न होते हैं और वर्षा होती है। वर्षा के परिणामस्वरूप प्राणिमात्रों के लिए अन्न का निर्माण होता है। अन्न से ही सभी भूतमात्रों का पोषण होता है। इसलिए सभी भूतमात्रों ने यज्ञकर्म करना चाहिए।''

''हे ऋषे, यह सत्य है कि, वेदी पर यज्ञ करने से वर्षा प्राप्त होती है और वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है, परंतु जब यज्ञ की स्थापना करनेवाले ऋषियों का अस्तित्व ही नहीं था, तब यह कैसे संभव था?''

''हे सोमदेवते, आपने मुझ से एक बहुत ही मार्मिक प्रश्न पूछा है। सृष्टिसृजन प्रसंग यह भी एक यज्ञ ही है। इस यज्ञ का आरंभ सूर्यनारायण के कर्म से होता है। इसलिए सूर्य ही ज्ञानकर्म की देवता है। इस संस्था का उद्देश्य अन्न शोधन के लिए प्राणिमात्रों को निरंतर जागृत रखना हैं। अर्थात सभी प्राणिमात्रों ने अन्न शोधन का कार्य करते रहना चाहिए। यद्यपि मनुष्य अन्य प्राणियों से भिन्न है और प्रकृति पर निर्भर होते हुए भी वह ऐसा प्राणि है, जो जीने के लिए प्रकृति का ही उपयोग करता है। उसने अन्न शोधन के लिए ऋतुचक्र का अध्ययन करके कृषिकर्म की खोज की है। ऋषियों का कृषि कार्य प्रकृति में मनुष्य द्वारा की गई दैवीय शक्ति के साथ एक चमत्कारी घटना है। कृषिकर्म ही वास्तव में मनुष्य का कर्तव्य है। वही वस्तुतः यज्ञ है।''

‘‘हे ऋषिश्रेष्ठ, फिर यज्ञसंस्था का क्या उपयोग है?’’

‘‘हे सोमदेवते, यज्ञसंस्था एक ज्ञानदाता प्रणाली है। यज्ञ में, बुद्धिमान लोग विभिन्न देवताओं का ध्यान करते हैं और उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। यज्ञदेवता इन प्राणिमात्रों के लिए उपकारक देवता हैं। मनुष्य को चाहिए कि, वह इन सभी देवताओं का सुनियोजित और कृतज्ञतापूर्वक उपयोजन करें। यहीं यज्ञ संस्था की सीख है। ज्ञान, स्वास्थ्य और कर्म के सभी मार्ग, यज्ञ संस्था से होकर जाते हैं। इसलिए यह मानवी जीवन की मूलभूत संस्था हैं।’’

‘‘हे ऋर्षे, आपकी ज्ञानवर्धक वाणी से मैं संतुष्ट हूँ। यज्ञसंस्था सिद्ध करने के लिए निरंतर मेरा उपयोग होता रहे।’’ सोमदेवी ने निवेदन किया।

‘‘हे देवते, मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप की कृपा दृष्टि सदैव हम पर बनी रहे।’’

‘‘तुम्हारी मनोकामना पूरी हो।’’ सोमदेवता ने आशीर्वाद दिया।

‘‘सोमयाग के लिए आए सभी ऋषिगण, लोक, राजा, पशुपक्षी और देवगण अगस्त्य का कृषिविषयक भाष्य सुनकर चकित रह गएं।’’

‘‘हे ज्ञानगभस्ति अगस्त्ये, आप लोककल्याण कार्य का किस प्रकार प्रारंभ करने जा रहे हैं? उसका स्वरूप क्या होगा?’’ यज्ञ के लिए उपस्थित वसिष्ठ ने प्रश्न किया।

‘‘हे वसिष्ठ, आश्रमव्यवस्था के साथ-साथ शिवशक्ति के आशीर्वाद से गुरुकुल में ज्ञान, कला, साहित्य, भाषा, क्रीडा और युद्धकला के साथ ही जीवन की स्थिरता के लिए कृषि कर्म तथा जल व्यवस्थापन की पाठशालाएँ आरंभ करना यह मेरा प्राथमिक कार्य होगा। संसार में यथासंभव आश्रमों के साथ गुरुकुल स्थापित करना ही लोककल्याण का अभियान है। देवता और मानवी संस्थाओं में सामंजस्य प्रस्थापित करना तथा कृषिवलोंका यथोचित मार्गदर्शन करना और दुष्टों का विनाश करने के लिए देवता और मनुष्य की सहायता करना, इसके लिए अगस्त्य परंपरा कार्य करती रहेगी।’’ अगस्त्य की यह योजना सुनकर वसिष्ठ बहुत प्रसन्न हुए।

अगस्त्यपूर में अमृतवाहिनी प्रवरा तट पर स्थित आश्रम में अगस्त्य का मन बहलने लगा। कई वर्षों की आत्यंतिक एकांतवास की उनकी मनोकामना साकार हो रही थी। दक्षिण में अगस्त्यविद्या, यज्ञ संस्था का समुचित प्रचार-प्रसार हुआ

था। दक्षिण गंगा सहित पंचगंगा का क्षेत्र शिवतत्व से मोहित हुआ था। विष्णुतत्व के स्वरूप में ब्रह्माविष्णु मूर्त रूप में अवतीर्ण हुए थे। अगस्त्यों ने सूर्योपासकों और शिवोपासकों को यथोचित एक साथ लाने के साथ-साथ राक्षस, दैत्य, वानर, दानव तथा वन्य स्वरूप में रहनेवाले असंख्य कृषकों को अगस्त्यविद्या के संमोहन से मोहित करके ब्रह्माविष्णुमहेश की स्थापना की। अगस्त्य ने यज्ञ संस्था के प्रचार से अग्निस्वरूप की विष्णुदेवता, आयुर्विद्या के प्रचार से विष्णुतत्व और अगस्त्यविद्या के रूप से समन्वित कर्मनिष्ठा अंकुरित की। अगस्त्य मुनि के अथर्वण से तथा यज्ञकर्मसहित सोमयागपूर्वक कर्मनिष्ठ तपस्या से दक्षिण में इंद्र, वरुण, अग्नि, मरुत, आकाश, सूर्य आदि देवताओं को सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ। अगस्त्याश्रम से अगस्त्यविद्या का प्रचार-प्रसार आरंभ हुआ। भाषा, शास्त्र, कृषि, अर्थ, विज्ञान तथा दर्शन शास्त्र के पाठ पढाए जाने लगे। तपस्या के साथ साथ योग और युद्धविद्या का भी प्रचार होने लगा। यह सब कार्यान्वित करते हुए अगस्त्य पुत्र इघ्मवाह लोपामुद्रा की प्रेरणा से दक्षिण में आए। वे अपने पिता अगस्त्यों से मिले। अपने पुत्र को पूर्ण विकसित हुए देखकर अगस्त्य विस्मित रह गएं। एक पल उन्हें ऐसे लगा जैसे वे साक्षात अपना ही रूप अपने सम्मुख देख रहे हैं। उनका चित्त अधिक प्रसन्न हुआ। हृदय स्नेहप्लावित हो उठा।

विरक्त अगस्त्य मुनि को सहसा लोपामुद्रा का स्मरण हुआ। अपने विवाहप्रसंग का भी स्मरण हुआ। मिलन का सुख प्रतीत हो रहा था। इघ्मवाह को प्रेमालिंगन देते हुए उन्होंने उत्तर के आश्रमों, अगस्त्यमुनिग्राम और लोपामुद्रा के बारे में पूछताछ की। लोपामुद्रा के मार्गदर्शन से इघ्मवाह ने स्वतंत्र सोमयाग सत्रों का प्रारंभ किया था। इंद्र, मरुत, मित्र, वरुण, अग्नि, विष्णू, दिक्पाल, ब्रह्म, गणेश, सरस्वती, साक्षात शिवजी के साथ भगवती को भी आमंत्रित करके उन्हें प्रसन्न कर लिया था और... लोककल्याण के अपने पिता के कार्य के लिए अपने आप को समर्पित करने की प्रतिज्ञा लेने के प्रश्चात ही इघ्मवाह दक्षिण में आया है, यह वर्तमान सुनकर अगस्त्य अति प्रसन्न हुएं।

''तात, इन्द्रमरुतों ने आप को उत्तर में आने के लिए संदेश दिया है। सूर्यनारायण, शिवपार्वती, हिमालयसहित बडी संकटमय स्थिति में हैं। उन्हें संकटमुक्त करने के लिए अगस्त्यों को ही उत्तर में आना होगा यह सब का परामर्श है।'' इघ्मवाह ने कहा।

''हे पुत्र, यहाँ दक्षिण का लोककल्याण कार्य आधाअधूरा छोडकर उत्तर में मेरा आना कहाँ तक उचित होगा?''

''तात, ब्रह्मदेव ने मुझे परामर्श दिया है कि, दक्षिण का कार्यभार मैं सँभालूँ। यदि आप की आज्ञा हो, तो मैं यह कार्य करने के लिए तत्पर हूँ।''

''हे वत्स, अमृतवाहिनी तट पर शांतितुष्टि सिद्धि के लिए मैं एक सोमयाग का आयोजन कर रहा हूँ। तथापि यह सोमयाग यज्ञसंस्था के नित्य प्रणाली से भिन्न एवम् अपवादात्मक हैं। इस यज्ञ का पौरोहित्य और यजमान पद का दायित्व मैं ही निभा रहा हूँ। इस यज्ञ समय पर, मैं सभी देवताओं को आमंत्रित करने जा रहा हूँ। वे सभी इसी स्थान पर उपस्थित होंगे। जब कि अब तुम यहाँ आए हो तो इसमें तनिक परिवर्तन करके मैं अगस्त्य आश्रमों के समस्त कुलपति एवम् गोत्रज प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित करूँगा। उनसे परामर्श करने के पश्चात हम आगे की योजना बनाएंगे।

अगस्त्य ने शांतितुष्टि सिद्धि के सोमयाग का पूरा प्रबंध कर लिया। अगस्त्य मुनि के लिए, सोमयाग अब नित्यकर्म हुआ था। योजना के अनुसार कुलपति, आचार्य, गोत्रज और स्वयं शिवपार्वती सहित सभी देवता इस सोमयाग यज्ञ से प्रसन्न थे। इस अवसर पर इघ्मवाह के ज्ञान और कर्मों को देखकर अगस्त्य अति प्रसन्न हुए। उन्होंने इघ्मवाह अर्थात दृढस्यू को अगस्त्य विद्या के महत्व से अवगत कराया।

''हे अगस्त्यपुत्र, आयुर्विद्या, अथर्वण, कृषिविद्या, भाषाविद्या तथा युद्धविद्याओं को तपस्या से लोककल्याण हेतु प्राप्त किया जा सकता हैं और यही अगस्त्यविद्या है। यह विद्या अहंकार जैसे दुर्गुण को सबसे बडा दानव अर्थात शत्रु मानती है। अहंकार नष्ट होते ही सात्विकता, सामंजस्य, नम्रता, सहृदयता आदि गुणों की वृद्धि होती हैं। वहीं लोककल्याण के लिए आवश्यक होती हैं। संघर्षविहिनता के लिए भी संघर्ष करना होता हैं। यही संघर्षविज्ञान अर्थात कर्मवान ज्ञान है। अगस्त्य विद्या का यह सारभाग है। यह ज्ञान अब तुम्हें प्राप्त हुआ हैं, इसलिए सभी ऋषिवर, देवेन्द्र, प्रत्यक्ष शिव और गोत्रज चाहते हैं कि, तुम्हें मेरे कार्याध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया जाए। उनके इस प्रस्ताव को मैं अनुमति देता हूँ।''

''हे पिताश्री, आपने मुझे अपने कार्याध्यक्ष पद पर नियुक्त किया, मैं धन्य

हूँ।'' आपकी आज्ञा से आप का यह कार्य मैं आगे ले जाने का प्रयास करूँगा।

''हे आत्मज, हम चाहते हैं कि, आप पाण्ड्यनरेश के गुरुकुल के कुलपति के रूप में कार्य करें।''

''जो आपकी आज्ञा।''

मध्य भारत के बहुत ही निकट, उत्तर-दक्षिण पूर्व-पश्चिम दिशाओं के बीच, सह्याद्रि की गोद में रत्नपर्वत के अमृतवाहिनी तट पर स्थित अगस्त्य आश्रम की व्यवस्था का प्रबंध वहाँ पर अगस्त्य कुंड का निर्माण तथा विष्णु मंदिर की स्थापना करने के पश्चात दक्षिणगंगा गोदावरी का वंदन करके अगस्त्य ने पुनःश्च उत्तर की ओर प्रस्थान किया।

*

अगस्त्य नासिक पंचवटी से सीधे काशीक्षेत्र स्थित अपने आश्रम में आएं। कुछ दिन काशी क्षेत्र में वास करने के पश्चात उन्होंने वंग, प्रयाग के आश्रमों को भेंट दी और वे गंगाद्वार आएं।

अगस्त्य के आगमन की पूर्वसूचना गंगाद्वार तक पहुँच चुकी थी। लोपामुद्रा अगस्त्य के मार्ग पर आँखे बिछाकर प्रतीक्षा कर रही थी। अगस्त्य के स्वागत का इतना आयोजन पहले कभी नहीं हुआ था। मानस, मान, पुष्कर, गंगा, सिंधु, सरस्वती, क्षिप्रा और प्रयाग, काशी और सागरतीर्थ से भरे काँवर गंगाद्वार पहुँच चुके थे। इन सभी तीर्थों से महर्षि अगस्त्य का अभिषेक होने जा रहा था। विभिन्न प्रकार की सुगंधित वनस्पतियाँ, पुष्प लाए गए थे। पुष्पमालाओं से समस्त आश्रम सजाया गया था। तोरण लगाए गए थे। अगस्त दक्षिणी प्रबंधन और कावेरी विवाह के पश्चात पहली बार अपने मूल निवास पर आ रहे थे। आश्रम में हर्षोल्लास का वातावरण था। आश्रमवासियों मे मानो चैतन्य का संचार हुआ था।

उत्तर से वसिष्ठादि ऋषियों ने विशेष रूप से सोमयाग सत्र का आयोजन किया था। इंद्र, वरुण, मित्र, मरुत, त्रिदेव को आमंत्रित किया था। कैलाशनाथ के गण श्री गणेश और कार्तिकेय के साथ गंगाद्वार आने वाले थे। इन सभी अतिथियों की आश्रम में कीर्तिमान व्यवस्था की गई थी।

गंगा के पवित्र जल में सुस्नात होकर अगस्त्य आश्रम लौट आए। प्रवेशद्वार

पर आश्रम कन्याओं ने आरती उतार कर उनका स्वागत किया। लोपामुद्रा ने उनकी पाद्यपूजा की। शंखध्वनि के साथ-साथ पक्षियों ने भी अपने स्वर से वातावरण मंत्रमुग्ध किया था। अगस्त्य आसनस्थ हुए। यह अपना ही आश्रम है या देवेन्द्र की राजसभा, पलभर के लिए अगस्त्य संभ्रमित हुए थे। ऋषियों ने उन्हें पुष्पमाला पहनाकर उनका पूजन किया। देवताओं ने पुष्पवृष्टि की । देवेन्द्र के दरबार की अप्सराओं ने स्वागत नृत्य किया। अगस्त्यों ने सभी को वंदन किया। लोपामुद्रा सकौतुक निहार रही थी।

''नारायण, नारायण, हे महर्षि अगस्त्ये, मेरा प्रणाम स्वीकार करें। आपने दक्षिण की पीडा नष्ट करके शिवास्पद कार्य किया है। हे महर्षे आपके दर्शन पाकर मैं धन्य हूँ।''

''हे ब्रह्मर्षे नारद, आप ब्रह्मपुत्र और सबसे प्राचीन सर्वज्ञ ऋषि हैं। आपके आशीर्वाद और मार्गदर्शन से ही हम यह कार्य कर रहें हैं। हम आपको वंदन करते हैं।''

''हे ऋषिवर, आप और माता लोपामुद्रा की आगे की योजना क्या है?

''हे ब्रह्मर्षे, आपको तो सबकुछ ज्ञात है। फिर हमें प्रश्न क्यों?''

''हे महर्षे, आप अपने स्वप्रेरित लोककल्याण कार्यों के कारण दक्षिण भास्कर दक्षिणाधिपति और तारकारूप बन गए हैं। माता लोपामुद्रा भी आपका ही मार्ग अनुसरण करते हुए आपके साथ स्वयंप्रकाशित हो रही हैं। अतः स्वयंप्रकाश का यह मार्ग आप ही सभी को विदित करें।''

''जो आपकी आज्ञा मुनिवर! ऋषियों का कार्य निश्चित और नित्य होता है। आप जानते हैं कि, यह कार्य लोककल्याणकारी ही होता है। हम उभयतः यहीं कार्य करने जा रहे हैं। कार्य करते समय तपोबल क्षीण होता है, इसकी अनुभूति हम ले चुके हैं।''

''अर्थात, क्या आपको यह सूचित करना है, कि आपका मनोबल क्षीण हुआ है?

''हाँ मुनिवर, कार्य करते समय ज्ञान के नए द्वार खुलकर सामने आते हैं। ज्ञान उतना ही अनंत है, जितना कि, काल, ब्रह्मांड और कैवल्य की अवस्थाएँ। अपनी तपस्या की कक्षा में बहुत ही छोटे ज्ञानकण हमारे हाथ आते हैं। किन्तु इन ज्ञानकणों का अहंकार अधिक होता है और हमे लगता है कि, यही सामर्थ्य

है, शक्ति है। अतः तपस्या से बल क्षीण होता है, यह सत्य हुआ ना?'' अगस्त्य ने प्रतिप्रश्न किया।

''इसका क्या अर्थ हुआ? हम नहीं समझ पाएँ।''

''हे नारदमुने, आप समझ नहीं पाते, ऐसा कोई विषय हो ही नहीं सकता, तथापि हमारे बहुत सारे शिष्यगण यहाँ उपस्थित है। उनके लिए आपका मार्गदर्शन उपयुक्त होगा। जब हमें यह ज्ञात हो जाता है कि, हमें अल्प ज्ञान प्राप्त हुआ है, तो हम अगली तपस्या के लिए सिद्ध हो जाते हैं। यही ऋषि कार्य है और हम उभयता यहीं कार्य करने जा रहे हैं।''

''हे मुनिश्रेष्ठ, आप किस प्रकार की तपस्या करने जा रहे है?''

''हे ब्रह्मर्षे, यद्यपि सृष्टि, उत्पत्ति, स्थिति और लय शाश्वत है, परब्रह्म की चेतना में नैमित्तिक और अनित्य परिवर्तन भी होते हैं। यह ध्यान में रखते हुए देव, दानव और मनुष्य ने सृष्टिसमतोल का विचार करना चाहिए। अपनी तपस्या से इस में विक्षेप नहीं आएगा, इसके लिए सतर्क रहना आवश्यक है तथा अपना तपोबल भी बढाना चाहिए। यही कार्य हम करने जा रहे हैं।''

''इसके लिए यज्ञसत्रों की, यज्ञतोपवीत साधनाओं की भी आवश्यकता होती है। विभिन्न ऋषियों को एक साथ लेकर सोमयाग पूर्वक सत्र इसी उद्देश्य से आरंभ होते हैं।''

''हे अगस्त्ये, आपके दृष्टिकोण से तपस्या की प्रक्रिया को एक निश्चित आयाम मिलनेवाला है। हे अगस्त्ये, तपस्या यह स्वोद्धार का साधन है, ऐसी धारणा जनमानस में दृढ होगी।''

''हे ब्रह्मन, तमोगुण न केवल मनुष्य को, अपितु देवताओं को भी भ्रष्ट करता है। दैत्य और दानव वृत्तियाँ इसीसे निर्माण हुई हैं। उनका निर्दलन, यही ज्ञानसाधना का मुख्य और निश्चित उद्देश्य है।''

''हे अगस्त्य ऋषे, आप महान तपःविद्या का भंडार है। आपके इस मार्गदर्शन से हम सभी धन्य हुए।''

इस चिरंतन और शाश्वत ज्ञानवर्धक संवाद से सभी प्रभावित हुए। अगस्त्य के गंगाद्वार में इतने भव्य स्वागत के पश्चात अगस्त्य का नित्य तपाचरण आरंभ हुआ। लोपामुद्रा भी उनका अनुसरण करते हुए सेवारत हुई। अगस्त्य मुनिवर का विभिन्न विषयों पर शोध कार्य चल रहा था। इसमें अगस्त्य मुनि ने मुख्य रूप

से भूतविद्या, आयुर्विद्या, औषधि, युद्धनीति, कृषिविकास, पर्जन्य व्यवस्थापन और समन्वय के माध्यम से जनकल्याणात्मक कार्य के लिए तत्वज्ञान आदि के लिए तपाचरण के नए मानक स्थापित किए थे। उनके दृढ संकल्प से अगस्त्य गुरुकुलों में नवचैतन्य का संचार हुआ। विभिन्न प्रकार के शोध कार्य चल रहे थे। अगस्त्य निरंतर उन सभी का मार्गदर्शन कर रहे थे।

''हे सीताकांते, हे लक्ष्मण, अगस्त्य मुनि के दक्षिण दिग्विजय को अब हजारों वर्ष बीत चुके हैं। इतना ही नहीं, अपितु अगस्त्य तपस्या के इस अवधि के दौरान दो बार दक्षिण की यात्रा और व्यवस्थापन का कार्य किया है। कावेरी और इघ्मवाह के साथ-साथ सभी गुरुकुल भाषा, वैद्यक, युद्धनीति, तत्वज्ञान, अथर्वण इस पर कार्य कर रहे हैं। इस धारा में अहंकार ने कई बार दानव, दैत्य निर्माण किए। अगस्त्य को बारंबार दक्षिण जाना पडता था। बृहद् जंबुद्वीप के सभी राज्यों को अगस्त्य मुनि ने जोड दिया। अगस्त्य विद्या के महत्व को सभी ने स्वीकार किया।''

''हे महामुने, ब्रह्मर्षे, अगस्त्यों का दक्षिण की ओर अधिक ध्यान देने का क्या कारण है?''

''हे रघुनंदन, आप जानते ही हैं कि, दक्षिण दिशा विलय की, यम की है। तमोगुण का उदय मुख्यतः दक्षिण दिशा की ओर होता हैं। क्यों कि दक्षिण इस तथ्य से अवगत है कि जीवन नश्वर है, इसलिए अर्जित जीवन को भोग के लिए उपयोग करने की परंपरा यहाँ बनाई गई थी। दक्षिण में साहित्य, संगीत, शिल्प, नाट्य, कला, कर्मठता का निर्माण हुआ। इसी से यातुशक्ति पर ध्यान केंद्रित हुआ। यातुशक्ति की ओर ध्यान जाता है तो सत्यज्ञान से वंचित होना पडता है। दानवों का अर्थात आर्यों का उदय दक्षिण में हुआ। तथापि तमोगुण का नाश करने के लिए एक महान संघर्ष भी हुआ। धर्म की रक्षा सत्यनिष्ठा से ना होते हुए कर्म की कर्मठता से होने लगी। शूरपद्म यह उसका उत्तम उदाहरण है।''

''हे मुनिवर, मुझे अगस्त्य मुनि के मार्ग से जाना है, तो क्या करना चाहिए?''

''हे रामचंद्र, अगस्त्य दक्षिण में ही वास करते हैं। अब हमें उन्हीं से परामर्श लेना उचित होगा।'' कुलगुरू अगस्त्य ने कहा।

''हे ब्रह्मर्षे नारद, दक्षिण में अगस्त्य के निवास की महिमा अद्वितीय

है। तथापि हमें किस प्रकार, किस मार्ग से दक्षिण जाना होगा, इस पर आप ही हमारा मार्गदर्शन करें।''

''हे रामचंद्र, आप अगस्त्य शिष्य विंध्य को पार करके दक्षिण की ओर चले जाएँ। विंध्यवासिनी शक्तिमाता को वंदन करके अगस्त्यों की ओर चले जाईएं।''

''हे नारदमुने, क्या आप बता सकते हैं, कि अगस्त्यशिष्य विंध्य को हम कैसे पहचाने?''

''हे रामचंद्र, क्षिप्रातट ब्रह्मा-विष्णू-महेश के वास्तव्य से पुनीत हुआ हैं। उनसे पूछ लेना ही उचित होगा। तथापि अब आप अधिक विलंब ना करते हुए शीघ्रातिशीर्घ दक्षिण की ओर निकलें।''

''जैसी आपकी आज्ञा।''

''नारायण, नारायण, आपका कल्याण हो।'' नारद ने श्रीराम को आशीर्वाद दिया और नारद चले गए।

''हे भ्राताश्री तात, अब हमें अधिक विलंब ना करते हुए विंध्य पर्वत की ओर चलना चाहिए।''

''हे लक्ष्मण, तुम सत्य कह रहे हो। तथापि क्या विंध्य गुरुश्रेष्ठ की कथा को ठीक से समझे बिना यहाँ से जाना उचित होगा?''

''हे नाथ, आप का कहना यथार्थ है। तथापि प्रत्यक्ष ब्रह्मदेव से हम कैसे संपर्क करें?''

''हे देवी, हम यहीं पर देवाधिदेव ब्रह्मदेव का ध्यान करते हैं। वे निश्चित रूप से हमें हमारे कार्य में सहयोग करने के लिए मिलेंगे।''

श्रीराम ने उज्जैन नगरी में महाकालेश्वर की उपस्थिति में, क्षिप्र की साक्षी से ब्रह्माजी का आवाहन किया। सप्त दिनों के प्रतीक्षा के पश्चात प्रत्यक्ष ब्रह्मदेव चतुर्मुखी देव प्रसन्न हुए।

''हे श्रीराम, आपके आवाहन के कारण हमें यहाँ उपस्थित होना पडा। वास्तव में आप साक्षात विष्णु के अवतार हैं। इस धरती पर ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे आप नही जानते।''

''हे प्रभो, मेरी महानता कथन करके एक प्रकार से आप मुझे अगले कार्य के लिए प्रेरित कर रहें हैं। हे सृष्टिरचयिता भगवन ब्रह्मदेव, आप हमें विंध्यपर्वत

अगस्त्य के शिष्य कैसे बने, यह विदित करें।''

''हे रामचंद्र, आप जानते हैं कि, अगस्त्य एक महान द्रष्टा, स्वयंप्रकाशी अथर्वण और आयुर्वेद के ज्ञाता है। मेरू पर्वत पर जन्में मान मान्य मान्दार्य अर्थात अगस्त्य मेरूपर्वत से विभिन्न जड़ी-बूटियों को इकठ्ठा करते थे, अनेकविध औषधि, वनस्पति इकठ्ठा करके उनका उपयोग यज्ञसत्रों में सोमसिद्धि के लिए और अथर्वण के साथ औषधि सिद्धि के लिए करते थे, अगस्त्य ने अपने निरंतर अध्ययन के माध्यम से कई वनस्पतियों, पाषाणों, जलप्रवाहों की अलौकिकता सिद्ध की। विंध्य ने दक्षिणोत्तर बहने वाले इंद्रमरुतों से महर्षि अगस्त्य की कथाएँ सुनी थी। अगस्त्य सभी प्रकार के विष नष्ट कर सकते हैं। विंध्य ने यह भी जाना कि, अगस्त्य नये शरीर का निर्माण भी कर सकते हैं। विंध्य के मन में विचार आया कि, यदि हम अपने अस्तित्व का अपने उपर के वनस्पतियों का उपयोग किया जाता है तो हमें भी श्रेष्ठता प्राप्त होगी। उन्होंने अगस्त्य से मिलने काशीक्षेत्र जाने का निश्चय किया। एक तेजस्वी युवक का रूप धारण करके विंध्य अगस्त्य के पास आएं।''

''हे सर्वश्रेष्ठ ऋषे, मैं आपकी शरण में आया हूँ। मुझे आप का गुरुप्रसाद प्राप्त हो।'' तेजस्वी युवक ने विनम्रता से कहा।

''हे तेजस्वी युवक, तुम कौन हो? तुम मुझसे गुरुपदेश क्यों चाहते हों? मुझे विस्तार से बता दो।'' अगस्त्य ने कहा।

''हे श्रेष्ठ गुरौ, मैं जम्बुद्वीप के केन्द्र में स्थित विंध्य पर्वत हूँ।''

''प्रत्यक्ष पार्वती माता ने मेरे स्थान पर अनेकविध वनस्पतियों को जन्म दिया है। प्रकृति ने प्रसन्न होकर निर्माण की गई उपयुक्त सृष्टि मेरे शरीर को सुशोभित करती है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि, आप इस सृष्टि के आशीर्वाद का उपयोग करें।'' विंध्य ने विनम्रता से कहा।

''हे पर्वतराज विंध्य, मैं निश्चित रूप से आप के वन्य संपत्ति का उपयोग करूँगा।''

''हे अगस्त्य महर्षे, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि, आप मुझे अपना शिष्य मानकर गुरुपदेश करें।''

''हे विंध्य, मेरा शिष्य बनने के लिए तुम्हें कुछ साधना करनी होगी।''

''आज्ञा गुरुदेव।''

‘‘दक्षिणोत्तर पवन को रोकते हुए और पक्षियों का स्थलांतर होते समय जो बीज तुम्हारे पृष्ठ पर गिरते है, जिस से सभी प्रकार की वनस्पतियाँ तुम्हारे शरीर पर अंकुरित होती है। दक्षिण और उत्तर मूलतः विरुद्ध यात्री होने से इन बीजों से तारक मारक शक्तियाँ निर्माण होती हैं। तुम्हे इन बीजों को धारण करके उनका एकत्रित संवर्द्धन करना होगा। तुम्हारे पृष्ठ से निकले जलौघों को महाजलौघें मे समाविष्ट होने के लिए उनकी सहायता करनी होगी। मैं तुम्हें सोमवल्ली की धारणा भिन्न स्वरूप में शिवप्रसाद के रूप में देता हूँ। तुम्हें यह धारणा निष्ठापूर्वक करनी होगी। तुम्हें देखना होगा कि सभी ऋतुचक्र में पर्जन्य व्यवस्थापन समान रूप से हो रहा है और ऋषिमुनियों को उनके यज्ञसत्रो में उनकी सहायता करनी होगी। हिंस्त्र पशुओं तथा मायावियों को सन्मार्ग पर लाने का कार्य भी तुम्हें करना होगा।’’

‘‘जो आज्ञा गुरुदेव!’’ कह कर विंध्य ने अगस्त्य को वंदन किया।

‘‘हे ब्रह्मन, विंध्य तो अविचल है, तो अगस्त्य के लिए उनसे संभाषण करना कैसे संभव हुआ।’’

‘‘हे रामचंद्र आपने बहुत ही मार्मिक प्रश्न पूछा है। आप जानते हैं कि, चर और अचर सृष्टि ब्रह्मचैतन्य से निष्पन्न हुई हैं; इसका ज्ञान द्रष्टा ऋषियों, ब्रह्मज्ञानी तपस्वियों को होता है। इसलिए विंध्य को आदेश देने का सामर्थ्य अगस्त्य को प्राप्त है।’’

‘‘विंध्य पर्वत ने अगस्त्य के आदेशानुसार अपने स्थान पर तपस्या आरंभ की। इससे प्रत्यक्ष प्रकृति प्रसन्न हुई। शिव के साथ पार्वती का भी विंध्य पर वास होने लगा। शिवगण का वहाँ पर आना-जाना होने लगा। यज्ञोपवीत होने लगे। विंध्याश्रय में तपाचरण के लिए ऋषिमुनि आनें लगे। अगस्त्य ने स्वयं विंध्य पर्वत पर महासोमयागसत्र पूर्वक इंद्र, मरुत, मित्र, वरुण, ब्रह्मा, विष्णू, महेश, गणेश आदि देवताओं का आवाहन किया। इंद्र ने शिवस्तुतिपूर्वक विंध्य पर्वत पर इंद्र सभा के मनोरंजन उत्सव का प्रबंध किया। नारदमुनि सहित अनेक ऋषिमुनि विंध्याचल की प्रदक्षिणा करके कैलाश प्रदक्षिणा का तपोबल प्राप्त करने लगे।’’

‘‘महर्षि अगस्त्य की अथर्वण विद्या और आयुर्विद्या को विशेष पूरक वनस्पतियाँ प्राप्त होने लगी। विंध्य से अगस्त्य आश्रमों तक वनस्पतियों का परिवहन होने लगा। अगस्त्य मुनि की रसशाला में रसनिष्पत्ति होने लगी। विंध्य ने वर्षा प्रबंधन, जलप्रवाह प्रबंधन में संतोषजनक प्रगति की। ✻

महर्षि अगस्त्य के एक सोमयाग सत्र के अवसर पर प्रत्यक्ष ब्रह्मा विष्णू महेश की उपस्थिति में अगस्त्य ने विंध्य का सम्मान किया। उन्होंने विंध्य को 'दक्षिणमेरू' नाम से संबोधित किया। अगस्त्य के इस आशीर्वाद से विंध्य अति प्रसन्न हुआ।

''हे ब्रह्मन, विंध्य की इतनी तपस्या के पश्चात विंध्य को अगस्त्य मुनि का आशीर्वाद प्राप्त होना आवश्यक ही था।''

''सत्य है वत्स, आशीर्वाद आवश्यक तो था ही, किन्तु विंध्य अगस्त्य के संदेश को भूल गए। उन्हें लगा कि, वे अगस्त्य के अतिप्रिय शिष्य है।''

''तो क्या महर्षि अगस्त्य ने विंध्य को दंड दिया?''

''हे श्रीराम, अगस्त्य भगवान शिव के ही अवतार है। अपने द्वारा विकसित हुए शिष्यों की प्रशंसा करने में ही वे व्यस्त थे। अगस्त्य गुरुकुलो में आयुर्विद्या के लिए विंध्य का उपयोग किया जा रहा था। अगस्त्य मुनि के कई शिष्य विंध्य की सान्निध्य में आयुर्विद्या पर शोध कार्य कर रहें थे। आयुर्विद्या विकसित हो रही थी। अगस्त्य मुनि के अथर्व विद्या के लिए भी विंध्य उपयुक्त सिद्ध हो रहा था। इसलिए विंध्य ने अगस्त्य का विश्वास जित लिया था। विंध्य को लगा कि, उन्हें मेरू पर्वत का स्थान प्राप्त हुआ है।''

''हे ब्रह्मदेव, आप सृष्टिरचयिता है। तो आपने स्वयं यह सृष्टिनिर्माण का समारोह रोका क्यों नहीं? आपने यदि विंध्य पर विभिन्न वनस्पतियों सहित अन्य वस्तुओं के निर्माण कार्य को ही रोका होता तो...?''

''हे रघुपते, हमने ही अगस्त्य को लोककल्याण कार्य सौंपा हैं। उस कार्य में बाधा आ सकती थी। हे राघव, ब्रह्मविद्या को निर्मिति का आदेश कैवल्य से प्राप्त होता है। उसे कैसे मिटाया जा सकता है? इसके अतिरिक्त अगस्त्य मुनि ने विंध्य को दिए गए वरदान को असत्य कैसे सिद्ध कर सकते हैं?''

''हे भगवन्, विंध्य ने अगस्त्यों की अवज्ञा तो नहीं की?''

''नहीं, वह भी एक रोचक कथा है।''

''हे ब्रह्मदेव, विंध्य पर्वत कथा श्रवण करने के लिए मैं अति उत्सुक हूँ। कृपया कथन करें।''

''हे रामचंद्र, आपका हठ हैं, तो मैं अवश्य उसे पूरा कर देता हूँ। विधाता अर्थात परब्रह्म की आज्ञा से, मैं भगवान विष्णू और शिव सृष्टि का नियंत्रण करते

हैं। अर्थात हमारी ओर से यह कार्य ऋषि ही निरंतर करते हैं। प्रकृति का व्यवस्थापन करना, मनुष्य को बुद्धिमान बनाना और उसे मोक्ष का मार्ग दिखलाना यह ऋषियों का कार्य होता हैं। ऋषि यह कार्य निर्गुण, निराकार, केवलस्वरूप परब्रह्म से प्रकट हुए सृजन, व्यवस्थापन और प्रलय इन त्रिविध शक्तियों के परिनियम में करते हैं। जन्म लेना, परिपोषित होना, सृजन करना और अंततः विसर्जित होना यह सृष्टि के चराचर का नियम है। किन्तु इस नियमों के विपरित व्यवहार करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती हैं। यह इस अस्तित्व का दुसरा पक्ष है जो कैवल्य के प्रेम से अर्थात अध्ययन से निष्पन्न हुआ है। इस स्थिति में चराचर सृष्टि के सभी जीव स्वभावभ्रष्ट होकर बहक जाते हैं और दुखी होते हैं। इसीलिए हमें अपने आपको इस सृजन प्रक्रिया का एक अपरिहार्य अंश है, इस बात को ध्यान में लेना चाहिए। निर्लेप होकर प्रकृति के अद्‌भुत सौंदर्य का अर्थात कैवल्य क्रीडन का आनंद उठाना चाहिए। तभी हम ज्ञानी होंगे, आर्य होंगे, तेजस्वी होंगे। हे रामचंद्र, अगस्त्य ऋषि ने समन्वय और सामंजस्य की भूमिका निभाते हुए अहंकार जैसी अज्ञानता को मिटाने और सभी को आर्य बनाने और इस स्तर से प्रत्यक्ष नारायणरूप बनाने के लिए अथक परिश्रम किएं। उसी का एक भाग है विंध्य गर्वहरण। स्मरण रहें कि जो कोई भी विंध्य कथा का श्रवण करते है वे सदैव संतुलित बुद्धि से तथा यमनियमों का पालन करते हुए व्यवहार करते है और पुण्यवान बन जाते है।''

''हे ब्रह्मदेव, आपने हमें जो दिव्य ब्रह्मज्ञान दिया हैं, उससे हम पवित्र हुएं। अब तो विंध्य कथा श्रवण करने की हमारी उत्सुकता मेरू पर्वत के शिखर इतनी बढ गई है।'' श्रीराम ने उत्सुकता से कहा।

''हे रामचंद्र आप जैसा उत्तम श्रोता है, तो विंध्य कथाकथन करने का मेरा उत्साह भी बढ गया है। तो श्रवण कीजिए।''

''अगस्त्य शिष्य विंध्य पर्वत के रूप में परिपूर्ण अवस्था में पहुँच गया, घने जंगल से घिरा हुआ, जिसके शरीर पर पथप्रपात उमडकर बहते हो, जो स्वास्थ्य, समृद्धि प्रदान करता हो, आकाश को छू कर उष्मा, वर्षा, हवा को नियंत्रित करने वाला, असंख्य प्रकार की चरसृष्टि को ममता से अपनी गोद में सम्हालने वाला, प्रेरणादायी, पवित्र और दीप्तिमान ऋषियों के सान्निध्य से लाभान्वित, यज्ञभूमि में उपयोगी और प्रख्यात हुआ। विश्व में सर्वत्र विंध्य की प्रशंसा हुई।''

विंध्य एक अग्रगण्य ऋषि के रूप में ख्यात हुआ। मेरू, विंध्य, सह्य, मलय इन पर्वत श्रृंखलाओं में उसे विशेष महत्व प्राप्त हुआ। अगस्त्य मुनि की शिष्य श्रृंखला में भी मेरुमणी समझा जाने लगा। एक बार अगस्त्य, शिव-पार्वती के साथ सृष्टि के रहस्य पर चर्चा कर रहे थे, माता पार्वती ने अगस्त्य से कहा,

''हे वत्स, विंध्य तुम्हारा सर्वगुणसंपन्न ऐसा शिष्य है। तुम्हारे लोककल्याण अभियान में स्वास्थ्य संबंधी उसका योगदान प्रथम स्थान पर है। तुम्हारे हठ से ही मैं भूतमाता बनकर विंध्यवासिनी के स्वरूप में वहाँ वास करती हूँ।''

''हाँ माते, केवल आपके आशीर्वाद और उदारता से ही विंध्य मेरे कार्य में उपयुक्त सिद्ध हुआ है। उसकी उपयुक्तता जंबुद्वीप के लिए दक्षिणोत्तर स्वरूप समान ही है।''

''सत्य कहा पुत्र, किन्तु मुझे विंध्य एकनिष्ठ गुरूभक्ति से तनिक विचलित हुआ प्रतीत होता है।''

''हे माते, यदि ऐसा है, तो मैं अभी विंध्य की परीक्षा लेता हूँ।''

''हे वत्स, मेरे मन के इस संदेह को व्यर्थ सिद्ध करने का प्रयास करना। तथापि, तुम्हें इस बात को सावधानी से सुलझाना होगा। विंध्य को इस बारे में पता भी नहीं चलना चाहिए। एक पुत्रवत्सल माता अपने लाडले पुत्र को सुसंस्कारित करने के लिए जिस प्रकार प्रयास करती है, वैसे तुम्हें इस कार्य को करना होगा।''

''हे कालीमाते, अहंकार दमनार्थ सदैव तत्पर रहने वाली माता विंध्य पर्वत के विषय में इतनी संवेदनशील कैसे हो गई?''

''हे अगस्त्यमुने, चराचर सृष्टि का स्वास्थ्य सबसे बडा ऐश्वर्य है। यह स्वास्थ्य व्यवस्थापन शक्ति तुम्हारी कृपा से विंध्य को प्राप्त हुई है। हे वत्स, तुम जानते हो कि, स्वस्थ रहने के लिए आपके पास एक स्वस्थ आत्मा और मन होना चाहिए। हमें कोई दंड दे रहा है, या हम भ्रष्ट हुए है, यह भावना किसी कारण से विंध्य के मन में निर्माण होना उचित नहीं होगा।''

''हे माते, समय आने पर मै वही करूँगा, जो आप चाहती है। आप निश्चिंत रहे।''

*

''पार्वती माता के संदेश को ध्यान में रखते हुए अगस्त्य ने महायोग हेतु काशीपुरी की ओर प्रस्थान किया। काशीनगरी में विश्वेश्वर की साक्षी से सृष्टि के नियमित व्यवस्थापन हेतु सूर्य, इंद्र, मरुत, अग्नि, सोम, ब्रह्मा, विष्णु और शिव जी के साथ पृथ्वी और जलौघ इनके विषय में महायाग सत्र आरंभ करने का संकल्प किया।''

इस यज्ञ से पर्जन्य, सूर्यप्रकाश और जलौघ का नियोजन साध्य होना था, इसलिए अगस्त्यों ने सभी ऋषियों को आमंत्रित किया था। लोपामुद्रा और अगस्त्य मुनि ने मरिचि ऋषि को यज्ञ के, यजमानपद का दायित्व सौंपा। कश्यप, मित्रावरुण, असित, देवल ये सभी अगस्त्य मुनि को पितृस्थान पर स्थित ऋषिशक्तियाँ होने के कारण उन्हें भी यजमान पद के सहयोगी के रूप में विभिन्न सत्रों में यजमान पद दिया गया। वसिष्ठ और अरुंधती को यज्ञयाग सत्र का व्यवस्थापन कार्य सौंपा गया। शतार्चन ऋषि को यज्ञसंपन्नता के लिए पौरोहित्य का दायित्व दिया। अगस्त्य मुनि ने सभी शिष्यों को अपने-अपने आश्रमों मे सत्र सिद्ध करने का आदेश दिया। इध्मवाह को दक्षिण में सभी आश्रमों मे सत्र आयोजित करने थे; जब कि अगस्त्यमुनिग्राम अधिष्ठित अगस्त्य उत्तर के आश्रमों के सत्र पूरे करनेवाले थे। अगस्त्य मुनि ने मुझे अर्थात ब्रह्मा और पुत्री सरस्वती को यज्ञ विधि के अवसर पर वेदमंत्र (सूक्त) उद्घृत करने के लिए अनुरोध किया। यज्ञयाग सत्र की सुरक्षा का दायित्व निभाने के लिए श्री गणेश की प्रार्थना की। यज्ञयाग के सुरक्षा संबंधी श्री गणेश द्वारा आश्वस्त होने के पश्चात अगस्त्य मुनि ने सोम सिद्ध करना आरंभ किया। विभिन्न स्तुतिस्तोत्रों से सोमरस प्राशन के लिए आवाहन किया गया। अति तेजस्वी सोमरस सिद्ध हुआ।

''सोमरस के प्राशन से आवाहित देवता, ऋषिमुनि, पुरोहित, देवगण संतुष्ट हुए और सोमयागपूर्वक सत्र आरंभ हुए। अग्नि प्रज्वलित हुआ। अग्निसूक्त से प्रसन्न होकर अग्नि अपने से सभी देवताओं की आहुतियाँ स्वीकारने लगा।''

''अगस्त्य ऋषिद्वारा आरंभ किए गए इस महायोग के सप्त सत्र बहुत ही सफल रहे। वैदिक देवता, अगस्त्य मुनि से प्रसन्न हो रही थी। पर्जन्य, वायु, जलौघ इनका नियमन, व्यवस्थापन करने के लिए अगस्त्य द्वारा किया गया आवाहन सभी ने स्वीकार कर लिया। कार्यसिद्धि के लिए अगले सत्र आरंभ हुए। अगस्त्य मुनि ने बडी श्रद्धा के साथ सूर्य और मरुत देवताओं को आहुति अर्पण

की। सूर्य देवता के साथ दिन और रात का नियमन करनेवाले चंद्रमा को भी आहुतियाँ प्राप्त हुई। मेरू पर्वत को आवाहनपूर्वक आहुति दी गई। इसके साथ ही विंध्य, मलय, सह्याद्रि आदि पर्वतों ने भी आहुति स्वीकार करने का कार्य संपन्न हुआ। इस समय विंध्य के मन का विचलन अगस्त्य मुनि ने अनुभव किया।''

''हे विंध्य, तुम मेरे अतिप्रिय शिष्य होकर भी इस यज्ञयाग सत्र अवसर पर किंचित उद्विग्न दिखते हो। हे वत्स, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि, इस यज्ञयाग सत्र से तुम्हारे मन की पीडा नष्ट हो और तुम प्रसन्न रहो।''

''हे गुरुश्रेष्ठ, आपके दर्शन और आशीर्वाद से मैं धन्य हुआ। शिष्य के मन को जानने वाले आप महान गुरू हैं। शिष्य की मनोकामना पूरी करके उसकी पीडा नष्ट करने का महान सामर्थ्य आपमें हैं।''

''हाँ वत्स, सत्यनिष्ठा से प्राप्त कर्तव्य स्वीकारने के पश्चात भी यदि शिष्य दुःख से पीडित होता है तो सत्शिष्य का दुःख नष्ट करना गुरू का कर्तव्य होता है। अतः तुम चिंता मत करो और दुःख को त्याग दो।''

''जो आज्ञा मुनिवर''

''विंध्य मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोच रहा था कि, अगस्त्य मुनि ने उसे उसके मन की इच्छा जान कर उसे आशीर्वाद दिया है। परंतु वास्तव में अगस्त्य मुनि ने उसे दुःख से अहंकार निर्माण होता है, उसे दूर कर ऐसा सूचक संदेश दिया था।''

''विंध्य मन में विचार कर रहा था, मैं श्रीगुरू के सभी प्रकार के प्रकल्प, कार्य तथा यज्ञयाग सत्र के लिए सहायक हूँ, मैं पूरा योगदान देता हूँ, फिर भी अगस्त्यों ने अग्रपूजा का सम्मान मेरूपर्वत को अर्थात हिमालय को दिया। यह अन्याय नहीं तो और क्या है? हर किसी को अपनी योग्यता के अनुसार न्याय मिलाने के लिए प्रयास करना चाहिए, यही सत्यनिष्ठा है।''

''अनजाने में विंध्य के मनमें मेरूपर्वत के प्रति ईर्ष्या होने लगी। द्वेष की भावना ने उसके मन को घेर लिया। उसे लगने लगा कि, 'मैं मेरूपर्वत से भी अधिक शक्तिशाली और महान हूँ, यह सिद्ध करने का अब समय आ गया है।' उसने विचार किया, 'मैं अगस्त्य-शिष्य हूँ। अगस्त्य हर बात पहले समझौते से, सामंजस्य और सद्भाव से ही कहते हैं। मेरे लिए भी इसी मार्ग का अनुसरण करना उचित होगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए विंध्य ने प्रयास करना आरंभ किया।

उन्होंने प्रथमतः अगस्त्य गुरूस्वरूप प्रत्यक्ष भगवान शिवशंकर से प्रार्थना की। हर प्रकार से अपनी महिमा कथन करने के पश्चात मेरूपर्वत के साथ विंध्य पर भी शिव जी का वास होता है, यह भी बताया। यह कहते हुए कि, उन्हें मेरूपर्वत से गौण स्थान दिया जाता है, विंध्य ने 'ॐ नमः शिवपार्वत्ये नमः' इस मंत्र का लक्ष जाप करके शिवजी का आवाहन किया। प्रसन्न होकर शिवपार्वती ने विंध्य की मनोकामना सही प्रकार से पूरी करने का आशीर्वाद दिया और यह भी समझाया कि विंध्य को स्वीकृत कार्य को समरसता तथा सद्भाव से करते रहना चाहिए। कई दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात भी उनके सम्मान का कोई चिन्ह वे देख नही पाए।''

सूर्य और चंद्रमा को प्रतिदिन मेरूपर्वत की परिक्रमा करते देख उनका मन उद्विग्न हुआ। मेरू की भांति सूर्य और चंद्र ने उनकी भी परिक्रमा करके उनका सम्मान करना चाहिए, ऐसा विचार उनके मन में आया। विंध्य सूर्य को मिलने गए।

''हे सूर्यनारायण, मैं विंध्य. आपको वंदन करता हूँ। मेरे मन के कुछ संदेह निवेदन करने हेतु मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। मुझे अभय दान दें। आप सर्वसाक्षी हैं। आप सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी आप नित्य मेरूपर्वत की परिक्रमा करते हैं। जिनकी उत्पत्ति आपसे ही हुई है, चंद्रमा भी मेरू परिक्रमा करते हैं। इसका क्या रहस्य है?''

''हे महासामर्थ्यशाली विंध्य, मेरूपर्वत अनादि और अनंत साक्षी है। उनके साक्षी और आश्रय से सृष्टि के कल्याणार्थ शिवपार्वती मेरूपर्वत पर वास करते हैं। सृष्टि के संतुलन के लिए प्रकाश और उष्मा अर्थात अग्नि, वायु और पर्जन्य का नियंत्रण करने में मेरू एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जगन्नियंता ने इसी कारण सूर्य और चंद्रमा को मेरूपर्वत की परिक्रमा करने का आदेश दिया है। सृष्टिकर्ता और देवेन्द्र की आज्ञा से, लोककल्याण हेतु हम मेरूपर्वत की परिक्रमा करते हैं।''

''हे सूर्यनारायण, मेरू की भाँति मैं भी अनादि अनंत हूँ। सृष्टि की शक्तियों का नियमन करने का सामर्थ्य मेरे पास भी है। मुझ में साक्षात शिवपार्वती का वास हैं। मेरू उत्तर का नियमन करता है, तो मैं भूपृष्ठ के मध्य स्थित होकर उत्तर और दक्षिण, दोनों का नियमन करता हूँ। तथापि आप मेरी परिक्रमा करके मेरा सम्मान

नहीं करते हैं। यह मेरा अपमान है। तो अब मैं चाहता हूँ कि आप दोनों मेरी परिक्रमा करें।'' विंध्य ने अहंकारयुक्त प्रार्थना की।

''हे महाशक्तिशाली विंध्यपर्वत, हम सभी जगन्नियंता की आज्ञा के अनुसार काम करते हैं। इसलिए आप का इस प्रकार का दुराग्रह उचित नहीं। अपितु हमें जगन्नियंता के सृष्टिनियमानुसार पालन करना चाहिए, अतः आप के लिए इस दुराग्रह का त्याग करना ही उचित होगा।''

''हे सूर्यनारायण, मैं आपके पास न्यायसंगत कृति करने के लिए आग्रहपूर्वक अनुरोध करने आया था। परंतु आप मेरा अवमान करके मेरी बात को टाल रहे हैं और बिना किसी कारण आपस में मनमुटाव निर्माण कर रहे हैं।'' विंध्य ने किंचित क्रोधित स्वर में स्पष्ट किया।

''हे तेजस्वी विंध्यपर्वत, आप का अपमान करने का मेरा कोई उद्देश्य नहीं था। मैं केवल आज्ञाकारी हूँ, इसी बात को मैंने आप के ध्यान में लाने की चेष्टा की। यदि इससे आपको दुःख पहुँचा हो, तो मैं आप से क्षमा चाहता हूँ। यदि जगन्नियंता हमें आदेश देते हैं तो आपकी भी परिक्रमा करने के लिए मैं तत्पर हूँ।''

''हे सूर्यनारायण, अब जो भी आज्ञापालन करना है, वह आप ही करें, मैं मेरी मनोकामना पूरी होने की प्रतीक्षा करूँगा।''

''कुछ कठोर स्वर में निवेदन करके विंध्य पुनःश्च स्वस्थान पर लौट आया। कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करने के पश्चात यह देख कर कि सूर्य और चंद्रमा की परिक्रमा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, उसने अपने मन सें निर्णय लिया, 'चाहे कुछ भी हो, मुझे यह सिद्ध करना ही है कि, मैं मेरू से भी महान और अधिक पराक्रमी हूँ'।''

''विंध्य ने अपने निर्णय के अनुसार कृति करना आरंभ किया। 'यदि सूर्य और चंद्रमा के परिक्रमा मार्ग को रोक दिया जाता है, तो अनायास ही वे मेरी परिक्रमा आरंभ करेंगे। सृष्टि का संपूर्ण ध्यान मुझ पर होगा और अग्रतम का स्थान मुझे प्राप्त होगा।' यह सोच कर विंध्य मन ही मन प्रसन्न हुआ।''

''विंध्य दिन-प्रतिदिन बढने लगा। विंध्य पर स्थित चराचर को प्रथमतः विंध्य के इस वृद्धि पर गर्व होता था। तथापि विंध्य ऊँचा, और ऊँचा होता गया। मेरू की भाँति उस पर भी हिम वृष्टि होने लगी। उस स्थिति को पार करके

उसने आकाश की ओर चौकडी भरना आरंभ किया। मेरूपर्वत को यह देख कर बडा आश्चर्य हुआ कि, विंध्य भी उनसे बडा हो रहा था।''

''हे विंध्य, आप अचानक वृद्धत्व स्वीकार पर आकाश की ओर क्यों बढ रहे हैं?'' कौतुहलवश हिमालय ने पूछा।

''मुझे परब्रह्म और महर्षि अगस्त्य का आदेश है।''

''क्या, परब्रह्म और अगस्त्यों ने आदेश दिया है? परंतु हमें तो ऐसा ज्ञात नही हुआ।'' हिमालय ने कहा।

''हे मेरू, ज्येष्ठ होने का आदेश मुझे मिला है, आपको नहीं' विंध्य ने कुछ कुत्सित स्वर में कहा।''

''मेरू मौन रह गए। विंध्य के मस्तिष्क में कुछ अलग ही चल रहा है। यह उन्होंने भाँप लिया था। परंतु विंध्य ने परब्रह्म और अगस्त्य के नामों का उल्लेख किया था, इसलिए इस पर कोई भाष्य करना उचित नहीं था। उन्होंने मौन रहने का निश्चय किया। विंध्य निरंतर बढता ही गया। अद्यापि सूर्य और चंद्रमा का मार्ग रोकने में असमर्थ होने की चुभन उसके मन को पीडा दे रही थी। विंध्य ने और अधिक ऊँचा होने का निश्चित किया। पृथ्वी व्यथित हुई। वह विंध्य के पास आई।''

''हे विंध्यपर्वत, आप इतनी तेज गति से क्यों कर बढते जा रहे हैं। आपके इस उत्थापन से मेरे समग्र शरीर में विवर होने लगे हैं। उदर का अगणित रस विचलित हुआ है। समुद्र के भीषण हिलोरों से समुद्रतट को छिन्न-विछिन्न किया हैं। अतः हे विंध्यपर्वत आपका इस प्रकार से भूगर्भ विच्छेदक रूप में बढते रहना उचित नहीं। पृथ्वी ने आर्त स्वर में प्रार्थनापूर्वक कहा।''

''हे भूमाते, मुझे मेरूपर्वत से भी ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होना है। मेरी वृद्धि को रोकना है, तो मेरूपर्वत को छोटा होने के लिए कहें। ता कि आप की क्षतिपूर्ति हो सके। इतने दिनों तक मेरूपर्वत ने श्रेष्ठता का आनंद लिया। अब वह सौभाग्य मुझे मिलना चाहिए। हे माते, इसलिए आप मेरू से ही बात करें।'' विंध्य ने कुछ उदंडता से उत्तर दिया। पृथ्वी मौन रह गई, यह जान कर कि विंध्य से बात करना व्यर्थ था। 'समुद्र में हिलोराओं का तांडव चल रहा था। प्रलय की आशंका होने लगी थी। समुद्र ने विंध्य से प्रार्थना करने का निश्चय किया।'

''हे विंध्य पर्वत, हम आप को वंदन करते हैं।''

''हे समुद्र, आप हमारे गुरुभ्राता हैं। आप का किस कारण आना हुआ। कृपा करके निवेदन करें।''

''हे विंध्य, महापराक्रमी पर्वत, मेरे स्थान पर जैसे विभिन्न जलचर है, वैसे आप के पास विभिन्न वनचर का वास हैं। इनका जीवन हम पर निर्भर हैं।''

''हे समुद्र, आप के जलचरों के जीवन में मैंने किसी प्रकार का विक्षेप नहीं लाया है। आप इतने व्यथित क्यों हैं?''

''हे विंध्य पर्वत, आप का आकार आकाश की ओर बढते बढते अत्यंत विशाल हो गया है। इतना कि पृथ्वी पर सूर्य का प्रकाश आना अवरुद्ध हो गया है। मेरे उदर में प्रचंड मात्रा में विचलन हो रहा है। परिणामतः मेरे आश्रय में स्थित जलचर मरने की संभावना उत्पन्न हुई है। आप यदि यह विचलन रोकते हैं, तभी हमारा जीवन सुगम होगा, अतः...''

''हे समुद्र, आप की इस स्थिति का कारण विंध्य नहीं है, अपितु मेरूपर्वत और उस पर्वत का नित्य स्तुतिपाठ करने वाले सूर्य और चंद्रमा हैं। इसलिए आप अपना असंतोष उन्हें निवेदन करें तथा उनसे इसका समाधान प्राप्त करें।''

''समुद्र निशब्द हुआ। उसने सूर्यदेव को वंदन करके उन्हें विंध्य की भेंट का पूरा समाचार सुनाया। बडी आशा के साथ समुद्र ने सूर्यदेव की भेंट की, किन्तु उनका परामर्श सुनकर वह मौन रह गया। समुद्र की समझ में नहीं आ रहा था, कि क्या करें।''

''द्विजगणों का दक्षिणोत्तर जाना ही थम सा गया था। वे सभी विंध्य से परामर्श लेने के लिए गए। विंध्य ने उन्हें भी सूर्यनारायण और मेरूपर्वत के पास जाने का सुझाव दिया।''

''विंध्य पर्वत का आरोहण बढता ही जा रहा था। कैलाश, गौरीशंकर शिखरों से भी ऊँचे स्थान पर बढता गया। वह निरंतर बढता ही जा रहा था। यज्ञयाग सत्रों मे निमग्न ऋषियों ने देखा कि, विंध्य ने आकाश छू लिया है। सभी देवता चिंतित थे। भगवान इंद्र, मरूत को चिंता होने लगी।''

सूर्य और चंद्रमा अभी तक विंध्य को नही रोक पाएँ। बर्फ से ढके क्षेत्र को नीचे रखते हुए विंध्य का सिर उपर की ओर खिसक रहा था। ब्रह्माविष्णुमहेश मुस्कुराते हुए इस प्रकार को देख रहें थे। किन्तु पृथ्वी बहुत चिंतित थी।

''सूर्य पूर्वोत्तर चला गया और विंध्य ने अपना समग्र तपोबल दाँव पर

लगा कर एक ऊंछी छलाँग लगाई और एक आश्चर्यजनक घटना घटी। विंध्य की अजस्त्र भित्ति दक्षिणोत्तर फैल गई। उत्तर और दक्षिण ऐसे सीधे दो भाग बन गए। आकाश को छेद कर विंध्य आकाश के उपर तक चला गया। दक्षिण की ओर अंधेरी रात्र तो उत्तर में सूर्यप्रकाश ऐसी स्थिति बन गई। इस विशाल भित्ति को देख कर दक्षिण में इघ्मवाह और अगस्त्य गोत्रज कुलगुरू, राजा, नागरिक, पशु–पक्षी सभी भयभीत हो गए। कावेरी ने पृथ्वी की सांत्वना की। उसे आश्वासन दिया कि, अगस्त्य दक्षिण को टूटने नहीं देंगे। इघ्मवाह के अंतर्ज्ञान से वास्तव को जान लिया।''

''इघ्मवाह अर्थात दृढस्यूतने आपत्ति निवारण के यज्ञसत्र आरंभ किए। पाण्ड्य, पौलस्त्य, पुलह, वानर, क्रतु आदि सभी कुलों ने अगस्त्य पुत्रों के साथ सत्र में भाग लिया। सूर्योदय होने की संभावना न होने के कारण सत्र आरंभ करने के लिए सूर्य की प्रतिमा बनाकर सूर्योदय का आभास निर्माण किया गया और सत्र आरंभ हुए। अग्नि के मुख से सभी देवताओं को हविष्य प्राप्त होने लगे और इंद्रादि सभी देवता सतर्क हुए। सब यह सोचने लगे थे कि, विंध्य अब समूचे पृथ्वी का नाश करने जा रहा है। उधर विंध्य अगस्त्यों का चिंतन करते हुए अपना आकार बढा रहा था।''

''यज्ञ सत्र में निमग्न मान मान्दार्य अगस्त्य अचानक क्षीणकाय होने लगे। उनका तपोबल तथा यज्ञशक्ति क्षीण होती गई। लोपामुद्रा बडे आश्चर्य से यह सब देख रही थी। यज्ञ संपन्न होने के लिए उन्होंने प्रार्थना आरंभ की।''

''नारायण नारायण, इंद्रदेव मेरा नमन। हे इंद्रदेव, आप का शासन विश्व में सर्वत्र होते हुए भी विंध्य पर्वत विश्वव्यापक होकर सारी सृष्टि को दास बनाने का प्रयास कर रहा है। इस पर कुछ तो मार्ग निकालिए।''

''हे नारद, हम इसी चिंता से व्यथित हैं। आप ही हमें कुछ परामर्श दें।'' इंद्रदेव ने हताश स्वर में कहा।

''हे देवतांओ, आइए हम ब्रह्माविष्णुमहेश से परामर्श लेते हैं। देवेन्द्र की नेतृत्व में सभी देवता काशी क्षेत्र में अगस्त्य के यज्ञस्थल पर एकत्र हुए। ब्रह्माविष्णुमहेश चिंताग्रस्त होकर सत्रमग्न अगस्त्य का अवलोकन कर रहें थे। इंद्रादि देवताओं को देख कर उन्होंने पूछा,

''हे देवेन्द्र आप इतने भयभीत होकर क्यों आए हैं? वस्तुतः विंध्य का

संकट आप ही को दूर करना है।''

''हे त्रिदेव, आप हमें क्षमा करें और समग्र सृष्टि को बचाइएं।''

''विंध्य पर्वत, यह सब अगस्त्य मुनि की शक्ति और आशीर्वाद से कर रहा है।''

''हे देवेन्द्र, तो यज्ञ सत्रों से हमें प्रसन्न करके अगस्त्य मुनि ने कौन सी सफलता प्राप्त की है?'' ब्रह्मदेव ने पूछा।

''नारायण नारायण, हे देवाधिदेव, अब यह सब सोचने का समय नहीं है। वर्तमान स्थिति का समाचार महर्षि अगस्त्य तक पहुँच रहा है। अब हमें उनकी शरण में जाना चाहिए।''

''यज्ञ की पूर्णाहुति होते ही सभी देवता अगस्त्य मुनि से मिले। प्रत्यक्ष मैंने अर्थात ब्रह्मदेव ने अगस्त्य को वंदन करके निवेदन किया,

''हे अगस्त्य मुनि, हम सभी देवता आपकी शरण में आए हैं। सृष्टि की रक्षा करना अब केवल आप पर निर्भर हैं।''

''हे देवता, आप भी मुझे वंदन करके लज्जित कर रहे हैं। क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है, जिस कारण से आप सभी मेरी शरण में आए हैं। मैं आप सभी का क्षमाप्रार्थी हूँ। कृपया मुझे क्षमा करें।''

''हे अगस्त्ये, आप के प्रिय शिष्य विंध्य ने जंबुद्वीप के दो भाग करके सूर्य, चंद्रमा, तारका, द्विजगण आदि सभी का मार्ग रोक रखा है। उन्हें रोकने का सामर्थ्य किसी में नहीं हैं, क्यों कि वे आप के सामर्थ्य का चिंतन करके आप ही का उपयोग कर रहें हैं।''

''हे ब्रह्मचैतन्य प्रभो, आप ही तो हैं, जिन्होंने यह शक्ति मुझे प्रदान की है।'' यह आप ही के द्वारा प्राप्त शक्ति है। हे देवताओं, आजतक आप ही के द्वारा प्राप्त शक्तियों का अहंकार से प्रयोग करने वाले अनार्य उद्दंड हुए हैं। विंध्य भी ऐसा अनार्य है जो इस अराजकता की स्थिति तक पहुँच गया है। उसका अहंकार नष्ट करना आवश्यक है। परंतु जगन्माता के विचार नुसार उसे डाँट-फटकार से नहीं, अपितु स्नेह से, प्रेम से उपदेश देकर उसके अहंकार को नष्ट करना चाहिए। इसके लिए मुझे क्या करना है, आप ही बताइएं? आप सभी की इच्छा और आशीर्वाद से ही मैं यह कार्य करूँगा।''

''हे अगस्त्ये आप किसी भी चातुरी से, युक्ति से विंध्य को उँचा होने से

परावृत्त करें या उन्हें रोके, ताकि यह सृष्टिचक्र पुनःश्च पूर्ववत हो।''

''नारायण नारायण, हे महर्षि अगस्त्ये, आप के पुत्र इध्मवाह संकट निवारणार्थ यज्ञसत्र कर रहे हैं। उन्हें आशीर्वाद देने हेतु आप दक्षिण की ओर जाएं। मार्ग में आपको विंध्य को पार करके जाना होगा, स्वाभाविकतः आप की आज्ञा से विंध्य को झुकना पडेगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो विंध्य से युद्ध करने के सिवा कोई विकल्प शेष नहीं रहेगा।'' नारद ने समाधान सुझाकर स्थिति की गंभीरता से भी सबको अवगत कराया।

''हे अगस्त्ये, वत्स, जैसा मैंने कहा, उसी मार्ग से आप उसे समझाइए। आप अवश्य सफल होंगे।'' माता पार्वती ने कहा।

''जो आज्ञा माते, सभी देवताओं को वंदन करने पश्चात अगस्त्य ने उसी दुर्बल अवस्था में लोपामुद्रा के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया।''

''विंध्य पर्वत ने लोपामुद्रा के साथ क्षीण हुए अगस्त्य मुनि को देखा। विंध्य को विश्वास हुआ कि, महर्षि अगस्त्य अवश्य उसे समझाने हेतु आए होंगे। वह सोचने लगा, 'चाहे कुछ भी हो जाए, न्याय के बिना शांत नही होना है।' परंतु एक अनोखी दुविधा ने उसके हृदय में प्रवेश किया। महर्षि अगस्त्य के सम्मुख जाकर उन्हें वंदन करें या ना करें? वंदन किया तो, आज्ञा पालन करना है या नहीं? महर्षि अगस्त्य उपदेश करेंगे या आज्ञा? वह इस असमंजस अवस्था में था कि, अचानक 'नारायण नारायण' का ध्वनि उसके कानों में गूँज उठा। ब्रह्मर्षि नारद वहाँ पर आए थे।''

''हे विंध्य महापर्वत, आप की विशाल काया देख कर समग्र विश्व विस्मित हुआ है। आप से श्रेष्ठ कोई पर्वत नहीं है।''

''मेरा प्रणाम स्वीकार करें मुनिवर, इस समय कैसे आना हुआ?''

''कोई विशेष नहीं, सोचा, आपके गुरू महर्षि अगस्त्य का आगमन हो रहा है, आप को सूचित किया जाना चाहिए। क्यों कि, आप की इस विशाल काया के कारण कदाचित आप के तलहटी पर कौन आ रहा है यह जानना आप के लिए संभव ना हो।''

''हे ब्रह्मर्षि नारद, आप जो कहते है वह सत्य है। तलहटी पर क्या है वह दिखाई नहीं देता, और मैं देखने की अपेक्षा भी नहीं रखता। वास्तव में मुझे उसकी आवश्यकता भी नहीं, फिर भी...!''

''फिर भी क्या, पर्वतराज विंध्य?''

''प्रत्यक्ष गुरू मेरे पास आ रहे है और मुझे इसका ज्ञान नही ऐसा कदापि संभव नहीं। उन्हीं के कारण मैं आज इतने महान पद पर विराजमान हूँ''

''किन्तु मेरे मन में एक संदेह है, यदि महर्षि अगस्त्य ने पुनःश्च आप को आप के मूल पद पर आने के लिए कहा तो...?''

''यदि मुझे मेरा सम्मान प्राप्त होता है, तो मैं अवश्य अपने मूल पद पर आऊँगा। मुझे केवल न्याय चाहिए।''

''परंतु मान लीजिए, अगस्त्य ने न्याय का विचार न करते हुए आप को पूर्व पद पर आने के लिए आदेश दिया तो?''

''हे ब्रह्मर्षे, अगस्त्य ऐसा कुछ नहीं करेंगे... वे मेरे साथ न्यायसंगत ही व्यवहार करेंगे। और यदि ऐसा नहीं हुआ तों मैं इसे अपना दुर्भाग्य समझूंगा।''

''किंतु हे विंध्यपर्वत, सभी देवताओं ने महर्षि अगस्त्य को आप को रोकने के लिए ही भेजा हैं। इसलिए मुझे लगता है, वे आप को रोकने का प्रयास करेंगे। आप का अहित ना हो, इस कारण मैंने आपको सूचित किया। बस, यही मेरा उद्देश था। नारायण-नारायण।''

नारदमुनि की बाते सुनकर विंध्य और अधिक चिंतित हुआ। अगस्त्यों की शक्तियों से वह भलीभाँति परिचित था। उनका शिष्यत्व प्राप्त किया था इसीलिए वह इतना दुःसाहस कर पाया था। परंतु उनके सम्मुख तो जाना ही था। बिना किसी संघर्ष से मनोवांछित साध्य कैसे सिद्ध करें, इसी उलझन से वह व्यथित हो रहा था। अंततः उसने अपने ही मन को दिलासा दिया कि, अगस्त्य ही अब इसका कोई उपाय ढूँढ लेंगे। यह सोच कर वह महर्षि अगस्त्य के स्वागत के लिए आगे बढा।

उसने कुछ सोच कर अगस्त्य और लोपामुद्रा को खडे-खडे ही वंदन किया।

''प्रणाम गुरुदेव, प्रणाम माते!'' विंध्य खडा होकर वंदन कर रहा था।

''हे लोपामुद्रा, हमें कौन वंदन कर रहा है। वाणी तो विंध्य जैसी प्रतीत होती हैं; तथापि विंध्य कहीं दिखाई नहीं दे रहा है।''

''हाँ महर्षे, आप ने ठीक सुना, विंध्य ही आप को मौखिक प्रणाम कर रहा है।''

''गुरुदेव, आपने अपने इस प्रिय विंध्य को पहचाना नहीं?''

''हे भक्तश्रेष्ठ, मैंने तुम्हें पहचाना नहीं, ऐसा नहीं है। परंतु मिलने के लिए तुम्हें दृष्टिगोचर तो होना चाहिए।''

''हे ऋषिवर, मैं आप ही का आज्ञाकारी शिष्य हूँ। तथापि आज की इस भेंट में आप के लिए मुझे प्रत्यक्ष सम्मुख देख पाना कदाचित संभव नहीं। आपको वंदन करने के लिए यदि मैं झुक गया, तो इस अवधि में सूर्य, चंद्रमा, तारका उनकी परिक्रमा पूरी करके मेरी तपस्या, मेरा मंतव्य भ्रष्ट करेंगे। अतः हे मुनिवर, मुझे क्या करना चाहिए, आप ही मुझे बताइए।'' विंध्य ने अगस्त्य से कहा।

अब अगस्त्य दुविधा में फँस गए। उन्हें पार्वती माता के बोल स्मरण हुए।

''हे हृदयप्रिय शिष्य विंध्य, तुम्हारे इस महाआवाहन से हम उभयतः वास्तव में विस्मित हुए हैं। मेरे शिष्य कहलाने के लिए तुम अब हर प्रकार से सिद्ध हो। परंतु हे शिष्योत्तम, तुम्हारी विजयी मुद्रा देखने की क्षमता भी अब मुझ में नहीं है और मेरे साथ तुम्हारी माता लोपामुद्रा भी है। इसलिए तुम्हारे मुख तक आकाश में आना मेरे लिए संभव नहीं।''

''इसके अतिरिक्त मुझे दक्षिण में मेरे पुत्र व तुम्हारे भ्राता – इध्मवाह अर्थात दृढस्यूत द्वारा आयोजित यज्ञसत्र में उपस्थित रहना है। इसलिए अब तुम ही मुझे बताओ कि हम तुम्हें पार करके आगे कैसे प्रस्थान करें?''

''हे वत्स, तुम ऐसे ही विशाल, महापराक्रमी बनो, और अधिक उँचा बढते रहो। मेरू पर्वत से भी महान बनो, यही मैं चाहता हूँ। यहाँ तक कि, तुम मुझे पराजित भी करो, तो सबसे अधिक प्रसन्नता मुझे होगी। क्यों कि उसी में मेरी जित है। किन्तु इस समय यह सब सह लेने की मेरे शरीर की क्षमता नहीं है। तुम्हारे पास मुझे मेरा निवेदन करना आवश्यक है। तुम्हारे लक्ष्य से मैं तुम्हें परावृत्त भी नहीं करना चाहता। क्यों कि, महाबलशाली होने के लिए गुरू ने निरंतर अपने शिष्य को प्रोत्साहित करते रहना चाहिए। मैंने तुम्हे मेरी वर्तमान अवस्था से अवगत कराया है। मेरा पुत्र वहाँ दक्षिण में मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। तथापि तुम्हारी इच्छा तथा अनुमति नहीं होगी तो मैं विवश हूँ। लोपामुद्रा का भी यही कहना है। अतः तुम ही अब निर्णय लो कि, क्या करना है?''

महर्षि अगस्त्य अर्थात अपने महातपस्वी सद्‌गुरू के वचन सुनकर विंध्य पुनःश्च दुविधा में फँस गया। यदि सद्‌गुरू की अवज्ञा करते है, तो तपोबल नष्ट

होता है। आज्ञा का पालन करते है, तो विश्व को दी गई चुनौती विफल हो जाती है। क्या करें कुछ सूझ नहीं रहा था। सहसा एक विचार ने उसके मन में प्रवेश किया, ‘हम कभी भी विशाल महाकाय अवस्था को प्राप्त कर सकते है। महर्षि अगस्त्य ने हमें अपनी इच्छानुसार समग्र विश्व को मोड़ने की शक्ति दी है। हमें शिष्योत्तम की उपाधि प्राप्त है। यदि हम यह उनके द्वारा प्राप्त शक्तियों से कर सकते हैं तो भविष्य में भी कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अब हम अपने गुरू की महिमा को पूरे ब्रह्मांड में प्रदर्शित करके अपने गुरू के शिष्यत्व की महिमा को भी उजागर कर सकते है। इससे अनायास ही हमारी इच्छानुसार सब कुछ संभव हो पाएगा।’ ऐसा सोच कर विंध्य ने अगस्त्य मुनि को निवेदन किया।

‘‘हे ऋषिवर गुरो, मैं आप की पाद्यपूजा करके आप को वंदन करना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि, आपके आशीर्वाद से मेरी तपस्या भंग नहीं होगी। आप मुझे आशीर्वाद देकर ही आगे की ओर प्रस्थान करें।’’

‘‘तथास्तु!’’ गुरू ने तथास्तु कहते ही विंध्य विनम्र हुआ। उसने झुक कर महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा को वंदन किया।

‘‘हे सर्वज्ञ गुरो, मैंने आप के मार्ग पर बाधा डालकर घोर अपराध किया है; अतः आप मुझे जो भी दंड देंगे, मुझे स्वीकार है। मेरी अंतरात्मा से आप भलीभाँति परिचित हैं। माता लोपामुद्रा और आप की शरण में आने से मैं पुनःश्च अपने पूर्वपद पर स्थित हुआ हूँ। अब आप का दक्षिणपथ मुक्त होकर प्रशस्त हुआ है। आप अवश्य इस पथ पर से आगे की ओर प्रस्थान करें और मुझे कृतार्थ करें।’’ विंध्य ने उनके पैर छू लिए।

‘‘हे शिष्योत्तम, मैं तुम्हारी गुरुभक्ति से धन्य हूँ। मुझे तुम पर गर्व है।’’

‘‘हे वत्स, अब तुम्हारे अंतर में अहंकार का स्पर्श भी शेष नहीं रहा। यह देख कर मैं अति प्रसन्न हूँ। अब लोककल्याणार्थ तुम्हारा उपयोग अधिक तीव्र गति से एवं शतगुना बढता जाएगा और समग्र विश्व तुम्हें उत्तर–दक्षिण का भ्रातात्राता के नाम से निरंतर स्मरण करता रहेगा। उत्तर–दक्षिण की यात्रा करते हुए, तुम्हारे दर्शन किए बिना यात्रा एवं जीवन सफल नहीं हो पाएगा। इस कारण, तुम्हें मेरू से भी अधिक श्रेष्ठ तथा मध्यवर्ती स्थान प्राप्त होगा। ब्रह्माविष्णुमहेश का शाश्वत वास निरंतर तुम्हारे अंतर में रहेगा, यह आशीर्वाद मैं तुम्हें देता हूँ।’’

‘‘हे महर्षे, मैं धन्य हुआ।’’

‘‘हे विंध्यपर्वत, अब मेरा एकमात्र अनुरोध है।’’

‘‘आज्ञा गुरुदेव!’’

‘‘मैं और लोपामुद्रा दक्षिण में निवास करने हेतु तथा इध्मवाह के यज्ञ के लिए जा रहे हैं। लौटते समय तुम्हें मिलकर, कुछ दिन यहाँ पर विश्राम करके आगे की ओर प्रस्थान करेंगे। तब तक दक्षिणोत्तर मार्ग को पुनःश्च अवरुद्ध करने के बारे में सोचना भी मत।’’

‘‘जो आज्ञा गुरुदेव!’’

‘‘भारी अंतःकरण के साथ अगस्त्य और लोपामुद्रा विंध्य से विदा लेकर पंचवटी आ गए। विंध्य कुछ क्षण के लिए अंतर्मुखी हुआ। उसने अनुभव किया कि उसके हाथों घोर पाप हो रहा था। अपने दुराग्रह से अपने ही गुरुसमेत सभी के विनाश को आमंत्रित कर रहा था। वास्तविक ब्रह्मा द्वारा प्राप्त अवस्था में कार्यमग्न होकर तपस्या करके परब्रह्म पद प्राप्त करना होता है। इस तपस्या का मार्ग सदासर्वदा लोककल्याण का ही होता है। हमने अपने कर्मों से पूरे ब्रह्मांड के प्रकोप को आमंत्रित किया था। अहंकार का आश्रय लेकर सत्वच्युत भी हुए थे। यह भी एक प्रकार से भ्रष्ट होना ही है। हमारे गुरू ने हमारी रक्षा की। इसलिए अब से हमें निरंतर गुरूमहिमा गा कर चराचरों में अगस्त्य विद्या को वृद्धिंगत करने हेतु अपना जीवन सफल करना है।’’

‘‘विंध्य ने मार्ग प्रशस्त किया और सृष्टिचक्र पुनःश्च पूर्ववत आरंभ हुआ। अगस्त्य और विंध्य ने समग्र विश्व को उपकृत किया अहंकार से विंध्यपर्वत ने दक्षिण की ओर सर्वत्र अंधकार का साम्राज्य फैला दिया था। चांद्रवंशी विश्व और सूर्यवंशी वंश ऐसा विवाद निर्माण किया था। अहंकार का विनाश करके अगस्त्य ने बहुत ही सरलता से, स्नेहपूर्वक माता पार्वती का वचन सत्य सिद्ध किया। किन्तु विंध्य के प्रति कटुता सबके मन बनी रही। अगस्त्य मुनि के संचार से भी वह नष्ट नहीं हुई। किन्तु अब हे रामचंद्र, आप के आगमन से और विंध्य परिक्रमा से वह कडवाहट दूर हो जाएगी। इसीलिए आप विंध्य परिक्रमा अवश्य करें। प्रत्यक्ष ब्रह्मदेव ने प्रभु श्रीराम को विंध्य पर्वत की कथा सुनाकर बताया कि, कैसे अहंकार सब कुछ नष्ट कर देता हैं। जो कोई भी इस कथा को पढता है वह विनम्र और सदैव सुखी होता है। ब्रह्मदेव के वाणी में संमोहन था। उनके शब्द प्रभु श्रीराम के कानों में गुँज रहे थे। ब्रह्मदेव ने प्रभु रामचंद्र से विदा ली और प्रभु

रामचंद्र भी क्षिप्रा से विदा लेकर विंध्य की ओर निकल पडे।''

*

विंध्य के तलहटी पर प्रभु रामचंद्र कुछ क्षण के लिए भावुक हो गए। उन्होंने वैदेही के साथ विचारशील, विनम्र और गुरुभक्तिपरायण विंध्यपर्वत को साष्टांग प्रणाम किया। प्रभु रामचंद्र की आँखों में अश्रु अनायास ही छलछला आए। लक्ष्मण उन्हें निहार रहा था, उसने पूछा,

''हे तात, आप के नेत्रों में अश्रु?''

''हे लक्ष्मण, जिनके स्मरण मात्र से भी अहंकार का नाश हो जाए, ये वो विंध्यपर्वत, परोपकारार्थ अपने अस्तित्व को त्याग कर गुरुचरण में लीन हुए हैं। क्या तुम भूल गए हो, नारदमुनि ने क्या कहा था कि, विंध्यपर्वत ब्रह्मदेव का ही अवतार है? इस विंध्यपर्वत पर साक्षात उमामहेश्वर का स्थान है। विंध्यवासिनी के वास्तव्य से अहंकारी, दुष्ट कपटी दानवों का निर्दालन करने की प्रेरणा हर किसी को मिलती है। प्रश्चातापदग्ध मनुष्य वास्तव में किस प्रकार पावन हो जाता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हम यहाँ देख रहे हैं। महर्षि अगस्त्य की आयुर्विद्या के उत्तराधिकारी के रूप में विंध्यपर्वत प्रख्यात है। उत्तर-दक्षिण के निवासियों को एक साथ मिलने का विश्रामधाम विंध्य है। उनकी पावन कथा उनके मुख से श्रवण करने का परम सौभाग्य हमें प्राप्त हो रहा है, यह वास्तव में महर्षि अगस्त्य की ही कृपा है। मान मान्दार्य महर्षि अगस्त्य ने अपने प्रियतम शिष्य को चिरंतन परोपकार्य का अर्थात ब्रह्मलीला का उपदेश किया है, यह विंध्य का परम सौभाग्य ही है।'' प्रभु श्रीराम ने विस्तार से लक्ष्मण का समाधान करने का प्रयास किया।

''परंतु हे भ्राताश्री, भविष्य में विंध्य पुनःश्च कभी महत्वाकांक्षी ना हो, इसके लिए महर्षि अगस्त्य ने सभी देवताओं की मान्यता से उन्हें वचनबद्ध किया। उनका यह कार्य पुण्यपावन कैसे होता है?'' लक्ष्मण ने अपना संदेह प्रकट किया।

''हे लक्ष्मण, कोई ऐसी बात, भलेही वह अन्यायपूर्ण ही क्यों न हो, यदि किसी पर सर्वलोकहितार्थ थोपी जाती है, तो वह कृत्य भी न्यायपूर्ण ही होता है। क्यों कि, न्याय सदैव समाजहित का ही प्राथमिकता से विचार करता है। अतः हे लक्ष्मण, पर्वतराज विंध्य ने विचारपूर्वक ही अगस्त्यों का सम्मान करके सृष्टिचक्र

को किया अवरोध नष्ट किया। उनके इस महान कार्य को हम त्रिवार अभिवादन करते है।''

श्रीरामचंद्र भावाकुल होकर बोल रहे थे। सीता और लक्ष्मण तन्मयता से प्रभु रामचंद्र के मुख से निकला एक-एक शब्द अपने मन में अंकित कर रहे थे। विंध्य सस्मितपूर्वक ध्यान से श्रवण कर रहा था।

''हे अगस्त्यकार्य से प्रेरित, अगस्त्यमार्ग से जनहितैषि कार्य के लिए व्रतस्थ, प्रभु रामचंद्र, महापतिव्रता सुलक्षणी सीतामाता, निरंतर छाया की भांति प्रभु के साथ रहने का भाग्य जिसे प्राप्त हुआ है, वह भाग्यशाली लक्ष्मण, आप का विंध्याचल में स्वागत है। हे प्रभो, मैं कई युगों से आप की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आज आप के दर्शन पाकर मैं वास्तव में कृतार्थ हूँ। आप कुछ दिन यहाँ निवास करके फिर आगे प्रस्थान करें।'' विंध्य का विनम्रतापूर्वक भाषण सुनकर श्रीराम अतिप्रसन्न हुएं। तीनों ने विंध्य को वंदन किया और उनका आशीर्वाद लिया।

विंध्य की गोद में अगस्त्य विद्या का अवलोकन, चिंतन करते हुए उन्होंने कुछ दिन विश्राम किया। विंध्य क्षेत्र के नयनमनोहर सौंदर्य से प्रभु रामचंद्र के साथ वैदेही भी अति प्रसन्न थी। विंध्य के तीर्थ में स्नान करने से उनका स्वास्थ्य अधिक आरोग्यदायी बना। आपसी विचारविमर्श के पश्चात अगली यात्रा पर प्रस्थान करने का निश्चय किया। विंध्य से विदा लेने के लिए तीनों विंध्यवासिनी माता के समीप गए। विंध्य ने विंध्यवासिनी माता का प्रसाद उन्हें अर्पण किया। यात्रा के दौरान उपयुक्त विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ उन्हें दी।

''हे सद्गुरू, पर्वतराज विंध्य, हम आप के पास मान मान्य मान्दार्य महर्षि अगस्त्य के दर्शन हेतु आप से मार्गदर्शन लेने के लिए यहाँ आए हैं। नारदजी के साथ ब्रह्मदेव ने तथा शिवजी के साथ गोत्रज अगस्त्यों ने आपका परामर्श लिए बिना आगे प्रस्थान ना करने के लिए सूचित किया हैं।''

''हे प्रभो, अगस्त्य कुछ समय तक नर्मदा के सान्निध्य में रहने के पश्चात गोदावरी की ओर बढे। गोदावरी तट पर उनके कई आश्रम हैं। तथापि अगस्त्यों ने गुरुकुल के अतिरिक्त तपस्या के साथ स्थायी निवास के लिए अमृतवाहिनी तट पर परिश्रमपूर्वक एक मठ की स्थापना की। वहीं पर उनका वास्तव्य हैं। अगस्त्य शिष्य महान तपस्वी सुतीक्षण मुनि आप को वहाँ पर ले जाएंगे। हे रामचंद्र, अगस्त्य दक्षिण में अमृतवाहिनी तट पर निवास करते हैं। यह उनके तपस्या का

स्थान होने से वहाँ एकांत का वातावरण हैं। वहीं से वे गंगा गोदावरी पर नित्य स्नान के लिए जाते हैं। महर्षि अगस्त्य के दक्षिण संपर्क अभियान की दृष्टि से गोदावरी, पंचवटी, त्र्यंबकेश्वर स्थान और अगस्त्यों को मठ इन तीनों स्थानों का विशेष महत्व है। द्विजगण, वानर, यहाँ तक कि, सर्प और हिंस्त्र पशु समेत समग्र चरसृष्टि अगस्त्य परंपरा मे सहभागी हुई। इसलिए अगस्त्य परंपरा में इस क्षेत्र को काशी, प्रयाग, मानस सरोवर गंगाद्वार पुष्कर से भी अधिक महत्व है। आप को सुतीक्षण द्वारा ही इन सभी बातों का ज्ञान होगा।'' विंध्य पर्वत ने जानकारी दी।

''हे पर्वतराज विंध्याद्रि, आप के परामर्श से हमारा दक्षिण का मार्ग प्रशस्त हुआ है। तथापि आपने हमें अगस्त्य कार्य को आगे ले जाने का उत्तरदायित्व निभाने के लिए जो मार्गदर्शन किया वह अधिक उपयुक्त होगा। आप के आशीर्वाद से हम अपने वनवास अभियान में सफल होंगे। श्रीराम ने कृतज्ञतापूर्वक कहा।

प्रसन्नता से श्रद्धापूर्वक श्री रामचंद्र, मैथिली और लक्ष्मण ने विंध्य से नर्मदा परिक्रमा आरंभ की।

*

द्युत क्रीडा का प्रायश्चित्त लेने के लिए धर्म, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी के साथ वननिवासाश्रम करने हेतु तीर्थयात्रा कर रहे थे। मार्ग में वे ऋषियों को, उनके आश्रमों को भेंट देते हुए अनुभवसंपन्न हो रहे थे। गंगाद्वार के अगस्त्य मुनिग्राम स्थित अगस्त्याश्रम में उन्होंने निवास किया। गोत्रज अगस्त्य कुलपति ने उनका यथोचित सम्मान किया। गंगाद्वार तीर्थ में स्नान करते समय पांडव गंभीर हो गए। मन में प्रायश्चित्त का भाव था। गंगा के विमल जल में खडे होकर अर्घ्य देते समय साक्षात गंगामाता प्रकट हुई। युधिष्ठिर के साथ पांडवों ने प्रणाम किया।

''हे युधिष्ठिर, वेदरचयिता व्यास ने भी इसी अगस्त्यमुनिग्राम में निवास किया था। इसी स्थान पर उन्हें श्रीमद्‍भागवत की प्रेरणा प्राप्त हुई। उन्हें विश्वास हुआ कि, भागवत धर्म की स्थापना से विश्वकल्याण होगा, चराचर में कैवल्य समाया हुआ है, इस की अनुभूति पाने के उद्देश्य से उन्होंने त्रिदेवों के माध्यम से निर्मित और व्यवस्थापित सृष्टि को, कैवल्य की दृष्टि प्राप्त होकर अहंकार रूपी राक्षस, दानव अथवा दैत्य का विनाश होगा तथा धर्म का अर्थात विष्णु तत्व का

राज्य निर्माण होगा, यह सोच कर श्रीमद्‌भागवत पुराण कथन किया। यह कार्य उन्होंने शुकमुनि व्यास के मुख से करवाया। उस श्रीमद्‌भागवत के रचयिता को अगस्त्य मुनि का साहाय्य प्राप्त हुआ था महर्षि अगस्त्यों के कारण महर्षि व्यास को लोककल्याण का मार्ग मिला। इसलिए कुरुकुलोत्पन्न व्यास और उन्हीं के अंग शुकमुनि, अगस्त्य मुनि की प्रेरणा से कार्य करते हैं। अतः हे पृथ्वीपते धर्मराज, गंगाद्वार के साक्षी से स्थापित अगस्त्यमुनिग्राम में आप निवास करने आए यह उचित ही हुआ। अब राजविलास, भोगमार्ग त्याग कर लोककल्याण कार्य के लिए अपना जीवन समर्पित करें। समग्र विश्व को आर्यमय अर्थात ज्ञानमय करने का प्रयास करें।'' गंगामाता ने परामर्श दिया।

''हे माते, हम अगस्त्यमुनिग्राम में निवास कर रहे हैं, तथापि हम उनके बारे में बहुत कम जानते हैं। यह अगस्त्य कौन हैं? उनका महर्षि व्यास जी से किस प्रकार संबंध आया, यह कृपा करके हमें विदित करें। हम वास्तव में लोककल्याण के मार्ग पर चलना चाहेंगे। भगवान श्रीकृष्ण के परामर्श से ही हमने अगस्त्यमुनिग्राम आना निश्चित किया था।''

''हे पांडव, मुझे विश्वास था कि, आप लोककल्याण के मार्ग पर से जाने का अवश्य विचार करेंगे। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। हे वत्स, अगस्त्य गंगापुत्र अथवा शिवपुत्र ही हैं। इसलिए गंगापुत्र भीष्म के वे भ्राता हुए। अर्थात अगस्त्य कुरुकुल से संबंधित हैं।''

''वह कैसे? हे माते, तनिक विस्तार से हमें कथन करें।''

''हे पांडव, मित्रावरुण के पौरुष से, शिवस्पर्श से व शिवांश से पुष्कर स्वरूप मान कुंभ से अर्थात मानस और मान से अगस्त्य का दैवी जन्म हुआ। उनके जन्म के लिए प्रेरक बनी स्वर्गीय अप्सरा उर्वशी भी उनकी प्रतिकात्मक, लाक्षणिक माता हैं। मरुतों की कृपा से मित्रावरुण का पौरुष मानकुंभ में गिर गया और उसी से उनका जन्म हुआ। इस दृष्टि से वे मरुतपुत्र भी हुए। यदि मान को उर्वशी के पुत्र के रूप में माना जाता है तो इंद्र भी मान के पिता हुए। इसके अतिरिक्त मरिच ऋषि से अगस्त्यों की परंपरा बताई जाती है तो इस दृष्टि से अगस्त्य मरीचि कुल से भी संबंधित है, ऐसा भी कहा जा सकता है। अर्थात हे युधिष्ठिर, जगद्‌वंद्य युगपुरुष ऐसी परंपराओं के निर्माता होते हैं और ऋषि पद पर आरूढ होने के लिए मुक्तात्मा को ऐसी कठिणाईयों से जाना ही पडता है।

इन अगस्त्यों ने देवगणों को अभयदान दिया था, इसलिए स्वाभाविक रूप से देवताओं की रक्षा का उत्तरदायित्व अगस्त्यों पर आ गया।''

''हे माते, अगस्त्य मुनि ने देवताओं की रक्षा कैसे की, यह जानने के लिए हम उत्सुक हैं।''

''हे युधिष्ठिर, अगस्त्य उग्र तपस्वी हैं। उन्होंने परिस्थिती नुसार लोककल्याणकारी कार्य करने का निश्चय किया। जब कभी भी इंद्रादि देव संकट में होते थे, अगस्त्य मुनि ने अपना तपोबल दाँव पर लगाकर देवताओं और मनुष्यों की रक्षा की।'' गंगामाताने कहा।

''हे माते, अगस्त्यों के पराक्रम के बारे में हमें बताएँ।''

''हे युधिष्ठिर, आप लोककल्याण की प्रतिज्ञा लेकर अगस्त्यमुनिग्राम के अगस्त्यों से ही पूछें। आप को जागृत करके आप को यथायोग्य दृष्टि प्राप्त हो, इस उद्देश्य से मैं यहाँ उपस्थित हुई।''

''हे माते, हम धन्य हुएं।'' धर्मराज ने कहा।

पांडवों के मन में अगस्त्यों के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करके गंगामाता अंतर्धान हुई। पांडव अतीव कौतुहल से अगस्त्य कथा श्रवण करने के लिए आश्रम के कुलपति के समीप जाकर बैठ गएं।

''हे आचार्य, गंगामाता ने हमें बताया कि, अगस्त्यों के आशीर्वाद से श्रीमद्भागवत का निर्माण हुआ। वह कथा श्रवण करने के लिए हम उत्सुक हैं।''

''हे युधिष्ठिर, शुकमुनि व्यास के इस कथा का श्रवण श्रापमुक्ति के लिए किया जाता है। आप को भी इस कथा का अवश्य लाभ होगा। शुकमुनि एक बहुत ही विद्वान, तपस्वी पुरोहित थे। कुरुकुल का पौरोहित्य परंपरागत रूप से उनके पास आया था। अगस्त्य की भांति शुकमुनि भी तपस्या करते थे। उन्हें भी लोककल्याण कार्य में रुचि थी। शुकमुनि द्विजरूप में सर्वत्र संचार कर सकते थे। देवताओं की समृद्धि के लिए तथा राक्षसों का विनाश करने के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञसत्र करते थे। राक्षसों ने इन देवताओं की सहायता करने वाले शुकमुनि का प्रतिशोध लेने का निश्चय किया। यह कार्य वज्रद्रंष्ट्र नामक दानव को सौंपा गया। वज्रद्रंष्ट्र शुकमुनि के आश्रम में उनके शिष्य के रूप में रहता था। इसलिए किसी का उस पर संदेह करना संभव ही नहीं था। किन्तु वह अपने राक्षसी प्रवृत्ति

नुसार मायावी शक्ति की सहायता से सत्शिष्यों की विभिन्न रूप धारण करके कष्ट देता था। उनकी अत्यधिक दुर्दशा करके, उन्हे कुख्यात करने में उसे बडा आनंद आता था। किसी को पता भी नही चलता था कि, वह किस शिष्य का रूप धारण करके उनके साथ हैं। अवसर पाकर हर बार वह भिन्न भिन्न शिष्य का रूप धारण करता था। सोमयाग अवसर पर यज्ञसत्रों में वह द्विजस्वरूप में यज्ञविधि में विक्षेप उत्पन्न करके आनंद लेता था। शुकमुनि का ध्यान केवल शिष्यवर्ग के अध्ययन सत्रों में तथा लोककल्याणकारी कार्य करने में लगा रहता था। किन्तु दानवों ने वज्रदंष्ट्र पर जो दायित्व सौंपा था, वह कार्य संपन्न होने में विलंब हो रहा था। इसलिए दानव उससे असंतुष्ट होने लगे। वज्रदंष्ट्र बडी जिज्ञासा से उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था।''

*

''शुकमुनि का कार्य प्रशंसनीय था। अगस्त्य मुनि के लिए वे शतार्चिन इतने ही निकटस्थ थे। अगस्त्य मुनि का इस बात पर जोर था कि, ऋषियों के संपर्क से अनुसंधान आगे बढेगा। अगस्त्य शुकमुनि के आश्रम में आ रहे हैं, यह समाचार शुकमुनि को ज्ञात हुआ। उन्होंने अत्यंत आदरपूर्वक उनके स्वागत का प्रबंध किया। शुक ने उनका उसी सम्मान से स्वागत किया, जो ऋषियों द्वारा ज्येष्ठ ऋषियों का किया जाता हैं। वज्रदंष्ट्रा ने देखा कि, यही उत्तम अवसर हैं। शुकमुनि ने अगस्त्यों को भोजन पर आमंत्रित किया था। भोजन का अति उत्तम प्रबंध हुआ था। अगस्त्य नित्य स्नानोत्तर भोजन करते थे।''

''हे शुकमुने, आप के स्वागत से मैं प्रसन्न हूँ। आपने मुझे भोजन पर आमंत्रित किया हैं। स्नान के पश्चात यथाविधि भोजन करेंगे।''

''जो आज्ञा मुनिवर'', शुक ने कहा। उन्होंने अगस्त्य के स्नान की व्यवस्था की। शिष्यों को सरोवर पर भेज दिया। अगस्त्य को पुनःश्च लौटते देख शुक विस्मित हुएं।

''आप स्नान के लिए गए थे।''

''हाँ, तथापि, भोजन संबंधी एक सूचना देनी थी, इसलिए मैं आया हूँ।'' वज्रदंष्ट्र अगस्त्य का रूप धारण करके आया था। श्रद्धा के कारण शुक को कुछ

समझ नहीं आया।

‘‘आज्ञा गुरुदेव।’’

‘‘देखिए, आज मुझे भोजन में मेष का मांस भक्षण करने की इच्छा हुई हैं।’’

‘‘आज्ञा मुनिवर, ऐसा ही होगा।’’ सूचना देकर अगस्त्य मुनि को स्नान के लिए जाते देख शुक ने मेष सिद्ध करने के लिए कहा। उसी समय वज्रदंष्ट्र शुक के एक शिष्य को मेष के रूप में ले आया। अर्थात उस मेष का मांस सिद्ध किया गया।

‘‘जैसे ही मांस पकाया गया, शुक पत्नी के ध्यान में आया कि, वह नरमांस था। ऋषि को यह परोसा जाए, तो अनर्थ होगा, यह सोचकर वह तुरंत दो शिष्यों को लेकर मेष मांस सिद्ध करने के लिए अन्य उचित स्थान पर गई।’’

‘‘तब तक अगस्त्य स्नान करके लौट आए थे। शुकमुनि ने भोजन की व्यवस्था की। वज्रदंष्ट्रा ने शुकमुनि के पत्नी का रूप धारण करके पकाया हुआ नरमांस अगस्त्य मुनि के पात्र में परोसा और वह तुरंत वहाँ से चल दिया। अगस्त्य भोजन ग्रहण करना आरंभ ही करनेवाले थे कि, उनके ध्यान में आया कि, उनके पात्र में नरमांस परोसा गया है। अगस्त्य अत्यंत क्रोधित हुए और उन्होंने घोर शापवाणी का उच्चारण किया।’’

‘‘हे शुक, तुमने मुझे नरमांस परोसा। नरमांस भक्षण करने वाले अघोरी राक्षस होते हैं। इसलिए अब तुम्हें भी दानव के रूप में जन्म लेना होगा। तुम्हारा हर प्रकार का ऋषित्व नष्ट होगा और तुम अतीव पीडा से व्यथित होंगे।’’

‘‘हे ऋषिवर, आपकी ही सूचनानुसार मैंने मेषमांस सिद्ध किया है।’’

‘‘हे शुकमुने, तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हुई हैं, तुम मेष और नर के बीच का अंतर भी नहीं जानते? क्रोधित अगस्त्य भोजन के पात्र को छोड कर जाने लगे। तभी शुक पत्नी वहाँ आ गई। उसने मेष मांस सिद्ध करके लाया था। जब वह वहाँ पहुँची, तो वहाँ जो कुछ भी हुआ था, उसने जान लिया। वह तुरंत अगस्त्य मुनि के शरण में गई।’’

‘‘हे महर्षे, जब मैंने भोजन बनाया, तो मुझे पता चला कि वह नर मांस था। मैंने शीघ्र उसे अलग रख दिया और मेष मांस सिद्ध करने गई। किन्तु उसी समय वह मांस आप को किसने परोसा?’’

''हे ऋषिपत्नी, आपने स्वयं पात्र में परोसा था।''

''परंतु यह कैसे संभव है।''

''विवाद चल रहा था कि, अचानक अगस्त्य मुनि को अथर्वण से वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ। जब उन्होंने जाना कि, वज्रदंष्ट्र की योजना सफल हुई है, एकाएक वे शांत हुए। महर्षि अगस्त्य को शांत होते देख भयभीत शुकमुनि और भी अधिक भ्रमित हो गए। अगस्त्य मुनि के मन में खेद की भावना उन्हें विचलित करने लगी कि, क्यों उन्होंने निरपराध शुक को शाप दिया। उन्होंने शुक को समझाने का प्रयास किया।''

''हे शुकमुने, आप पूर्णतः निर्दोष होते हुए भी दानवों ने अपनी मायावी शक्ति से तुम्हें और यज्ञसंस्था को कष्ट देने का दुस्साहस किया है। वस्तुतः वज्रदंष्ट्र ने आप के एक भले शिष्य को मेषरूप देकर उसका मांस सिद्ध किया। अतः एक अच्छा शिष्य अपने प्राण गँवा बैठा। जब आप की पत्नी को वास्तव का ज्ञान हुआ तो वह देवी पुनःश्च मेष मांस सिद्ध करने गई। उन्होंने लाया भी, किन्तु तबतक वज्रदंष्ट्र ने ऋषिपत्नी का रूप धारण करके नरमांस पात्र में परोस दिया था। अर्थात इस कारण आप का अतिथि भोजन का स्वप्न भी अधूरा ही रह गया। इसमें आपका या आपके पत्नी का कोई दोष नहीं था। तथापि अब मेरी शापवाणी असत्य नहीं होगी। आपका दानवरूप में जन्म लेना अटल हैं। यह सत्य है कि, अज्ञान के कारण यह कृत्य हो चुका है, तथापि अब मैं विवश हूँ।''

यद्यपि मेरी शापवाणीनुसार तुम्हे दानव जन्म लेना होगा, फिर भी मैं आपको उःशाप देता हूँ। दानव रूप में जन्म लेने के पश्चात आप रावण नामक अतिविद्वान, तथापि दानव पद को प्राप्त दानव के पास उनके दूत के रूप में कार्यरत होंगे। दूतकार्य करते समय एक दिन आप को विष्णुरूप अवतार प्रभु रामचंद्र जी के दर्शन होंगे और उनके दर्शन पाते ही आप को पुनःश्च ब्रह्मऋषिपद प्राप्त होगा। बाद में वास्तव में शुकमुनि को दावनरूप प्राप्त हुआ और प्रभु रामचंद्र की सहायता करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। इस अवसर से उन्हें पुनःश्च शुकमुनिपद प्राप्त हुआ। हे धर्मराज, इस बात को नित्य ध्यान में रखना है कि, यह इतिहास दोहराया न जाए।'' अगस्त्य कुलगुरू ने पांडवों को परामर्श दिया।

''हे अगस्त्य कुलगुरों, आपने हमें शुकमुनि की कथा सुनाकर एक प्रकार से अगस्त्य मुनि की महानता हमारे सम्मुख प्रस्तुत की। हम धन्य हुए। तथापि प्रभु

रामचंद्र अगस्त्यों के मार्गदर्शन से कैसे लाभान्वित हुए, वह कथा विदित करें तो कृपा होगी।'' धर्मराज ने अनुरोध किया।

''हे युधिष्ठिर, आप महर्षि अगस्त्य के मार्ग से ही गोदा तट जाकर वहाँ पर निवास करें। वही आप अगस्त्य कथा श्रवण कर पाएंगे। अतः आप पंचवटीस्थित आश्रम में जाइए। आश्रम के अगस्त्य गोत्रज कुलपति आप को राम-अगस्त्य कथा सुनाएँगे।''

धर्मराज, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और पांचाली के साथ गंगाद्वार से काशी क्षेत्र में स्थित अगस्त्य आश्रम में आएं। वहाँ भी उन्होंने कौतुहलवश अगस्त्य कथा के लिए पूछा। वहाँ के अगस्त्य ने समुद्रप्राशन, विंध्यदमन आदि कथाएँ उन्हें सुनाई। लोपामुद्रा विवाहकथा भी कथन की। पांडव विस्मित हुए। कावेरी कथा ने तो उन्हें अभिभूत कर दिया। उन्होंने यह सोचकर अपनी यात्रा आरंभ की, कि अब उन्हें भी अगस्त्य मुनि का महान कार्य आगे ले जाना है।

काशी से वे वनविहार करते हुए विंध्यवासिनी के दर्शन के लिए आएं। विंध्यपर्वत की विनम्रता देखकर धर्मराज एक क्षण के लिए लज्जित हुएं।

''हे विंध्यपर्वत, हम अगस्त्य मार्ग से जाने के लिए उत्सुक हैं। माँ गंगा ने भी हमें इस मार्ग से जाने की आज्ञा दी है।''

''हे युधिष्ठिर, महर्षि अगस्त्य का मार्ग सुगम नहीं हैं। निर्लेप मन से और निरपेक्ष भाव से सेवा करनी होगी। यह ध्यान में रखते हुए कार्य करना होगा।''

''हे विंध्यपर्वत, हम सभी व्रतस्थ होकर इस कार्य को आगे ले जाएंगे। हम आपसे प्रार्थना करते है, कि हमारा मार्गदर्शन करें।''

''हे पांडव, अगस्त्य आयुर्विद्या, अथर्वण, कृषिविद्या, यज्ञसोमयाग विद्या, युद्धविद्या इन सभी विद्याओं में पारंगत हैं। इसी के साथ पर्जन्य और मरुत इनके व्यवस्थापन में भी निपुण हैं। उन्होंने अपने गुरुकुलों की रचना पूरे विश्वभर में की है। उन्होंने पूरे विश्व में अपने गुरुकुल स्थापित किए है। प्रत्यक्ष भगवान शिवशंकर स्वयं उनके गुरू हैं। दक्षिणोत्तर अर्थात ब्रह्मा-विष्णु-महेश, इंद्र, मरुत, सूर्य जैसे महत्वपूर्ण देवताओं के साथ-साथ सभी ऋषिमुनि, तपस्वियों के साथ उनके घनिष्ठ संबंध है। इसीलिए हे पांडव, उत्तर और दक्षिण के महत्वपूर्ण कुल अगस्त्य परंपरा में जुड गए हैं। महर्षि अगस्त्य को कर्नाटक, आंध्र, तमिलनाडू, केरला, श्रीलंका आदि दक्षिणी क्षेत्र के महत्वपूर्ण जनजातियों में देवता का स्थान दिया

गया हैं। इसी कारण प्रभु रामचंद्र के लिए मित्र जोडना और दानवों का विनाश करना संभव हो सका। हे पांडव, महर्षि अगस्त्य ने स्वयं प्रभु श्रीरामचंद्र जी को दक्षिण की ओर जाने के लिए मार्गदर्शन किया हैं।''

''हे विंध्य पर्वतों, अगस्त्य और प्रभु रामचंद्र इनकी भेंट कैसे हुई इस संबंधी जानने के लिए हम उत्सुक हैं।''

''हे पांडवों, प्रभु रामचंद्र ने विंध्य पर्वत पार किया, तत्पश्चात नर्मदा की परिक्रमा करके पंचवटी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में आनेवाले पर्वतों, पठारों, जंगलों को पार करते हुए दुष्टों का विनाश भी करते हुए मार्गक्रमण करते थे। जनसामान्यों से संवाद स्थापित करते हुए मित्रता के संबंध भी दृढ करते थे। जहाँ कही मार्ग पर उन्हे कलकल करते जलस्त्रोत दिखाई देते, नदी के तट पर जहाँ रंगबिरंगे फुलों से प्रकृति की गोद भरी होती, वहाँ पर वे विश्राम के लिए कुछ दिन निवास करते थे। लहलहाती हरियाली, लहराते हरे-भरे खेत, फूल-फूल पर भ्रमर का अटक-अटक गुंजारव करना, कुंज-कुज में कुकती कोयल, प्रकृति का सुंदर, मनोहारी दृश्य उन्हे मोह लेता। प्रकृति के ऐसे खुले ज्ञानकोश का आनंद लेते हुए वे अपना मार्गक्रमण करते थे। पथ पर उन्होंने सारस, चक्रवाक जैसे पक्षियों को देखा। विभिन्न सरोवर देखे। गाय, भैंस, बाघ, हाथी, मृगों के झुंड पाए गए। वानरों की विभिन्न प्रजातियाँ जैसे राम-लक्ष्मण-सीता का साथसंगत करते हुए प्रतीत होती थी।''

''मार्ग में एक सुंदर सरोवर देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। पुष्करतीर्थ और मानस सरोवर का स्मरण दिलाने वाले कमल को देख कमलनयना सीता तो मोहित हुई। सारस, हंस, कदंब जैसे पक्षियों की भी भीड थी। उस रम्य सरोवर से अद्भूत गायन ध्वनि आ रही थी। आस पास कोई नहीं था पर पास ही एक आश्रम था। तीनों उसे देख कर बहुत प्रसन्न हुए। वे आश्रम के समीप आए। यह आश्रम धर्मभृत नामक ऋषि का था। वे शिव की भक्ति में लीन थे। एक शिष्य ने उन्हें सूचना दी कि, प्रभु रामचंद्र आश्रम में आए हैं। अयोध्यापति, विष्णु अवतार श्रीराम और सीता, शेषनाग लक्ष्मण के साथ आए हैं, यह सुनकर धर्मभृत आनंदविभोर हुए। धर्मभृत आगे आकर प्रभु श्रीराम को आदरपूर्वक आश्रम में ले आएं। उनका यथोचित सम्मान किया और क्षेमकुशल पूछा। प्रभु श्रीरामचंद्र सरोवर से आने वाली ध्वनि को लेकर उत्सुक थे। कौतुहलवश उन्होंने धर्मभृत से पूछा।''

‘‘हे महामुने, यह अद्‌भुत गीत, संगीत स्वर श्रवण कर हम बडे विस्मित हुए हैं। यह ध्वनि कहाँ से और कैसे आती है। हमारी जिज्ञासा का समाधान करें।’’

‘‘जब प्रभु श्रीराम ने यह पूछा, तो धर्मभृत मुनि ने सरोवर का इतिहास कथन करना आरंभ किया।’’

‘‘ये है पंचास्परा नामक सरोवर। यह सरोवर सदैव जल से भरा होता है। इस सरोवर का निर्माण मांडवकर्णी मुनि ने अपने तपोबल से किया था। ये मांडवकर्णी ऋषि दस सहस्त्र वर्षों तक इस जलाशय में रहें और वायु भक्षण कर उन्होंने घोर तपस्या की। उनकी इस तपस्या से सभी देवता अत्यंत व्यथित हुए। इंद्रदेव को लगने लगा कि, मांडवकर्णी उनके प्रतिद्वंद्वी हैं। सभी देवताओं ने मिलकर अग्निदेवता द्वारा ब्रह्मा जी से निवेदन किया कि, मांडवकर्णी देवत्वपद को चाहते है। सबसे अधिक संभावना है कि, उन्हें इंद्रपद की लालसा है। उनकी तपस्या का उद्देश्य राक्षसों के समान हैं। अतः इसे समय पर रोकना आवश्यक है। ब्रह्मदेव ने सदा की तरह इंद्र को उनका तपोभंग करने की युक्ति सुझाई। देवेन्द्र को ब्रह्माजी का सुझाव मान्य था। इसके लिए उन्होंने अपने इंद्रलोक की पाँच अप्सराओं का चयन किया और एक योजना बनाई।’’

‘‘त्रिकालज्ञ मुनि मांडवकर्णी उनकी तपसाधना में लीन थे। उन अप्सराओं को मांडवकर्णी मुनि का तपोभंग करके देवताओं की चिंता को दूर करने का कार्य सौंपा था। उन अप्सराओं ने मांडवकर्णी को अपनी काम क्रीडा से कामोदीप्त कर दिया। ऋषि में मदन जाग उठा। इन अप्सराओं ने ऋषि का पत्नीत्व स्वीकार किया। उनकी रतिक्रीडा के लिए इस सरोवर में एक गुप्त आवास का निर्माण किया। इस गुप्त आवास में ये अप्सराएँ अपनी इच्छानुसार रह कर मांडवकर्णी का मदनदाह उत्तेजित करती थी। उन्हें तपोयोग से परावृत्त करके कामक्रीडा के लिए मोहित करती थी। रतिक्रीडा में लिप्त, उनके ही वाद्ययंत्रो का यह ध्वनी है।’’ ऋषि धर्मभृत ने सरोवर की कथा विदित की।

‘‘प्रभु रामचंद्र और लक्ष्मण ऋषि मांडवकर्णी के तपोयोग की कथा सुनकर आश्चर्यचकित रह गए। श्रीराम मांडवकर्णी के आश्रम और गुप्त आवास को देखने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने सीता के साथ आश्रम में जाने का निश्चय किया। आश्रम में जाकर उनकी जिज्ञासा शांत हुई। मांडवकर्णी ने उनका यथोचित स्वागत किया और उन्हें विश्वास दिलाया कि, देवेन्द्र की युक्ति जानते हुए भी संतुलन रखने

के लिए इन बातों का स्वीकार करना चाहिए, सो मैंने किया। उन्होंने श्रीराम को वहाँ से सुतीक्ष्ण के आश्रम में जाने के लिए कहा।''

''श्रीरामचंद्र, मार्ग में कहीं कहीं निवास करते हुए अंत में सुतीक्ष्ण के आश्रम में आएं। सुतीक्ष्ण को प्रभु श्रीराम का आगमन अपेक्षित ही था। सुतीक्ष्ण ने उनका यथोचित स्वागत किया। कुछ दिनों के विश्राम के पश्चात प्रभु रामचंद्र ने सुतीक्ष्ण से अगस्त्य आश्रम के बारे में पूछा। आनंदित होकर, सुतीक्ष्ण ने श्रीराम से कहा,

'हे श्रीराम, मैं भी आपको अगस्त्य मुनि के पास जाने का सुझाव देने ही वाला था। परंतु यह एक शुभ संकेत हैं कि, आपने स्वयं अगस्त्य मुनि के पास जाने की इच्छा प्रदर्शित की हैं। हे रामचंद्र, मैं आप को बतलाता हूँ कि, मान मान्दार्य अगस्त्य कहाँ हैं। इस आश्रम से चार योजन दूरी तक जाकर दक्षिण की ओर अगस्त्य गोत्रज का एक बहुत ही सुंदर, नयनरम्य आश्रम हैं। घने अरण्य से घिरे हुए क्षेत्र में सुशोभित पिप्पल का उपवन है। यहाँ ढेर सारे फल, पुष्प हैं, विभिन्न प्रकार के पक्षीगण मुक्त विहार करते हैं। अगस्त्यमुनि का आश्रम वहीं पर है। इस आश्रम के आस-पास केतकी के बन हैं। कमल से भरे विभिन्न मनोहारी सरोवर हैं। मोर के झुंड हैं। आश्रम के निकट बहनेवाली गोदावरी गंगा हर मोड पर सुंदर मनोहर दृश्य बनाती चलती है। कलकल-छलछल करती गोदावरी गंगा के चमचमाते जल के दर्शन नयनाभिराम होते हैं। हंसादि पक्षियों के जमघट से सरोवर शोभायमान हुए हैं। चक्रवाकों ने प्रकृति की इस सुंदरता को और भी बढा दिया हैं। अगस्त्य भ्रात्यों के आश्रम में निवास करने के पश्चात प्रातःसमय वन क्षेत्र के छह पर्वतों से दक्षिण की ओर एक योजन दूरी पर अगस्त्य आश्रम स्थित है। यह आश्रम पंचवटी से अधिक दूर नहीं, परंतु गोदावरी के तट पर भी नहीं है। इस आश्रम के निकट अमृतवाहिनी प्रवरा बह रही है। अगस्त्य मुनि ने यह स्थान अपने स्थायी निवास और तपस्या के लिए चुना है। वे लोपामुद्रा के साथ यहां निरंतर निवास कर रहे हैं। इस निवास के निकट प्रवरा तट पर श्री सिद्धेश्वर का स्वयंभू लिंग है और इसके चारों ओर शिवमहिमा का वर्णन करने वाले कई नयनरम्य स्थान हैं। आश्रम में विष्णूपूजन किया जाता है। अगस्त्य इस स्थान पर नित्य यज्ञयाग, सोमयाग सत्र आयोजित करते हैं। वहाँ जाकर आप का मन प्रसन्न होगा। तथापि अगस्त्य आपको आपके वननिवास के लिए सर्वोत्तम प्रबंध

और मार्गदर्शन करेंगे। यह परामर्श देकर सुतीक्ष्ण ने श्रीरामचंद्र को महर्षि अगस्त्य की ओर जाने का मार्ग दिखाया।

''हे रामचंद्र, ये सुतीक्ष्ण मुनि निरंतर महर्षि अगस्त्य के कार्य में लीन रहते हैं और मेरे, अर्थात विंध्य के सान्निध्य में रहकर अगस्त्य मार्ग एवम् अगस्त्य विद्या का चिंतन करते हैं। विंध्य ने पांडवों को बताया। इस पर युधिष्ठिर ने नाशिक स्थित पंचवटी जाकर वहाँ अगस्त्य मुनि से मिलकर उनका आशीर्वाद लेने का निश्चय किया।

यात्रा के दौरान पांडव विंध्य द्वारा वर्णित एक-एक रमणीय स्थान देखते हुए पंचवटी आ पहुँचे। श्री गोदा रामकुंड में स्नान करते हुए उन्हें पुनःश्च रामकथा का स्मरण हुआ। आश्रम से कुछ ही दूरी पर श्रीराम की कुटिया थी। जैसे ही पांडवों को पता चला कि, प्रभु रामचंद्र के स्पर्श से पावन भूमि पर वे आ चुके हैं, उनके मन में कृतार्थ का भाव जगा। उन्होंने भी पंचवटी में अपनी कुटिया स्थापित कर अपना वास्तव्य आरंभ किया। तथापि अगस्त्यों की पराक्रम कथाओं और प्रभु श्रीराम के कार्यों की जिज्ञासा उन्हें अशांत करती थी। इसके अतिरिक्त गंगा स्त्रोत, प्रवरा स्त्रोत का रहस्य जानने के लिए भी अधीर हुए थे। उन्होंने पंचवटी निकट के अगस्त्य आश्रम में जाकर अपनी जिज्ञासापूर्ति करने का निश्चय किया।

पंचवटी अगस्त्य आश्रम में पांडवों का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। स्वागत से प्रभावित युधिष्ठिर ने अगस्त्य के कुलपति से प्रश्न किया,

''हे कुलपते, आप के स्वागत से मैं प्रभावित हुआ हूँ। मैं आप के पास प्रभु श्रीरामचंद्र और महर्षि अगस्त्य के साक्षात्कार का समाचार जानने हेतु यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। लोमेश और वैशंपायन ने हमें मार्ग में कई अगस्त्य कथाएँ सुनाई हैं।''

''हे यमधर्म, आप अतीव श्रद्धा से समाचार जानना चाहते हैं, तो मैं भी आप को भक्तिपूर्वक कथन करता हूँ। हे पांडव, सुतीक्ष्ण ने प्रभु श्रीरामचंद्र को अगस्त्य मार्ग दिखाया और श्रीरामचंद्र सुतीक्ष्ण को वंदन करके मार्गस्थ हुए।''

''उन्हें मार्ग में कई प्रकार के जंगल, पाषाणपर्वत, सरोवर, नदियाँ मिलीं। इसे पार करते हुए वे आगे बढे। उन्होंने देखा कि, महर्षि अगस्त्य के भ्रात्यों का आश्रम आ गया है। फल-पुष्पों से लदे वृक्ष, हवा की गंध, जंगल में सुखे काष्ठ के ढेर, कटी हुई घास, सभी मानो आश्रम निकट आने का संकेत दे रहे थे। जंगल

के बीच कृष्ण मेघों की भांति धुएँ के बादल उपर उठते थे। मंदिर की ओर द्विज स्नान कर फलपुष्पों का भोग बना रहे थे। इसमें कोई संदेह नहीं था कि सुतीक्ष्ण ने जो बताया, यह वही अगस्त्य भ्रात्योंका ही आश्रम था।''

महर्षि अगस्त्य के भ्रात्य ने लोकहितार्थ बुद्धि से अपने बल पर, मृत्यु को नियंत्रित कर, यह दक्षिण दिशा आश्रय करने योग्य है, यह मान कर रचना की है। यहीं पर पहले वातापि और इल्वल नामक दैत्य एक साथ रहते थे। अगस्त्यों ने उनका विनाश किया। रामलक्ष्मण का संवाद चल रहा था कि, अगस्त्य भ्रात्यों का यह आश्रम, सरोवर और उपवन से शोभायमान प्रतीत हो रहा है। प्रभु रामचंद्र ने देखा कि, सूर्यदेव अस्ताचल की ओर बढ रहे है। संध्या की स्वर्णिम आभा दृष्टिगोचर हो रही थी। प्रभु रामचंद्र ने अस्ताचल के सूर्यदेव को वंदन करके यथाविधि पश्चिम संध्या की उपासना करके आश्रम में प्रवेश किया और ऋषियों का अभिवादन किया। ऋषियों द्वारा उनका यथोचित स्वागत करने के पश्चात प्रभु रामचंद्र ने फलाहार करके वहाँ पर एक रात्रि के लिए विश्राम किया और प्रातः होते ही अगस्त्य भ्रात्यों से विदा ली।

''हे भगवन्, मैं आपको वंदन करता हूँ। रात्रि में मुझे शांत और सुख की निद्रा का अनुभव हुआ। अब मैं आप के गुरू एवम् ज्येष्ठ भ्राता से मिलने जा रहा हूँ। आपका आशीर्वाद बना रहें। श्रीराम ने उनसे विदा ली।''

''ठीक है। उन्होंने अगस्त्य के आश्रम का मार्ग दिखाया। प्रभु रामचंद्र के साथ कुछ दूरी पर चलने के पश्चात उन्होंने प्रभु से अनुज्ञा माँगी और वे रुक गए।''

''अगस्त्य भ्रात्यों के द्वारा दर्शाए गए मार्ग से उन्होंने प्रस्थान किया। प्रभु श्रीराम ने नीवार, कटहल, साल, सादडा, अशोक, धावडा, चिरबिल्व, मोह, बेल, शिसव जैसे सैंकडो जंगली वृक्ष खिलते हुए एवम् शीर्ष पर पुष्प और लताओं से सुशोभित होते हुए देखें। मत्तपक्षियों के झुंड से जंगल भर गया था।''

''हे लक्ष्मण, घने उपवन और बहता हुआ जल, बिना किसी भय से विहार करने वाले वानर, हिरण, पक्षी, यहाँ तक कि मोर भी, संभवतः यहीं कहीं पास में अगस्त्य मान्दार्य का आश्रम होना चाहिए।''

''भ्राताश्री, वह देखिए, दूर तक फैलै केतकी के बन। मत्त केवडा से वातावरण सुगंधित हुआ है। शेषनाग का वास्तव्य भी यहाँ अवश्य होगा।''

‘‘हे लक्ष्मण, कलकल करता जलस्त्रोत वनस्थली के अंचल में कन-कतार की भांति दमक रहा है। इस बहते हुए जल की ध्वनि आकाश में गुँज रही है। आकाश के रंग में रंगा हुआ जल प्राशन करने की इच्छा मुझे हो रही है।’’

‘‘हे सीते, संभवतः यहीं अमृतवाहिनी प्रवरा है। वहाँ देखो बरगद के घने वृक्ष, दूसरी ओर पिप्पल के वृक्ष। आम्रवृक्ष भी कितने हैं। हे वैदेही, नदी के पार संभवतः शिवालय है। कितना मनोहारी वातावरण है यहाँपर!’’

‘‘हाँ नाथ’

‘‘हे सीते, चलो हम नदी पार करके शिवालय जाते हैं।’’

‘‘क्या अगस्त्य ग्राम घने वृक्षों से घिरा गांव तो नहीं?’’

‘‘अगस्त्य द्वारा निर्मित गांव।’’ लक्ष्मण ने कहा।

‘‘वे तीनों जलप्राशन हेतु नदी में प्रवेश कर गए। शीतल जल के स्पर्श ने उनके शरीर को रोमांचित कर दिया।’’

‘‘हे प्रभु, यह जल वास्तव में अमृत है। बाल्यावस्था में प्रत्यक्ष शिवजी ने मुझे अमृत प्राशनार्थ दिया था। यह जल भी वहाँ से ही होना चाहिए। क्यों कि इसके जलमाधुर्य में तनिक भी अंतर नही।’’

‘‘हे वैदेही, यह अमृतवाहिनी ही है। यही कारण है कि इसे ‘गोदास्नानम और प्रवरापानम’ कहा जाता है।’’

‘‘किन्तु यह बहता अमृत पृथ्वी पर आया कहाँ से?’’

‘‘हे गिरिजे, समुद्रमंथन के पश्चात अमृतकलश का पूजन इसी स्थान पर वाल्मिकी आश्रम के सान्निध्य में ही हुआ। इसी क्षेत्र के एक पर्वत में समुद्र से निर्माण हुए रत्न भी छिपाए गए हैं। रत्नगढ़ नाम से वह पर्वत ख्यात हुआ। भगवान विष्णु की अनुमति से कुबेर ने यह कार्य किया। तद्नंतर इसी रत्नगढ़ पर शिवपार्वती के सम्मानार्थ अमृत कलश की पूजा की गई तो शिवपार्वती ने कहा था कि यहाँ से अमृत का अविरल प्रवाह होगा। माता पार्वती और शिव इस तीर्थ में नित्य स्नान करेंगे और हलाहल के दाह को शांत करते जाएंगे। इस अमृत जल की रक्षा शेषनाग और शिवपुत्र अगस्त्य करेंगे। शिवपार्वती के आशीर्वाद से अमृततीर्थ रत्नगढ़ से निरंतर उमडकर बह रहा है। यह तीर्थ शिव जी ने अपने मुख में धारण कर के पुनःश्च प्रसाद के रूप में दिया है। रत्नगढ़ की तलहटी में रत्नेश्वर ने स्वयंभू रूप धारण कर यह लीला रची। उन्होंने अपने गण के नाग राजाओं

को तीर्थ की रक्षा करने का आदेश दिया। शिवजी की इस लीला के कारण इस स्थान पर आंशिक रूप से निरंतर माता पार्वती का वास होता है। कळसाई अथवा कळसुबाई नाम से प्रख्यात वह अनिमेष नेत्रों से रत्नेश्वर को निहार रही हैं। भगवान वाल्मिकी को इस नदी का नित्य उपयोग हो, इस अपेक्षा से शिव जी ने अमृतवाहिनी को कालबद्ध बहनेवाली नदी से संबोधित किया है। इसलिए प्रवरा निरंतर बह रही है। ब्रह्मावतार वाल्मिकी को तपस्या के लिए यह रमणीय स्थान प्राप्त हुआ। यहाँ नित्य शिवपार्वती का वास होता है। यही कारण है कि, भगवान शिवपुत्र और सूर्यतेजस्वी दयाघन अगस्त्यों ने तपस्या के लिए यही स्थान चुना है। यहाँ पर प्रत्यक्ष शिव जी सिद्धेश्वर स्वरूप में तपस्वियों को अथर्वण का ज्ञान देते हैं। अगस्त्य स्वयं एक महान अथर्वण हैं, हे सीते, इस अतिपूज्य स्थान पर हम आए हैं। अमृत पान करने के पश्चात हम सिद्धेश्वर के दर्शन करते हैं और तत्पश्चात हम अगस्त्य आश्रम जाएंगे।''

लक्ष्मण कानों में प्राण लिए हुए प्रभु की वाणी श्रवण कर रहे थे। सीता के हृदय में एक अनोखी कृतार्थ भावना ने प्रवेश किया। न जाने क्यों उसे, अपने पीहर आने की संवेदना हो रही थी। उसे लगा कि, अपने निवास हेतु यही स्थान उचित होगा।

''तीनों सिद्धेश्वर समीप आए। उन्होंने अपने अंजुली में जल लेकर सिद्धेश्वर का स्नान कराया और उन्हें वंदन किया।''

''हे रामचंद्र, तुम्हारा कल्याण हो।''

प्रभु रामचंद्र ने त्रिवार वंदन किया और आशीर्वाद स्वीकारा। दर्शन लेकर तीनों आश्रम की और गए। जाते समय मार्ग में प्रभु रामचंद्र भक्तिभाव से बोल रहे थे।

''अपने कर्मों से जनसामान्यों मे अगस्त्य नाम से जो विख्यात हुए उन अगस्त्य ऋषि का यह आश्रम है। यह आश्रम श्रम संहारक है। आश्रम में हवन हुआ था। हवन की अग्नि से जों धुआं निकला था उस धुएंने आश्रम के परिसर को व्याप्त किया था। वृक्षों के छाल, चारों ओर लिपटे हुए थे। हिरणों के झुंड शांत थे। चहचहाते पक्षी आश्रम में मुक्त विहार कर रहे थे। जिसने लोककल्याणार्थ अपने तपोबल से मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर ली है, और पुण्यकर्म करके दक्षिण दिशा को समृद्ध बनाया है, जिसके प्रभावशाली व्यक्तित्व से और भय से राक्षसों ने

भी दक्षिणी क्षेत्र को अपने उपयोग में नही लाया था, वहाँ पर अगस्त्य ने अपना आश्रम निर्माण करके उचित कार्य किया है। पुण्यकर्मा अगस्त्य मुनि ने दक्षिण में स्वामित्व प्राप्त किया। तब से दक्षिण के दैत्यों, राक्षसों ने अपनी बुरी प्रवृत्तियों को त्याग दिया और सात्विकता में आ गए। दक्षिण दिशा, भगवान अगस्त्य के सान्निध्य से मंगलमयी हुई। लोकविख्यात कर्म करने वाले दीर्घायु अगस्त्यों का यह शोभिवंत आश्रम, जहाँ अहिंसक पशुओं का वास है, उसे देख कर मन प्रसन्न होता है। अगस्त्य जन सामान्यों के लिए पूजनीय संत पुरुष हैं। सज्जनों के हितार्थ वे निरंतर कार्यरत रहते हैं। यदि हम उनसे मिलते हैं तो वे हमें भी इसी कार्य में लगाएंगे। हम उनके पास जाकर, उनसे प्रार्थना करेंगे, ताकि हमारा वनवास काल सार्थ हो जाएं। देवता, गंधर्व, सिद्ध, श्रेष्ठ ऋषिमुनि नित्य अगस्त्य की सेवा में रहते है। जिसकी वाणी असह्य हो, जो क्रूर, कपटी, निर्दयी, पापवृत्ति का हो, ऐसे किसी भी व्यक्ति का यहाँ जीवित रहना संभव नहीं। अगस्त्य मुनि के प्रभाव से देवता, यक्ष, नाग और पक्षी, धर्म की उपासना करने हेतु आहार को विनियमित करके यहाँ रहते हैं। श्रेष्ठ महात्मा, सिद्धपुरुष और महर्षि अपने पुराने शरीर को त्याग कर नया शरीर धारण करके महर्षि अगस्त्य की आयुर्विद्या से पावन होकर सूर्यतेजस्वी अर्थात दीप्तिमान हो जाते हैं। आश्रम में प्राणिमात्रों को उनकी आराधना से देवता प्रसन्न होकर उन्हें वैभव, ऐश्वर्य प्रदान करते हैं।

''हे लक्ष्मण, हम अब आश्रम में आएं हैं। तुम भीतर जाकर ऋषियों को निवेदन कर दें, कि दाशरथी राम, सीता समेत यहाँ पर आए है।'' श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा।

लक्ष्मण मे आश्रम के परिसर में प्रवेश किया। अगस्त्य के एक शिष्य को रोक कर कहा,

''दशरथ राजा के ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम अपनी भार्या सीता और भ्राता लक्ष्मण के साथ अगस्त्य मुनि के दर्शन लेने हेतु आए हैं। हम सब पिता की आज्ञा से घोर वन में भटक रहे हैं। हमें भगवान अगस्त्य के दर्शन लेना हैं। आप कृपा करके उन्हें सूचित करें।'' लक्ष्मण की बात सुनकर वह तपोधन शिष्य 'ठीक है' कहकर अग्निशाला में गया। अत्यंत तेजस्वी मुनि के सम्मुख विनम्रता से हाथ जोडकर उसने निवेदन किया कि, 'श्रीराम अपनी भार्या तथा भ्राता के साथ हमारे आश्रम में आए हैं और आपका दर्शन लेना चाहते हैं, अतः क्या करना चाहिए,

कृपया आदेश दें।'

जैसे ही अपने शिष्य से अगस्त्य ने सुना कि, राम, वैदेही और लक्ष्मण के साथ आए है, तो उन्होंने कहा, ''कई दिनों से मैं श्रीराम से मिलना चाहता था। वे स्वयं यहाँ आए हैं, मैं अति प्रसन्न हूँ। जाओ और श्रीराम को उनकी भार्या एवम् भ्राता लक्ष्मण के साथ सम्मानपूर्वक ले आओ। वास्तव में उन्हे तुरंत ले आना चाहिए था।''

धर्मज्ञ, महात्मा अगस्त्य का आदेश पाते ही शिष्य दौडता हुआ बाहर आया और उसने लक्ष्मण से कहा, 'मुनिवर ने आपको बुलाया हैं।' लक्ष्मण ने शिष्य को आश्रम के प्रांगण में प्रतीक्षा कर रहे भगवान श्रीरामचंद्र और सीतामाई से मिलवाया। शिष्य ने उन्हें अत्यंत विनम्रता से अगस्त्य मुनि ने जो कहा, वह बताया। वह तीनों को भीतर ले गया और उनका यथोचित सम्मान किया। राम, लक्ष्मण और सीता के साथ आश्रम में आएं। बहुत सारे हिरणों के साथ उस प्रशांत आश्रम को देख कर वे विस्मित हुए। वहाँ पर उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र, सूर्य, चंद्रमा, शिव, कुबेर जैसे स्थान मिले। धाता, विधाता, वायु और वरुण के साथ साथ अष्टवसु, नागराज, गरुडराज, कार्तिकेय, धर्म जैसे स्थान पाए गए। अगस्त्य मुनि स्वयं, शिष्यों के साथ श्रीराम, आश्रम पहुँच ने तक उनका स्वागत करते बाहर आएँ। देदीप्यमान अगस्त्य मुनि को देख कर कांतिसंपन्न श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा,

''हे लक्ष्मण, अगस्त्य ऋषि बाहर आ रहे हैं। उनकी भव्यता से वे मानो तपोनिधान ही प्रतीत होते है।''

सूर्य की भांति तेजस्वी महर्षि अगस्त्य को देख कर श्रीराम ने आगे बढकर उनके चरण छुएं। हाथ जोडकर तीनों ने प्रणाम किया। अगस्त्य ने श्रीराम को प्रेमालिंगन दिया और उनका वर्तमान, हालचाल पूछते समय वे आनंदविभोर होकर अपने आंसू रोक नहीं पा रहे थे। अगस्त्य ने स्वयं वैदेही और लक्ष्मण के साथ श्रीराम को आसन पर बैठकर उनकी पाद्यपूजा की।

''हे प्रभो, आप का मानव होना ही आप की श्रेष्ठता हैं। वस्तुतः आप स्वयं साक्षात कैवल्य हैं। यह सृष्टि का रूप आप ही का है। आप का स्वागत हैं। हे वैदेही, तुम साक्षात चैतन्य हो। इस विश्व की उर्जा हो। आप दोनों के लिए और आप के लौकिक रक्षणार्थ सदैव तत्पर रहने वाले शेषनाग अर्थात लक्ष्मण आप

को मेरा त्रिवार वंदन है।''

तदूनंतर अगस्त्यों ने वानप्रस्थाश्रमानुसार श्रीराम का आतिथ्य किया। भोजनोत्तर अगस्त्य ने श्रीराम से कहा, ''हे श्रीराम, आपने हमारा आतिथ्य स्वीकार कर लिया, हम धन्य हुए। धर्माचरण करने वाला महारथी राजा प्रजा के लिए पूजनीय और सम्मानपात्र होता है। आप मेरे प्रिय अतिथि के रूप में यहाँ आएं हैं, अतः इन फलों और फूलों का स्वीकार करके हमें कृतार्थ करें। हे श्रीराम, भगवान शिव जी ने आप को हमारे कार्य को आगे बढाने के लिए प्रेरित किया हैं। इसलिए हमें अपनी शक्तियाँ आप के कार्यार्थ आप को सौंप देनी चाहिएं। इसमें हे श्रीराम, यह विभिन्न रत्नों से मंडित, दिव्य महान धनुष, पुरुष व्याघ्रा, वैष्णव धनुष है। इसे स्वयं विश्वकर्मा ने बनाया है। जो कभी व्यर्थ नहीं जाता, ऐसा यह सूर्यतेजस्वी सर्वोत्कृष्ट बाण मुझे महेन्द्र से प्राप्त हुआ। प्रत्यक्ष ब्रह्मदेव ने इसे महेन्द्र को दिया था और ये दो भाथा मैं तुम्हे प्रदान करता हूँ। ये पूर्णतः अक्षय्य हैं, अविनाशी हैं और प्रज्वलित अग्नि के समान जगमगाते हैं। साथ ही ये सुवर्णमढित महाप्रतापी खड्ग है। ये सभी आयुध मैंने लोककल्याणार्थ दुष्टों का विनाश करने के लिए उपयोग में लाए हैं। हे श्रीराम, इस धनुष से भगवान विष्णु ने युद्ध में महाअसुरों का संहार करके देवताओं के राज्यलक्ष्मी की रक्षा की थी, उसी प्रकार आप भी अपने राज्यलक्ष्मी की रक्षा करें। हे मान्यवर, यह धनुष, ये दो भाथा, यह शर और यह खड्ग, देवेन्द्र जिस प्रकार वज्र का स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार आप भी इन आयुधों का स्वीकार करें और मेरे कार्य की परंपरा को आगे बढाएँ।'' अगस्त्य मुनि ने श्रेष्ठ आयुध प्रभु श्रीराम को प्रदान किए।

''हे महर्षि अगस्त्ये, आपके मार्गदर्शन के बिना एक पग भी आगे बढाना मेरे लिए संभव नहीं। इसलिए भविष्य में मुझे किस प्रकार मार्गक्रमण करना चाहिए, इसका मार्गदर्शन करें।''

''हे श्रीराम, गोदावरी तट पर पंचवटी स्थान है। वहाँ आप आपका निवास कुटियां में वननिवास की भाँति करें। हे रामचंद्र, यह क्षेत्र अक्षय वटवृक्षों से युक्त है और आपके निवास के लिए वह अत्यधिक पावन सिद्ध होगा। क्षेत्र दंडकारण्य का है। इस दंडकारण्य का एक भाग तपोवन हैं। जंबुद्वीप के सभी तपस्वियों और ऋषियों को तपोवन में कुछ समय बिताने की आवश्यकता है। इसके बिना उनकी तपस्या सफल नहीं होती। अपनी कुटिया उस तपोवन के निकट रहने दें।''

अगस्त्य मुनि से परामर्श करने के पश्चात, राम पंचवटी में रहकर अपना शेष समय वनवास में बिताने लगे। उन्होंने समय-समय पर अगस्त्यों से मिलने और उनसे परामर्श लेने का उपक्रम प्रचलन में रखा, तब उन्हें जटायु, मारिच, सुंद, ताटका, कुशकन्या, वायु आदि से संबंधित अगस्त्यों के शाप-उःशाप की कथाएं श्रवण करने को मिली। हनुमान, रावण, बिभीषण इनके संबंध में उनका कार्य ज्ञात हुआ। अगस्त्य मुनि ने युधिष्ठिर को जानकारी दी, तब युधिष्ठिर बडी उत्सुकता से पूछने लगे।

''हे अगस्त्ये, इन कथाओं को कृपया विस्तारसे कथन करें।'' तब अगस्त्य मुनि ने कथन आरंभ किया।

''हे पांडवों, अगस्त्य मुनि ने सुंद को अपने बाणों से मार डाला था। तब मारिच ने प्रतिशोध की भावना से अगस्त्य मुनि को मारने का प्रयास किया। अगस्त्य मुनि ने तब उसे श्राप दिया कि वह राक्षस बन जाएगा।''

''परंतु हे अगस्त्य मुनि, सुंद को अगस्त्य क्यों मारना चाहते थे? और उसके लिए मारिच क्यों क्रोधित हुए?''

''हे पांडवों, सुंद और मारिच, वास्तव में यक्ष योनि में शिवगण थें। उन्हें शिवभक्ति प्रिय थी। उन्हें गर्व था कि, कोई भी भक्त उनसे श्रेष्ठ नहीं हो सकता। यज्ञयाग सत्रों में सहभागी साधकों, पुरोहितों से कई यक्ष प्रश्न पूछकर यज्ञ में बाधा डालने में उसे बडा आनंद मिलता था, वह उसकी रुचि बन गई थी। आगे चलकर सुंद और अधिक उन्मत्त हुआ था।''

''सुकेतु नाम का एक बडा राक्षस था। यद्यपि वह बलशाली था, किन्तु उसकी कोई संतान नहीं थी। इसलिए उस पुण्यात्मा ने घोर तपस्या की। ब्रह्मा अति प्रसन्न हुए। परंतु उन्होंने सुकेतु को पुत्र देने के स्थान पर एक अतिसुंदर कन्या दी। ताटका उसका नाम था। जब उसने यौवन में प्रवेश किया तो वह अति सुंदर, किसी अप्सरा जैसी दिखने लगी। जंभपुत्र सुंद उस पर आसक्त हुआ। सुकेतु ने ताटका का विवाह सुंद से करवा दिया। सुंद अधिक बलशाली बना। उसने यज्ञसंस्था में अत्यधिक विक्षेप करना आरंभ किया।''

''हे सुंद, तुम यक्ष योनि में होते हुए भी राक्षसी व्यवहार कर रहे हो। यक्ष अमर होते हुए भी मेरे ब्रह्मतेजस्वी बाण से तुम्हारा वध होगा, अतः इन अनुचित कर्मों को बंद करो।'' इस शापवाणी को सुनकर सुंद पत्नी ताटका ने सुंद को

समझाया। तथापि कुछ समय पश्चात, सुंद ने पुनश्च वही कर्म आरंभ किए। इतना ही नहीं, अगस्त्य ऋषि के शस्त्रों की निर्भर्स्तना की। 'ऋषियों ने केवल यज्ञयाग कर्म करने चाहिए, युद्ध करना उनका कर्म नही' सुंद का यह गर्वप्रद भाषण जब अगस्त्य मुनि ने सुना, तो वे अत्यंत क्रोधित हुए। उन्होंने ब्रह्मतेजस्वी बाण का प्रयोग किया और सुंद का वध किया। जंभपुत्र सुंद की पत्नी ताटका को जब यह समाचार मिला कि, उसके पति को मार डाला गया है, तो वह क्रोधित होकर अपने पुत्र मारिच के साथ अगस्त्य मुनि को निगलने के लिए दौड पडी। यह देखकर अगस्त्यों ने उन दोनों को श्राप दिया, 'तुम भयानक राक्षस होंगे, तुम्हारा यक्षतेज नष्ट होगा।' तत्पश्चात ताटका और मारिच दोनों भी रावण की परंपरा मे राक्षस बन गए। अगस्त्य मुनि के शाप से अघोर राक्षसरूप प्राप्त होते ही, उन्हें पछतावा हुआ और दोनो अत्यंत विनम्रता से अगस्त्यों की शरण में आएं। तब तक अगस्त्य मुनि का क्रोध शांत हुआ था। उन्होंने कहा, 'हे यक्ष मातापुत्रों, तुम्हारे दुराचार और अहंकार से तुम्हे जो शाप मिला है वह अब सत्य सिद्ध होकर ही रहेगा, परंतु जब कि तुमने अहंकार को त्याग दिया है, तो मैं तुम्हे उःशाप देता हूँ। जैसे ही तुम भगवान प्रभु रामचंद्र के संपर्क में आएंगे, तुम दोनों का उद्धार होगा। तब तक, अर्थात सैंकडो वर्षों तक तुम्हें विष्णुअवतार प्रभु रामचंद्र की प्रतीक्षा करनी होगी। रावण के कूटकर्मों मे तुम उसका साथ दोगे, जिसके कारण तुम प्रभु रामचंद्र को मिलोगे और प्रभुपाद से तुम्हें सद्‌गति प्राप्त होगी।' महर्षि अगस्त्य ने दिए शाप और उःशाप भी रामचरित्र में सत्य सिद्ध हुए। अतः हे युधिष्ठिर, अगस्त्य त्रिकालज्ञ और शापादपि, शरादपि तपस्वी मुनि हैं। उनकी शरण में जाओ, तुम्हारा भी उद्धार होगा।'' कुलपति अगस्त्य ने कहा।

''हे कुलपते, अगस्त्ये, जटायु और हनुमान को महर्षि अगस्त्य ने क्या उपदेश दिया और प्रभु रामचंद्र को उनकी कैसे सहायता मिली यह विस्तार से हमें बताएं।'' धर्मराज का हठ देखकर कुलपति अगस्त्यों ने पांडवों को पुनश्च अगस्त्यकथा कथन करना प्रारंभ किया।

''हे पांडवो, इस दंडकारण्य में जटायु नामक द्विजयोनि के पृथ्वीपति का राज्य है। यह जटायु अयोध्यापति दशरथ का सन्मित्र था। अगस्त्य ने ही जटायु को अयोध्यानिवासी राम के वनवास की भविष्यवाणी सुनाई थी। इसलिए, द्विजगण चाहते थे कि, अगस्त्य प्रभु रामचंद्र के लिए दंडकारण्य में उनके निवास

का स्थान ढूँढे। सीताहरण के समय जटायु प्रभु रामचंद्र के लिए सहायक सिद्ध होंगे, किन्तु अगस्त्य गोत्रज रावण द्वारा ही जटायु विवश होकर अपने प्राण त्याग देंगे। यह भविष्यवेधक जानकारी भी अगस्त्य ने ही जटायु को दी थी। अगस्त्य से परामर्श करने के पश्चात राम पंचवटी की ओर जाते समय मार्ग में जटायु ने राम का मार्ग अवरुद्ध कर दिया और उनसे पूछा कि, क्या उन्होंने अगस्त्य से परामर्श किया हैं या नहीं। पितासमान जटायु ने उन्हें सतर्क रहने के लिए सूचित किया। जटायु, रामचंद्र से कहते हैं कि, वे उनके पिताश्री राजा दशरथ के घनिष्ठ मित्र हैं। उनकी कोई संतान नहीं। गोत्रज प्रचुर मात्रा में है, तथापि उनके स्वभावनुसार वे चंचल हैं। जब जटायु का मृत्युसमय समीप था, तो उन्होंने श्रीराम से याचना की कि, वे उन्हें अमृतपान देकर सद्गती प्रदान करें। अगस्त्य ने जटायु और श्रीराम की भेंट करवा दी थी, इसलिए जटायु श्रीराम की सहायता कर सके। सीताहरण के समय श्रीराम ने मरणोन्मुख जटायु को अगस्त्य द्वारा प्राप्त अद्भुत बाण से तीर्थ निष्पन्न करके अमृतपान करवाया। यही बाण तब से 'रामबाण' नाम से विख्यात हुआ।'' एक मार्गदर्शक के रूप में एवम् स्वगोत्रजों को भी दंड देने की मान्दार्य अगस्त्यों की भूमिका पांडवों के लिए बहुत प्रेरणादायक थी।

''हे अगस्त्ये, जटायुसंबंधी जानकारी प्राप्त करके हम धन्य हुए। जटायु की रावण से युद्ध की कथा हमने जटायु पर्वत से सुनी थी। उसमें अगस्त्य के मुख्य भूमिका ने हमारे मन में अगस्त्य के प्रति जो पूज्य भाव जाग उठा है, उससे हमारा हृदय भर गया है, तो हमें विस्तार से बताएं कि, अगस्त्यों ने किसप्रकार हनुमान को प्रभु रामचंद्र से मिलवाया।'' धर्मराज ने कहा।

''हे पांडवों, हनुमान की कथा एक अतिपावन कथा है। जो कोई भी इस कथा को श्रवण करता है, वह बलशाली, सदाचारी और कर्मनिष्ठ सिद्ध होता है। उसके मार्ग में आनेवाली सभी बाधाएं दूर हो जाती है।'' अगस्त्यों ने प्रास्तविक किया।

''हे अगस्त्ये, हनुमान कथा श्रवण करने के लिए हम अधीर हुए हैं, आप कथन करने की कृपा करें।'' युधिष्ठिर ने प्रार्थना की।

''हे पांडवों, अगस्त्य कथा निवेदन करना तो हमारा धर्म है, और इससे हमें प्रसन्नता होती हैं। तो मैं कथा आरंभ करता हूँ।''

''हे पांडवों, जो हनुमान की इस कथा का श्रवण करते है, उन्हें अगस्त्य

मुनि के आशीर्वाद से पुत्रप्राप्ति होती हैं। अंजना और अद्रिका इन दो अप्सराओं को देवेन्द्र की सूचनानुसार वानर जनजाति में जन्म लेना पडा। अति रुपसुंदर ऐसे दो वानरीयों का वानरप्रमुख केसरी से विवाह हुआ। केसरी वायुअवतार अर्थात मरुत अवतार थे। एक समय जब वे अप्सराएं थी, तो वे दोनों अगस्त्य आश्रम में आ गई। उन्होंने पुत्रप्राप्ति के लिए अगस्त्य की पूजा की। तब प्रसन्न होकर अगस्त्य ने कहा, 'हे अप्सराओं, देवेन्द्र की आज्ञा के बिना तुम्हें पुत्रप्राप्ति नहीं हो सकती। जब वे अनुमति देंगे तभी संभव हो पाएगा। किन्तु इसके लिए तुम दोनों को मृत्युलोक जाना होगा। मृत्युलोक में तुम दोनों को वानर योनि में जन्म लेना होगा। वानरराज केसरी से तुम्हारा विवाह होगा, तथापि केसरी से तुम्हारी संतान नहीं होगी। केसरी की दो वृत्तियों से तुम्हे दो भिन्न शक्तियों द्वारा पुत्रप्राप्ति होगी परंतु तुम्हारे पुत्र केसरीनंदन नाम से ही विख्यात होंगे। अयोध्यापति दशरथ को प्राप्त पायस प्रसाद के अंश से वायु (पवन) के द्वारा अंजनी पुत्र को जन्म देगी, उसका नाम हनुमान होगा। उन्हें दशरथपुत्र श्रीराम के भ्राता और एक असीम भक्त के रूप में जाना जाएगा। निऋति नामक एक पिशाच्च प्रमुख से आद्रिका का एक पुत्र होगा और उसका नाम आर्द्रा होगा। वह भी पिशाच्च समूह का राजा होकर शिवभक्ति करेगा। फिर भी इन दोनों को केसरीपुत्र के नाम से जाना जाएगा। आद्र भी प्रभु रामचंद्र की सहायता करेंगे।' अगस्त्यों ने दिए वरदान वास्तव में सत्य सिद्ध हुए। रामायणकाल में अंजली और आद्रिका इन दोनों को केसरीनंदन प्राप्त हुए। अद्‌भुत शक्तियों से निर्माण हुए इन दोनों पुत्रों ने रावण युद्ध में श्रीराम की सहायता की और अगस्त्य की कीर्ति बढाई। हे पांडवो, क्या आप जानते है कि, अगस्त्य ने श्रीराम के लिए ऐसी कई शक्तियों का निर्माण किया है?'' कुलपति अगस्त्य ने कहा।

''हे कुलपते, आप यदि हमें इस कथा से भी अवगत कराएंगे तो हम धन्य होंगे।''

''हे पांडवों, धनुर्विद्या के लिए अगस्त्य विख्यात थे, यह तो आपको ज्ञात होगा ही। आपके गुरू द्रोण के अगस्त्य परमगुरू थे। क्यों कि ऋषिस्वामी अग्निवेश के अगस्त्य गुरू थे। अगस्त्य ने अग्निवेश को अद्‌भुत धनुर्विद्या सिखाई थी। वही विद्या अगस्त्य परंपरा में अग्निवेश ने अपने प्रिय शिष्य द्रोणाचार्य को सिखाई थी। द्रोणाचार्य ने अपने गुरू की आज्ञा से यह धनुर्विद्या न केवल कौरवो-पांडवों को

सिखाई, अपितु अश्वत्थामा, एकलव्य और कर्ण को भी अगस्त्यों के आशीर्वाद से अद्‌भुत प्रकार से सिखाई। अर्थात इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक प्रकार से अगस्त्य ही आपके धनुर्विद्या में परात्पर गुरू हैं।''

यह सुनकर पांडव कृतार्थ हुए। उन्होंने अगस्त्य मुनि के आश्रम जाने, महर्षि अगस्त्य मुनि के दर्शन करके उनसे उपदेश लेने का निश्चय किया।

''हे अगस्त्यों, महर्षि अगस्त्य के दर्शन करने की हमारी तीव्र इच्छा हैं। हमारी इच्छापूर्ति करें।'' धर्मराज ने अनुरोध किया।

''हे पांडवों, उचित समय पर, आपको उनके दर्शन होने ही वाले हैं। मुनि अगस्त्य ने भी अपने दक्षिण के विभिन्न आश्रमों के शिष्यों को ऐसे संकेत दिए हैं।''

''हे अगस्त्यों, क्या अमृतवाहिनी प्रवरा तट पर अगस्त्य मुनि का नित्यवास होता है?''

''हे पांडवों, हमें इस रहस्य को प्रकट करने की आज्ञा नहीं हैं; तथापि अगस्त्य द्वारा दिए गए संकेतानुसार पांडवों को यह रहस्य उजागर करने में कोई आपत्ति नहीं हैं। अमृतवाहिनी तट पर अगस्त्य का नित्य वास होता हैं। तथापि दक्षिण के विभिन्न आश्रमों मे वे दिन का अधिकांश समय आश्रमों को प्रेरित करने में बिताते है। हमें भी वे मनोवेग से प्रत्यक्ष भेंट देकर अनुसंधान, मनन-चिंतन लोककल्याण कार्य हेतु आज्ञा और सूचना देते हैं। उन्हीं की प्रेरणा और आज्ञा से विभिन्न आश्रमों मे सत्रों का क्रम चल रहा हैं। अतः उचित समय आने पर आप अवश्य उनसे मिल पाएंगे, ऐसा मान्दार्यों ने सूचित किया है। यदि इसके लिए आप उत्कंठित है, फिर भी अधीर मत होईएगा।''

अगस्त्य कुलपति का संदेश श्रवण करके पांडव कुछ क्षण के लिए मौन हुए, किन्तु अगस्त्यकथा श्रवण करने की उनके मन की जिज्ञासा कम नहीं हुई। उन्होंने पुनश्च प्रश्न किया।

''हे अगस्त्यों, और किन-किन महानुभावों को अगस्त्ये ने मार्गदर्शन किया? कृपया बताइए।''

''हे पांडवों, जमदग्निपुत्र परशुराम, साक्षात प्रकृति और पुरुष के पुत्र, प्रत्यक्ष विष्णु के अवतार, उन्होंने अहंकारी क्षत्रियों से सौ युद्ध किए, परंपरा में जकडे जनसामान्यों के कल्याणार्थ क्षत्रियों का नाश करके लोकजीवन सुचारू करने का

प्रयास किया। तथापि यह कार्य करते समय लहू की नदियाँ बहने लगी। मानवी संहार से व्यथित परशुराम पश्चातापदग्ध हुए। उन्होंने इस हिंसा का प्रायश्चित्त करने का निर्णय लिया। तब वे भगवान अगस्त्यों के आश्रम में आएं। लोककल्याणकारी शांत, समन्वय बुद्धि और मानवी एवम् दैवी प्रवृत्तियों की निरंतर रक्षा करनेवाले अगस्त्य के पास आकर उन्होंने कहा, 'हे भगवन अगस्त्यें, मैं आपकी शरण में हूँ।' लोककल्याण एवम् सृष्टि की रक्षा करने के लिए ही आपका जन्म हुआ है। मैंने यही कार्य क्रोधायमान होकर हिंसा के मार्ग से किया है। किन्तु इसके लिए अब मुझे पश्चाताप होता है। मुझे प्रायश्चित्त करना है।''

''परशुराम की यह पश्चातापदग्ध वाणी सुनकर मान मान्य मान्दार्य अगस्त्य भावुक हुए। उन्होंने परशुराम को सांत्वना दी, उनके मन के अपराध भाव को मिटा दिया और कहा, 'हे लोकहितैषी भगवन् परशुराम, आपने जो किया वह यथार्थ ही हैं। तथापि आपके मन में संहार के कारण जो पीडा उत्पन्न हुई, वह भी स्वाभाविक है। प्रत्येक सदाचारी, कोमल, उदार, सहृदयी व्यक्ति के लिए यह एक दिव्य उपहार हैं। मैं आपको इस समस्या का समाधान बताऊंगा। आपको सोमयाग सत्र करके शांतियज्ञ करना चाहिए और भूमि, गाय, धन का दान ब्राह्मणों, गरीबों, कृषिवलों को करना चाहिए। आश्रमों को प्रचुर सहायता करें, जिससे ज्ञान, वैराग्य एवम् लोककल्याण का उद्देश्य सफल होगा।''

''हे अलौकिक परात्पर गुरो, आप भार्गवों के भी गुरू हैं। अतः आपकी आज्ञा मेरे लिए परात्पर गुरू की ही आज्ञा है। मैं इसका आदेशानुसार पालन करूंगा।''

''इसी प्रकार परशुराम ने विधिवत सोमयागपूर्वक शांतियज्ञ करके यथोचित दानधर्म किया और मन की शांति प्राप्त की और अगस्त्य परंपरा में अपने आपको झोंक दिया।''

परशुराम के साथ निर्माण हुए अगस्त्यों के संबंध की जानकारी देने के पश्चात अगस्त्यआश्रम कुलपति ने आगे कहा, ''हे धर्मराज, दक्षिण दिशा यमधर्म से संबंधित है। विलय की है। यमधर्म को अहंकार, आसक्ति, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि दुष्ट प्रवृत्तियों का विलय अपेक्षित हैं। इसी से नरक स्थान की निष्पत्ति हुई है। हे सत्यनिष्ठ, मृत्युलोक के जिन जीवों से इन दुष्ट प्रवृत्तियों का नाश नहीं होता, उन्हें शिवतत्व के आदेश से यमनियमों का

अधिपति दिक्पाल यमधर्म नरक ले जाता है। वहाँ इन दुष्ट प्रवृत्तियों का निर्दालन करने के पश्चात ही जीवों को सत्प्रवृत्त स्वर्गलोक में मुक्ति मिलती है। हे धर्मश्रेष्ठ, यही कार्य ऋषि अपने तपोबल और शक्तियों से मृत्युलोक में करते हैं, अपितु इसके लिए ही परब्रह्मा ने मृत्युलोक में उनके प्रेरणा की योजना बनाई है। ये ऋषि स्वयंप्रकाशी तारकाओं के अटल पद पर विराजमान होकर इस मर्त्यलोक के जीवों को बारंबार मार्गदर्शन करते हैं। शिवधर्म की प्रेरणा से यमधर्म ने भी ऐसे सप्तऋषियों की स्थापना की है। इसमें यमधर्म ने दक्षिणी सप्तऋषियों की स्थापना की है। इसमें यमधर्म ने दक्षिणी सप्तऋषियों के रूप में अमुच, विमुच, स्वस्त्यात्रेय, प्रमुच, अगस्त्यपुत्र इध्मवाह, दृढवत और मान अगस्त्य की स्थापना की है। दक्षिण में महर्षि अगस्त्य का स्थान इतना महान है।'' अगस्त्य द्वारा सप्तऋषियों की जानकारी प्राप्त होने के पश्चात धर्मराज को दक्षिण के राम-रावण संग्राम का स्मरण हुआ।

उन्होंने पूछा, ''हे अगस्त्य कुलपते, दक्षिण में रावण-राम का युद्ध हुआ था, जिसका वर्णन रामायण में हैं। हमें इस बात की जिज्ञासा है कि, रावण का अगस्त्य मुनि से संपर्क कैसे हुआ?''

''हे धर्मराज, तपोवन के तपोनिधि इस संग्राम का बहुत अच्छा ज्ञान रखते हैं। तथापि कर्तव्यबुद्धि से मैं आपको कुछ जानकारी देने का प्रयास करता हूँ। हे धर्मराज, रावण पुलस्त्य वंश का पुत्र है। वे शिव के परम भक्त थे। पुलस्त्यों ने अगस्त्य गोत्र को स्वीकार कर लिया था। महर्षि अगस्त्य को अथर्वण, युद्ध, आयुर्विद्या, यज्ञयाग, सोमसत्र, संगीतविद्या, पर्जन्य एवम् वायु का व्यवस्थापन, कृषिविद्या आदि का उत्तम ज्ञान था। अगस्त्य मुनि ने अपने तपोबल और स्वयं प्रेरणा से पंचतत्वदेवताओं को उपकृत करके आज्ञांकित किया था। विष, अमृत और सोम, इन पर समान अधिकार जतानेवाले अगस्त्य महाविद्वान ब्रह्मवेत्ता, त्रिकालज्ञ और सृष्टिरचना में ब्रह्मदेव के साथ कार्यरत रह चुके ऋषि मुनि हैं। दशानन को भी महर्षि अगस्त्य समान सामर्थ्य प्राप्त था। रावण को अपार शक्ति और दीर्घायु का भी वरदान था। शिवभक्त होने के कारण रावण भी शिव का पुत्र ही था। यद्यपि रावण अपने तपोबल के अहंकार से आर्यव्रत त्याग कर राक्षसी प्रवृत्ति का व्यवहार करता था, किन्तु उसकी धारणा थी कि, परब्रह्म का कार्य वही न्यायबुद्धि से कर सकता है। सभी दक्षिण दिशाओं ने उसकी असीम शक्ति के

आगे पहले से ही समर्पण कर दिया था। रावण प्रतिअगस्त्य माना जाता था। रावण की पूजा लोगों के लिए परब्रह्म की पूजा लगने लगी। फिर भी महर्षि की श्रेष्ठता और उनके गुरुपद को रावण ने स्वीकार किया था। भगवान शिव के साथ साथ वह अगस्त्यों का भी भक्त था। कई बार दानवों पर अपने विलक्षण सामर्थ्य से विजय प्राप्त करने वाले स्वयंप्रकाशी तेजोनिधि स्वरूप अगस्त्य से रावण परिचित था। फिर भी अगस्त्य से सभी देवता सीधे संपर्क करते हैं, उन्हें वंदन करते हैं, और उसे दूजा स्थान दिया जाता है, इस बात से एक अनजानी चुभन उसके अंतर-बाहर को उद्विग्न कर देती थी। समग्र दक्षिण में पुलस्त्यों की सत्ता निर्माण करके वान, कृत, पुलह, पाण्ड्य आदि सभी कुलों पर अधिराज्य करने वाला रावण समुद्रि मार्ग से पश्चिम तथा पूर्व की ओर सप्तद्वीपों में संचार कर सकता था। परंतु वह जहाँ भी जाता, अगस्त्य अपनी अटूट शक्ति से वहाँ पहले ही पहुँच चुके होते थे और शिव परंपरा, अर्थात अगस्त्य परंपरा का निर्माण करते थे। रावण को नित्य अनुभव होता रहा कि, वहाँ आर्यवृत्ति निर्माण की गई हैं। इन बातों से वह विचलित हो उठता था। सहसा एक अनोखे विचार ने उसके मन में प्रवेश किया। शिव जी से वरदान प्राप्त करके अगस्त्यों को वश में करने का विचार उसके मन में आया और रावण ने अगस्त्यकूट, पोदियिल अथवा बेतीगो पर्वत पर अगस्त्य मुनि से भेंट करने का निश्चय किया। हिमालय में कैलाश पर अगस्त्य शिवशंकर से भेंट करते थे। उसी प्रकार रावण ने भी अगस्त्यों से भेंट करने का प्रबंध किया। अगस्त्य मुनि को रावण का हेतु ध्यान में आ गया। वास्तव में एक महापराक्रमी, अगस्त्य गोत्रज के रूप में पुलस्त्यों के लिए और स्वाभाविकतः पुलस्त्य कुलोत्पन्न रावण के लिए उनके मन में एक गर्व की भावना थी। उन्हें विश्वास था कि, यदि अगस्त्य परंपरा में रावण का उपयोग कृषि, पर्जन्य, वायु, आयु, कलाव्यवस्थापन के लिए किया जाता है, तो विश्व का कल्याण होगा।

''यह जानकर कि, रावण आ रहा है, अगस्त्य ने पोदियिल पर्वत पर स्थित आश्रम में महासोमयाग का प्रारंभ करके सूर्यदेवता, इंद्रदेवता, वायुदेवताओं को प्रसन्न करके यज्ञयाग करने का निश्चय किया। यज्ञकर्म की गतिविधियों मे अगस्त्य मुनि को व्यस्त देखकर रावण तनिक क्रोधित हुआ। अगस्त्य हमें टाल रहे हैं, इस आशंका से वह उद्विग्न हुआ। परंतु यह जान कर कि, गोत्रस्वामी परमगुरू शिव के समान ही श्रेष्ठ होते हैं, उनका अवमान नहीं होना चाहिए, इसलिए अगस्त्य

मुनि को प्रसन्न करने के लिए उसने एक संगीत समारोह आरंभ किया। रावण की संगीत साधना के आगे त्रिलोक में कोई स्पर्ध्दी नही था। अगस्त्य मुनि ने संगीत समारोह से ही प्रत्यक्ष शिव जी से संपूर्ण विद्या प्राप्त की थी। उसी प्रकार से रावण ने भी संगीत समारोह आरंभ किया था।''

अगस्त्य मुनि के यज्ञयाग के पूर्णाहुति के पश्चात उन्होंने संगीत समारोह से दक्षिण दिशा को देदीप्यमान होते हुए देखा। अगस्त्य रावण से प्रसन्न हुए।

''हे दशानन, त्रैलोक्य-श्रेष्ठ साधक, गोत्रजपुत्र मैं प्रसन्न हूँ। निवेदन करो, कि तुम मुझसे क्या अपेक्षा करते हो?''

''हे महत्‌गुरो, मैं आपका पुत्र हूँ। मैंने अपनी परंपरा में कल्याणकारी कार्य करके कुबेर से भी अधिक धन, बृहस्पति से भी अधिक ज्ञान और त्रिदेव की रचनात्मक शक्तियों को दक्षिण में खींचकर लाया है। इतना ही नहीं, किन्तु इन सभी शक्तियों से हमारी योजनाओं को बडा योगदान दिया है और सभी ज्ञान को यहाँ आत्मसात किया गया है। अतः देवत्वपद का महत्व आपको मिलना चाहिए। आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करें कि, मैं किसी देवता से पराजित न हो जाऊँ।''

''हे दशानन, ये सारी शक्तियाँ तुम्हें वास्तविक शिव ने दी हैं। तथापि मैं भी तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि, जो तुम्हें अपेक्षित हैं वहीं होगा। इसके लिए तुम्हें श्रीलंका जाकर समुद्र और धरती दोनों पर शासन कर सके ऐसे नगरों की स्थापना करके वैभवशाली शासन करना आरंभ करो, तथापि अहंकार को विकसित नहीं होने देना चाहिए। देवताओं द्वारा तुम कभी भी पराजित नहीं होंगे, ऐसा मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। अगस्त्य ने स्नेहपूर्वक रावण को आश्वासित किया।''

''मुनि अगस्त्य की आज्ञानुसार रावण श्रीलंका द्वीप गया, जहाँ उसने अगस्त्य के अधिष्ठान के साथ सुवर्ण नगरी का निर्माण किया और चौदह चौकडिया लंकापति बनकर समुद्र और भूमि पर शासन आरंभ किया। अगस्त्य से प्राप्त शक्तियों से दशानन अत्यधिक शक्तिशाली हुआ। उसने देवताओं की प्रतिष्ठा नष्ट कर दी। अपनी व्यापक शक्तियों से उन्हें बंदिवान किया। देवताओं की पूजा करने वाले सभी समाजों का शोषण आरंभ किया। आसिंधू-सिंधू दहशत निर्माण की। परंतु साथ ही शिवशक्ति और अगस्त्यशक्ति की साधना नित्य जारी रखी। अगस्त्य परंपरा के आश्रमों और गुरुकुलों ने न भूतो न् भविष्यति इतना महत्व प्राप्त किया। आर्यतेज, आर्यसंस्कृति, यज्ञयाग सत्र के स्थान बनाए गए। लोकभाषा

और सामगायन को महत्व प्राप्त हुआ। लोकभाषा से अगस्त्य विद्या प्रसृत होने लगी। लोकमौखिक परंपराओं को शास्त्रीय मंत्रसामर्थ्य प्राप्त हुआ। अथर्वण और आयुर्वेद को सप्तद्वीपो में श्रेष्ठत्व प्राप्त हुआ। पश्चिमी द्वीपो में अगस्त्यविद्या को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। अगस्त्य मुनि को संतोष हुआ। किन्तु रावण इसी बात से उन्मत्त हुआ। अहंकार ने उसे घेर लिया। उसने शिवशक्ति और अगस्त्यशक्ति की महत्ता को अस्वीकार कर दिया। अपनी ज्ञानमयता अर्थात आर्यत्व को अथर्वण और अन्य विद्याओं के दुरुपयोग में लगा दिया। इससे देवता और प्रजा भयभीत हुई। अगस्त्य चिंताग्रस्त हुए। स्वयं उन्होंने जिस तेजस्विता को गौरवान्वित किया था, वह अंधःकार में अस्तंगत होने जा रहा था।''

''महर्षि अगस्त्य ने अपने मन में निश्चय कर लिया और उन्होंने स्वयं ब्रह्माविष्णूमहेश का परामर्श लेने का निर्णय लिया। जब त्रिदेव ने उन्हें रामावतार के बारे में बताया तब वह निश्चिंत हुए। श्रीरामचंद्र को हर संभव मार्गदर्शन कर अगस्त्य, बिभीषण को विश्वास में लेकर अनार्यमय होने जा रही दक्षिण को पुनश्च आर्य तेजस्वी करने में सफल हुए। अगस्त्य द्वारा चलाए गए इस अभियान में शापित उःशापितजन, साथही पिशाच्च, वानर, कृत, पुलह, पुलस्त्य, पाण्ड्य आदि सभी दाक्षिणात्य सहभागी हुए थे। दक्षिण को पुनश्च आर्यमय करने का श्रेय अगस्त्य और प्रभु रामचंद्र को जाता है। रावण को भी गौरवान्वित करके अगस्त्यों ने अपने गोत्रजों को अपनी परंपरा से इतिहास में अमर कर दिया। अगस्त्य के इस संतुलित कार्य को देखकर अगस्त्य परंपरा तथा अगस्त्येतर परंपरा, दोनों ही अगस्त्य प्रति कृतज्ञ हो गए।''

कुलपति अगस्त्य द्वारा रावणकथा श्रवण करके पांडव भी कृतार्थ हुए।

''हे अगस्त्य कुलपते, अगस्त्यों द्वारा अन्य किसी पुरुष का अहंकार नष्ट हुआ हो, तो उसे जानने के लिए हम उत्सुक है। आपने हमें अगस्त्य के कार्य, लोककल्याण की उनकी आस्था, सबके प्रति उनका स्नेहभाव, उनके पराक्रम, एक ही आचमन में समुद प्राशन करने का उनका साहस, इंद्र-मरुत का मिलाप करने में उनका चातुर्य, एवम् विंध्य को विनम्र करनेवाले अगस्त्य मुनि की तेजस्विता, तपस्विता, प्रत्यक्ष परब्रह्मस्वरूप अगस्त्यों के पराक्रम से, उनके व्यक्तित्व से हम सब प्रभावित हुए है।'' युधिष्ठिर ने अपनी भावना व्यक्त की।

''हे पांडवो, अगस्त्य मुनि ने अनेकानेक दुष्टों अर्थात असुरों, राक्षसों

अथवा दानवों को नष्ट किया हैं। ये सभी वास्तव में मूलतः असुर, राक्षस अथवा दानव नहीं थे, अपितु अत्यधिक स्वार्थ के कारण अपनी दैवीय संपत्ति का उपयोग दुष्कृत्यों अथवा शोषण के लिए किया जाने लगा कि, असुरी, राक्षसी अथवा दानवी शक्ति निर्माण होती है। आर्यत्व अर्थात ज्ञानमय तेजस्विता नष्ट हो जाती है और परंपरा भ्रष्ट होती है। प्रायः असुरों के त्रास से अगस्त्य से सहायता माँगते है। अगस्त्य अपने तपोबल से श्राप देकर सहस्त्रों असुरों को जलाकर भस्म कर देते हैं। अर्थात असुरी प्रवृत्तियों को नष्ट कर देते हैं। किन्तु दक्षिण की ओर अर्थात विलय की दिशा में उनका पीछा करने के पश्चात भी अगस्त्य पूर्णतः नष्ट नहीं करते हैं, क्यों कि, वे अपने तपोबल के महत्व को नित्य बनाए रखना चाहते है। इसीलिए शाप के साथ-साथ अगस्त्य उःशाप भी देते है।''

''अब यही देख लो, मूलतः एक गंधर्व की कन्या जिसका नाम भामिनी था, उसे अगस्त्य के श्राप के कारण विशाल नामक राजा की पुत्री के रूप में, मानव वंश में जन्म लेना पडा। हुआ ऐंसे कि, एक समय जब बाल्यावस्था में वह अपने गंधर्व पिता के घर बाहर खेल रही थी, कि अगस्त्य वहाँ पर आएं। भामिनी अपने खेल में मग्न थी, अगस्त्य मुनि की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। अगस्त्य मुनि ने उसे श्राप दिया। गंधर्व को जब पता चला तो उसने अगस्त्य से प्रार्थना की, तब जाकर उन्होंने उसे उःशाप दिया।''

''हे भीम, तुम्हारे संदर्भ में अगस्त्य द्वारा दिए गए श्राप की कथा सुनो। अगस्त्य एक समय यमुना के तट पर घोर तपस्या कर रहे थे। जब कुबेर का मित्र दैत्य मणिमल् अगस्त्य के सिर पर थूका, तो अगस्त्यों ने उसे श्राप दिया कि, पांडवपुत्र भीम द्वारा मणिमत् का वध होगा। वैसे ही, हे भीम, तुमने उसे नष्ट कर दिया। तथापि अगस्त्यों ने कहा था कि, मध्यस्थ के रूप में कुबेर को भी उसका परिणाम भुगतना पडेगा। किन्तु तुम्हारे दर्शन मात्र से कुबेर का त्रास नष्ट होगा ऐसा उसे उःशाप था। इसीलिए हे भीम यह सत्य है ना कि, अगस्त्य के कहने पर कुबेर तुम्हें मिलने आया था? हे पांडवों, अगस्त्य मुनि स्वयं उनके द्वारा दिए गए शाप से पश्चातापदग्ध लोगों को मुक्त करते ही थे, तथापि दूसरों द्वारा दिए गए शाप से भी मुक्त करने की ईश्वरी शक्ति अगस्त्य को प्राप्त थी।''

''एक समय जब शंबूक तपस्या में निमग्न था, संभवतः उसके द्वारा उसके पुत्र की उपेक्षा हुई और पुत्र की मृत्यु हुई। श्रीराम ने इस शंबूक को मार डाला और

वे अगस्त्य के आश्रम में आए। अगस्त्य ने उनसे एक रात्रि आश्रम में विश्राम करने के लिए आग्रह किया। उनका आदरपूर्वक सम्मान करके उन्हें एक अलौकिक आभूषण भेंट स्वरूप में दिया। उस आभूषण को देखकर श्रीराम विस्मित हुए। उन्होंने ऐसा आभूषण पहले कभी देखा नही था। जब उस आभूषण को लेकर श्रीराम के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई, तब अगस्त्य ने स्वयं श्रीराम को श्वेतों की कथा सुनाई।''

''त्रेतायुग में, तपःश्चरण हेतु अगस्त्य ने एक निर्जन अरण्य निश्चित किया। वहाँ उनकी दिनचर्या और तपाचरण आरंभ हुए। शेष समय में वे अरण्य में टहलते थे। उस अरण्य में उन्हें एक सुंदर सरोवर दिखाई दिया। दूसरे दिन प्रातः उन्होंने उस सरोवर मे स्नान हेतु जाने का निर्णय लिया। स्नान के लिए सरोवर के निकट आते ही उन्होंने देखा कि, सरोवर के पृष्ठ पर एक मृत शरीर पडा हुआ है। मृत शरीर देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। वे विचार करने लगे। उन्हें और भी अद्भूत और रोमांचकारी अनुभव हुआ। उन्होंने देखा कि, एक दिव्य शक्ति आकाशयान से नीचे उतर कर उस शव का मांस खा रही हैं। उनके मन में एक अनोखी जिज्ञासा ने जन्म लिया। अगस्त्य ने उस दिव्य शक्ति से पूछताछ की, तब वह दिव्य शक्ति ने अपना इतिहास विदित किया।''

''विदर्भ के राजा सुदेव का एक पुत्र था। उसका नाम श्वेत था। सुदेव के पश्चात स्वाभाविकतया उसका राज्याभिषेक किया गया। कई वर्षोंतक उसने शासन किया। तत्पश्चात उसने तपस्या करने का निर्णय लिया। उसके घोर तपस्या के फलस्वरूप उसे ब्रह्मलोक में स्थान प्राप्त हुआ। ब्रह्मलोक में जाने के पश्चात भी वह शरीर के विकारों से पीडित था। भूख और तृष्णा से वह व्यथित था। ब्रह्मा के पास जाकर उसने अपनी व्यथा निवेदन की और यथायोग्य भोजन का प्रबंध करने के लिए प्रार्थना की। जब वह तपस्या कर रहा था, तब अपने शरीर के पोषण पर उसका अधिक ध्यान था। वास्तव में तपाचरण के समय उसके इस अनुशासनहीन व्यवहार से उसके विकार जैसे तैसे बने रहे। ब्रह्मदेव से प्राप्त जानकारी नुसार ब्रह्मदेव ने उसे अपना ही मांस खाने के लिए कहा था। अतः उसके सम्मुख कोई विकल्प नहीं था। ब्रह्मदेव ने ही आगे उसे उःशाप दिया कि, कुछ समयपश्चात, अगस्त्य मुनि के दर्शन से उसकी यह दयनीय अवस्था नष्ट होगी, क्यों कि अगस्त्य ब्रह्मर्षि हैं, उन्हें शिवसामर्थ्य प्राप्त है। देवताओं की रक्षा करने का सामर्थ्य भी

अगस्त्यों के पास है, यह भी ब्रह्मदेव ने उसे बताया था। अगस्त्य के दर्शन से श्वेता का उद्धार हुआ। उसने अगस्त्य की पूजा की और यथाविधि उन्हें स्वर्गीय अलंकार दिया। अगस्त्यों ने उसके कल्याण हेतु वह अलंकार स्वीकार किया। इससे श्वेता का मानवी रूप नष्ट होकर उसे स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई। इस आभूषण से व्रताचरण के दूरित नष्ट होते हैं। दान का दान करने में भी बडा पुण्य है। इस दृष्टि से अगस्त्य ने वह स्वर्गीय आभूषण प्रभू श्रीराम को दिया और उन्हें आश्वासन दिया कि, इस कथा को श्रवण करने से श्रीराम के आचरण में अगस्त्य के आशीर्वाद से कोई बाधा नहीं आएगी। प्रभु रामचंद्र ने अगस्त्य के शिष्य जहाँ भी जाते हैं, वहाँ जाने के लिए तत्परता दिखाई।''

''हे अगस्त्यों, श्राप मुक्ति के लिए श्वेता की यह कथा कितनी महत्वपूर्ण है। हम वनवास में हैं, मुझे लगता है कि, इसके पीछे भी कुछ ऐसे ही कारण है। यह कितना महनीय है, कि अगस्त्य स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, रसातल, तलातल, वितल, इंद्रलोक, चंद्रलोक, सूर्यलोक में मुक्त विहार करते थे और शापमुक्ति, लोककल्याण जैसे कार्य किया करते थे।''

''हे पांडवो, अगस्त्य कर्म की प्रेरणा है, कर्तव्य की भावना हैं। सत् और असत् के बीच का विवाद लोप होकर यह मृत्युलोक तो क्या अपितु परब्रह्मा की कल्पना से निष्पन्न यह समग्र ब्रह्मांड सुरक्षित, निर्बाध एवम् प्रचलित रहे, इसी लिए ही प्रकाश और आर्द्रता के माध्यम से अगस्त्यों का जन्म हुआ। अगस्त्य ज्ञान और दया की साक्षात मूर्ति है। अगस्त्य विद्या का परिणाम है।''

''अगस्त्यों के अन्य लोककल्याणकारी विक्रम कथन करके हमें उपकृत करें।'' पांडवों ने अनुरोध किया।

''हे पांडवो, जिन्होंने अपना हर क्षण केवल विश्वकल्याण के लिए समर्पित किया है, उनके कितने और किन कार्यों का वर्णन करें, ताकि आप संतुष्ट हो जाएं। जीवसृष्टि के निर्माण के पश्चात जनजीवन यथोचित प्रचलित रहें, इस उद्देश्य से पंचतत्वोंने परब्रह्मा के आशीर्वाद से और त्रिदेवों की आज्ञा से अगस्त्य, वसिष्ठ ऐसे ऋषि निर्माण किए। प्रत्यक्ष परब्रह्मरूप अवतारी पुरुषों की सहायता करने वाले ये ऋषि केवल अलौकिक कर्म करते हैं। हे पांडवो, आपकी सत्यनिष्ठा और सात्विक आचरण देखकर सगोत्रों के विवाह में ऋषिवर, गोपालकृष्ण आप ही की सहायता करते हैं। अतः हे नरश्रेष्ठ पांडवों, आप भी अगस्त्यों के मार्ग से ही

जाएंगे और अगस्त्य भी अवश्य आपकी सहायता करेंगे।''

''हे पूजनीय अगस्त्यों, क्या प्रभु रामचंद्र के ये सभी कर्म विधाता के लीलास्वरूप पूर्वनियोजित थे?'' पांडवों ने पृच्छा की।

''हे पांडवो, इस दंडकारण्य में डोंगरकोली अथवा महादेव कोली समुदाय के लोग हैं। शिव जी ने इन शिवगणों को निर्देश दिए कि, उनकी आज्ञानुसार पर्वत, पहाडियों पर परिश्रम करके उपर से झरनेवाले जल की रक्षा करें। जल को वही रोकें, नीचे बहने ना दें। इससे सह्याद्रि की गोद में शिव के स्पर्शसे, इंद्र और वायु की कृपा से, सूर्य के साक्षी से कई जलप्रणालियों का निर्माण किया। ये जलप्रणालियाँ केवल वर्षा ऋतु में निर्मित होती थी और इनका जल समुद्र में प्रवाहित हो जाता था। समुद्रमंथन के पश्चात प्रत्यक्ष शिव जी ने रत्नागढ़ से प्रसाद के रूप में अमृतवाहिनी का निर्माण किया। माता पार्वती ने भी विभिन्न रूप में दंडकारण्य में वास करने का आश्वासन दिया। भगवान शिव जी ने पर्जन्य, वायु, प्रकाश इन सब को वश करके उन्हें मानवकल्याणहेतु नियमबद्ध कार्य करने की प्रेरणा देनेवाले अगस्त्यों को वहाँ वास्तव्य करने की आज्ञा दी। अगस्त्य, जिन्होंने दक्षिण जंबुद्वीप का अतिसुंदर ढंग से व्यवस्थापन किया था, उन्हें भी यह भूमि तपोभूमि एवम् कर्मभूमि के रूप में यथोचित प्रतीत हुई। दक्षिण के कार्य से जैसे ही उन्हें अवकाश प्राप्त होता था, वे यहाँ आकर वास्तव्य करते थें। उनकी इस परंपरा सें वानर, जटायु, कोली आदि जनजातियाँ भी जुड़ गई। उनके अनेक समूह दंडकारण्य में थे। अनेक ऋषियों ने इस दंडकारण्य का उपयोग हिमालय की भांति तपोभूमि के रूप में किया। दक्षिण के महत्वपूर्ण लोकसमुदाय अगस्त्य परंपरा से जुड गए। तपस्या से बल प्राप्त हुआ, सत्ता मिली, किन्तु अहंकार बढ गया। इन अहंकारी व्यक्तियों मे दशानन अर्थात रावण दुष्कर्म करता था। वास्तव में वह एक महान दीर्घायु, तपस्वी सर्वविद्यानिपुण आर्य था, किन्तु अहंकार ने उसे अनार्य बना दिया। अगस्त्य अनार्य के इस अहंकार को मिटाना चाहते थे। और दक्षिण में उन्हें निरहंकारी वृत्ति, दैवीय संपत्ति की पुनःस्थापना करनी थी। ब्रह्माविष्णुमहेश की प्रेरणा से श्रीराम अवतार निष्पन्न हुआ, इससे वे बहुत आनंदित हुए। आनंद की इस भावना में त्रिकालज्ञ ऋषि के मन में श्रीराम अवतार के पूर्व ही प्रभु रामचंद्र के कार्य का भविष्यकालीन परिचय प्रकट हुआ। उन्होंने श्रीराम जन्म के सैंकडो वर्ष पूर्व अगस्त्य निष्पादित रामायण सामवेदों की सहायता से जनसमुदायों को

कथन करके उन्हें आश्वासित किया। अगस्त्यों द्वारा कथित रामकथा लोकप्रिय होने लगी। इन कथाओं को माध्यम से अगस्त्यों ने रामतत्व अर्थात सत्व और सत्य, एकनिष्ठता और कर्तव्यपरायणता आदि गुणों का प्रचार-प्रसार होने लगा।

*

एक समय जब अगस्त्य ऋषि ध्यानस्थ थे, नारदमुनि प्रकट हुए।

''नारायण, नारायण, हे अगस्त्ये मैं नारद आपको त्रिवार वंदन करता हूँ।''

''हे देवर्षे नारद, आप अचानक किस भविष्य की पूर्वकल्पना देने हेतु यहाँ उपस्थित हुए हैं?'' अगस्त्यों ने प्रश्न किया।

''हे ब्रह्मर्षे अगस्त्य, आपने समूचे दक्षिण में रामतत्व का प्रचार-प्रसार किया है। शम इस शब्द से ही असत्य, मायावी शक्तियाँ कांप उठती हैं। ये तत्व क्या है? इनका क्या अर्थ है? अगस्त्य मुख से प्रकट हुई रामकथा सामवेद बन गई है। इसमें कौनसा रहस्य छिपा हुआ है?'' नारद ने प्रश्न किया।

''हे ब्रह्मर्षे नारद, वास्तव में यह सब आपको विदित हैं। आप केवल मेरे मुख से सिद्ध करना चाहते हैं। तथापि लोककल्याणार्थ विष्णुतत्व से निष्पन्न रामतत्व का प्रकर्ष मानवप्राणियों में हुआ, तो उनमें सत्यनिष्ठा और कर्तव्यपरायणता तो निष्पन्न होगी ही, अपितु समग्र मनुष्यों के प्रति दया और सहिष्णुता भी निष्पन्न होगी। इसलिए मैं आपको पूरी रामकथा सुनाता हूँ।''

ऐसा कहकर स्वयं अगस्त्य मुनि ने ब्रह्मर्षि नारद को रामकथा सुनाई। यह भविष्य में घटनेवाली रामकथा श्रवण करके नारद अति प्रसन्न हुए।

''हे अगस्त्ये, मैं यह कथा त्रिलोक में सुनाऊँगा। आप अनुमति दें।''

''हे नारद, क्षमा करें, किन्तु यह रामकथा सुनाने का आप को अधिकार नहीं हैं।'' अगस्त्य ने कहा।

''यह क्या कह रहे हैं आप? आप के बोल कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत हो रहे हैं।'' नारद ने विस्मित होकर किन्तु अप्रसन्न स्वर में कहा।

''हे मुनिश्रेष्ठ, इस दंडकारण्य में कोळी जनजातियों में वाल्मिक नामक एक ब्रह्मऋषि था। उसे अपनी तपस्या पर अहंकार हुआ। उसने अपने तपोबल से

पश्चिम से आनेवाली इंद्रसेना का मार्ग अवरुद्ध करना आरंभ किया। वायु को रोकने लगा। इससे सभी मेघ सह्यपर्वत पर ही बरस ने लगे। परिणामस्वरूप सह्यगिरी के शिरोभाग पर जो जीवप्रणाली थी वह जल के बहाव से बहने लगी। प्राकृतिक वनस्पतिओं, लताओं से सुशोभित सह्यगिरी का शिरोमुकुट नष्ट हुआ। पहाडियाँ निर्जिव सी प्रतीत होने लगी। उनका सौंदर्य ही चला गया। अपने शक्तिप्रदर्शन से निर्माण हुई इस अवस्था को देख कर वाल्मिक मेघों की गड़गड़ाहट की भांति हंसता था। एक समय उसने देवेन्द्र से कहा,

''हे देवेन्द्र, ब्रह्मा के आशीर्वाद से मैं पंचतत्वों पर शासन करूँगा।''

''उसकी यह दर्पोक्ति सुनकर इंद्रदेव ने वाल्मिकी कोळी के अहंकार को मिटाने का कार्य मुझे सौंपा।''

''हे महर्षे, ब्रह्मदेव ने वाल्मिक अर्थात हमारे भ्राता की निष्पत्ति क्यों की?''

''हे ब्रह्मर्षे, आपने बहुत ही मार्मिक और लोकहितैषि प्रश्न पुछा है। हे मुनिश्रेष्ठ, दंडकारण्य के इस घने वनस्थली में अनेक ऋषियों के तपोबल से पावन हुई इस भूमि में ब्रह्मदेव ने अपने मानसपुत्र को जन्म दिया। उन्होंने वाल्मिक को जन्मतः स्थानीय भाषा के मौखिक रूप को अमर करने की शक्ति प्रदान की, प्रत्यक्ष देवी ब्रह्मवादिनी शारदा उसकी जिव्हा पर स्थापित की। विष्णु तत्व के लोकबंध, सत्व, सत्य और चैतन्य से मानवी जनजीवन में आदर्श निर्माण करने का कार्य उन्हें सौंप दिया। विश्व का महान अलोकिक ग्रंथ समस्त ऋषियों अर्थात परात्पर तत्व के साक्षी से निर्माण हो, ऐसा ब्रह्मदेव का मानस था। उनकी यह शक्ति जागृत हो, इसलिए ऋषियों के संस्कार से वाल्मिक में तपस्या की प्रेरणा निष्पन्न हुई। वाल्मिकी अद्वितीय बुद्धि अलौकिक दृष्टि और असीम कल्पना चमत्कृति चातुर्य के प्रतीक हैं। परंतु ये ब्रह्मर्षि महत्वाकांक्षा से ग्रस्त थे। वासनाओं के प्राबल्य से वे अपना विवेक खो चुके थे और अपने अद्‌भूत सामर्थ्य से वाल्मिकी अनुचित कार्य करने लगे जिस से सृष्टि दोलायमान होने लगी।''

''हे महर्षे, फिर आपने उस पर कैसे विजय प्राप्त की?''

''हे ब्रह्मर्षे नारद, मैं महर्षि वाल्मिक से मिला उनका मतपरिवर्तन करने हेतु मिलकर सोमयाग के साथ यज्ञसत्रों का आयोजन करने का प्रस्ताव रखा। परंतु उन्होंने मुझे दांभिक, घमंडी, पाखंडी और सभी देवताओं और ऋषिओं, राजाओं

और मानवी समुहों को अपने अथर्वण से अंकित करनेवाला मायावी कह कर मेरी अवहेलना की। मैं किंकर्तव्यमूढ हुआ, तब मैंने पिताश्री ब्रह्मदेव का स्मरण किया और उन्हें वंदन करके मैंने वाल्मिकी को उनके तपोबल, विद्या और ऋषिपद का विस्मरण हो, तथा व लुटेरा बन कर भटकता रहें, ऐसा श्राप दिया। शापवाणी सुनते ही वाल्मिकी को वस्तुस्थिती का ज्ञान हुआ। पश्चाताप की भावना ने उसका अहंकार भस्म हुआ। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की और मेरी शरण में आएं। यह देख कर, मैंने ब्रह्मदेव का कार्य सफल हो, इस उद्देश्य से वाल्मिकी को उःशाप दिया कि, चोर-लुटेरा की अवस्था में उनकी ब्रह्मर्षि नारदजी से भेंट होगी और उनके द्वारा सुझाए गए उपायों से उन्हें पुनश्च सब कुछ स्मरण होगा और उनके द्वारा एक अलौकिक रामायण ग्रंथ का निर्माण होगा। तथापि मेरा शाप सत्य सिद्ध होकर रहेगा, इस बात से उन्हें अवगत कराया। हे नारद, इस प्रकार वाल्मिकी ऋषि अब वाल्या कोळी बनकर वे इस दंडकारण्य में पथिकों को लूटने का काम कर रहे हैं। उनकी आजीविका इसीपर निर्भर हैं। अतः ब्रह्मलेख के अनुसार और मेरे शब्दसामर्थ्य के अनुसार आप वाल्मिकी से भेंट करें। आपसे भेंट होते ही उनकी स्मृति लौट आएगी और वे पुनश्च प्रायश्चित्तपूर्वक वाल्मिकी होंगे। मैंने मौखिक परंपरा में जो रामकथा सुनाई, वह स्वयंप्रेरणा से और त्रिदेवों की इच्छानुसार प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होगी। तद्नुसार आगे चलकर राम अवतार होगा। मैं स्वयं वाल्मिकी को रामकथा सुनाऊंगा।''

''हे पांडवो, महर्षि अगस्त्य से प्राप्त परामर्श से नारदमुनि ने वाल्मिक से भेंट की। उनके द्वारा रामायण तो लिखी ही गई, अपितु श्रीराम को उनकी बहुत सहायता भी मिली। सीता माता की देखभाल वाल्मिकी ने की थी, यह सब आपको विदित हैं। वाल्मिकी ने इसी कोळी समुदाय के सान्निध्य में अमृतवाहिनी तट पर अपना आश्रम स्थापित किया। इतना ही नही, विभिन्न स्थानों के आश्रमों के माध्यम से अपने गुरुकुलों का संचार एवम् संचालन करते समय उनका मनोवास्तव्य यहीं होता हैं। रत्नगढ़ के निकट वाल्मिकी ध्यानस्थ मुनि के आकार के पर्वतरूप में स्थित हैं।'' कुलपति ने कहा।

''हे अगस्त्ये, आपने हमें रामायण के जन्म की यह अलौकिक कथा सुनाकर हमारा कुतूहल और भी जागृत किया है। अतएव अब हमें अगस्त्य का अहंकार दमन का अभियान किसके संदर्भ में था, यह कृपा करके विदित करें।''

पांडवों ने कृतज्ञतापूर्वक प्रार्थना की।

''हे पांडवो, अगस्त्यकथा श्रवण करके सब की जिज्ञासा जागृत होती है। अगस्त्य की कार्यपरंपरा कई सहस्त्रों वर्षों की होने के कारण, उनकी कितनी भी कथाएं श्रवण करने के पश्चात भी कोई संतुष्ट नहीं होता।'' कुलपति ने प्रसन्नता से कहा।

''हे अगस्त्य, हम पुनश्च भ्रमण के लिए निकल रहे हैं। इसलिए ये कथाएँ हमारे लिए अति महत्वपूर्ण एवम् उपयोगी सिद्ध होंगी।'' युधिष्ठिर ने स्पष्ट किया।

''ठीक है, तो मैं आपको नहुष की कथा निवेदन करता हूँ।''

''पृथ्वी पर सोमवंश में आयुस नाम का एक पृथ्वीपति बहुत ही न्यायपूर्ण, सत्यनिष्ठा एवम् लोककल्याणकारी पद्धति से शासन कर रहा था। उनके मन में प्रजाहित के परे कोई विचार ही नहीं था। सोमवंशी आयुस महान शिवभक्त, सर्वविद्यानिपुण, सर्वज्ञ होते हुए भी, उनमें अहंकार का स्पर्श नहीं था। शिवभक्ति के साथ-साथ ब्रह्मा और विष्णु भी उनके आराध्य थे। त्रिदेवों की पूजा किए बिना राज्य का प्रशासन कार्य आरंभ नहीं करते थे। उनकी राणीयाँ भी अति पुण्यश्लोक, आतिथ्यधर्मनिपुण एवम् प्रजा के लिए मातृवत् थी। आयुस के कोई संतान नही थी। वह प्रजा को ही अपनी संतान मानता था। ब्रह्माजी तपस्या से उन्हें पुत्रप्राप्ति हुई। शिवजी ने उस पुत्र का नाम नहुष रखा। भगवान शिव से यह वरदान भी प्राप्त हुआ था कि, नहुष एक बहुत ही धर्मपरायण श्रेष्ठ राजा के रूप में प्रख्यात होगा। तत्पश्चात आयुस को संतति एवम् प्रचुर ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। आयुस ने अपनी संपत्ति का उपयोग केवल लोककल्याण के लिए ही किया। पिता की इच्छानुसार नहुष योग, विद्याभ्यास आरंभ हुआ। गुरुकुल में अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात नहुष ने तपस्या आरंभ की। ब्रह्मदेव से उन्हे सभी प्रकार की विद्याएं एवम् अस्त्र-शस्त्र प्राप्त हुएं। भगवान शिव को प्रसन्न करके उन्होंने अनेक शक्तियाँ प्राप्त की। विष्णु को भी उन्होंने प्रसन्न कर लिया। ब्रह्मर्षि के पद पर पहुँचे नहुष ने, अपना ध्यान राजधर्म की ओर केंद्रित किया। ऋषियों की शक्ति और राजधर्म की सत्ता दोनों से वह लाभान्वित हुआ। अपने पिता के मार्ग से उसने भी लोकल्याणकारी कार्य करना आरंभ किया। साक्षात पुण्यश्लोक धर्मावतार, दयानिधि राजा के रूप में प्रजा उसकी पूजा करने लगे। ब्रह्माविष्णुमहेश से जिनका सीधा घनिष्ठ संबंध हो चुका था वह मानव पुत्र नहुष देवलोक में भी प्रतिष्ठित हुआ। इतना होने पर भी

नहुष का विश्वास था कि, यह सब परब्रह्मा की आज्ञा से, पिता के संस्कारों से और सद्गुरू के आशीर्वाद के कारण ही संभव हुआ है। हे युधिष्ठिर, अहंकार का तनिक भाव भी उसके मन में निर्माण नहीं हुआ। अगस्त्य ने एक समय नहुष से भेंट करने का विचार किया। सोमवंशी राजा नहुष अति प्रसन्न हुए। साक्षात शिवावतार, अग्निपुत्र दयासागर अगस्त्य उनके राज्य में उनसे मिलने आ रहे हैं यह देखकर नहुष ने महर्षि अगस्त्य के स्वागत का प्रबंध किया।''

''जैसे ही महर्षि अगस्त्य आएं, नहुष ने गणमान्य व्यक्तियों और राज्यों के साथ अगस्त्य का स्वागत किया। उन्हें पालकी में बैठाकर स्वयं अपने कंधे पर उठाकर ले गए। महर्षि अगस्त्य की पाद्यपूजा करके उन्होंने अपना पूरा राज्य महर्षि अगस्त्यों के चरणों में अर्पित कर दिया और अपने राज्य में आश्रमवासी महर्षि बनने की इच्छा प्रदर्शित की। भावावेग में अगस्त्य ने नहुष को अपने पार्श्व में ले लिया। उन्होंने नहुष से कहा, 'हे पृथ्वीपते, त्रिलोक जानता है कि, आप ब्रह्मर्षि हैं। प्रत्यक्ष ब्रह्माविष्णुमहेश से आपका संबंध है और उनके प्रसाद के रूप में आप राज्यशकट चला रहे हैं। आपके पुण्यश्लोक दृष्टि से समग्र पृथ्वी संतुष्ट है और आप एक आदर्श राजा के रूप में प्रख्यात हैं। जब लोककल्याण और चारित्र्य आपका ईप्सित है, तो हे नहुष, मेरा परामर्श यह है कि आपके मन के ऋषिपद के स्वप्नों का त्याग करके आप त्रिलोक के राज्य का आनंद लेने के योग्य राजा बनें।' अगस्त्यों का यह परामर्श राजा नहुष ने विनम्रता से स्वीकारा। अगस्त्य की भेंट से नहुष का व्यक्तित्व और अधिक सुप्रतिष्ठित हुआ।'' कुलपति ने नहुष-अगस्त्य संबंध निरुपण किया।

''हे अगस्त्ये, फिर अगस्त्यों ने नहुष को शापदग्ध क्यों किया? उनका भ्राता युधिष्ठिर से क्या संबंध था?'' नकुल ने अधीरता से प्रश्न किया।

''हे पांडवो, आप अधीर न बनें। एक ही अघटित घटना से नहुष का संपूर्ण व्यक्तित्व पलट गया।''

''देवेन्द्र के त्वष्टा उनके राज्यपालन का कार्य प्रातिनिधिक स्वरूप में करते थे। त्वष्टा के माध्यम से ही देवेन्द्र अपने राज्य पर शासन करते थे। जब त्रिशिरस नामक त्वष्टा का पुत्र वंशपरंपरा से त्वष्टा के रूप में अपना कार्य कर रहा था, तब किसी अज्ञात दुष्ट शक्ति ने इंद्र पद की लालसा से देवेन्द्र को चुनौती देकर त्रिशिरस का वध किया। इस प्रकार त्वष्टा की हत्या करके चुनौती देना देवेन्द्र के

लिए एक अनोखा अनुभव था। देवेन्द्र भयभीत हुए। इससे निराश और दुखी होकर इंद्र ने अपनी पत्नि शचि को विश्वास मे लेकर छुप जाने का निर्णय लिया। किन्तु बिना किसी से परामर्श लिए बिना, लिए गए देवेन्द्र के इस निर्णय ने, इंद्रलोक को विपत्ति में डाल दिया। अब ऐसी स्थिति निर्माण हुई कि, इंद्रलोक को कोई शासनकर्ता / राजा ही न रहा। केवल देवेन्द्र की पत्नि शचि जानती थी कि, देवेन्द्र मानससरोवर में एक पुष्कर कमल में छिपकर बैठा है। किन्तु किसी को यह पता न चले, इसलिए वह चुप रही। इतना ही नहीं इंद्रपद कहाँ छिपा है यह जानते हुए भी उसने असत्य का आश्रय लेकर, उसे कुछ पता नहीं ऐसा कहा। इससे पृथ्वी उद्विग्न हुई। निराश होकर उसने समस्त देवताओं से निवेदन किया। साक्षात त्रिदेवों ने स्वाभाविकतया कहा कि, नहुष को देवेन्द्र के राज्य की देखभाल तब तक करनी होगी, जब तक कि देवेन्द्र लौटकर न आ जाए।''

''समस्त देवता नहुष के पास आए। देवताओं ने नहुष को इंद्रपद पर विराजमान होने का आग्रह किया। मूलतः विरक्त और लोकहितैषि राजा नहुष ने स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार कर दिया। तथापि देवताओं ने हार नहीं मानी। अंततः देवताओं के अनुरोध पर और त्रिदेव के आदेश पर नहुष ने इंद्रलोक का राजा बनना स्वीकार किया।''

''जैसे ही नहुष इंद्र के सिंहासन पर बैठा, एक चमत्कार हुआ। देवेन्द्र के सभी गुण नहुष में आ गए। इंद्र का ऐश्वर्य, स्वर्गीय अप्सराओं का सौंदर्य उनसे प्राप्त सेवा के कारण नहुष के मन में वासना ने जन्म लिया। वासना के चंगुल में पूरी तरह से फंसने से उसका अहंकार भी बढा। वह अहंकारी बना। इतना ही नहीं, जैसे ही उसने इंद्रपत्नी शचि को देखा तो उसके प्रति उसकी कामवासना जागृत हुई। वह उसी की इच्छा करने लगा।''

''नहुष ने शचि के पास जाकर सीधे अपनी इच्छा व्यक्त की। हर प्रकार से उसने संभोगेच्छा प्रदर्शित की। नहुष ने सीधे शचि से कहा कि, देवेन्द्र कहीं भाग गया है, अब शचि उसे ही अर्थात नहुष को ही अपना पति मान लें और सर्व सुखोपभोग का आनंद ले। कुछ समय के लिए शचि संभ्रमित हुई, किन्तु मूलतः चतुर होने के कारण उसने नहुष के कामोन्माद का उपयोग करके उसे फंसाने का निश्चय किया। उसने नहुष को तत्वनीति और तपश्चूत करने की योजना बनाई।''

''इधर देवेन्द्र पद पर आरूढ़ नहुष ने यज्ञसंस्था में भी हस्तक्षेप करना आरंभ

किया। ऋषियों के साथ यज्ञ के विषय में चर्चा हुई। उसमें भी मतभेद थे। शचि ने इसी का उपयोग करने का निश्चित किया।''

''नहुष ने अपने तपोबल से अनेक शक्तियाँ प्राप्त की थी। उन शक्तियों से ऋषि भी पीडित होने लगे। नहुष, उसके दृष्टिक्षेप में आनेवाले हर किसी को अपने भीतर समा ले सकता था। इससे, दृष्टिक्षेप में आनेवाला शबल बन जाता और नहुष प्रबल। नहुष ने अपनी महत्वाकांक्षा और अहंकार की रक्षा के लिए यज्ञ, तपस्या और स्वाध्याय के माध्यम से प्राप्त शक्तियों का उपयोग करना आरंभ किया। इसके परिणामस्वरूप यद्यपि उसका तपोबल कम हो रहा था, फिर भी नहुष ने अपने अहंकार का त्याग नहीं किया। उसने सभी ऋषियों से स्पर्ध्दा आरंभ की। इससे उसके मन में ऋषियों के प्रति द्वेषभावना निर्माण हुई। एक प्रकार से नहुष में अनार्य का उदय हुआ था। वह सत्ता, संपत्ति, बल, श्रेष्ठ और कामवासना में पूरी तरह से फंस गया था। देवताओं ने नहुष को देवेन्द्र पद पर बिठाया तो था, तथापि देवस्वरूप ऋषियों और देवताओं को उसने पीडा (कष्ट) देना आरंभ किया था।''

''शचि ने इन सभी बातों का उपयोग बडी चतुराई से करने का निर्णय लिया। उसने नहुष से कहा, 'हे नृपश्रेष्ठ, मुझे भी आपके साथ रत होने की तीव्र इच्छा है। तथापि आप मेरी एक इच्छा पूरी करें। आजतक इंद्रलोक की रक्षा ऋषियों के बल पर हुई। इसके कारण हमें हर समय सतर्क रहना पडता है कि, कहीं कोई ऋषि इंद्रपद न छिन लें। इसलिए हमें उसी ऋषि की शरण में जाना पडता है। आप तो ब्रह्मर्षि हैं और लोकोत्तर राजा भी। प्रत्यक्ष त्रिदेवों ने आपको आग्रहपूर्वक देवेन्द्र पद पर आरूढ होने के लिए कहा है। अतः आप सभी ऋषियों को देवताओं की आज्ञा में रखे, ताकि देवता वास्तव में राज्य का उपभोग कर सके। हे देवेन्द्र, मेरी यह इच्छा वस्तुतः आपके ह्रदय की भावना है।''

''शचि की इन बातों से नहुष संमोहित हुआ। उनका अहंकार और अधिक सहलाया गया। उन्होंने एक सहस्त्र ऋषियों को उनकी पालकी ढोने के लिए आदेश दिया। नहुष की आज्ञा का सब ने सम्मान किया। फिर भी वे संतुष्ट नहीं थे। शचि के मोहपाश में जकड़े नहुष से प्रतिदिन के यज्ञों की उपेक्षा होने लगी। स्वाभाविकतः उनका तपोबल धीरे-धीरे कम होता गया। ब्रह्मदेव से प्राप्त वरदान से वे अत्यधिक उदंड हुए थे। उन्होंने ब्रह्मर्षि, महर्षि पद को प्राप्त ऋषियों को

भी पालकी ढोने के लिए आमंत्रित किया। मदांध हुए नहुष सुध-बुध खो चुके थे। उन्हें ऋषियों के जप-तप, मनन, चिंतन, विद्वत्ता की चिंता नहीं रही। उनके उद्दंडता से दिए गए आदेशों का पालन ऋषियों को करना था। ऋषियों के पास देवराज के आज्ञापालन के सिवा कोई अन्य विकल्प नहीं था। पालकी ढोने के लिए सभी ऋषि बारी-बारी से आने लगे। उन ऋषियों में महर्षि अगस्त्य भी थे। अगस्त्य ने नहुष को गौरवान्वित किया था। नहुष ने उनकी शिवावतार के रूप में पूजा की थी और अब उन्हें कहार बनकर नहुष की पालकी ढोनी थी।''

''इधर भृगुऋषि अगस्त्य के पास आए। उन्होंने अगस्त्य से विचार विनिमय किया। बिना दृष्टिगोचर होते हुए पालकी ढोना आवश्यक था, अन्यथा अपना बल नहुष को प्राप्त होने की संभावना थी। अगस्त्य भृगु ऋषि के विचारों से सहमत हुए। तब अगस्त्य ने भृगु को उनकी जटा में गुप्तरूप से घुसकर पालकी ढोने की अनुमती दी। नहुष को प्राप्त वरदान के लिए अगस्त्य और नारद अपवाद थे। इसी कारण शचि और अगस्त्य को यह ज्ञात था कि नहुष के दृष्टिक्षेप से उनपर कोई परिणाम होना संभव नही।''

''मुनि अगस्त्य ने भृगु को अपनी जटा में धारण करके पालकी उठाई। अन्य ऋषियों की तुलना में उनके शरीर की ऊँचाई तनिक कम होने से पालकी उनकी ओर झुक कई थी। तब संभवतः ऋषि अपना भार नहीं उठा पा रहे हैं यह देखकर उनकी अवहेलना करके उन्हें लात मारकर 'सर्प सर्प' कह कर उन पर धाक जमाया। नहुष ने 'शीघ्र चलो' कहते ही अपमानित हुए अगस्त्य ने भृगु के साथ शापवाणी का उच्चारण किया। क्यों कि नहुष ने जब लात मारी थी, वह अगस्त्य के बदले में उनकी जटा में स्थित उनके मित्र भृगु ऋषि को लगी थी। अगस्त्य ने कहा, 'हे राजा नहुष, तुम मदांध हुए हो, तुम अपनी सुध-बुध खो चुके हो। तुमने हमें सर्प सर्प कह कर हमारी अवहेलना की है, अतः मैं तुम्हें श्राप देता हूँ कि, तुम स्वयं सर्प बनकर पृथ्वी पर गिर पडोगे।' इसके आगे उन्होंने कहा, 'हे नहुष, तुम्हारा भ्रम है कि, इंद्रपत्नी शचि तुम पर आसक्त हुई थी, अपितु उसने किसी अप्सरा की भांति चतुराई से तुम्हारा तपोबल तथा आर्यत्व नष्ट कर दिया है। देवेन्द्र अभी यहाँ प्रकट होंगे।' अगस्त्य की शापवाणी सुनकर नहुष की आँखे खुल गई। उन्हें अपनी भूल पर पछतावा हुआ। उन्हें लगा कि अपने जीवन का सारा श्रेय खो गया है।''

''नहुष ने तुरंत पालकी से नीचे उतर कर ऋषियों की शरण ली। मुनि अगस्त्य के चरण छू कर कहा, 'हे मुनिवर, मुझे मेरे अपराध के लिए क्षमा कर दें। मैं पूर्णतः आपकी शरण में हूँ। आप दयाघन हैं। आप दयालु होकर हमें क्षमा करें। नहुष का पश्चात्तापदग्ध भाषण सुनकर कोमल हृदय के अगस्त्यों ने नहुष को इतना सबकुछ होने के पश्चात भी उःशाप दिया, 'हे नहुष, तुम्हारे वंश के धर्मराज युधिष्ठिर तुम्हारा उद्धार करेंगे'।''

''अगस्त्य मुनि का श्राप सत्य सिद्ध हुआ। उनकी शापवाणी से नहुष अजगर बनकर धरती पर गिरा। यह विशालकाय अजगर सहस्त्रों वर्षों तर जंगल में, पहाडियों में भटकता रहा। वह आज भी भटक रहा है। हे पांडवों, द्रौपदी माता को सौंगाधिक्त नाम के पुष्प मिलेंगे। उन पुष्पों के उग्र किन्तु सुगंधित दर्प से आप सह मोहित होंगे। भीमराज को यह विशाल अजगर दृष्टिगोचर होगा। परंतु हे भीम, आपको दयार्द्र होकर नहुष को उठाकर धर्मराज युधिष्ठिर तक लाना है, क्यों कि वे आपके पुण्यश्लोक पूर्वज हैं। संमोहित होकर अहंकारी बने हुए नहुष के लिए इतना दंड पर्याप्त है। युधिष्ठिर के केवल दर्शन मात्र से वे शापमुक्त होंगे। हे युधिष्ठिर, आप भी उनकी भांति पुण्यश्लोक होकर जन्म लेंगे, यह भविष्य अगस्त्य मुनि ने सहस्त्रों वर्ष पूर्व विदित किया था। हे पांडवो, अगस्त्य ने नहुष के सद्गुणों का सम्मान किया। इसके साथ ही उनका अहंकार निर्दालन करके उन्हें दंड भी दिया और उन्हें सन्मार्ग दिखाया। अगस्त्य के पास क्षमाशीलता की परमावधि है। कुलपति ने कथा निवेदन की।''

''हे अगस्त्ये, हमारे वंश की कथा सुनकर हम धन्य हुए। हम इस बात का ध्यान रखेंगे कि हमें अहंकार का स्पर्श न हो।'' पांडवों ने आश्वासन दिया।

''हे अगस्त्य, महर्षि अगस्त्य के शौर्य की कथां श्रवण करके वास्तव में हमें ब्रह्मानंद प्राप्ति का आनंद मिला हैं। अतः हे कुलपते, हमें अगस्त्य को मिलने की उत्कट इच्छा हुई है। अतएव हमें क्या करना चाहिए यह कृपा करके हमें बताएं।''

''हे पांडवों, अगस्त्य महर्षि मान्दार्य मलयपर्वत पर स्थित आश्रम में पूरा दिन व्यतित करते हैं और केवल रात्री को अगस्त्य पुरी के आश्रम में निवास हेतु आते है। रात्री के समय आपका उनसे भेंट करना उचित नहीं होगा, अपितु आप उन्हें मलय पर्वत पर ही मिलें।'' कुलपति ने मार्ग सुझाया।

“हे अगस्त्य, मलय पर्वत यहाँ से बहुत दूर है। क्या हमारे लिए वहाँ जाना सुविधाजनक होगा?” नकुल ने पूछा।

“हे अगस्त्ये, आपका ही परामर्श ठीक है। हमारे परम सखा बलराम के साथ तीर्थयात्रा के लिए दक्षिण में गए है। हम मनोवेग से उनसे संपर्क करके मलयगिरी जाने की योजना बनाते हैं। हे अर्जुन तुम कृष्णसखा से संपर्क करके मलयगिरी यात्रा निश्चित कर। हम भी अपनी दक्षिण की यात्रा पूरी करेंगे। हम सेतुबंध से पुनश्च पंचवटी आएंगे, तब तक पांडवलेणी का काम भी पूरा होगा।” युधिष्ठिर ने कहा।

“जो आज्ञा भ्राताश्री”, अर्जुन ने प्रसन्नतापूर्वक कहा। यद्यपि पांडवों का वनवास पर्व चल रहा था, अर्जुन को कृष्णसखा से नित्य भेंट किए बिना चैन नहीं मिलता था। पांडव अगस्त्ये से भेंट करना चाहते हैं यह जानकर कृष्णसखा को बडी प्रसन्नता हुई। परशुराम, राम अवतार के पश्चात मानवी आविष्कार में भगवान विष्णु की अगस्त्य से भेंट नहीं हुई थी। अगस्त्यों ने दक्षिण में किए कार्य को देखकर तीर्थयात्रा करने वाले बलराम अतिप्रसन्न हुए थे। गोपालन, गोदोहन परंपराओं के निर्माता महर्षि अगस्त्य से मिलने के लिए वे उत्सुक थे।

*

जैसे ही श्रीकृष्ण को अर्जुन का संदेश मिला उन्होंने तुरंत अगस्त्य को मलयपर्वत पर पांडवों के साथ उन्हें मिलने आ रहे है यह समाचार विदित किया।

अगस्त्य ऋषि ने स्यमंत पंचक स्थान पर श्रीकृष्ण तथा उनके समेत पांडवों से भेंट करने का निश्चय किया। साक्षात विष्णू के पूर्णावतार से भेट होने जा रही है, इस विचार से ही अगस्त्य आनंदादोलित हुए। मुनि अगस्त्य द्वारा गोपालन को विशेष महत्व देने और इसे अधिक से अधिक बढावा देने और व्यवस्थापित करने का निर्णय लेने के पश्चात, उनके अभियान को यमुना, गंगा घाटी के यादवों और नंदकुलों का जोरदार समर्थन मिला। इस विचार को विराटों ने तो जंबुद्वीप में सर्वदूर फैला दिया था। अब उन विचारों को भी सहस्त्रों वर्ष बीत चुके थे। प्रभु रामचंद्र ने अगस्त्यों को पुरस्कृत करके गोपालन को उत्तर-दक्षिण मान्यता दी थी।

अगस्त्य मुनि की गोपालन परंपरा सहस्त्रों वर्षों से चली आ रही थी। युग बदलते गए और गोपालन का एक विनिमय में रुपांतर हुआ था। अगस्त्य ने आश्रम, कुल, राजवंश, गोपालक आदि गोपालन को महत्व देने वाली सभी संस्थाओं को गायों को अंकित अर्थात चिन्हित करना सिखाया था। अगस्त्य की विष्टकर्ण, वसिष्ठ की स्थूणाकर्ण्य, जमदग्नि की करकरिकर्ण्य गायें, जैसे चिन्हों वाली गायों की पहचान करने की प्रथा निर्माण की गई थी। कृष्ण परंपरा में अगस्त्य की इस परंपरा को विनिमय और वैभव मापन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ था। गौ पालन, गौ संगोपन, गौ रक्षा के लिए स्वतंत्र व्यवस्था अस्तित्व में थी। स्वर्ग में नंदिनी, कृष्ण की कपिला ऐसी गायें भी विख्यात थी।

अगस्त्य ने गायत्री मंत्र से पंचगव्यसेवन की परंपरा का प्रारंभ किया था। उस परंपरा को वैदिक ऋषियों, यहाँ तक कि सप्तर्षियों द्वारा भी प्रचलित रखा गया था। विराट, नंद जैसे वंश तो गोपालन में अग्रणी थे। दक्षिण में कर्नाटक, केरल, मद्रास, आंध्र, उडिसा में गायों को विशेष स्थान प्राप्त हुआ था। अगस्त्य के मार्गदर्शन से, गायें देवताओं और मनुष्यों के साथ-साथ दुष्ट प्रवृत्ति के राक्षसों के लिए भी महत्वपूर्ण हो गई थी। गाय अपने शरीर में सभी प्रकार के देवताओं, ऋषियों को धारण करती है। गाय साक्षात सृष्टि का रूप है और गोमुख अग्नि के समान सर्वव्यापी है। यह सत्य है कि कश्यप इस विचार के साथ आए थे किन्तु अगस्त्य ने उसे समग्र विश्व में प्रचलित किया। आयुर्वेद में गाय को सभी प्राणियों में प्राथमिकता दी गई है। गाय का पशुत्व नष्ट होकर उसे माता का स्थान प्राप्त हुआ है। गोपालन कार्य कृषिवलों की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। कृषि के लिए गाय के बछडे अर्थात बैलों का उपयोग किया जाने लगा और एक कृषि संस्कृति की स्थापना हुई। इसीलिए इन सभी परिवर्तनों के जनक महर्षि अगस्त्य, ब्रह्माविष्णुमहेश के लिए भी वंदनीय हुए। जब बलराम ने अगस्त्य के कार्यों की प्रशंसा की, तो भगवान श्रीकृष्ण मुस्कुरा रहे थे।

'अगस्त्यों से मिलना अर्थात परात्पर गुरू से मिलने जैसा है।'

भगवान श्रीकृष्ण बलराम के इस वचन को ध्यान से सुन रहे थे।

''हे ज्येष्ठ भ्राताश्री, आपने सत्य कहा, इसीलिए हम महर्षि अगस्त्य का यथोचित सम्मान करते है। उनका पूजन करके चरणतीर्थ सेवन करेंगे ताकि हमारी तीर्थयात्रा सफल हो।'' भगवान श्रीकृष्ण ने पुष्टि की।

पांडव मलय पहुँचे, उनके साथ श्रीकृष्ण और बलराम भी थे। पूर्वोत्तर भरतखंड दक्षिण में था। अगस्त्यों के कतृत्व से सभी दिशाएं एकत्रित हुई थी। अगस्त्य ने स्यमंतपंचक में पांडव और कृष्ण बलराम के स्वागत के लिए जोरदार तैयारी की। आश्रम सजाया गया। विशेष शांतियज्ञ की योजना बनाई। उन्होंने पांडवों के लिए प्रसाद रखा और अगस्त्य, पांडव और कृष्ण बलराम की प्रतीक्षा करने लगे।

''नारायण नारायण!'' सहसा नारद जी को आते देख अगस्त्य आश्चर्य चकित हुए।

''प्रणाम मुनिवर!'' नारद ने वंदन किया।

''प्रत्यक्ष परब्रह्म, कैवल्य, शिव जी से मिलने, उनकी पूजा के लिए शक्ति और संस्कृति के सगुण रूप के साथ मलयगिरी आ रहे हैं। जब आप सभी ऋषिगण स्यमंतपंचक में है, तो वे आप ही के पूजा के लिए आ रहे हैं। इसलिए मैं इस अपूर्व समारोह का लाभ उठाने यहाँ आया हूँ।''

''हे नारद, अच्छा हुआ आप आएं। पांडव भारत वर्ष में कुछ उपयुक्त कार्य करने में सक्षम होंगे। इसी कारण से विभिन्न शक्तियाँ उनके पास एकत्रित हुई हैं। उन शक्तियों का आवाहन करके प्रभु रामचंद्र की भांति श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन से दुष्ट प्रवृत्तियों का निर्दालन करने की उनकी प्रेरणा को जाग्रत करना है। इसके साथ ही भगवान श्रीकृष्ण का माहात्म्य भी उन्हें समझाना है।''

''हे महर्षि अगस्त्य मुने, आपका उद्देश सदा ही अत्यधिक श्रेष्ठ रहा है। तथापि उन्हें, मार्ग में आने वाली कठिणाइयों से भी अवगत होने की आवश्यकता है।''

''हे ब्रह्मर्षे, यह कार्य आपको करना होगा और मैं जानता हूँ, कि आप भी इसी उद्देश से यहाँ उपस्थित हुए हैं।''

''हे त्रिकालज्ञ अगस्त्ये, वो देखिए, श्रीकृष्ण-बलराम पांडवों के साथ आ रहे हैं।'' नारद ने कहा।

''अगस्त्य अपने सभी सहयोगी ऋषियों के साथ शीघ्रता से प्रवेश द्वार पर आएं। श्रीकृष्ण-बलराम को, साक्षात परात्पर गुरू अपने स्वागत के लिए आते देख तनिक संकोच हुआ। पांडवों सहित सभी ने श्री अगस्त्य महर्षि समेत सभी ऋषियों को साष्टांग प्रणाम किया। अगस्त्य, भगवान श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर का

हाथ पकडकर उन्हें आश्रम ले आएं। नारद मुनि ने भगवान श्रीकृष्ण की पूजा की। इस सम्मानजनक स्वागत के पश्चात भगवान श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर ने महर्षि अगस्त्य से कहा,

''आप हमारी पूजा स्वीकार करें और हमें यथावश्यक सभी प्रकार का उपदेश करें।

''तथास्तु!'' अगस्त्य ने पूजा का स्वीकार करते हुए मान्यता की। प्रत्यक्ष परब्रह्म, कैवल्य, शिव के इस अभूतपूर्व समारोह को देखकर ब्रह्मर्षि नारद भावसमाधि में लीन हुए।

श्रीकृष्ण, बलराम, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव सभी ने महर्षि अगस्त्य की विधिवत पूजा की। अगस्त्य ने प्रसन्न होकर सभीं को शुभाशिर्वाद देकर संतुष्ट किया।

''हे भगवन्, अगस्त्य मुने, हम अनन्य भाव से आप की शरण में हैं। हमें उपदेश करें।'' पांडवों ने भगवान कृष्ण के साथ प्रार्थना की।

''तथास्तु! हे पांडवों, सक्रियता, सत्य और सिद्धांतनिष्ठा, परकल्याण इच्छा जैसा कोई धर्म नहीं है। इसके लिए हिंसा अथवा छल का सहारा लेना उचित नहीं। परंतु सैद्धांतिक रूप से लड़ते हुए भी शस्त्र का शस्त्र से और मन का मन से संघर्ष होते समय सहृदयता और समावेशकता का भी स्वीकार करना आवश्यक है। प्राप्त परिस्थितियों में अपना निहित कार्य कर्तृत्व बुद्धि से करते रहना चाहिए। तथापि कोई भी कार्य, व्यापक लोक कल्याण हेतु करना ही श्रेयस्कर होगा। आप इस प्रकार कार्य कर रहे हैं, इसमें कोई संदेह नहीं हैं, तथापि आपके गुरुकुलों, और हे श्रीकृष्ण, आपके यादव कुलों को ब्रह्मा ने महत्वाकांक्षा, स्पर्ध्दा और बंधुद्वेष का श्राप दिया है। इस पर विजय प्राप्त करने के लिए हृदय में क्षमाशीलता का होना आवश्यक है। अन्यथा विनाश अवश्यंभावी है, इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। आप सभी पांडव पुण्यश्लोक हैं और आपके पास सद्‌गुणों का उपयोग करने का ज्ञान भी है। सद्‌गुण और सदाचार एक दैवीय संपत्ति है, परंतु सद्‌गुणों को व्यवहार से जोड देना चाहिए। इस दृष्टि से आप विचार करें। अंततः सर्वत्र आप की ही जीत होगी; क्यों कि प्रत्यक्ष परब्रह्म आपके साथ है।''

''हे महर्षि अगस्त्ये, आपके परामर्श का हम नित्य चिंतन करेंगे। हम आपके संदेश से कृतार्थ हैं। इसी प्रकार आपके मार्गदर्शन की कृपा हम पर बनी रहें।

पंचवटी स्थित अगस्त्य ने आपके संदर्भ में कई कथाएँ हमें विदित की हैं, तथापि आप त्रिकालज्ञ हैं, इसलिए आप हमें विभिन्न अवसर पर किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, इस संबंधी बताने का कष्ट करें।''

''हे महर्षि अगस्त्य ऋषे, आपने पांडवों को जो मार्गदर्शन दिया उसे सुनकर हम भी धन्य हैं। हमें आपसे मिलने की इच्छा थी, सो वह भी पूरी हुई। आपने हमारी पूजा स्वीकार की, हम धन्य हैं। आप हमें भी उपदेश दें।'' बलराम ने ज्येष्ठ होने के नाते प्रार्थना की।

''हे बलराम हलधर, आप कृषि संस्कृति के महान उपासक हैं। वास्तव में कृषि कर्म ही, एक प्रकार का यज्ञ है। आपको इसे बढावा देना चाहिएं। कृषि कर्म ही ऋषि का सच्चा कर्म है। सृष्टि की नित्य सेवा, प्राणिमात्र का नित्य प्रतिपालन, पंचतत्वों की नित्य पूजा, यही कृषिकर्म है। राज्य का शासन चलाते समय मुख्य रूप से कृषि लेन देन पर निर्भर रहना पडता हैं। कृषि सेवा में ही जीवन की स्थिरता समाविष्ठ है। गोपालन कृषि का अभिन्न अंग है। अन्न और पूर्णान्न दोनों के दाता कृषिवल होते हैं, इसलिए कृषिजीवन ही जीवन का सर्वोत्तम मार्ग है। कृषि कर्म करने वाला एक प्रकार से पृथ्वीपति ही है? आप दोनों इस कार्य में निरंतर सक्रिय और प्रयत्नशील रहते हैं। हे बलराम, भगवान श्रीकृष्ण आपके भ्राता हैं, वे भगवान विष्णु के पूर्णावतार हैं। सर्वकाल सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी, सर्वधाता भगवान श्रीकृष्ण विश्व के उद्धार के लिए कार्यरत रहते हैं। उनके मुख से जीवनमार्ग का सर्वथा मार्गदर्शन होगा ही, परंतु उन्होंने अर्जुन के साथ विश्व कों भी विश्वधारणा का मार्गदर्शन करना चाहिए। बंधुगोत्रज अंतर्गत द्वेषभावना, विनाश की ओर ले जाती है। इसी अंतर्गत द्वेष के कारण, कुरुक्षेत्र पर कौरव और पांडवों के बीच निर्णायक युद्ध होगा। उसका प्रभाव केवल जंबुद्वीप पर ही नहीं, अपितु वसुंधरा के सातों द्वीपों पर होगा; इस बात को ध्यान में रखते हुएं भविष्य में युद्ध न हो, इसलिए हे श्रीकृष्ण, आपको लोकबंध का महत्व विश्व को समझाना होगा।''

''हे महर्षि अगस्त्य ऋषे, आपकी आज्ञा हमारे लिए शिरोधार्य हैं। तथापि आप जानते हैं कि, व्यवहार में मेरी भूमिका गौण है। आप ही के परामर्श से यह निश्चित हुआ था कि, दुष्टों का निर्दलन करने की क्षमता सभी को प्राप्त हो, इसलिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश परशुराम, राम अवतार के पश्चात विष्णु के पूर्णावतार लेने पर भी उनकी भूमिका केवल मार्गदर्शक की ही रहेगी। केवल अनार्यवृत्ति

धारण किए शिशुपाल जैसे दुष्टों का मैं स्वयं आगे बढकर नाश करूँ, यह सुझाव भी आपने ही दिया था। इसलिए मैंने अघ, बक, कंस, आदि को नष्ट किया। कुरुकुल एक चक्रवर्ती सम्राट पद धारण करने वाला कुल है। मानव इतिहास में मनुष्य के इस राजनीतिक संघर्ष को मानव कल्याण के लिए छेड़ना है। इस में मुझे प्रमुख भूमिका नहीं निभानी है, यही आपका परामर्श है ना! हे अति प्राचीन ब्रह्मऋषें, तो इस स्थिति में मेरे लिए क्या आदेश है, कृपया बताएँ।''

''हे भगवन्, कुरुकुलोत्पन्न व्यास ऋषि द्वारा बनाए गए गुरुकुल में शिक्षासहित सभी पुराणों और परंपराओं की खोज और संकलन का कार्य चल रहा हैं। ये व्यास महर्षि भगवान ब्रह्मा के ज्ञानमूर्ति को आकार दे रहे हैं। इससे महर्षि व्यास मुनि समस्त ऋषि कुलों द्वारा जतन किए मौखिक परंपराओं, यज्ञसंस्थाओं का ग्रथन करने जा रहे हैं। वे और उनके शिष्य पुराणों, उपनिषदों, दर्शनों पर परामर्श ले रहें हैं। सप्तद्वीप के अनेक स्थानों पर सृष्टि विज्ञान, आयुर्विद्या, युद्धविद्या, कृषि विद्या, योगविद्या, भाषा विद्या, अथर्वण की अनेक परंपराएं मौखिक रूप से प्रारंभ हो गई हैं। वे इन मौखिक परंपराओं को संकलित करने और चिंतनपूर्वक ग्रथन करने में मग्न हैं। यद्यपि वे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद की रचना परिश्रमपूर्वक कर रहे हैं, वे कुरुकुलोत्पन्न होने के कारण स्वयं कुरुक्षेत्र का इतिहास लिखेंगे। साथ ही, हे श्रीकृष्ण, विपत्ति के अवसर पर अर्जुन भी मोहमग्न होगा और उसका आर्यत्व भी नष्ट होगा। ऐसे समय उसे दर्शन शास्त्र से क्रीयाशील करना होगा। इस अवसर पर आपको कर्मयोग, ज्ञानयोग और जीवन सफलता के मार्ग को व्यक्त करके लोकबंध को निश्चित आकार देना होगा। हे सर्वसाक्षी भगवन्, आपके मुख से साक्षात जगन्नियंता मर्त्यलोक को जीवनविद्या दान देने जा रहे हैं। यह तत्वज्ञान विश्वविख्यात होगा और मानवी मन के लिए दिशादर्शक सिद्ध होगा। एक प्रकार से वह एक जीवनगीत होगा। प्रत्यक्ष भगवान के मुख से प्रकट हुई भगवत्गीता होगी। इस तत्वज्ञान का प्रथम श्रोता अर्जुन होगा। हे भगवन्, इस निर्मिती से यह महायुद्ध विनाश से पुनर्निर्माण का कार्य सिद्ध करेगा। इस कार्य से आप समग्र विश्व को कृतार्थ करेंगे।

''हे महर्षि अगस्त्ये, मैं आपकी आज्ञा से ही यह कार्य करुंगा। अर्थात आपकी योजना नुसार इस तत्वज्ञान को महर्षि व्यास ग्रथित करेंगे और मेरा दुय्यम स्थान भी बना रहेगा। हे महर्षे आपके, परामर्श से हम पावन हुए।'' श्रीकृष्ण ने

आश्वासन दिया।

''महर्षि अगस्त्य ने प्रभु रामचंद्र की तरह पांडवों को भी कई अस्त्र दिएं। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि, अगस्त्य विद्या का प्रभाव समग्र भारत खंड में होना चाहिए। अत्यंत प्रसन्न होकर पांडव अगस्त्यों से परामर्श करके चले गए। उन्होंने दक्षिण के विभिन्न स्थान देखना आरंभ किए। उन्होंने देखा कि, सभी क्षेत्रों में अगस्त्य का मार्गदर्शन प्रचलित है। तंजावर में अगस्तिश्वरम, अगस्तियमपल्लई, मणिमति, रामसंतु, वैदूर्यपर्वत, दक्षिण के बदामी, अगस्त्यकूट, अगस्त्यस्थान ऐसे कई स्थान देखने के पश्चात पांडव पोथियिल पर्वत पर आएं। उन्होंने देखा कि, अगस्त्य का यहाँ एक बहुत ही भव्य और प्राचीन आश्रम था। आश्रम पहुंचने पर, महर्षि इध्मवाह ने अपने शिष्यों के साथ उनका यथोचित स्वागत किया।

''हे महर्षि इध्मवाह, आपको हमारा त्रिवार वंदन हैं।'' युधिष्ठिर ने कहा।

पांडवों का वंदन स्वीकार कर स्वयं इध्मवाह अत्यंत आदरपूर्वक उन्हें आश्रम लें गए। पांडवों ने उन्हें अगस्त्य की भेंट का समाचार सुनाया और महर्षि इध्मवाह से कहा,

''हे अगस्त्यपुत्र, कलपते, अगस्त्यों का पूजन यहाँ सर्वदूर होता हुआ हमनें देखा है। हमनें यह भी देखा कि, विभिन्न आश्रमों, भाषाओं में अगस्त्य विद्या पढाई जाती है। प्रत्येक आश्रम की एक विशिष्टता हमनें देखी है। पोथियिल पर्वत की विशेष कथा श्रवण करने के लिए हम उत्सुक हैं। कृपया हमें सुनाएँ।''

''हे पांडवों, यह तो मेरा कर्तव्य ही है। तथापि आप अभी आश्रम में हमारा आतिथ्य ग्रहण करें, कुछ समय के लिए विश्राम करें। आपके वास्तव्य से यह आश्रम पावन होगा। हे युधिष्ठिर, आपका पूजन करने की हमें अनुमति दें। आप प्रत्यक्ष यमधर्म हैं और दक्षिण तो यमधर्म पूजन की दिशा है।

''तथास्तु'' धर्मराज ने कुछ संकोच के साथ कहा; ''तथापि हे कुलपते, हमें भी आपके पूजन का अवसर प्रदान करें।''

एक दूसरे के पारस्परिक यथोचित पूजन के पश्चात उन्होंने आपस में एक दूसरे का कुशल पूछा। पांडवों ने वहाँ निवास किया। दूसरे दिन पांडवों ने इध्मवाह से कई प्रश्न किए और अगस्त्य के विषय में अधिक जानने का प्रयास किया।

''हे पांडवों, अगस्त्य की दृष्टि से इस पर्वत का माहात्म्य बहुत श्रेष्ठ है। महर्षि अगस्त्य का यहाँ सूक्ष्म देह से नित्य वास होता है। एक भी क्षण ऐसा

नहीं जब वे यहाँ नहीं होते। इसका एक कारण भी है, यद्यपि अगस्त्य ने दक्षिण में लोगों के जीवन को एक निश्चित आकार देने के पश्चात भी दक्षिण की ओर रावण द्वारा दिखाई गई अराजकता की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए, अगस्त्य ने यह व्यवस्था की है। अंतर्ज्ञान से इस पर्वत पर किसी भी समय अगस्त्य से भेंट की जा सकती हैं।

''श्री रावण का मार्गदर्शन, अगस्त्य द्वारा दक्षिण में किए गए सब से महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। अगस्त्य के सुझाव पर, रावण ने श्रीलंका मे जाकर वास्तव्य करने का निर्णय लिया और प्रभु रामचंद्र ने श्रीलंकाधिपति को परास्त करने हेतु पाण्ड्य क्षेत्र में सेतुबंध के पास इस पर्वत का उचित उपयोग किया। दक्षिण व्यवस्थापन की दृष्टि से यह आश्रम बहुत महत्वपूर्ण है। इसीलिए पिताश्री ने मुझे यहाँ निवास के लिए भेज दिया। हे पांडवों, यहाँ से समुद्र के परे तथा पृथ्वी पर सब कुछ देखा जा सकता है। यह अथर्वण विद्या का महाकेन्द्र है। अथर्व विद्या को स्थानीय लोकभाषा में प्रसृत करके, अगस्त्य ने सभी को मायावी शक्तियों से लड़ने के लिए सक्षम बनाया हैं। इस पर्वत की सबसे बडी विशेषता यह है कि, विश्वभर फैले ताम्रपर्ण का उदय अगस्त्यकूट अथवा अगस्त्यमैल पोदियिल पर्वत पर होता है। उसकी एक विलक्षण कथा मैं सुनाता हूँ।

''हे पांडवों, एक समय अगस्त्य पोथियिल पर्वत पर ध्यान कर रहे थे, एक वनस्पति ने एक महिला के रूप में अगस्त्य के सम्मुख जाने का साहस किया। उसने अगस्त्यों को प्रणाम करते हुए कहा,

''हे ब्रह्मर्षे आप एक महान तपस्वी और सर्वज्ञ हैं। मैं आपकी शरण में हूँ।'

''हे स्त्री, तुम कौन हो?'' अगस्त्य ने कुछ संदेह से पूछा। उन्होंने जान लिया था कि, वह कोई मायावी रूप है।

''हे महर्षे, मैं एक सामान्य स्त्री हूँ। आपके लोक कल्याण कार्य में मैं सहभागी होना चाहती हूँ।''

''महर्षि अगस्त्य उसका तर्क सुनने के लिए उत्सुक थे। वह स्त्री इंद्र दरबार की अप्सराओं की तरह सुंदर थी। वह आगे कहने लगी,

''मुझे ब्रह्मदेव ने निर्माण किया है और मुझे अगस्त्यों की सूचना नुसार कार्य करने के लिए कहा गया है। मैं कुछ ऐसा करना चाहती हूँ, जैसे कावेरी निरंतर

सभी लोगों को जीवन दे रही है। आपने ऐसी कावेरी की मनोकामना पूरी की, वैसे मेरी भी मनोकामना पूरी कर दीजिए।'' महर्षि अगस्त्य यह देख कर क्रोधित हुए कि, वह अभी भी अपना खुलकर परिचय दिए बिना कावेरी से ही अपनी तुलना करती जा रही थी और कामोत्तेजक अंगविक्षेप करके उन्हें आकर्षित करने का प्रयास कर रही थी।

''हे मादक स्त्री, ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके सदैव कार्यरत, मैं त्रिकालज्ञ एवम् सर्वसाक्षी होकर भी, तुमने अपना वास्तव रूप नहीं दिखाया, अतः तुम्हें पृथ्वी पर सभी को मादकता से उत्तेजित करते हुए दर दर भटकना होगा। तुम एक वनस्पति होकर भी, तुम्हें कोई पास नहीं रखेगा, कार्य समाप्त होते ही तुम्हें थूक देंगे।''

''जैसे ही अगस्त्य ने श्राप का उच्चारण किया, ताम्रपर्णी को प्रतीत हुआ कि, उसने रूप बदलने में बहुत बडी भूल की थी। वह अनन्यभाव से अगस्त्य के शरण में गई।

''हे ऋषिवर, आपसे विवाह करने की लालसा से मैंने ब्राह्मण कन्या होकर भी ऐसा भ्रामक रूप धारण किया। तथापि अब मैं आपकी शरण में हूँ। मेरा उद्धार करना केवल आपके हाथ में हैं, इसलिए आप ही मेरा उद्धार करें।'' ताम्रपर्णी के करुणाजनक बोल सुनकर, अगस्त्यों को उस पर दया आई और उन्होंने उसे उःशाप दिया।

''हे ताम्रपर्णी, तुम शिवजी की तपस्या करो। सहस्त्र वर्षों के पश्चात शेषनाग अवतार कृषिवृत्तिकर श्री बलराम के दर्शन से तुम्हारा उद्धार होगा और शिवप्रसाद के रूप में सब तुम्हें अपने पास रखेंगे। तुम्हारा सेवन करने से मन एकाग्र होगा और कई लोग आपस में जुड जाएंगे। अनजाने लोगों को जोड कर उनका स्वभाव जानने के लिए तुम्हारा उपयोग होगा। सोमरस की भाँति विशिष्ट कार्य एकाग्रता से करने के लिए तुम्हें सेवन करने की लत बहुतों को लगेगी।

''हे महर्षे, मैं सहस्त्र वर्षों तक तपस्या करने के लिए तत्पर हूँ; तथापि आप मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार करें।''

''तथास्तु, तुम्हारा हठ है तो, तुम्हें मेरी पत्नी के रूप में मान्यता प्राप्त होगी।''

''हे ऋषिवर, मैं धन्य हूँ। अब बस एक ही इच्छा है। यदि आपने मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर सम्मानित किया है, तो आप मेरे संदर्भ में

कृषिकर्म कैसे करें, इसका मार्गदर्शन करके मुझे पतिसुख का लाभ दें।''

''तथास्तु!'' अगस्त्य ने ताम्रपर्णी की इस मांग को भी स्वीकृति दी।

''हे पांडवों, यह ताम्रपर्णी विश्वविख्यात हुई है और शिवप्रसाद के रूप में उसका सेवन किया जाता है।''

*

दक्षिणपथ के पूर्व तट पर भीषण अकाल पडा। दानव, राक्षस, वानर, जांबुवंत, कोळी, समस्त लोगों का लहू सूख गया। क्या करें, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। पशु, पक्षी स्थानांतरण करके चले गए। वृक्षलताएँ जल गई। पर्वत आग उगलने लगे। सरोवर सूख गए। धरती फट गई थी। धरती पर अंगारे बरस रहे थे। वायु जैसे आग भडका रही थी। आकाश तपते हुए तांबे के मंडप की तरह हो रहा था। प्रत्येक उगता हुआ सूर्य समुद्र की लहरों पर आरूढ होकर आग से पृथ्वी को झुलसा रहा था। भूख और तृष्णा से लोग व्याकुल हो रहे थे। लोगों ने वरुण, इंद्र से दया की भीख माँगी। वर्षा के लिए अगस्त्य के सभी उपाय करके देख लिए। पोथियिल, अगस्त्य कूट पर महर्षि इध्मवाह, अगस्त्य अत्यधिक अस्वस्थ थे। पृथ्वी की अवस्था देख कर एक अपूर्व आतंक ने उनके अन्तर बाहर को उद्विग्न कर दिया था। अब इसमें कोई संदेह नहीं रहा कि, सूर्य ने ही प्रज्वलित किए यज्ञ में दक्षिण-पूर्व की पूर्णाहुति हो रही थी। उन्होंने मान्दार्य अगस्त्य से प्रार्थना की,

''हे मान्दार्य, इंद्रमरुत के बीच घनिष्ठ मित्रता निर्माण करने वाले, मित्रावरुण पुत्र, कावेरी नाथ, त्राहि भगवन्, यह आपका पुत्र, आपके असंख्य पुत्रों के साथ आपसे आपकी दया की भीख मांग रहा है। तंजावर ताम्रपर्णी क्षेत्र को वर्षा से समृद्ध बनाएं। हे मान्दार्य, वो आप ही हैं जिन्होंने भगीरथ को शिव के रूप में माता भगवती गंगा को दिया और सगर पुत्रों के कल्याण के लिए उन्हें पृथ्वी पर लाया और माता पृथ्वी एवम् समग्र उत्तर दिशा को सूखामुक्त बनाया। दक्षिण मध्य क्षेत्र में शूरपद्मा के अहंकार को नष्ट करके शांति स्थापित करने वाले आप ही हैं। अब जब कि, धरती माता के पद्कमल आग की लपेटों से पीडित हैं, तो हे लोकभावन अगस्त्ये, आप प्रसन्न होईएं!'' अपने पुत्र की यह लोककल्याणकारी

पुकार सुनकर अगस्त्य इध्मवाह के सम्मुख प्रकट हुए।

''हे अगस्त्यपुत्र, तुम ऋषिपद प्राप्त एक महान मानव्य स्वरूप अवतार हों। तुम्हें अपने पिता से दया की भीख मांगने की क्या आवश्यकता थी? हे इध्मवाह, मैं तुम्हारे स्तवन से प्रसन्न हूँ। भगवान शिव जी कृपा और मेरे आशीर्वाद से यहाँ सूर्यज्वाला से अंगार बना पर्वत द्रवीभूत होगा, यह पर्वत ताम्र धातु युक्त आरोग्यदायी जल निर्माण करेगा। इस मित्रावरुण के कहने पर हे पुत्र, तुम शिवाराधना करो। भगवान महारुद्र का आवाहन करो, प्रत्यक्ष सूर्यमुख से उन्हें अर्ध्य दो। तुम्हारे आवाहन पूर्वक किए गए महायज्ञ से भगवान शिवजी प्रसन्न होकर आप सभीं की मनोकामना पूरी करेंगे।

इध्मवाह ने महर्षि अगस्त्यों की आज्ञा के अनुसार, भगवान शिवजी को प्रसन्न करने के लिए ध्यान, जाप, यज्ञ, पूजन तथा स्तोत्रों का महोत्सव किया। इस पर्व के लिए प्रत्यक्ष सूर्यनारायण का आवाहन किया। आर्त प्रजा द्वारा इध्मवाह के नेतृत्व में किए इस महोत्सव से भगवान शिवजी प्रसन्न हुए।

''हे अगस्त्यपुत्र अगस्त्ये, मैं तुमने आरंभ किए इस उत्सव से प्रसन्न हूँ। बता दो, तुम्हारी क्या इच्छा है।''

''हे सर्वसाक्षी भगवन्, आप सर्वज्ञ हैं। आप हमारी मनोकामना भली-भांति जानते हैं। इतना ही नहीं किन्तु उन इच्छाओं की पूर्ति करने वाले भी आप ही हैं। हे भगवन्, हम तृष्णा से अति व्याकुल हैं। हम सूर्यनारायण के महातेज से जल रहें हैं। सूर्यनारायण के उग्र रूप से पृथ्वी क्षुधापीडित है। इसलिए हे भगवन्, हमारी इच्छा है कि, आप हमें प्रसाद के रूप में एक निरंतर उत्साहक एवम् हमें जीवन दान देने वाली नदी दे दें।''

''तथास्तु! हे लोक कल्याणकारी इध्मवाह, तुम स्वयंप्रकाशी तारा के समान सभी को प्रकाश देकर उनके दुखों को दूर करने वाले हों। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हें अखंड जीवनदान देने वाली नदी तुम्हारे इसी उत्सवस्थल से निर्माण होगी। यह नदी ताम्रधातुयुक्त है और इसके पवित्र एवम् औषधि जल को अगस्त्य के आयुर्विद्या के उपयोग में लाया जा सकता है। यह नदी वास्तव में गंगा का ही रूप है। परंतु इस बात का ध्यान रहे कि, इस नदी को कावेरी की तरह ही स्वीकार किया जाए।''

''अर्थात हम सभी इस नदी का भी, कावेरी माता समान एक तीर्थ स्थल

के रूप में पूजन करेंगे तथा उसे माता के रूप में सम्मान देंगे।''

''हे भक्त शिरोमणि इध्मवाह, आप माता कावेरी का चिंतन करें और देखिए, एक ही क्षण में नदी का आपके सम्मुख उद्‌गम होगा। लाल रंग का उसका जल अत्यधिक तेजस्वी तांबूल का तेजोमयी स्वाद लेकर प्रकटता है। इस जल के प्राशन से पृथ्वी की तृष्णा तो बूझ ही जाएगी तथापि पशु-पक्षी भी आनंद से जी सकेंगे।''

सभी ने कावेरी का चिंतन किया। मेघों की गडगडाहट सी गर्जना करते हुए नदी अवतीर्ण हुई। भगवान शिवजी भी अंतर्धान हुए। अगस्त्य पुनश्च प्रकट हुए।

''हे पुत्र, हमें यह नदी शिवप्रसाद के रूप में प्राप्त हुई है। इस नदी को ताम्रपर्णी नाम से जाना जाएगा। इस शिवप्रसाद पर अर्थात नदी के तट पर कई तीर्थस्थान निर्माण होंगे और लोगों को पवित्र किया जाएगा।''

''हे इध्मवाह, यह ताम्रपर्णी प्रभु रामचंद्र के पदस्पर्श से पावन होगी, इतना ही नहीं, किन्तु जब यह समुद्र से मिलेगी तो अपने मिलन क्षेत्र में शंख के साथ मोती की भी उपज होगी। ये मोती विश्वविख्यात होंगे। श्रीलंका का मार्ग ताम्रपर्णी से होकर जाएगा। युधिष्ठिर, द्रौपदी एवम् पांडवों के साथ इस ताम्रपर्णी का और प्रभु रामचंद्र के पदकमलों का दर्शन करेंगे और वहाँ यज्ञयाग करेंगे। यह नदी गंगा, सिंधु, सरस्वती, यमुना, कृष्णवेण्या, कावेरी, गोदावरी, अमृतवाहिनी समान अतिपवित्र है। उत्तर में ब्रह्मा द्वारा निर्मित सरस्वती, मध्य भारत के दंडकारण्य में सह्यपर्वत से शिवकृपा से अवतीर्ण अमृतवाहिनी प्रवरा और दक्षिण में अगस्त्यमलाई से अगस्त्य कृपा से उत्पन्न शिवप्रसादरुपिणी ताम्रपर्णी, जल प्राशन के लिए विश्व की सबसे उत्तम नदियाँ होंगी। इन नदियों के जल प्राशन से वाङ्मयकला समृद्ध होगी। जीवन समृद्धि, ज्ञान समृद्धि, एवम् स्वास्थ समृद्धि के लिए ये नदियाँ प्रख्यात होंगी।

''हे अगस्त्ये, आपने हमें बहुत ही गौरव शाली कथा सुनाई, जिससे हमारा अगस्त्य के कृषिविद्या से परिचय हुआ। इस पर्वत और आश्रम के संदर्भ में और भी कोई घटनाएं जुडी हों तो हमें बताएं।''

''हे पांडवों, इस पर्वत पर प्रभु श्रीराम एक समय पुनश्च परामर्श के लिए अगस्त्य के पास आए थे। प्रभु श्रीराम को समुद्र पार करके श्रीलंका जाना था। अगस्त्यों ने उन्हें सेतु मार्ग दिखाया। जिन्होंने पूरे समुद्र को पार करके सप्तद्वीपों

एवम् सर्व लोकों में संचार किया, वैसे महर्षि अगस्त्य के लिए यह कुछ भी असंभव नहीं था। महर्षि अगस्त्य ने श्री राम का समर्थन करने और गोत्रज बिभीषण का मार्गदर्शन करने के लिए सेतुस्थल के पास एक स्वतंत्र आश्रम की स्थापना की। अगस्त्य मुनि हनुमान को सेतु निर्माण करने की युक्ति समझाई और गोत्रज बिभीषण को रावण के मृत्यु के पश्चात दक्षिण में सबसे महत्वपूर्ण स्थान श्रीलंका के राजसिंहासन पर बैठाया।''

''हे इध्मवाह महर्षे, हमें महर्षि अगस्त्य के आश्रम कहाँ पर स्थित है, उनकी जानकारी दें। दक्षिण में आने के पूर्व हमने उत्तर में भी उनके कई स्थान देखे। पूर्व पश्चिम दिशाओं में भी अगस्त्य नाम की चर्चा हैं। क्या अगस्त्यों का इन सभी स्थानों पर संचार होता है?''

''हे पांडवों, इसमें कोई संदेह नहीं कि, आपको यह जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता हैं, क्यों कि आप जंबुद्वीप के कल्याणकारी शासक बनने जा रहे हैं। पृथ्वी पर ऐसा एक भी भू क्षेत्र नहीं, जहाँ अगस्त्य के लिए कोई आश्रम अथवा स्थान नहीं। यह जानने के लिए रावण ने सर्वत्र भ्रमण किया। समग्र विश्व में अगस्त्य का संचार होता हैं, और जब कि उनका अस्तित्व प्रत्यक्ष शिवस्वरूप में होने के कारण, सर्व काल अगस्त्य का अस्तित्व और संचार होता है। लौकिक रूप में उनका उत्तर में काशी, गंगाद्वार, मध्यभारत में प्रवरा तट पर अगस्त्यपुरी और गोदातट पर पंचवटी एवम् दक्षिण में बदामी, अगस्त्यकूट अथवा पोथियिल में वास्तव्य होता है। पश्चिम में पुष्करतीर्थ, प्रभास, रुद्रप्रयाग, दक्षिण में रामसेतु, अगस्त्यकुंड, गया में नर्मदा नदी पर अगस्त्येश्वर तीर्थ, अगस्त्येश, पूर्व में महानदी और वंग में अगन्तियाणपल्ली, हिमालय में अगस्त्यवट और वसिष्ठवट ऐसे स्थान हैं। इसके अतिरिक्त पश्चिम में समुद्र और समुद्रोत्तर भूमि पर, पश्चिम दक्षिण में अगस्त्य शिव स्थान है। पूर्व की ओर ब्रह्मावर्त में कई अगस्त्येश शिवालय हैं। हे पांडवों, इन स्थानों पर अगस्त्य का नित्य संचार होता हैं। कुछ स्थानों पर वे सायंकाल-निशाकाल, तो कुछ स्थानों पर प्रातःकाल, कुछ स्थानों पर माध्यान्ह के समय उनका वास्तव्य होता है, किन्तु मध्य निशा के समय वे अंतरिक्ष में अगस्त्य तारा के रूप में होते हैं। वहाँ पर उनका विस्तीर्ण आश्रम है। उस आश्रम में माता लोपामुद्रा, पुत्र इध्मवाह अर्थात मैं स्वयं और पिताश्री का ही वास होता हैं। उस आश्रम में सप्तर्षि और ब्रह्माविष्णुमहेश इन त्रिदेवों का चातुर्मास वास

होता हैं।''

''हे महर्षे, परंतु साधारण मनुष्य को यह सब कैसे ज्ञात होगा?'' युधिष्ठिर ने पूछा।

''हे पुण्यश्लोक, आपने बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है। तो सुनिए, अगस्त्य एक तत्त्व है। अगस्त्य तत्त्व का कई ऋषियों एवम् कई महान विद्वानों ने मनचाहा अर्थ लगाया है। प्रकृतिरुपिणी महामाया, महासरस्वती, शक्तिरुपिणी विश्वमाता पार्वती देवी ने मान्दार्यों को 'अगस्त्य' नाम से घोषित किया है। ब्रह्मांड एक विश्वनियंता अर्थात प्रत्यक्ष परब्रह्म के लिए भी एक कूट है। अगस्त्य उस द्रष्टा की उपाधि है जो अज्ञानरूपी चट्टान को तोड कर, उसे नष्ट कर या मार कर मार्ग दिखाता है। अदिति कश्यप से व्युत्पन्न मित्रावरुण, मान मान्दार्य अगस्त्य सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी और आर्य हैं। प्रत्यक्ष शिवस्वरूप हैं। मर्त्य लोक में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन षड्रिपु के साथ निर्माण हुए अहंकार से ब्राह्मण्य अथवा आर्यत्व अथवा तेजस्विता अथवा चैतन्यत्व नष्ट होता हैं और अज्ञान, अहंकार यही शक्ति है ऐसा लगता है, उस शक्ति को अहंकार का गंध आने लगता है, यही अनार्यत्व है। अगस्त्य इन अनार्यरूपी पर्वत, मेघ, अंधकार को नष्ट करके ज्ञान, अहिंसा, विनम्रता, ऋजुता, सामंजस्य, शक्तिमत्ता, स्नेह, उदारता, शांति आदि आर्य गुणों का उदय करते हैं। अगस्त्य अपने उदय से आज तक और ब्रह्मांड के अंत तक, आर्यगुणों का उदय करते रहेंगे। यद्यपि वे इस कार्य को सर्वत्रात्मक करने में सक्षम है, किन्तु लौकिक दृष्टि से ठीक नहीं होगा, इसलिए उन्होंने आश्रमों, गुरुकुलों की स्थापना की। इन आश्रमों, गुरुकुलों में मर्त्यलोक के जडचेतन प्राणिमात्रों के लिए उपयुक्त विद्याओं का नित्य अनुसंधान होता हैं। भाषा, कला, शास्त्रों का शोधन, पुनर्गठन एवम् प्रचार, प्रसार का कार्य होता है। मानव कल्याण हेतु यज्ञसंस्था का विकास, कृषिकर्म यज्ञ की साधना, दुष्टों का निर्दलन, सृष्टों का पालन एवम् संस्थापन के लिए नित्य परिश्रम किए जाते हैं। इसके लिए शिष्यों का संकलन, तथा युगोयुगों तक अगस्त्य के कार्य को आगे ले जाने के लिए युगपुरुषों की योजना का कार्य निरंतर होता है। इसलिए यह कार्य खंडित होना केवल असंभव है। मर्त्य प्राणिमात्रों के उद्धार के लिए भगवान विष्णु ने मत्स्य, कच्छ, वराह, नरसिंह, परशुराम, वामन, राम, कृष्ण, बुद्ध एवम् कलंकी जैसे अवतार लिए। इसके साथ ही ब्रह्मवेत्ता ऋषि, नदियाँ, पर्वत, श्रेष्ठ मानव, विभिन्न

तत्त्वों से निष्पन्न पांडवों जैसे अवतारी, मुनि, तपस्वी, संत, सिद्ध इन सभी का अगस्त्य तत्त्वों के प्रसार कार्य में उपयोग होता हैं। हे पांडवों, आप भी अगस्त्य के मार्ग से ही जा रहे ना? योग, कौशल्य एवम् कला के माध्यम से भाषा और अस्त्र-शस्त्रों की सहायता से इस विश्व को आर्यमय करने का कार्य अविरत चल रहा है।'' इध्मवाह ने निवेदन किया।

''हे इध्मवाह महर्षे, आपके द्वारा दी गई जानकारी से हम सबल हुए हैं। हमारे अंदर का अवसाद पूरी तरह से दूर हो गया है। अब हमें पूर्व की महानदी और गयाशिरस सरोवर का परिचय करा दें। हम तीर्थयात्रा कर रहे हैं। हमें महानदी के अगस्त्य आश्रम से ही आगे जाना है।'' युधिष्ठिर ने पुनश्च अनुरोध किया।

''हे पांडवों, अगस्त्य ने महानदी और गयाशिरस सरोवर परिसर में आश्रम स्थापित किया है। इसआश्रम का नाम ब्रह्मसरस है, और इस आश्रम में जाकर अगस्त्यों के दर्शन किए बिना अगस्त्य परिक्रमा पूरी नहीं होती। यद्यपि अगस्त्य की जन्मस्थली का उल्लेख गंगातट पर कलशतीर्थ के रूप में मिलता है; अगस्त्य मुनि का वास्तविक जन्म निश्चित रूप से प्रकाश और अदिता के कारण अर्थात मित्रावरुणी हुआ है। इसका अर्थ अगस्त्यों का जन्म सूर्यप्रकाश की आभा जिस मान-मानस सरोवर गंगापात्र में परिवर्तित होता है, वहीं हुआ है। यद्यपि वे वास्तव में अग्नि है, क्यों कि अग्नि यज्ञ का क्रम है और यज्ञ वर्षा का क्रम है, अगस्त्य अग्नि और जल दोनों के गुणों के साथ प्रकट हुए। परंतु शिवतत्व और प्रकृति का प्रथम स्थान हिमालय है। पुरुष प्रकृति से जीवों का उदय हिमालय में होने के कारण हिमालय ही अगस्त्य का जन्मस्थान है। कैलाश पर ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात वे गंगातट पर काशीक्षेत्र आएं। प्रयाग और गया में उन्होंने गुरुकुलों और आश्रमों के निर्माण से प्राप्त ज्ञान का प्रात्यक्षिक आरंभ किया। वंग क्षेत्र में अथर्वण विद्या प्रचलित हुई। परब्रह्म के आदेश से ब्रह्मदेव द्वारा यह उनकी उत्पत्ति और प्राप्ति थी। इसलिए वंग विद्या विकास केन्द्र ने ज्ञानप्रभा के केन्द्र से अगस्त्य परिक्रमा आरंभ करके शिष्यों, सहयोगी ऋषिमुनियों एवम् अगस्त्य गोत्रजों को अपनी विद्या की जाँच करके अगस्त्य के मार्ग पर चलने की रीति बनाई है। वंग से पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, पूर्व से यात्रा करते हुए महानदी और गयाशिरस परिसर में ब्रह्मसरस आश्रम में आने के पश्चात वहाँ संपूर्ण अगस्त्यविद्या का ज्ञान प्राप्त होता हैं। इसलिए अगस्त्य विद्या साधना में अंतिम स्थान के रूप में ब्रह्मसरस

नाम आश्रम को सुशोभित करता हैं। आप अपने वनपर्व में यह परिक्रमा पूर्ण कर रहे हैं, इससे आपको पूर्ण अगस्त्य विद्या प्राप्त होगी।''

''हे इघ्मवाह महर्षे, आपने जंबुद्वीप, महाभारत की यह परिक्रमा हमें विस्तार से कथन की, तथापि आपने सप्तद्वीप, वसुंधरा, भूतल और सूर्यलोक, इंद्रलोक, चंद्रलोक, शिवलोक, स्वर्गलोक, पाताल, रसातल, तलातल, बितल, ब्रह्मलोक, चंद्रलोक, अंतरिक्ष एवम् काल में अगस्त्यों का वास होता है ऐसा कहा, वो कैसे? मर्त्य लोक के मनुष्य को इन सब स्थानों की प्राप्ति कैसे होगी?''

''हे पांडवों, मैं आपको केवल इसलिए यह बता रहा हूँ, क्यों कि आपके मन में अगस्त्य को जानने की तीव्र इच्छा है। हे पांडवों, मर्त्य लोक का मानव किसी भी लोक में प्रवेश कर सकता है। इसके लिए वह अगस्त्य रूप धारण कर सूक्ष्म रूप से सभी स्थानों में संचार कर सकता है। योग सामर्थ्य से यह विद्या प्राप्त होती है। अपार श्रद्धा और तपोबल से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। समग्र विश्व में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणि है। देवलोक के देवताओं की अपनी विशेष शक्ति की सीमा होती है। उन्हें भी सफलता प्राप्त करने के लिए त्रिदेवों की शरण में जाना पडता हैं। त्रिदेवों में भी काल और ब्रह्म को धारणातत्व विष्णु की शरण में जाना पडता है; क्यों कि विष्णु रूप ही कैवल्य रूप है। ब्रह्मांड अवस्था को संचलित करने वाले परब्रह्म तत्त्व से कैवल्य का जन्म हुआ है और उसी क्षण विलय करने वाले कालपुरुष का जन्म हुआ। भगवान विष्णु ने उस रूप में परब्रह्म का स्वप्न देखा। ब्रह्मा ने उसे साकार किया। उसे नियमित करते समय सृष्टि और विलय का कारण भी काल बना। भगवान विष्णु की आज्ञा से बने इस महाविश्व में देवता, ऋषि, मानव का जन्म हुआ। उनमें भी दैवीय संपत्ति प्रचुर मात्रा में भर दी थी। किन्तु जैसे जैसे मनुष्य को विभिन्न शक्ति समुच्चय से आकार दिया गया, उन शक्तियों के विचरण से विकार निर्माण हुएं। अर्थात इन विकारों के व्यवस्थापन का उत्तरदायित्व ब्रह्मा पर आ गया। इसलिए ब्रह्मा ने ऋषियों, कलाकारों को त्रिदेवों का कार्य करने की प्रेरणा दी। जहाँ भी संभव हुआ, स्वयं अवतार लेकर कार्य किया। इस उद्देश्य के लिए अगस्त्य का स्वयंप्रकाशी अंतरिक्ष स्थान विनियमित किया है। ब्रह्मा के आशीर्वाद से, सप्तर्षियों ने मर्त्य लोक को नियमित दिशा देकर उनका निरीक्षण पूर्वक मार्गदर्शन करने के लिए सप्तर्षि और ध्रुवतारा की योजना बनाई।''

''हे इघ्मवाह महर्षे, आपने हमें जो ज्ञान दिया है, उससे हम प्रसन्न हैं। अगस्त्य की कृपा से हमें बल प्राप्त हुआ हैं। अब हमें बताएं कि, परिक्रमा पूरी करने के लिए यहाँ से किस मार्ग से जाना होगा, ताकि हमारी यात्रा सफल हो सके।''

''हे पांडवों, आप अगस्त्य सरस तीर्थ में स्नान करके फिर आगे बढे ताकि आपकी यात्रा सफल हों।''

''हे महर्षे, हम इस तीर्थ का माहात्म्य जानने के लिए उत्कंठित हैं।''

''हे पांडवों, मेरूपर्वत का वैभव देख कर विंध्य पर्वत के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। अगस्त्य शिष्य विंध्य ने हठ किया कि, सूर्य और चंद्रमा ने उसकी भी परिक्रमा करनी चाहिए और वह उंचा बढता ही गया। उसने अपने आपको इतना उंचा बढाया कि उसने उत्तर और दक्षिण ऐसे दो भाग किए। उस संघर्ष से बाहर निकलने का मार्ग खोजने के लिए अगस्त्यों ने अगस्त्यसरस तीर्थका निर्माण किया। इस तीर्थ में स्नान करने से उत्तर और दक्षिण के बीच टूटा हुआ संबंध स्थापित हो सकता था। विन्ध्य को ज्ञात हुआ कि, उसके उँचा बढने के उद्देश्य को उसके ही गुरू ने विफल कर दिया था। विंध्य को अपने गुरू से मार्गदर्शन प्राप्त करने की इच्छा हुई। इसके लिए उसने भी अगस्त्यसरस तीर्थ क्षेत्र में स्नान किया और अगस्त्य का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए अपनी योग्यता सिद्ध की। हे पांडवों, इस तीर्थ में स्नान करने से आपको अपने द्वारा अनुसरण किए मार्ग का स्पष्ट ज्ञान होता है और मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति प्राप्त होती है।

इघ्मवाह महर्षि से विपुल ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात पांडव पुनश्च तीर्थयात्रा के लिए निकल पडे। मानव कल्याण का उनका अगला लक्ष्य अब स्पष्ट था। संघर्ष से मार्ग निकालने का उपाय भी अब स्पष्ट हुआ था। द्रौपदी ने युधिष्ठिर से पूछा,

''हे धर्मराज, यदि हम अगस्त्य के मार्गका अनुसरण करते हैं, तो हमारी यात्रा वास्तव में कठीन होगी।''

''हे द्रौपदी, जैसा कि महर्षि अगस्त्य ने कहा था कि, जब साक्षात भगवान श्रीकृष्ण हमारा समर्थन करने के लिए हमारे पक्ष में हैं, तो चिंता किस बात की? इसमें कोई संदेह नहीं है कि, हम अगस्त्यों के शुभाशीर्वाद से कठिनाईयों के पहाड

भी बडी सरलता से दूर हटा देंगे।''

''हे पांडवों, अगस्त्य के दर्शन करने के पश्चात मुझे लगता है कि, हमें कुछ समय के लिए अगस्त्यसरस तीर्थ में निवास करना चाहिए।''

''हे द्रौपदी, यदि तुम्हारी भी यही इच्छा है, तो हम भी वहीं चाहते हैं।''

पांडवों ने अपनी तीर्थयात्रा के साथ अगस्त्य परिक्रमा पूरी की। कई दुष्टों का नाश करते हुए पांडवों के पराक्रम ने समग्र भारत में आश्वासक बल प्राप्त किया था। ब्रह्मसरस आश्रम में निवास करते समय एक दिन द्रौपदी सहसा अत्यधिक श्रम से मुर्च्छित हुई। वनपर्व की यह पहली घटना थी। महापराक्रमी पांडव भी घबडा गए। आश्रमवासी कुलपति अगस्त्य ने पूछ ताछ करने के पश्चात उन्हें वास्तव का ज्ञान हुआ। वे अति प्रसन्न थे। उन्होंने गयाशिरस सरोवर का तीर्थ लाकर द्रौपदी के सिर पर तीर्थ का प्रोक्षण किया। द्रौपदी मूर्च्छित अवस्था से जागृत हुई।

''हे पांचाली, तुम किस कारण मोहनिद्रा में गई थी?''

''हे कुलपति अगस्त्ये, मान मान्दार्य अगस्त्य ही मुझे पूर्व जन्म में ले गए थे। उन्होंने मुझमें शक्ति निर्माण की। इसलिए अगस्त्य का तेज अब मेरे नेत्रों और बाहों में प्राप्त हुआ है। मोहमग्न हुई मेरे पंचप्राणों की शक्ति भी अब पुनः प्राप्त हुई हैं। अगस्त्य वास्तव में साक्षात शिव हैं। उनके आशीर्वाद से हम सोमवंशी लोग यह संग्राम भी अवश्य जीत लेंगे।'' द्रौपदी के इन शब्दों पर पांडव और कुलपति अगस्त्य प्रसन्न हुएं।

''हे महर्षि अगस्त्ये, आपके कारण हमारी अगस्त्य परिक्रमा फलीभूत हुई है, किन्तु हमारी मन में और भी जिज्ञासा बनी हुई है। कृपया उसे संतुष्ट करें।''

''आप किस विषय में उत्सुक हैं?''

''हे महर्षि, अंतरिक्ष में अगस्त्यों के स्थान के बारे में बताएँ और महर्षि अगस्त्य के पूजा विधि संबंधी भी हमें मार्गदर्शन करें।''

''हे पांडवों, आपकी इच्छा सुनकर मैं प्रसन्न हूँ। आपकी इच्छा के अनुसार मैं आपको अगस्त्य के स्थानसंबंधी जानकारी देता हूँ। हे युधिष्ठिर, अगस्त्य अंतरिक्ष में उनकी सहचारिणी है। परब्रह्म की कृपा से ऋषियों ने अंतरिक्ष में अपना स्थान निश्चित करने के लिए यश प्राप्त किया।''

''सृष्टि, अंतरिक्ष, कैवल्य और काल से प्रेरित होकर, परब्रह्म की इच्छाओं को नियमित रूप से पूरा करने के लिए परब्रह्म के अंशात्मकता से अनगिनत

तेजोराशियाँ प्रकट हुई। ये तेजोराशियाँ विभिन्न प्रकार से उत्पत्ति का आविष्कार करने के लिए बनाई गई हैं। इन तेजोराशियों में ऋषियों की योजना सूर्यलोक, चंद्रलोक, इंद्रलोक, शिवलोक, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, भूलोक, स्वर्गलोक, नर्कलोक, पाताल, रसातल, तलातल, वितल, वैकुंठ, कैलाश इन सूर्य तेजोराशियों में सुव्यवस्थित संरचनाओं को सुनियंत्रित करने के लिए ऋषियों के स्थान बनाएँ गए। परब्रह्म की आज्ञा से निर्माण हुए इन स्थानों को ऋषियों के गौरवशाली अस्तित्व का प्रत्यय ऋषियों के कल्याणकारी और ज्ञानदान कार्य से मर्त्य लोकों ने अनुभव किया। इन सभी ऋषियों को शाप, उःशाप का अधिकार प्राप्त था। उनके ही आशीर्वाद से मर्त्य मानव तपोबल से ऋषि पद तथा मुनिपद को प्राप्त कर सकते थे। ऋषि परिवार को वर्धिष्णू करने से मर्त्य लोक और अधिक सुव्यवस्थित हो रहा है।

''महर्षि अगस्त्य का तारा इस प्रकाशराशि में 'ऋषि प्रकाशराशि' से विख्यात है।''

''अगस्त्य अपने यज्ञकर्म में दान-पुण्य से स्वर्ग में एक उच्च स्थान प्राप्त करते हैं। वे सौरमंडल में रहकर अमर हो जाते हैं। सज्जन लोग जब स्वर्ग में जाते हैं तो उनके प्रकाश के रूप में तारे चमकने लगते हैं। ऐसा भ्रामक विचार भी प्रचलित है। तथापि महर्षि अगस्त्य दक्षिण के अपने उच्च श्रेणी के कार्य से तारापुंज में सिद्ध हुए हैं।

**'उच्चा दिवि दक्षिणावंतो अस्थुर् में अश्वदाः सह ते सूर्येण।**
**हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः।।**
**एनानि वै दिवो ज्योतिषि तान्येवाव रुन्ये**
**शुक्रतां वा एतानि ज्योतिषि येन नक्षत्राणि...'**

यज्ञ कर्म करने वाले व्यक्ति को तारा का रूप प्राप्त होता है।

**'असतः सद् ये ततक्षुः। ऋषय सप्तात्रिश्च यत।**
**सर्वे त्रयो अगस्त्यश्च। नक्षत्रैः संस्कृतो वसेन।।'**

अगस्त्य मुनि के साथ सप्तर्षि 'धर्मज्ञानी ऋषि प्रकाशपुंज' के रूप में स्वर्ग हैं। दक्षिणी सप्तर्षियों में अगस्त्य और इघ्मवाह स्थित हैं। अगस्त्य की अलौकिक गतिविधियों जैसे समुद्र प्राशन, विन्ध्यदमन आदि के कारण, अगस्त्य अंतरिक्ष और पृथ्वी पर आश्रम स्थापित कर सकते हैं। मिस्त्र (इजिप्त) की संस्कृति में यह

स्पष्ट है कि अगस्त्य को पृथ्वी पर कॅनोपस कुंभोद् भव तारा के रूप में जाना जाता है।

''पुराण कथाओं के अनुसार विष्णु परंपरा में अगस्त्य का स्थान अगस्त्य तारों के उत्तर की ओर, अजविश्या के दक्षिण में, वैश्वानर मार्ग के बाहर, पितृयाण है। भविष्यद्रष्टाओं का मानना है कि, ध्रुवमंडल के उपरी क्षेत्र में अगस्त्य नक्षत्र गतिशील होकर संचार करता है। आकाशीय ध्रुवमंडल के सप्तर्षियों मे अगस्त्य अथवा कॅनोपस दूसरा सब से बडा तारा है। इसका रंग पीला है और यह सूर्य की कक्षा में सूर्य की परिक्रमा कर रहा है।

''राशिचक्र के अनुसार अगस्त्य का उदय तब होता है, जब सूर्य के कन्या राशि में प्रवेश करने के लिए बहुत ही कम समय होता है। उत्तर भारत में वह स्पष्ट दिखाई देता है और सूर्य का हस्त नक्षत्र में प्रवेश करते समय अगस्त्य का अस्त होता है। सामान्यतः श्रावण मास में अगस्त्य तारा का उदय होता है। अगस्त्योदय के समय जलाशय शांत और निर्मल होता है।''

**'उदयेच मनुरगस्त्य नाम्नः कुसुमा योगमल प्रदूषितानि।**
**हृदयानी सताविम स्वभावात् पुनरम्बु निभवन्ति निर्मलानि।।'**

''इस तारा के दर्शन, पूजन से कई अच्छे और बुरे परिणाम मिलते हैं। अगस्त्य नक्षत्रों की पूजा अगस्त्य तेजा की पूजा है।''

''निरंतर सात वर्षों तक इस तारा को अर्ध्य देने से राजा सार्वभौम हो जाता है। अगस्त्य व्रतों का पालन करने से सभी प्राणिमात्रों को लाभ होता है। अगस्त्य तारा यदि मट मैला रंग का दिखाई दें, तो अकाल का संकेत होता है, और यदि अस्पष्ट दिखता है तो गोमाता के लिए अशुभ माना जाता है। स्वच्छ, तेजस्वी, सुनहरा स्फटिक शुभ्र अगस्त्य तारा पृथ्वी पर अन्न उत्पाद की समृद्धि करता है। अगस्त्य जब धूमकेतु अथवा उल्का के संपर्क में आता हैं तो अकाल और बीमारी जैसी आपदाएं आती हैं।

''ज्यो व्यक्ति अगस्त्य नक्षत्र के उदय के समय अगस्त्यार्ध्य व्रत रखता है, उसे प्रातः जल्दी उठना चाहिए। सफेद तिल के जल से स्नान करें और सफेद फूलों की माला धारण करें। यह व्रत शिवव्रत के समान है। फिर बिना छेद वाले कलश को जमीन पर रखें, सफेद फूल, कपडे से सजाएं, उसमें पंचरत्न डालें। एक पात्र में घी भरकर कलश पर रख दें। चार सिर और चार लंबी भुजाओं की

अंगूठे की उंचाई की छवि बनाकर कलश पर रख दें। उस कलश को सप्तधान से भरकर, वस्त्र से अलंकृत कर किसी विद्वान और गुणी व्यक्ति को दान कर दें। यदि नहीं तो यथाशक्ति दान करें। हो सके तो सवत्स (अर्थात बछडे के साथ) धेनु दान करें, किन्तु इसके खुर चांदी से और इसके सींग सुवर्ण से मढे होने चाहिए। गले में घंटी बांध कर सही व्यक्ति को गाय का दान करें। यह व्रत अगस्त्योदय के पश्चात सात दिन अथवा सत्रह दिन तक करना चाहिए। इस पूजन के अवसर पर अगस्त्यभार्या लोपामुद्रा का स्मरण करके उन्हें अर्ध्य देना चाहिए।

**'राजपुत्रि महाभाग ऋषिपत्नी वरानने।**
**लोपामुद्रे नमस्तुभ्यम् अर्ध्योंमे प्रतिगृह्यताम।।'**

''हे पांडवों, अगस्त्य नाम का वृक्ष दंडकारण्य में और दक्षिण में भी प्रसिद्ध हैं। माना जाता है कि अगस्त्य ने इस वृक्ष में सभी प्रकार की औषधियों का संग्रह रखा है। इस वृक्ष को बकवृक्ष से भी संबोधित किया जाता है। आयुर्वेद में अगस्त्य वृक्ष के नाम वंगसेन मुनिपुष्प, मुनिद्रुम हैं। यह वनस्पति पित्त, कफ, ज्वर और सर्दी के लिए गुणकारी है। सभी रोगों की शुरुआत इन्हीं चीजों की अधिकता से होती है। इन रोगों से बचाव के लिए अगस्त्य वृक्ष और फूलों का उपयोग किया जा सकता है। यह वनस्पति ठंड, शुष्क स्वरूप की होती है, इसका स्वाद कटु होता है। यह वातकारक होती है। यह वृक्ष छोटी मुलायम लकडी का बना होता है। इसके पत्तों और विशेष कर फूलों का उपयोग पूरक अन्न के रूप में भी किया जा सकता है। ये वृक्ष मंदिर परिसर में उगते हैं। कार्तिक मास में ये शिव को बहुत प्रिय है। अगस्ती के फूल सफेद या लाल रंग के होते हैं। श्रावण से मार्गशीर्ष तक ये वृक्ष फलों, फूलों से लदे होते हैं। इन फूलों को हादगा के फूल कहा जाता है। किन्तु समुद्र तट पर रहने वाले लोग आमतौर पर अगस्त्य के वृक्ष को नहीं छूते। एक समय अगस्त्य ने समुद्र प्राशन किया था। लोग उनका अच्छे और बुरे तरीके से स्मरण करते हैं। दक्षिण के लोग अकत्ती वृक्ष को अगस्त्य वृक्ष कहते हैं। अगस्त्य आयुर्वेद के शोधकर्ता इसलिए और शास्त्र के लेखक हैं, अगस्त्य आश्रम के चारों ओर अकत्ती वृक्ष खडे हैं। इसका उपयोग रसशाला और चिकित्सालय में किया जाता है।

''अगस्त्य ऐसे एकमात्र ऋषि हैं जिनका पृथ्वी पर एक वृक्ष और अंतरिक्ष में तारा के रूप में एक स्थान प्राप्त है।''

‘‘हे अगस्त्ये, आपने हमें अगस्त्य तेजोराशि की जानकारी देकर उपकृत किया हैं। आपकी इस जानकारी से हम अगस्त्य मुनि की यथाविधि पूजा कर सकेंगे एवम् श्रद्धापूर्वक पूजन से लोककल्याण का मार्ग भी प्रशस्त होगा। हे अगस्त्ये, अगस्त्य तारों के संकेत से कृषिवलों को पूर्वज्ञान प्राप्त होकर वे कृषिकर्म का सुनियोजन कर रहे हैं। हे अगस्त्यों, हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप यह उपयुक्त जानकारी सभी को दें एवम् जनकल्याण का मार्ग प्रशस्त करें।’’

‘‘हे पांडवों, अगस्त्य कुल का यह कुलाचार ही है। इस दृष्टि से अगस्त्य के आश्रम गुरुकुल ही है। यह एक गौरवपूर्ण बात है कि, आप इस आश्रम से अगस्त्य परिक्रमा पूरी करके जा रहे हैं। आनेवाला कल पांडवों को अगस्त्य परंपरा के अनुचर के रूप में देखता है। हे पुण्यश्लोक युधिष्ठिर, आपके आगमन और माता पार्वती की दिव्य अनुभूति से आश्रम पावन हुआ है। यह अनादि काल से लोककल्याण का मार्ग खोजने के अगस्त्य के निरंतर प्रयास का ही फल है।

हे अगस्त्यों, अब हमें किस मार्ग से जाना चाहिए यह बताइये।’’

‘‘हे पांडवों, आपको पुनश्च एक बार पंचवटी से होकर जाना होगा और अगस्त्यपुरी के अगस्त्य के साथ लोपामुद्रा और सिद्धेश्वर के दर्शन करने के पश्चात आगे प्रस्थान करना होगा।’’

ब्रह्मसरस आश्रम के कुलपति को विनम्रता से वंदन करके पांडव द्रौपदी के साथ दंडकारण्य में गोदावरी तट पर पंचवटी आएं और आश्रम के कुलपति से मिले। प्रवरा तट पर अगस्त्यपुरी में अगस्त्यों के दर्शन करने हेतु अनुमति प्राप्त कर वे अमृतवाहिनी प्रवरा तट स्थित आश्रम में अगस्त्यों के साथ माता लोपामुद्रा का दर्शन करके कृतार्थ हुए।

*

द्रौपदी के साथ पांडव महर्षि अगस्त्य को मिलकर जाने के पश्चात अगस्त्य का मन विचलित हुआ। महायुद्ध की आहट का उन्हें कब का पता लग चुका था। पूर्णावतार भगवन् को मार्गदर्शन करने का संदेश देने के पश्चात भी अगस्त्य शांत नहीं हुए थे। महायुद्ध के अवसर पर पुष्कर आश्रम अथवा गंगाद्वार जाकर रहना उनके लिए उचित होगा, ऐसा उन्हे लग रहा था। उन्होंने अपने मन में शिवपार्वती

का संदेश प्राप्त करने का निश्चय किया। उन्होंने अगस्त्यपुरी के सिद्धेश्वर स्थान पर शिवाराधना आरंभ की। अमृतवाहिनी तट पर शिवपार्वतीने अगस्त्य मुनि को दर्शन दिए।

''हे पुत्र, अनादि काल से, आज पहली बार तुम्हे विचलित होते हुए देख रहे हैं। तुम पर ऐसी कौनसी विपत्ति आई है? कौनसे संकट निवारण करने में तुम असफल हो जाओगे, ऐसा तुम्हे लगता है?'' माता पार्वती ने अगस्त्य से पूछा।

''हे माते, महायुद्ध छिड़ने वाला है। जंबुद्वीप में अर्थात महाभारत में न भूतो न भविष्यति ऐसा युद्ध होगा। मानव कल्याण हेतु भगवान शिवपार्वती विश्व में विभिन्न रूपों में प्रकट हुए हैं। मैं विमनस्क इसलिए हूँ कि, जब उन्होंने यह कल्याणकारी कार्य हम ऋषियों को सौंप दिया था, तो यह नरसंहारक महायुद्ध सम्मुख आकर खडा हुआ। क्या किया जाए, मैं समझ नहीं रहा हूँ। अतः आप ही मुझे परामर्श दें।''

''हे शिवस्वरूप अगस्त्ये, जब युगांतर होता है, तब प्रलय अटल है, यह तो आप को विदित है। मर्त्य लोक में प्रलय के पूर्व बुद्धिभ्रंश और बुद्धिभ्रंश से घोर हिंसा अटल होती हैं।''

''सत्य है भगवन्, परंतु हे प्रभो, मैं इस चिंता से अत्यंत व्यथित हूँ कि, प्रलय के पश्चात सृष्टिसती को उत्तम गति प्राप्त होने का क्रम नष्ट हो जाएगा।''

''हे नृषु प्रशस्तः लोकभावन, अगस्त्ये, आपकी चिंता स्वाभाविक है। परंतु सृष्टिनिर्मिती का अंतिम पर्व में प्रवेश होने जा रहा है। परब्रह्म इस बात का संकेत देता है कि, इस पर्व में मानव की श्रद्धा और अश्रद्धा, दैवीय संपत्ति और आसुरी संपत्ति ये दो वृत्तियाँ समानांतर रूप में कार्यरत रहेगी। सत् और असत् का संघर्ष युगों से चल रहा है। परंतु अब यह संघर्ष मानव के साथ निरंतर चलता रहेगा। माया, यातुशक्ति प्रबल होकर प्रलोभन का अधिराज्य अवश्यंभावी हैं। इससे अहंकार, यह स्थायी भाव होगा। हे लोकभावन, मातृवात्सल्य से और परब्रह्म की दैवीय संपत्ति निधान से आजतक आप कार्य करते आ रहे हैं, इसलिए यह चिंता आपको व्यथित कर रही है।''

''हे भगवन्, आपकी शक्ति और प्रेरणा से अगस्त्य विद्या का हम प्रचार-प्रसार कर रहें हैं। सप्तद्वीप और सर्व लोक में आश्रमों की व्यवस्था करके गुरुकुल स्थापित किएं। क्या वहाँ का कार्य निष्प्रभ होने का भय नहीं हैं?''

‘‘हे मुनिश्रेष्ठ, अगस्त्यविद्या अनादि और अनंत काल से मनुष्य के लिए प्रेरक विद्या है। यह विद्या कभी नष्ट नहीं होगी। वास्तविक सत्ता परिवर्तन के पर्व में लोककल्याण के लिए शिवशक्ति और अगस्त्य विद्या का ही उपयोग होगा। श्रीराम-रावण संघर्ष और कौरव-पांडव संघर्ष, ये अंतिम निर्णायक संघर्ष है। इसके बाद भी संघर्ष चक्र जारी रहेंगे। अगले लाखों वर्षोंतक संघर्ष अटल हैं। तथापि हे अगस्त्ये, आपने वानप्रस्थाश्रम स्वीकार किया हैं, तो आपको बिना विचलित हुए आपके तेजस्वी और सूक्ष्म रूप से निर्माण किए गए स्थानों से अपने मूल कल्याणकारी कार्य को जारी रखना होगा।’’

‘‘हे भगवन्, मुझे भारतीय युद्ध के अवसर पर उपस्थित रह कर सत्मार्ग पर कार्य करने की इच्छा है।’’

‘‘हे अगस्त्ये, आप की इच्छा हमेशा की भांति है परंतु महाभारत युद्ध के अवसर पर देवता, पंचतत्व, ऋषि, मुनि, विचारवंत, कलावंत की महत्वपूर्ण भूमिका यह रही है कि, उन्होंने प्रस्तुत युद्धकाल में ताटस्थ्यपूर्वक सत्प्रवृत्ति निर्माण होने के लिए निरंतर मार्गदर्शन करते रहना चाहिए।’’

‘‘हे भगवन्, इसका अर्थ तप सामर्थ्य, विद्या, कला का सत्व नष्ट होगा क्या?’’

‘‘हे ब्रह्मर्षे, ये सब अबाध हैं और सदा के लिए सह्य है क्यों कि, सभी ब्रह्मस्वरूप हैं, परंतु इन सभी बातों की केवल माया, अर्थात यातुशक्ति के आवरण में विचार और उपयोग किया जाएगा।’’

‘‘हे भगवन् क्या इसका कृषिक्षेत्र पर प्रभाव पडेगा?’’

‘‘हाँ, कृषक/कृषिवल यांत्रिक कार्य और तांत्रिकता पर अधिक निर्भर रहेंगे और कृषि कर्मों का भी व्यवहार करेंगे।’’

‘‘हे भगवन्, ऐसे समय में लोक कल्याण कार्य किस स्वरूप में प्रकट होगा?’’

‘‘हे अगस्त्ये, लोक कल्याण कार्य यह परब्रह्म का अस्तित्व रूप हैं। ऋषि, मुनि, तपस्वी, विचारक, वैज्ञानिक, लोकहितैषि यह कार्य स्वतंत्र रूप से करेंगे किन्तु उनकी प्रतिष्ठा की उपेक्षा की जाएगी। उनके कार्य का भी राजनीतिक के रूप में उपयोग करके सत्तास्पर्धा को बढावा मिलेगा।’’

‘‘हे भगवन् लोगों का भविष्य क्या होगा?’’

''हे मुनिश्रेष्ठ, लोगों के भविष्य का विचार करने का उत्तरदायित्व आपका हैं। इसके लिए हे मुनिश्रेष्ठ, लोकनेताओं को सत्प्रवृत्त करने के लिए हाथ में शस्त्र लिए बिना लोकोत्तर चमत्कार से लोकनेताओं समेत सबको आकर्षित करके लोकसमुदायों को मार्गस्थ करने का कार्य करना होगा। हे लोकभावन, इसके लिए हमें ऋषि-मुनि, तपस्वियों, देवताओ, दानवों से परे जाकर लोकमार्ग को अपनाना होगा।''

''हे भगवान् हम कौनसे कार्य करें यह स्पष्ट करके तद्नुसार हमें आज्ञा दें।''

''हे लोकभावन, आप विश्वपरिक्रमा करके मार्गदर्शन करें। इसके लिए लोकधारक, लोकबंध अवतारी भगवान श्रीकृष्ण की अर्थात परात्पर गुरुओं की शरण में जाकर कार्य करें। ब्रह्मशक्ति, शिवशक्ति भी सूक्ष्मरूप में कार्यरत होगी। उसी प्रकार कृषि कार्य भी सूक्ष्मरूप में रहकर कार्यरत होगा। अपनी स्थूल वृत्ति से व्रत, साधना, चमत्कार और वास्तविक तर्क का प्रचार करना आवश्यक है। इस प्रकार आपको अपने गुरुकुल से कार्य करना चाहिए। ऐसा कार्य हर युग में प्रलयकाल में युगों-युगों तक करना होता हैं। हे अगस्त्ये, दीप्तिमान तारा की अवस्था में आपको अविचल बनकर निरंतर सत्कार्य की प्रेरणा देते रहना चाहिए।''

''हे भगवन्, आपसे परामर्श करने के पश्चात मेरा विचलन कुछ हद तक नष्ट हुआ है। मैं गंगाद्वार आश्रम जाकर निष्पक्ष रूप में महायुद्ध का अवलोकन करूँगा।''

''हे महर्षे, उचित समय पर व्यास महर्षि आप से संपर्क करेंगे। आपने अपनी समुद्र शक्तियाँ पांडवों को दे दी हैं। उनकी जीत निश्चित है।''

''हे भगवन्, मेरा प्रणाम स्वीकार करें। हे माते, आपके आशीर्वाद से मैं यहाँ तक कार्यरत रहा हूँ। अब मेरे मन में माता का चिंतन, पूजन और पिताश्री की तपस्या में समय बिताने की इच्छा निर्माण हुई है।''

''हे ब्रह्मर्षे, ऋषि यह अवस्था ब्रह्मदेव के मानसपुत्र की है। इसलिए ऋषि केवल ध्यानमग्न नहीं रह सकते। सक्रियता ही उनका वास्तविक कार्य है। अतः निराश न होकर निरंतर अपने गुरुकुल का कार्य करते रहिए।''

अगस्त्य मुनि की चिंताओं को दूर करके भगवान शिवपार्वती कैलाश भुवन

चले गए। अगस्त्य गंगाद्वार की ओर चल पडे।

सहस्त्रो वर्षों के पश्चात उत्तर में गंगाद्वार पर अगस्त्य के आने की सूचना मिलते ही उत्तर दिशा आनंदविभोर हुई। गंगाद्वार आश्रम में मान मान्य मान्दार्य अगस्त्य का परंपरानुसार स्वागत हुआ। पाद्यपूजनोत्तर गोत्रज कुलगुरू अगस्त्य ने मान्दार्यों से कहा,

''हे परात्पर गुरो, हमारे लिए क्या आज्ञा है? आपके आदेश की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपकी तेजस्विता से यह परिसर दीप्तिमान हुआ है।''

''हे कुलगुरो, आश्रम में सोमयाग सत्रों के साथ साफल्य प्राप्ति यज्ञ का प्रबंध करें।''

''जो आज्ञा मुनिश्रेष्ठ।''

उत्तर में युद्ध छिड़ गया। महापराक्रमी योद्धा लडने के लिए कुरुक्षेत्र में एकत्र हुए। युद्ध के प्रारंभ मे ही अर्जुन के मन में सगोत्रों के प्रति मोह उत्पन्न हुआ और वह अपने शस्त्रों को उतार कर संन्यासी के भांति शांत हो गया। महर्षि व्यास को अंतर्ज्ञान से यह ज्ञात हुआ। महर्षि व्यास अपनी सभी गतिविधियों को छोड कर कुरुक्षेत्र की ओर निकल पडे। उन्होंने इस महायुद्ध को रोकने के लिए अपना संपूर्ण तपोबल दाँव पर लगाने का निश्चय किया।

''नारायण, नारायण, प्रणाम महर्षि व्यास।'' नारद ने व्यास को प्रणाम किया।

''प्रणाम ब्रह्मर्षे, आप क्या समाचार लेकर यहाँ उपस्थित हुए हैं?''

''हे व्यासमुने, आप कुरुकुल से हैं। तो आप कुरुक्षेत्र में किसके पक्ष में युद्ध करने जा रहे हैं?''

''अर्थात युद्ध रोकने के लिए?''

''वो कैसे?''

''हे ब्रह्मर्षे, वास्तव में द्रोण-भीष्म को महायुद्ध को रोकने के लिए प्रयास करने चाहिए थे, किन्तु यह संभव नहीं तो सका। अतः मुझे मेरे आश्रमकार्य को छोड कर पुनश्च कुलाचार में सहभागी होना पडा।''

''हे महर्षे व्यास, मुझे लगता है, आप शिवस्वरूप महर्षि से प्रथमतः युद्ध में सहभागी होना है या नहीं इस विषय में परामर्श लें, तत्पश्चात ही निर्णय लें।''

''ऐसा ही करते हैं, परंतु हे ब्रह्मर्षे, क्या महायुद्ध को रोकना मेरा कर्तव्य

नहीं?''

इस प्रकार चर्चा करने के पश्चात व्यास और नारद गंगाद्वार स्थित अगस्त्य आश्रम आएं। अगस्त्यों ने उनका यथोचित स्वागत किया और उनके आगमन का प्रयोजन पूछा।

''हे महर्षि अगस्त्य मुने, आप को अनादि काल से कालक्रम का अनुभव प्राप्त हैं। हम यहाँ इस विषय पर आपसे परामर्श लेने हेतु उपस्थित हुए हैं कि, महर्षि व्यास का कुरुक्षेत्र के महायुद्ध में सहभाग लेना कहाँ तक उचित होगा?''

''हे महर्षे, आप सर्वज्ञ हैं और प्रत्यक्ष ब्रह्मज्ञानी भी। वास्तविक ब्रह्माने दसदिशाओं से उत्पन्न किए ज्ञान को आपने एकत्रित करके सिद्ध किया है। आप को क्या सूचित करूँ? अतः हे महर्षे, भगवान शिवजी द्वारा दिए गए उपदेश के अनुसार मैं आपको परामर्श देता हूँ।''

''हे महर्षे, शिवजी ने किए उपदेश की आवश्यकता सभी ऋषियों को हैं। कृपया हमें विदित करें।'' ब्रह्मर्षि नारद ने कहा।

''हे महर्षि व्यास, ऋषियों को साक्षी बनकर शिवास्पद और कल्याणकारी कार्यों को बल प्राप्त हो ऐसा कार्य करना चाहिए। अपनी शक्तियों को ताटस्थ्यपूर्वक केवल सत्कर्मों के लिए ही उपयोग में लाना चाहिए। अतः हे व्यास, आप इस महाभारतीय युद्ध के साक्षी बनकर इस महायुद्ध का इतिहास लिखें और सगोत्रों के संघर्ष से कैसे सर्वनाश होता हैं, यह स्पष्ट करें। साक्षात भगवान श्रीकृष्ण के मुख से अर्जुन को जीवनविद्या प्राप्त होगी। उस विद्या के आप साक्षी बनें। आपको दिव्यचक्षु प्राप्त हैं। उन्हें जागृत करके कुरुक्षेत्र में प्रतिक्षण घटने वाली घटनाओं को चक्षुवैसत्यम से प्रस्तुत करें। इन्हें सुनते-पढते मनुष्य की आँखे खुल जानी चाहिए। हे व्यास महर्षे आप सत्वयुक्त बीज को ब्रह्मांड में अंकुरित करने और संसार को प्रबुद्ध करने वाले अंतिम ऋषि हैं। ऋषिपरंपरा लुप्त होने वाली है। अतः आप यह देखे कि, मौखिक परंपरा से ऋषियों के ज्ञान को लेखन परंपरा में कैसे लाया जाएगा और प्रलय तक यात्रा करने वाले मनुष्य को कैसे प्राप्त होगा। हे महर्षे, आप साक्षात ब्रह्म हैं। आप जो संकलित, लिखित और ग्रथित करेंगे, उसके परे कोई कितना भी अन्वेषण करने का प्रयास करें, वह अधूरा ही रहेगा। 'व्यासोचिष्ट जगत्रय' ऐसा संकेतचिन्ह प्रचलित होगा। इसलिए मुझे लगता है, आपको बिना कुल का विचार करते हुए अपने आश्रम कार्य में मग्न होना चाहिए।''

''हे महर्षि अगस्त्ये, आपने मुझे बहुत ही सटीक रूप से निर्देशित किया है; मैं अवश्य इसका पालन करूँगा। हे ब्रह्मर्षे नारद, आपने सही समय पर उपस्थित होकर महर्षि अगस्त्य के दर्शन करवाएं हैं। हम धन्य हैं।''

भगवान महर्षि व्यास अपने आश्रम चले गए। अगस्त्य अपने चिंतन मे निमग्न हुए। श्रीमद नारद युद्ध का समाचार लेने कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थित हुए। वचनानुसार भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्‌भगवत गीता, भगवत् विद्या से कुरुक्षेत्र पर स्पष्ट करने का अभूतपूर्व प्रसंग महर्षि व्यास ने 'श्रीमद्‌भगवत्‌गीता' नाम से प्रसृत किया। अगस्त्य, व्यास और नारद अन्य ऋषियों के साथ महायुद्ध के साक्षी बने। प्रतिक्षण सर्वनाश करते हुए महायुद्ध चल रहा था। अंततः सर्वनाश होकर ही युद्ध समाप्त हुआ। द्रौपदी समेत पांडवों के मुख पर जीत के आनंद की सूचक मुसकान तक नही थी, अपितु सभी हताश थे। एक अनजाने अपूर्व आतंक ने उनके अन्दर-बाहर को उद्विग्न कर दिया था। युधिष्ठिर ने हस्तिनापूर का सिंहासन ग्रहण किया। कर्तव्यपरायणता से राज्यव्यवस्था की स्थापना की। अश्वमेधादि यज्ञ भी किए और चक्रवर्ती सम्राट युधिष्ठिर एकाएक उदासीन हुए, विरक्त हुए। पांडवों ने द्रौपदी समेत और कुरुक्षेत्र के वानप्रस्थाश्रमियों के साथ उत्तर की ओर गमन करने का निर्णय लिया।

श्रीकृष्ण विद्या का उत्कर्ष हुआ। एक प्रकार से भगवान श्रीकृष्ण ने यह कह कर स्वविरक्ति की घोषणा कर दी थी कि, कर्म और भक्ति मार्ग से अगली यात्रा में सब का उद्धार होगा। आपसी कलह होने से यादव कुल भी नष्ट हुएं। स्वगोत्रजों के बीच आपसी शत्रुता से सर्वनाश हुआ ऐसे कई उदाहरणों के साथ भागवत और महाभारत का भी अंत हुआ।

महर्षि व्यास और अगस्त्य सभी महाभारत के साक्षी थे। उन्होंने अपने आश्रमों के द्वारा अपना कार्य जारी रखकर निरंतर सेवारत रहने की मानो प्रतिज्ञा की थी। व्यास और अगस्त्य दोनों ने अमर कवच धारण कर रखा था।

यह मानते हुए कि, उनका वास्तविक प्रत्यक्ष कार्य समाप्त हो गया था, महर्षि अगस्त्य सभी आश्रम वासियों का मार्गदर्शन करने के लिए यात्रा पर निकल पडे। उत्तर वंग से अगस्त्यपद गया, प्रयाग, काशी आदि गंगातट के साथ-साथ अगस्त्यवर और वहाँ से सीधे पुष्कर तक, प्रभास से उज्जैन होकर विंध्यवासिनी को वंदन करके नर्मदा परिक्रमा के पश्चात गोदावरी परिक्रमा भी पूरी करके वे प्रवरा

तट पर अपने आश्रम में आएं। इन सभी यात्राओं मे लोपामुद्रा ने उनका साथ कहीं पर भी नहीं छोडा। अगस्त्यपुरी आने के पश्चात अगस्त्य ने कुछ दिन विश्राम किया। तद्नंतर वे पुनश्च यात्रा के लिए निकले। कावेरी परिक्रमा पूरी करके उन्होंने पोथियिल, श्रीलंका के साथ दक्षिणपूर्व एशिया के सभी आश्रमों को भेंट दी। कुछ समय के लिए बदामी में विश्राम करने के पश्चात वे महानदी और गयाशिरस सरोवर परिसर के ब्रह्मसरस आश्रम में आएं। वहाँ उनके मनमे विवस्वता के पास जाने की इच्छा निर्माण हुई। उन्होंने लोपामुद्रा से कहा,

'हे ब्रह्मवादिनी, हम जंबुद्वीप मे अपने सभी आश्रमों मे जाकर लौट आएं हैं। हम कृतार्थ हैं। अब विवस्वता के पास जाने का मेरा मंतव्य है। तुम्हारा क्या परामर्श हैं?

''हे अतिप्राचीन, अमर, तेजस्वरूप, लोकभावन ब्रह्मर्षे, आपके मन में यह विचार वास्तव में एक सामान्य साधक, मानव, सिद्ध अथवा अवतार धारण करने वाले पुरुष के समान है। परंतु तेजोराशी, आप, मैं और इध्मवाह स्वयंप्रकाशी तारापुंज हैं। यह तारापुंज सहस्त्रों मनु देखते-देखते परब्रह्म अथवा कैवल्य के अस्तित्व तक प्रकाशमान रहेंगे ही। फिर उदासीनता का विचार क्यो करते हैं? आश्रमधारी पारंपरिक गुरुकुलों की परंपरा और गोत्रजों की दृष्टि से इस विवस्वता को जाने का विचार सर्वथा हानिकारक है। भगवान शिवजी ने भी इस संदर्भ में आप को ज्ञान दिया है। इसलिए सौरमंडल के तेजोवलय में आपका अस्तित्व सदैव बना रहेगा इस प्रकार हम सभी को अपने अस्तित्व के साथ कैवल्य का स्मरण करते हुए प्रकाशमान रहना चाहिए।''

मर्त्य लोक के लिए मुक्ति, मोक्ष और सुविधा का विचार सही है, परंतु प्रत्यक्ष चराचर सृष्टि का व्यवस्थापन करने वाले दार्शनिकों को निर्गुण, स्वयं प्रकाशित होना आवश्यक होता हैं। परब्रह्म ने यह प्रमाणित किया है कि, एक दार्शनिक के रूप में अनंत काल से अनंत काल तक यात्रा करने वाले ऋषि और मुनिपद कैवल्य के ही एक रूप हैं। प्रकाशमान होना ही उनका स्थायीभाव है। लोकविद्या तथा परब्रह्मवाद में प्रकाशित होना अनिवार्य है। इसलिए हे भगवन् अगस्त्ये, ब्रह्मसरस आश्रम में आपके मन में विवस्वत जाने का विचार आया, इसलिए जंबुद्वीप के मनुष्य यह सोचेंगे कि आप विवस्वत चले गए हैं। तथापि, जहाँ प्रत्यक्ष भगवान शिवपार्वती ने अमृतवाहिनी निष्पन्न कर आपको अखंड

चिंतन करने की प्रेरणा दी थी, उसी अमृतवाहिनी प्रवरा तट पर स्थित अगस्त्यपुरी में आप स्थूल देह से संजीवनयुक्त समाधि योग साध्य करें। मुझे भी आप के साथ रहना अनिवार्य होगा। इघ्मवाह भी सूक्ष्मरूप से आपके समीप ही होगा। वहाँ गोदावरी का नित्य स्नान होता रहेगा, जिससे नित्य श्रीरामतत्व अभिव्यक्त होते रहेंगे। हमें यह सोचना चाहिए कि, अगस्त्यपुरी का अमृततत्त्व, पंचवटी का रामतत्त्व, साथ में पोथियिल स्थान का अगस्त्यतत्व, सूक्ष्म अस्तित्वसहित सर्वत्र संचार करता रहेगा ।

हे ब्रह्मवादिनी, लोपामुद्रे, तुम एक आदर्श सहधर्मचारिणी हो । पति का उत्तर कर्म सहधर्मचारिणी द्वारा संचालित हो, तो सृष्टि को अपने अस्तित्व का साफल्य प्राप्त होगा।

हे ब्रह्मर्षे, मुझ से यह किसी अपेक्षा से नहीं कहा गया था। मेरा और इघ्मवाह का आस्तित्व भिन्न नहीं है। वे आपकी तेजस्विता के केवल प्रतिरूप हैं। इसलिए आप सर्व लोक में अपना अस्तित्व शिवस्पर्श से शिवस्वरूप में अभिव्यक्त करेंगे। प्रकाश और पय, शिवतत्त्व और प्रकृतिमाता अथवा शक्तिमाता इनका अस्तित्व इस परब्रह्म के अभिव्यक्ति में है। तब तक सभी को हमारे अस्तित्व की अनुभूति होगी ।

हे महातपस्वी स्वयंप्रकाशी, ऋषिरुपिणी, भ्रमित पति को सही मार्ग कथन करना, इसी को कांतासंमित उपदेश कहते हैं। माता पार्वती निरंतर शिव जी को ऐसा उपदेश करती रहती हैं। इसलिए शिवतत्त्वों का नित्य संतुलन बना रहता है। विचलन को स्थिरत्व प्रदान करने वाली ऊर्जा को ही शक्ति कहते हैं। अतः हे मनभावन ब्रह्मवादिनी, हम अगस्त्यपुरी के सिद्धेश्वर के सान्निध्य में शिवपार्वती के मुख और आशीर्वाद से निर्मित अमृतवाहिनी अर्थात प्रवरा तट पर संजीवन समाधियोग आरंभ करते हैं।

‘‘हे ब्रह्मर्षे, यह यात्रा उस समय तक पूरी नहीं होगी, जब तक हम निरंतर कैवल्य का स्मरण करते हुए लोकबंध स्वरूप श्री विष्णुरूप मनमोहन श्रीकृष्ण के चिंतन में आसक्त नहीं होंगे। हे महर्षे इसके लिए हमें ब्रह्मर्षि नारद से परामर्श करने की आवश्यकता हैं।’’

‘‘नारायण नारायण, हे ब्रह्मवादिनी, हमारा प्रणाम स्वीकार करें। ब्रह्मर्षि अगस्त्य द्वारा इस नारद को आमंत्रित करना स्वयं को आमंत्रित करना है।

अतः मेरे लिए क्या आज्ञा है?''

''हे ब्रह्मर्षि नारद, हमारे आश्रम में आपका स्वागत है। हमें आपसे मार्गदर्शन की आवश्यकता है। आप सर्वसाक्षी, सर्वज्ञ हैं, इसलिए हमारा मंतव्य आप जानते हैं। अतः हमें बताईए कि नित्य कैवल्य का स्मरण होता रहेगा, ऐसा भगवान विष्णु का अस्तित्व हमें कहाँ मिलेगा।

''हे त्रिकालज्ञ, ब्रह्मर्षि अगस्त्ये, आप स्वयं सर्वज्ञ हैं, अतः हम आपको कुछ कहें, यह उचित नहीं तथापि हमारे मुख से ही हमारे प्रेयस और चिंतन विषय के स्त्रोत आप चाहते हैं, तो मैं अवश्य आपको बताऊँगा। हे अगस्त्यों, आप महायुद्ध से दुखी हैं। वास्तव में कैवल्यस्वरूप के अंतर्मन में सुख-दुख, क्रोध-मोह की भावना ही नहीं होती। तथापि, व्यावहारिक जीवन में अलौकिक न रहते हुए व्यवहार करना होता है, यह जानकर मैं आपको निवेदन करता हूँ।''

''आपको कांची नगर जाकर कैवल्य के पूजन में तल्लीन होना होगा। वहाँ प्रत्यक्ष भगवान विष्णु अपनी संपूर्ण लीला के साथ आपको दर्शन देंगे। वास्तविक त्रिदेव, ब्रह्मा विष्णू महेश आपके वश में हैं और आपके ऋषिकार्य में नित्य सहभागी होते हैं। तथापि कैवल्य को भी विभिन्न रूप में सज कर क्रीडा करने की इच्छा होती है, इसके लिए तो सृष्टि की यह योजना बनायी गई हैं। इसलिए हे माते, ब्रह्मवादिनी, आप दोनों के लिए कांची नगर जाकर श्रीकृष्ण भक्ति में लीन होना श्रेयस्कर होगा।''

''हे ब्रह्मर्षे नारद, हम आपके सुझाव के अनुसार शीघ्र ही कांची नगर जाएंगे।''

महर्षि अगस्त्य लोपामुद्रा के साथ अमृतवाहिनी आएं। अमृतवाहिनी के उगम स्थान जाकर दोनों ने भगवान शिव के लिंग स्वरूप मुख से स्त्रवण होने वाले अमृत का प्राशन किया। रत्नेश्वर, अमृतेश्वर को वंदन करके उन्होंने पास के आश्रम के निवासी महर्षि वाल्मिक की भेंट की। तत्पश्चात कलशस्थित पार्वती के दर्शनहेतु गएं। वहाँ से उन्होंने अगस्त्य पुरी में प्रवेश किया। सिद्धेश्वर का दर्शन करने के पश्चात वे अपने अगस्त्य आश्रम में आएं। विश्वसंचारी अगस्त्य ने विश्व में सर्वत्र स्थित अपने आश्रमों के ऋषियों, कुलगुरुओं, शिष्यों, परंपरावादियों, गोत्रजों को मिलकर उन्हें संजीवन समाधि का समाचार कथन किया। अगस्त्यों ने अगस्तिपुरी आश्रम में कुछ समय वास्तव्य किया, फिर कृष्ण भक्ति की व्यवस्था

की ओर वे यात्रा करने निकल पडे।

*

कौरव पांडवों के महायुद्ध का जंबुद्वीप में सर्वत्र प्रतिकूल प्रभाव पडा। साक्षात अगस्त्य भी विचलित हो जाए, ऐसा घोर संग्राम हुआ था।

वेदवेदांग के पारदर्शी ज्ञाता, ब्रह्मसाक्षात्कारी, त्रिकालज्ञ महर्षि अगस्त्य सर्वत्र संचार करते हुए कांचीनगर आए। भगवान श्रीकृष्ण के मंदिर में जाकर लोपामुद्रा के साथ उन्होंने श्रीकृष्ण के दर्शन किए। मन में कुछ निश्चय करके वे कांचीपूर के निकट वन में आए। एक अदृश्य मठ का निर्माण करके सामान्य यज्ञसत्रों की तुलना में एक भिन्न प्रकार से श्रीकृष्ण की मानसपूजा करना आरंभ कर दिया। योगी अगस्त्य एवम् योगिनी लोपामुद्रा ध्यानस्थ बैठे। पद्मासनस्थ अगस्त्य और लोपामुद्रा अदृश्य अवस्था में ध्यानयोग स्थिति मे निमग्न हुए। उनकी यह तपस्या कई वर्षों तक चल रही थी। अगस्त्यस्थान मान कर पारंपरिक लोग अगस्त्य को वंदन करते थे। परंतु अगस्त्य ध्यान की अवस्था से बाहर नहीं आए। अंतमे उनकी इस अवस्था की सराहना करते हुए अपने परिवर्तित भक्त को दर्शन हेतु लोकोपकारी श्रीमन्नारायण प्रसन्न हुए। उन्होंने शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी अत्यंत तेजस्वी रूप धारण किया था। श्रीमन् नारायण हयग्रीव के स्वरूप में प्रकट हुए। (हयग्रीव भगवान विष्णु के अवतार थे। जैसा कि नाम से स्पष्ट है उनका सिर घोडे का था और शरीर मनुष्य का। वे बुद्धि के देवता माने जाते हैं।) हयग्रीव ने अगस्त्य से कहा,

''हे वत्स, तुम्हारे उदारमनस्क निस्सिम तप से मैं अति प्रसन्न हूँ। अब तुम जो योग्य है, ऐसा वर माँग ले।''

''साक्षात भगवान श्रीनारायण अपने सम्मुख प्रकट हुए देख महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा आनंदविभोर हुए। वे विनम्रता से और अतीव भक्ति के साथ श्रद्धापूर्वक श्रीमन्नारायण का स्तोत्र गाते रहें। उन्होंने नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हुए कहा,

''हे प्रभो, यदि आप वास्तव में मुझसे प्रसन्न हैं तो कृपया इन संसारी लोगों का उद्धार करने के लिए इस वर्तमान स्थिति में उपयुक्त कोई उपाय बताएं।''

अगस्त्य ने प्रार्थना की।

''हे लोककल्याणकारी महर्षे, यही प्रश्न प्रथमतः शिव ने, तत्पश्चात ब्रह्मदेव ने, तद्नंतर दुर्वासा ने और अब आपने पूछा है। वास्तव में आप को ज्ञात है कि, मैं ही चराचर का स्रष्टा हूँ, पालनकर्ता और विध्वंसक भी हूँ। सृजन, रक्षण और विलय इन तीनों कार्यों के लिए मैंने ही अपने त्रिगुणों को ब्रह्मा, विष्णु और शिव में विभाजित किया है। ये तीनों अवस्थाएं मेरा ही स्वरूप है, इसलिए इन तीनों अवस्थाओं मे मैं ही स्थित हूँ। इनमें मेरे अस्तित्व को पुरुष कहा जाता है, जब कि मेरी पराशक्ति को प्रकृति कहते है। इसलिए मेरी शक्ति की उपासना यही मानव मुक्ति का सरल उपाय है। यमनियमों का पालन, त्याग भावना से निष्काम कर्म करके मनुष्य को मेरे तत्वों का बोध होता है। इस संसार में रहते हुए नित्य कर्मों का त्याग करना कठिन ही नहीं, अपितु असंभव भी है, यह ध्यान में रखते हुए मनुष्य को कुछ न कुछ कर्म तो करने ही पडते हैं। कर्म किया तो उसके फल को भोगने की वासना जागृत होना संभव है, स्वाभाविक भी है।''

''इसलिए दर्शनशास्त्र की ओर यदि प्रवृत्ति आकर्षित हो जाए तो जीवों का कल्याण संभव है, सुनिश्चित है। तत्वज्ञान के अतिरिक्त मनुष्य के आत्मविकास के लिए अन्य विकल्प नहीं है। इस तत्वज्ञान का सरल, समृद्ध, निर्भ्रांत एवम् निर्विवाद अर्थ यही है कि, मुझे, अर्थात पुरुष और प्रकृति को सत्य मान कर मेरे शक्तिशाली शक्तिस्वरूप की उपासना की जाए। योगी, तत्वद्रष्टा विद्वान, मेरे अव्यक्त शक्ति को पराशक्ति मान कर त्रिपुरेश्वरी अर्थात ललिता के व्यक्त रूप में उसकी आराधना करते हैं। मेरी इन दिव्य शक्तियों की नित्य आराधना करने से भगवान शंकर अर्धनारीनटेश्वर और सिद्धादिपति के नाम से प्रख्यात हुए। सांसारिक सुखों और आत्मा के पारलौकिक कल्याण का एकमात्र उपाय मेरी इस शक्ति की उपासना करना है। ध्यान करना यहीं तत्वज्ञान दर्शन है।'' हयग्रीव ने त्रिपुरेश्वरी के विषय में कथन किया।

''हे भगवन्, महादेवी त्रिपुरेश्वरी किस रूप में प्रकट हुई हैं? कृपया उनके स्थान और विहार चरित्र का वर्णन करें, जिससे तत्वदर्शन का लौकिक विस्ताररूप हमें ज्ञात हो'' अगस्त्य मुनि उत्सुकता से हयग्रीव से अनुरोध किया। हयग्रीव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके कहा,

''ब्रह्मा के ध्यान योग से प्रकट हयग्रीव की पराशक्ति का प्रथम नाम प्रकृति

है। इसी नाम से वह देवताओं की मनोकामना की पूर्ति करती है। उनकी पराशक्ति का दूसरा रूप मोहिनी कहलाता है। सर्वज्ञ भगवान शंकर भी मोहिनी के दर्शन से मोहित हो गए। पार्वती को छोड कर वे मोहिनी में आसक्त हुए।''

''हे प्रभो, भगवान शंकर तो एक योगी हैं, जिन्होंने 'काम' पर विजय प्राप्त की हैं। उनके लिए किसी रमणी पर आसक्त होना कैसे संभव है? उन्हें मोहिनी से एक पुत्र कैसे हो सकता है।'' अगस्त्य मुनि ने पुनश्च प्रश्न किया।

हयग्रीव ने अनुभव किया कि, अगस्त्य के संदेह का समाधान करना ही अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने देवराज इंद्रकथा कथन करना आरंभ किया।

''देवराज इंद्र अपने प्रचुर धन और ऐश्वर्य से गर्वोन्मत्त हुआ। उसका अहंकार चरम सीमा तक पहुँच चुका था। भगवान शंकर ने उसके अहंकार शक्ति के दर्प को नष्ट करने के लिए दुर्वास मुनि को भेजा। दुर्वास मुनि मनोवेग से देवेन्द्र के पास पहुँचे। आकाशमार्ग से आते हुए उनकी एक अद्भुत मायावी विद्याधारी से भेंट हुई। वह अति सुंदर स्त्री थी। उसके हाथ में एक अद्भुत माला थी। दुर्वास ठिठक गए। वह विश्वसुंदरी दुर्वासा से संभाषण करने के लिए उत्सुक थी। दुर्वास भी आश्चर्यचकित थे। उनके मन में कौतुहल जाग गया, कि यह सुंदरी कौन है। उस से पूछे भी तो कैसे! फिर भी उन्होंने प्रश्न किया,

''हे अनुपम सुंदरी, तुम्हारे हाथ में यह अद्भुत माला क्या है? क्या तुम मेरी जिज्ञासा शांत करोगी?''

''हे ऋषिश्रेष्ठ, मैंने चिरकाल साधना करके परांबिका से, उसे प्रसन्न करके यह माला प्रसादरूप में प्राप्त की है।''

''हे सुंदरी इस माला का रहस्य क्या है?''

''हे मुनिवर, यह माला धारण करने से अपनी मनोकामना पूरी होती है।''

''हे अतीव सुंदर स्त्रिये, अब तुम मनमे किस इच्छा की कामना करते हुए इस माला के साथ मेरे सम्मुख प्रकट हुई है?''

''हे मुनिश्रेष्ठ आपसे मिलने और आप की सेवा करने की इच्छा मेरे मन में हैं।''

''मैं चाहता हूँ कि, तुम मुझे यह माला भेंट स्वरूप अर्पण करके सेवा की अपनी इच्छा पूरी करें। दुर्वासा ने उसे भ्रमित करने का प्रयास किया, तथापि वह सुंदरी तनिक भी भ्रमित नहीं हुई। उसने दुर्वासा को वह माला समर्पित कर

दी। महर्षि दुर्वासा ने बडी उत्कंठा से प्रथम वह माला अपने गले में डाल दी, तत्पश्चात उसे अपने शिर पर धारण किया। वे अत्यंत आनंदित हुए। दुर्वासा ने उस विद्याधारी को उनके प्रति उसका भक्तिभाव देख कर उसे वरदान दिया।''

''हे मनमोहक सुंदरी, तुम चिरसुंदर होगी। तुम्हें जरा, व्याधि, दुख आदि स्पर्श नहीं करेंगे।'' विद्याधारी ने श्रद्धापूर्वक महर्षि दुर्वास को प्रणाम किया। उसे आशीर्वाद देकर दुर्वास मुनि आकाशमार्ग से इंद्रलोक आए।

''एक अद्‌भुत सुगंधित माला प्राप्त होने से दुर्वासा के व्यवहार में संपूर्ण परिवर्तन हुआ। अहंकार ने उन्हें घेर लिया। अब मन में जो भी इच्छा होगी वह फलप्रद होगी। इस कल्पना से वे स्वयं को भगवान स्वरूप मानने लगे। परंतु उनका यह व्यवहार कुछ समय के लिए ही सीमित रह गया। जैसे ही वे इंद्रलोक आए, उन्हें उनके दायित्व का स्मरण हुआ। उन्होंने वह माला प्रसाद रूप में इंद्र को दे दी। इंद्र ने माला को तिरस्कार से देखा। उसने माला अपने गले में न डालकर अपने ऐरावत नाम के हाथी के गले में फेंक दी। माला की मादक गंध हाथी सहन नहीं कर सका। उसने माला नीचे फेंक दी। इतना नहीं, ऐरावत ने अपने पैरों तले उसे रौंद डाला। महर्षि दुर्वास उनके द्वारा दिए गए प्रसाद की अवहेलना को अपनी आँखो के सामने सहन नहीं कर सकें। दुर्वास मुनि अत्यंत क्रोधित हुएं। उनकी आँखो में रक्त उतर आया। उन्होंने इंद्र को श्राप देते हुए कहा कि, इंद्र का सारा वैभव नष्ट हो जाएगा। शापवाणी सुनते ही इंद्र को अपनी भूल प्रतीत हुई। उसने महर्षि से हर प्रकार से क्षमायाचना करने का प्रयास किया। परंतु दुर्वास द्वारा दिए गए श्राप के कम होने का कोई संकेत नहीं था।''

''ऋषि के इस श्राप को एक उचित अवसर समझकर दैत्यराज बलि ने देवेन्द्र का इंद्रत्व अपने वश में कर लिया। निराशा की भावना ने इंद्र के मन में प्रवेश किया, विवश होकर उसने विचार किया कि, अब दुर्वासा के श्राप से केवल बृहस्पति ही उसे मुक्त कर सकते हैं। वह सभी देवताओं के साथ बृहस्पति की शरण में गया। बृहस्पति ने देवेन्द्र से स्पष्ट शब्दो में कहा,

''हे देवेन्द्र, भले ही कोटि-कोटि कल्प बीत गए हों, किए गए कर्मों के फल मांगने अथवा प्रायश्चित्त किए बिना कृत कर्म नष्ट नहीं होते। कर्म का फल मनुष्य को भोगना ही पडता है। प्रायश्चित्त यही उसके लिए एक विकल्प है।''

''हे भगवन् बृहस्पते, आप सर्वज्ञ हैं। आप जो कहेंगे उसका प्रायश्चित्त करने

के लिए मैं तत्पर हूँ।'' इंद्र ने विनम्रता से प्रार्थना की।

''हे देवराज, श्रद्धा और भक्ति से परिपूर्ण होकर स्नान करने के पश्चात पंचाक्षरी मंत्र का जाप करना होगा। पंचाक्षरी मंत्र इस प्रकार है,

'भगवतै दुर्गायै महाकाल्यै नमो नमः' बृहस्पति ने कहा।

''हे गुरुवर्य बृहस्पत्ये, इस जाप की फलश्रुति भी सबके लिए विदित करें।' देवेन्द्र की लोककल्याणकारी दृष्टि देखकर बृहस्पति ने कहा,

'' 'भगवत्यै दुर्गायै महाकाल्यै नमो नमः' इस मंत्र का जाप स्नान के पश्चात किया जाता है और पराशक्ति की पूजा करने से कोटि-कोटि जन्मों मे किए गए पापों का नाश होता है। वह असंख्य पापों से मुक्त होता है। विपदा से सुरक्षित रहता है। उसकी हर प्रकार की मनोकामना पूरी होती है। फिर भी देवेन्द्र के मन में एक संदेह था। वह उसका समाधान चाहता था।''

''हे परम गुरुदेव, मेरे किस दुष्कर्म के फलस्वरूप मुझे यह संकट सहना पडा? मैंने कौनसा कर्म किया है? किस कारण मेरी बुद्धि भ्रष्ट हुई? मैंने महर्षि दुर्वासा का अनादर क्यों किया? अब इस संकट से मुक्त होने का कौनसा मार्ग है?''

''देवेन्द्र के प्रश्नों से भगवान बृहस्पति भी व्याकुल हुए। उन्हे देवेन्द्र की दशा पर दया आई।''

''वत्स, कश्यप के दिती नाम के पत्नि से दनू नाम की एक अत्यंत रुपवती कन्या ने जन्म लिया, जिस का विवाह कश्यप ने ब्रह्मा से कर दिया। दनू ने विश्वरूप नाम के एक अत्यंत तेजस्वी और प्रतापी पुत्र को जन्म दिया। स्वाभाविकतया यह बालक वेदान्त और वेदांग मे अत्यंत निपुण था। भगवान विष्णु के समान वह परम दीप्तिमान था। दैत्यराज ने उस तेजस्वी बालक को अपना पुरोहित बनाया। उस समय हे देवेन्द्र, आप स्वयं राजा के रूप में देवताओं के मुख्य आसन पर आप ही विराजमान थे। उस समय आपने यज्ञ के अवसर पर ऋषियों से प्रश्न किया था कि, क्या इस संसार में कर्तव्यों का निर्वाह करके जीवित रहना उचित है,अथवा संसार को त्याग कर तीर्थाटन करना? निश्चय ही ऋषि को इस प्रश्न का उत्तर देना था। संयोग से मैने ही प्रथमतः अपना निर्णय निवेदन किया कि, सांसारिक दायित्व को स्वीकार करने की तुलना में तीर्थाटन पर जाना ही अधिक श्रेयस्कर है। इस निर्णय से क्रोधित होकर ऋषि ने मुझे इस मर्त्य लोक को

छोडने का आदेश दिया। मैं ही दुखी होकर इस कांचीपुरी आया था। तो अपनी इंद्रपुरी को बिना पुरोहित के देख कर आप चिंतित हुए। अर्थात आपने विश्वरूप से अपना पुरोहित बनने के लिए प्रार्थना की। उस प्रार्थना के कारण उसने वह दानवों का पुरोहित होते हुए भी आप का पौरोहित्य भी स्वीकार किया। जैसे ही वे देवता और दानव दोनों के पुरोहित बने, स्वाभाविकतः देवता और दानव समान बलिष्ठ हुए। आपको यह बात तनिक भी पसंद नहीं आई। आपने सीधे विश्वरूप पर प्रहार करने के लिए उद्युक्त हुए। क्रोधित होकर आप तुरंत विश्वरूप के आश्रम पहुँचे। आप समाधिस्थ विश्वरूप के शरीर को खंडित कर दिया। यह सब होने के पश्चात आपको अपने किए पर पश्चात्ताप हुआ। आप व्यथित हुए। इधर विश्वरूप के पिता अपने पुत्र के दुख से व्याकुल हुए। उन्होंने ही आप को आप का वैभव नष्ट होगा ऐसा श्राप दिया।

''देवताओं ने ब्रह्मा के पास जाकर ऋषियों का यह श्राप बताया। ब्रह्मदेव चिंतित होकर इस संबंधी प्रायश्चित्त का विचार करने लगे। परंतु उन्हे कोई उपाय नहीं मिला। चिंताग्रस्त होकर ब्रह्मा सभी देवताओं के साथ विष्णु के पास आए। उन्होंने भगवान विष्णु को देवेन्द्र की दुर्दशा का समाचार कथन किया। करुणासागर भगवान विष्णु ने इस पाप का बोझ वृक्षों महिलाओं और पृथ्वी पर रख कर आप का बोझ कम किया। परंतु उन्होंने उसी समय कहा था कि, 'हे देवेन्द्र तुम यदि सत्तामदांध होकर राजवैभव का उपभोग लेगा तो यही श्राप फलीभूत होगा।'

''हे देवराज, भगवान विष्णुनारायण की कृपा से ही आप बच गए हैं। आपने अपना खोया हुआ वैभव पुनश्च प्राप्त किया है। परंतु आप के पाप कर्मों के भोग अभी शेष हैं। आप मदोन्मत्त होकर कैलाश को भी पीडित करने लगे। इसीलिए शिवशंकर ने दुर्वासमुनि द्वारा आप को दंड दिया। आप के इन पापों का क्षालन प्रायश्चित्त के रूप में होगा। आप अपना खोया हुआ वैभव पुनश्च प्राप्त करेंगे।''

बृहस्पति द्वारा सुनाई गई कथा विदित कर हयग्रीव ने अगस्त्य से कहा,

''जब बृहस्पति देवराज इंद्र की यह कहानी सुना रहे थे, मलकादि महादैत्यों ने स्वर्ग पर आक्रमण किया। उन गर्वदर्पित दुष्टों ने स्वर्ग के नंदनवन को छिन्न भिन्न कर दिया। इंद्रलोक की इस भयानक विपत्ति से बचने के लिए देवताओं के पास भाग जाने के सिवा अन्य कोई विकल्प नहीं था। देवेन्द्र भी भयभीत हुए। अन्य देवताओं के साथ देवेन्द ब्रह्मलोक आएं। देवताओं का दुर्भाग्य सुन कर

ब्रह्मा को सहानुभूति हुई। उन्होंने देवताओं से कहा, सृष्टि के निर्माता, राक्षसों के शत्रु, भगवान नारायण हैं और केवल वे ही देवताओं का कल्याण कर सकते है। अंततः देवेन्द्र के अनुरोध पर सभी देवताओं के साथ क्षीरसागर के तट पर आएं और हर प्रकार से विष्णु नारायण की स्तुति करने लगे। भगवान विष्णु प्रसन्न हुए और वे देवताओं के सम्मुख प्रकट हुएं। देवताओं की कराह सुनकर उन्होंने कृपावंत होकर देवताओं से कहा कि, उन्हें विवेक से काम लेना चाहिए। वर्तमान स्थिति में असुरों से संधि करना ही उचित होगा। उनके साथ मिलकर समुद्र मंथन करें। सभी को एकसाथ मिलकर सभी प्रकार की औषधियों को एकत्रित करना होगा। उन औषधियों को क्षीरसागर में मंदराचल को मथानी और वासुकी नाग का डोर करके विष्णु की सहायता से मथना होगा। इससे आप को अमृत की प्राप्ति होगी। अमृतपान कर के आप शक्तिशाली बनोगे। अमर हो जाओगे। तत्पश्चात दैत्यो, दानवों के लिए आप के सम्मुख टिकना असंभव होगा। अब सभी देवताओं को चाहिए कि, वे इस योजना को लेकर दानवों के पास जाएं और उन्हें आश्वासित करें कि, समुद्रमंथन से प्राप्त अमृत देवताओं और दानवों में साझा किया जाएगा।''

हयग्रीव अगस्त्य को समुद्रमंथन कथा विदित करने लगे। वास्तविक त्रिकालज्ञ महर्षि अगस्त्य समुद्रमंथन के अवसर पर स्वयं सूक्ष्मरूप से सहभागी थे, तथापि उन्हें हयग्रीव के मुख से कथा श्रवण करने में विशेष रुचि थी। वे प्रसन्न चित्तसे कथा श्रवण करने लगे। हयग्रीव कथन कर रहे थे।

''भगवान विष्णु के आदेश के अनुसार देवताओं ने दानवों से संधि की। उन्हें अमृत के गुणों से प्रलोभित किया। भगवान के निर्देशानुसार सभी औषधियों को समुद्र में डाल कर मंथन कार्य का प्रारंभ किया। देवताओं ने वासुकी की पूंछ पकड ली। दानवों ने मुख का भाग स्वीकार किया। वासुकी के मुखसे उष्ण श्वास निकल रहा था। अतः दानव बलवान होते हुए भी दुर्बल हो गए। वे इतने दुर्बल हुए कि, मंदराचल को समुद्र में रखना असंभव सा प्रतीत होने लगा। तब भगवान विष्णु ने कुर्मावतार स्वीकार कर लिया और मंदराचल को अपनी पीठ पर धारण किया। पर्वत के स्थिर होते ही मंथनकार्य पुनश्च आरंभ हुआ।

''देवताओं और दानवों के लंबे समय तक मंथन करने के पश्चात समुद्र से सुरभि प्रकट हुई। उसके दर्शन से देवता और दानव प्रसन्न हुए। उन्होंने मंथन

कार्य जारी रखा। तद्नंतर समुद्र से वारुणीदेवी प्रकट हुई। यह देवता, असुरों के सम्मुख उपस्थित हुई। उन्होंने वारुणीदेवी का स्वीकार नहीं किया। तब वह जाकर देवताओं के सम्मुख खडी हुई। देवताओं ने उसका स्वीकार किया। सुराग्रहण न करने से दानव असुर बन गए और सुराग्रहण करने से देवता सुर बन गए।'' हयग्रीव बृहस्पति के मुख की कथा कथन कर रहे थे।

जब अनिल पौराणिक कथा सुना रहे थे, विज्ञाननिष्ठ योगेश्वर तल्लीनता से श्रवण कर रहे थे।

''समुद्र मंथन जारी रहा। मंथन से कल्पवृक्ष प्रकट हुए। इसकी सुगंध से पूरे वातावरण को सुगंधित किया गया। तत्पश्चात समुद्र मंथन से क्रमशः अनुपमस्वरूप चंद्र, विष, कौस्तुभ, विजया जैसे रत्न प्रकट हुए। तद्नंतर हाथ में अमृतकुंभ लिए स्वयं धन्वंतरी प्रकट हुए। उन्हें देख कर देवताओं को लगा कि, उनकी तपस्या फलसिद्ध हुई। वे प्रसन्न हुए। कुछ समय के पश्चात क्षीरसागर से हाथ में पद्म धारण करके लक्ष्मी प्रकट हुई। उनके प्रकट होते ही ऋषियों ने वेदोक्त श्रीसूक्त से उनकी स्तुति और पूजा अर्चन किया। गंधर्वों ने गीत गाकर, अप्सराओं ने नृत्य करके लक्ष्मी का स्वागत किया। सभी देख रहे थे कि, लक्ष्मी ने श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर अपना सिर रख दिया, देवताओं के प्रति दयाभाव प्रकट करने लगी।

''इसके पश्चात भगवान श्री विष्णु की ही योजना से उन्हें शरण आए हुए देवताओं का अभ्युदय होता गया। दानव खिन्न, हतवीर्य और विषण्ण हुए। उन्होंने धन्वंतरी के हाथों से वह अमृतकुंभ छीन लिया। यह देख कर देवताओं ने दानवों का विरोध किया। देवता और दानवों में घोर संग्राम आरंभ हुआ।

''उस समय लोक बंध, लोकरक्षक भगवान विष्णु ने पूरी श्रद्धा और आत्मज्ञान के साथ सुश्री ललिता देवी का ध्यान किया। देवताओं और दानवों के बीच भीषण युद्ध को देख कर, ब्रह्मा ब्रह्मलोक में तथाशिव कैलाश में अपने निवास स्थान पर चले गए। दोनों ने इस युद्ध पर ध्यान नहीं दिया। धर्मरक्षक भगवान विष्णु देवताओं के रक्षणार्थ वहीं रुक गए। उन्होंने ललिता देवी की स्तुति पूजा की। कटिभृंग न्याय से ललिता देवी की पूजा की। उसी समय ललिता देवी के अत्यंत आकर्षक उत्तम और दिव्य, आकर्षक रूप को देख कर दानव उस पर मोहित हुए। ललितारूपधारी विष्णु ने भी कोमल कामुक क्रीडाओं द्वारा दानवों को मोहित कर लिया। उसने उन्हें अपना दास बना लिया। दानवों को

अपने वश में रखते हुए ललिता ने उनसे अमृत कलश अपने पास ले लिया। उसने उन्हें आश्वासन दिया कि, देवता और दानव दोनों को एक पंक्ति में बैठना है। सब को अमृत बाँट दिया जाएगा। कूटनीति का आश्रय लेते हुए ललिता देवी ने दानवों से कहा कि, हमें देवताओं के पास जाकर उन्हें अमृत बाँटना चाहिए और फिर दानवों को बाँटेंगे। उसने दानवों से यह भी कहा कि, हम उनके लिए उनके निवास स्थान आएंगे।''

अनिल को बीचमे रोककर योगेश्वर ने पूछा,

''क्या नेवासा के मोहिनीराज ही भगवान विष्णु का ललितारूप है?''

''हाँ, महर्षि अगस्त्य और महर्षि नारद की साक्षी से ही भगवान विष्णु ने भगवान शिवशंकर से विचार विनिमय करने के पश्चात यह रूप धारण किया था। किन्तु दानवों को इसमें तनिक भी संदेह नहीं हुआ। अगस्त्यों ने मोहिनीराज से चर्चा की कि, दानवों को क्या बताया जाए। अगस्त्य ने समुद्र से निकले सभी रत्नों को सह्य पर्वत शिखर पर पूजने की युक्ति सुझाई? ललितारूपधारी भगवान विष्णु ने अर्थात मोहिनीराज ने अगस्त्यों की सूचना दानवों को विदित की। दानव समुद्र पर अगस्त्य के अधिकार को जानते थे। उन्हें भी यह सुझाव अच्छा लगा। अमृत पाने के लिए वे अधीर हुए थे। जैसे ही सह्यगिरी के रत्नगढ़ शिखर पर अमृत कलश रख कर पूजन किया गया, मानव कल्याण के लिए सिद्धस्वरूप धारण करने वाले अगस्त्य ने भगवान शिव से मनुष्यों के लिए अमृतधारा निर्माण करने का अनुरोध किया। सिंधुसम्राट शिवस्वरूप अगस्त्य के इस अनुरोध को ललितारूपधारी मोहिनीराज अर्थात भगवान विष्णु ने ब्रह्मर्षि नारद की सहमति से और पार्वती माता के आग्रह से स्वीकार किया और अमृतवाहिनी निर्माण हुई।'' अनिल ने बीच में ही एक उपकथा सुनाकर निःशंक किया और पुनश्च वह पुराणकथा कथन करने लगा।

''दानवों को इस प्रकार धोखा देखर ललितारूपधारी भगवान श्री विष्णु ने देवताओं को बुलाया और अमृतकलश को रत्नराशिं पर रख कर पूजन करवाया। भगवान श्री शंकर को सर्वप्रथम अमृतप्राशन के लिए आमंत्रित किया गया और तत्पश्चात अमृत बाँटना प्रारंभ किया। राहु नाम के दैत्य को भगवान विष्णु के इस कपट का पता चला। वह एक देवता का रूप धारण कर सूर्य और चंद्रमा के बीच देवताओं की पंक्ति में बैठ गया। अमृतवाहिनी ललिता ने राहु के हाथ पर

जैसे ही अमृतबिंदू डाल दिए, उसी समय सूर्य और चंद्रमा ने राहु का वास्तविक रूप देख कर, वह दानव है, ऐसी खलबली मचा दी। ललिता ने अपने तीक्ष्ण कुशस्त्र से राहु का कंडशिरच्छेद किया। किन्तु उस से पहले ही अमृत उनके कंठ से नीचे उतर चुका था। परिणामस्वरूप राहु द्विखंडित होकर भी अमर हुआ। ललिता देवी का रूप और सौंदर्य देख कर दानव मोहित हुए। अंत में ललिता देवी अमृतकलश रिक्त करके स्वयं अंतर्धान हो गई। शिवशंकर ने अपने मुख से अमृतवाहिनी प्रकट की। उनके मुख से टपकते स्त्राव को देख दानवों ने इसे हलाहल समझ कर उपेक्षा की।

''यह जानकर कि अमृत अभी उन तक नहीं पहुँचा था, दानवों ने देवताओं पर आक्रमण करने का निर्णय लिया। परंतु अमृत प्राशन से देवता अमर और शक्तिशाली हो गए। उनका आत्मविश्वास भी बढा। दानवों का मनोबल समाप्त हो गया था। वे सर्वथा निराश हुए थे। वे देवताओं पर आक्रमण करने अथवा प्रहार करने से भी डरने लगे। इससे दानव थक गए। उन्हें आत्मरक्षा के लिए भागना पडा। वे पाताल लोक चले गए। श्री ललिता देवी ने अपनी कृपा से देवेन्द्र की मलकादि राक्षसों पर विजय प्राप्त करने में सहायता की। केवल उनकी कृपा से ही देवेन्द्र को गतवैभव पुनश्च प्राप्त हुआ। अमृत प्राशन से समस्त देवतागण आत्मविश्वास से चलने लगे।'' यह कथा सुनाकर हयग्रीव ने अगस्त्य से कहा,

''हे महामुने, मेरी महामाया ललिता देवी के इस चरित्र को सुनकर नारद चकित रह गए। वे कैलाश पर्वत पर गए। वहाँ पहुँच कर नंदिकेश्वर ने नारद का यथोचित स्वागत किया। नारद आसनस्थ हुए। जब महादेव ने त्रिलोक का भ्रमण करने वाले नारद को स्वर्ग लोक का समाचार सुनाने का सुझाव दिया तो नारद ने उन्हें संपूर्ण वृत्तांत निवेदन किया। महादेव से विदा लेकर नारद चले गए। उनके जाने के पश्चात महादेव भूत स्कंद, नंदी, विनायक आदि को सूचना दिए बिना अदृश्य रूप से पार्वती के साथ विष्णुलोक गए।

''भगवान शिवशंकर को पार्वती के साथ देख कर भगवान विष्णु शेषशय्या से उठे और भगवान शिव के स्वागत के लिए क्षीरसागर के तट पर आ गए। उन्होंने उनका यथोचित स्वागत किया। शिवशंकर और पार्वती प्रसन्नतापूर्वक आसनस्थ हुए। जब भगवान विष्णु ने महादेव से आने का कारण पूछा तो महादेव ने भगवान विष्णु से श्री ललिता देवी के दिव्य रूप में प्रकट होने की प्रार्थना की।

''श्री विष्णु ने उनका सम्मान करने के लिए अपना सुंदर सौंदर्य दिखाया। शिवपार्वती ने विष्णु के स्थान पर एक रूपवान किशोरी को गेंद खेलते हुए देखा। उस युवती का असाधारण रूप सौंदर्य, मनोरम, कामुक, आकर्षक रूप देखकर मदनविजेता योगी भगवान शंकर भी उस रुपवती स्त्री पर मोहित हो गए। उन्होंने पार्वती माता को छोडकर उस सुंदर स्त्री को स्पर्श करने के लिए उसका पीछा किया। पार्वती ने उस युवती का रूपसौंदर्य देख कर शिवजी का उसके पीछे जाना स्वाभाविक माना। शिवशंकर के इस व्यवहार से पार्वती माता विस्मित नहीं हुई। एक स्त्री यदि अपने से अधिक रुपवती, सुंदर स्त्री को देखती है तो उसे उसके प्रति असूया होती है, ईर्ष्या होती है, जलन होती है। किन्तु मोहिनी का रूप इतना कोमल, इतना पवित्र, इतना चित्ताकर्षक था कि पार्वती स्वयं अपने ही रूप की निंदा करने लगी। वह भी मोहिनी के रूप का गुणगान करने लगी।

''अनिल, यद्यपि भगवान शिव, भगवान विष्णु, ब्रह्मर्षि नारद, महर्षि अगस्त्य सभी को ज्ञात था कि, ललितारूपधारी, मोहिनी स्वरूप साक्षात भगवान विष्णु ही है, फिर भी नारद के लिए भगवान शंकर को पुनश्च विदित करना, प्रत्यक्ष भगवान शंकर के लिए एक साधारण मनुष्य जैसा व्यवहार करना, क्या तर्कहीन नहीं है?'' योगेश्वरने पूछा।

''तुम्हारा वचन सत्य है। परंतु सूक्ष्म स्वरूप में, गुप्त रूप से इन शक्तियों ने त्रिदेवों द्वारा रचित घटनाओं को सभी लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करते समय इस प्रकार की नाट्य लीलाएं की है। ऋषियों, देवताओं, राक्षसों और मनुष्यों के मन में सामान्य विचार निर्माण होने हेतु, त्रिदेवों के महान और अंतिम निर्णायक शक्तियों के प्रति अपार श्रद्धा निर्माण होने के लिए इस प्रकार की नाटकीय घटनाओं का मंचन, माया के रूप में और क्रीडा स्वरूप में किया जाता है। यहीं से आश्चर्य का वलय निर्माण होता है। साधारण जीवन से परे एक अद्भुत विश्व के अस्तित्व की भावना और श्रद्धा निर्माण होकर अहंकार का नाश होता है और तत्वज्ञानात्मक अद्वैत की ओर सभी का ध्यान आकर्षित होता है।'' अनिल ने स्पष्ट करने का प्रयास किया, परंतु योगेश्वर का इस स्पष्टीकरण से समाधान नहीं हुआ। फिर भी योगेश्वर ध्यानपूर्वक श्रवण कर रहे थे।

शिवशंकर मोहिनी के पीछे भागने लगे। फिर मोहिनी भी आगे आगे भागती रही। फलस्वरूप शिवजी के मन में वासना और भी तीव्र हुई। थोडेसे प्रयास से

अंततः शिवजी ने मोहिनी को पकड लिया। उन्होंने बारंबार उसे आलिंगन दिया। उन्होंने उसे चूमने का प्रयत्न किया। उन आलिंगन और चुंबन ने शिव की वासना को अत्यधिक तीव्र कर दिया। उनका वीर्यपतन हुआ। उस समय भगवान विष्णु मोहिनी का रूप त्याग कर अपने मूल रूप में प्रकट हुए। शिवजी उन्हे देख कर लज्जित हुए। तब वहाँ बिना अधिक रूके वे विष्णु से अनुज्ञा लेकर कैलाश लौट आए। हे अगस्त्य ऋषे, भगवान श्री विष्णु के दिव्य रूप का ऐसा प्रभाव था।

''हे भगवान विष्णुस्वरूप हयग्रीव, मोहिनी स्वरूप में भगवान विष्णु को अन्य लीलाओं के विषय में भी हमें विस्तार से बताइए।'' अगस्त्य ने आग्रहपूर्वक अनुरोध किया।

''हे अगस्त्य ऋषे, मैं आपकी भक्ति से प्रसन्न हूँ। इसलिए मैं आपको भंडासुर की कथा निवेदित करता हूँ। यह आख्यायिका मैंने आज तक किसी को कथन नहीं की। तो अब इसे श्रवण करें।

''प्राचीन काल में एक अत्यंत शक्तिशाली, दुर्दांत दैत्यशिरोमणी नाम का असुर था। उसने अपने दाहिने अंग से सेना की रक्षा करने में सक्षम और इंद्र समान पराक्रमी विशुक्र नामक एक शक्तिशाली राक्षस का निर्माण किया। उसने अपने बाएं अंग से विषांग नामक दैत्य की उत्पत्ति की। धूमिनी नाम की एक अनुजा का भी निर्माण किया। अपने दोनों दुर्दम्य अनुजों के साथ उस शक्तिशाली दैत्य ने समूचे ब्रह्मांड को छिन्न-भिन्न कर दिया। इस प्रतापी राक्षस की क्रूरता और अशिष्टता को देख कर न केवल देवता, अपितु ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने भी अपने निवास से बाहर आना बंद कर दिया। उस समय सभी देवताओं के लिए उन्मुक्त श्वास लेना भी दुष्कर हो गया। राक्षसों ने देवताओं के निवास में प्रवेश करके उन पर आक्रमण किया। विवश होकर देवता पाताल और गिरिकंदरों में जाकर छिप गए। भंडासुराने देवताओं के साथ साथ ऋद्भूः, यक्ष, गंधर्व, सर्प, सिद्धि आदि को भी परास्त कर दिया। उनकी संपत्ति, उनकी स्त्रियों का अपहरण किया।

''त्रिलोक पर आई विपदा को देख कर परादेवी ललिता ने उनकी रक्षा के लिए उस दुष्ट दानव का नाश करने के लिए शालिनी का रूप धारण किया। यह देवी का तिसरा नाम है। इस रूप में देवी ने चार भुजाओं मे पाश, अंकुश, धनुष और बाण जैसे आयुध धारण किए थे। उसी रूप में रहकर इस महामयी देवीने उस

दुष्ट का वध किया। भंडासुर विलुप्त होने के पश्चात देवताओं ने देवी को धन्यवाद दिए। उन्होंने उसकी अनेक प्रकार से स्तुति की।

**'प्रसीद विश्वेश्वरि विश्ववंदिते, प्रसीद विश्वेश्वरि वेदरूपिणी ।**
**प्रसीद मायामयी मन्त्राविग्रहे, प्रसीद सर्वेश्वरि सर्वरूपिणी ।।'**

''हे विश्वस्वामिनी देवी, सृष्टि के सभी जीवों से मनस्कृत, विद्या प्रदायिनी, वेदस्वरूपिणी, वेदमंत्रोद्वारा महिमामंडित देवी, सभी देवताओं मे भावपूर्ण रूप विद्यमान माते, आप हम पर प्रसन्न हों।

''ललिता देवी ने प्रसन्न होकर भक्तिभाव से देवताओं को इस प्रकार आशीर्वाद दिया। उसने कहा,

'निर्भयाः मुदिताः सर्वेदेवगणाः :- सभी देवगण, देवता निर्भयता से और प्रसन्न भाव से विचरण करें।' देवी से यह आशीर्वाद प्राप्त करने के पश्चात देवताओं ने देवी को प्रणाम किया और वे अपने स्वर्गलोक चले गए। भगवती की कृपा से निश्चिंत होकर स्वर्गसुख का आनंद लेते रहें।

''देवताओं के चले जाने के पश्चात ब्रह्मा विष्णु और शिव भी वहाँ आए और उन्होंने श्री ललिता देवी का स्तवन किया। उस समय ब्रह्मा के मन में विचार आया कि, यदि देवी शिव को अपने पति के रूप में स्वीकार करती है तो दोनों का जीवन सफल हो जाएगा। इधर शिव भी श्रीललिता के रूपसौंदर्य को देखकर अपना योग और वैराग्य भूल गए। वे भी उस पर अनुरक्त हुए। ललिता देवी शिव को अपना रूप मान कर उन पर अनुरक्त हुई।

''दोनों का परस्पर आकर्षण देख कर, आपसी अनुराग देखते हुए ब्रह्मा ने देवी से कहा, कि, सभी देवता, ऋषि, गंधर्व और सिद्धमुनि उनका विवाह देखने के लिए उत्सुक है। वे अपने योग्य वर को चुन ले यही सब की इच्छा है। ब्रह्मदेव को वचन देते हुए देवी ने कहा कि देवी तो स्वतंत्र है और सदा स्वेच्छा से आचारविचार - व्यवहार करती है। इसलिए उसके स्वभाव से जो अनुरूप हो ऐसे वर का चयन करेगी।

''श्रीललिता देवी ने अपने गले की माला हाथ में लेकर आकाश की ओर फेंक दी। संयोग से वह महादेव के गले में जा गिरी। इस घटना से ब्रह्मदेवादि सभी देवताओं, ऋषियों, सिद्धगणों ने प्रसन्न होकर भगवान विष्णू से प्रार्थना की, कि, वे ललिता देवी और शिव के विवाह की व्यवस्था करें। विष्णू ने यह

ग्रंथिबंधन किया। विवाह के पश्चात शिव ललिता को अपने साथ कैलाश ले गए। वहाँ उन्होंने रतिक्रीडा में दश सहस्त्र वर्ष एक क्षण की भाँति व्यतीत किए। अतः हे अगस्त्ये, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं हैं। मेरी पराशक्ति ही चतुर्थ रूप में पार्वती बनी थी।''

''हे प्रभो, मुझे विस्तार से बताएं कि, ललिता देवी ने कैसे भंडासुर का विनाश किया था।'' अगस्त्य ने आग्रहपूर्वक अनुरोध किया।

''हे अगस्त्ये, एक समय नारदमुनि ने कैलाश पर्वत पर भगवती जगदंबा को प्रणाम किया और कहा, कि, जगत् कल्याण हेतु आपने दुष्टों का विनाश करने और सुख प्राप्त करने के लिए अवतार लिया है। इस समय त्रिलोक में भंडासुर ने उत्पात मचाया है। उसका वध केवल आप ही कर सकती हैं।

''नारद की बाते सुन कर जगदंबा माता ने कंटकप्राय भंडासुर का वध करने का निश्चय किया। उन्होंने एक सेना इकट्ठी की और रणवाद्य बजाकर राक्षसों के विरुद्ध युद्ध छेड दिया। देवी सिंहारूढ हुई। देवी के इस भयंकर रूप से पृथ्वी भी कांपने लगी। चारो दिशाएं भी कंपायमान होने लगी। उसकी रणगर्जना से प्रलय के लक्षण दिखाई देने लगे।

''देवी ने भंडासुर की सेना पर घातक प्रहार किया। त्रिलोक में उत्पात मचाने वाला भंडासुर और उसकी सेना घबरा गई। उसने मारण, उच्चाटन जैसे विभिन्न मंत्रतंत्रों से दैत्यसेना को निर्बल बना दिया। जैसे ही उसने अपने धनुष की प्रत्यंचा खिंची, मृत्यु ने मानो अपना मुखविवर खोल दिया। ललिता देवी के आगमन के समाचार से ही भंडासुर के प्रधान सैनिक विचलित हुए। वे पुनश्च एकत्रित हुए। उन महावीरों ने देवी पर उतना ही आक्रमण किया। किन्तु देवी ने प्रत्याक्रमण करके उन्हें रोक दिया। भंडासुर के पुत्रों, विषुक और विशंग को देवी के आक्रमण का समाचार प्राप्त हुआ। उन्होंने देवी को अपने दूत द्वारा युद्ध रोकने के लिए संदेश भेजा, यह मान कर कि, स्त्री के साथ युद्ध करना अनार्योचित है। देवी ने उसे अस्वीकार किया तो दूत लौट आएं। मंत्रियों ने राजकुमारों को देवी के पराक्रम की कथाएँ विदित की, यह देवी न केवल एक साधारण स्त्री है, अपितु इस देवी ने शुंभनिशुंभ का भी वध किया था। प्रधान सचिवों ने भी भंडापुत्रों को प्रेरित करने का प्रयास किया।

''अंततः राजपुत्र युद्ध के लिए कटिबद्ध हुए। उन्होंने अपने वीरों की गिनती

की और उनकी एक सूचि बनाई। इस सूचि में कुटिलाक्ष, कुरड, करंक, कर्कश, कल्किवीहन, हुम्बक, हलमुल्लंच, जंबुकाक्ष, जंभुषा, वज्राघोष, उर्ध्वकेशी, पुलकस, पुंडकेतु, चण्डबाहू, कुक्कर, पट्टसेन, पूर्वमारक, कुम्भाग्रीन, घटोदर आदि वीरों के नाम अंकित करके यह मान लिया कि अब उनकी विजय निश्चित है। भंडासुर ने सेनापती को आदेश दिया कि, सेनाध्यक्ष को बुलाकर युद्ध की तैयारी पूरी करें।

भंडासुर ने अपने नगर की रक्षा के लिए चारों दिशाओं में कुशल सेनाध्यक्षों के नेतृत्व में बडी संख्या में सैनिकों को नियुक्त किया। आक्रमण की गर्जना करते हुए योद्धाओं ने देवी को चारों दिशाओं से घेर लिया। शक्ति, तोमर, मद्गल, खड्ग, परशु आदि शस्त्रों के साथ देवी पर टूट पडे। देवी ने भी अपने अस्त्रों के साथ हमला करके दानवों को पीछे हटाना आरंभ किया। वह भी उन पर प्रखर वार करने लगी।

अब दानवों ने अपनी मायावी शक्ति का उपयोग करना आरंभ कर दिया था। उन्होंने मायाजाल से अंधकार फैलाया। हर प्रकार से पर्वत, भूमि को हिला दिया। उल्काओं की वर्षा की। तूफान खडा कर दिया। यहाँ तक कि, विष्ठा वृष्टि की। देवी ने अपनी पराशक्ति से इन सभी प्रयास को एक ही क्षण में विफल कर दिया। जब माया का ही नाश हुआ तो दानव भयभीत हुए। परंतु उन में से कुछ दानवों ने एक नया मायाजाल रचा। सर्पवृष्टि, रक्तवृष्टि आरंभ की। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे आकाश ही गिरने लगा हो। भूत, प्रेतों की डरावनी आवाज से वातावरण भयानक बन गया था। इंद्रादि देवता भी भयभीत हुए। एक क्षण के लिए उन्हें संदेह हुआ कि, क्या देवी इस संकट से उन्हें बचा भी सकेगी। परंतु साक्षात पराशक्ति के आगे देवताओं की एक भी ना चली। देवी के पराशक्ति के आगे मायाशक्ति को निष्प्रभ कर दिया। देवी के सिंहगर्जना से दानव भयभीत हुए। भंडासुर की सेना पर देवी की सहस्त्र भुजाओं से सहस्त्र अस्त्रों की वर्षा होने लगी। उसने भंडासुर के सभी सेनाध्यक्षों और उसके दो पुत्रों को मार डाला। पृथ्वी को पापरहित कर दिया।'' हयग्रीव ने पराशक्ति ललिता देवी के पराक्रम का विस्तार से वर्णन किया।

''हे प्रज्ञाननिष्ठ प्रभो, आपके मुख से देवी के इस परम पावन चरित्र को सुनकर मैं धन्य हूँ। अब आप मुझे बताएं कि, देवी ने क्या किया? युद्ध की अंतिम

घटनाएं बता दीजिए।'' अगस्त्य ने विनम्रता से पूछा। हयग्रीव ने अगस्त्य की यह इच्छा भी पूरी कर दी। उन्होंने कहा,

''भंडासुर और उसके पुत्र, उसके सेनापति को नष्ट करने के पश्चात देवी ने अपने अमृतमयी नेत्रों से, प्रेमपूर्वक अपने सैनिकों की ओर देखा। देवी के इस स्नेहभरी दृष्टि से ही सैनिकों को ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वे गहरी नींद से जाग गए हो। वे अपना स्वास्थ्य और सुख अनुभव करने लगे। भंडासुर के वध से ब्रह्मादि देव प्रसन्न थे। विष्णु, शिव, इंद्रादि सभी देवता, आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत, साध्यदेव, सिद्ध किंपुरुष, यक्ष, नैऋषि, निशाचर और ब्रह्मांड निवासी अनेक प्राणी यहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने सिंहासनस्थ भगवती जगदंबा को प्रणाम किया। उन्होंने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। उन्होंने देवी का स्तवन गान आरंभ किया। भगवती ललिता देवी की स्तुति करते हुए ब्रह्मदेव ने कहा,

**'नमो नमस्ते जगदेवकनाथे नमो नमः श्री त्रिपुराभिधाने।**
**नमो नमो भण्डमहासुघ्ने नमोस्तु कामेश्वरी वाम केशि।।'**

''त्रिपुरादेवी के नाम से प्रख्यात समस्त विश्व की स्वामिनी, भंडभाव के महादैत्य का विनाश करने वाली देवी, मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाली देवी, दुष्टों का संहार करने वाली देवी, मैं आपको कोटि कोटि प्रणाम करता हूँ।

''भगवान विष्णु ने भगवती की स्तुति करते हुए कहा,-

भगवान शंकर के साथ सभी शक्तिस्त्रोतों के लिए प्रणम्य, सर्वज्ञों से अभिवंद्य, सबसे अधिक एवम् सब में व्याप्त और सभी सिद्धियाँ प्रदान करने वाली देवी मेरे कोटि-कोटि प्रणाम स्वीकार करें।

''इंद्र ने जगदंबा का स्तवन करते हुए कहा,

''भगवती ललिता देवी, जो भक्तों को निर्भय बनाती है, सदैव उनकी रक्षा करती है, सुंदर, काले, घुंघराले जिन के केश हैं, सभी देवताओं की सभी आकांक्षाओं को पूरा करती है, सभी लोगों के लिए आराध्य, मैं आपको कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।''

''इस प्रकार आदित्य, रुद्र, वसु, मरुत, सिद्ध, यक्ष, निशाचर आदि सभी ने हर प्रकार से देवी की स्तुति की। देवी का स्तवन करने के पश्चात ब्रह्मदेव ने शिवशंकर के क्रोध से भस्म एवम् शोकाकुल कामदेव की पत्नि रति को भगवती ललिता देवी के सम्मुख खडा करके उसका परिचय कराया। उस समय

भगवान विष्णु ने कहा कि, पति के वियोग से व्यथित एवम् आर्तस्वरूप में रुदनशील कामदेवी को भगवती जगदंबा भयमुक्त करें। सनाथ होने का कोई उपाय बताएं।''

''भगवान विष्णु के इन वचनों को सुन कर दयामूर्ति भगवती ललिता देवी ने करुणार्द्र होकर अपने कटाक्ष से कामदेव को उत्पन्न किया, उसे शिवश्राप मुक्त किया। अपने पति को देख कर रती कृतार्थ हुई। माँ भगवती के चरणो में गिर कर वह कृतज्ञापूर्वक आनंदाश्रुओं से अभिषेक करने लगी। भगवती देवी ने उसके सिर पर अपना वरदहस्त रख कर उसे सुंदर वस्त्र, आभूषण दिए और उसे अपने पति के चरणों मे लीन होने का आदेश दिया। देवी के आदेश को शीरोधार्य मानते हुए कामदेव और रती कांचीपूर आएं। उन्होंने शामला नदी में स्नान किया। उन्होंने अपने आपको सुंदर वस्त्रों, आभूषणों से सजाया। कामरती लौट कर आने के पश्चात ललिता देवी के आदेश से वसिष्ठादि ब्रह्म ऋषियों ने उन दोनों का विवाह करवाया। इंद्रादि देवताओं ने प्रसन्न होकर देवी को धन्यवाद दिए। उसकी बहुत प्रशंसा की। कामदेव ने देवी के निकट जाकर उनके चरण छुए और उन्हें प्रणाम किया। भावुक स्वर में देवी से आगे के कार्य के लिए अनुज्ञा माँगी। भगवती देवी ने कामदेव को पूर्णतः अभयदान देकर उन्हें हर प्रकार से आशीर्वाद दिया। कामदेव की कृपा से शिवगिरिजा विवाह संपन्न होगा। उसी प्रकार कामदेव के शरीर से असंख्य कामदेव प्रकट होंगे और वे अदृश्य स्वरूप में प्राणियों को मोहित करेंगे, ऐसे वरदान दिए। इसके अतिरिक्त देवी ने कामदेव को देवी के भक्तों के लिए भरकस कामसुख देने तथा कामसुख से कभी भी उन्हे वंचित न करने का कार्य सौंपा।

''भगवती माता की आज्ञा शिरोधार्य मान कर, उनकी अनुज्ञा से कामदेव चले गए। कामदेव के शरीर से कोटि-कोटि कामदेव उत्पन्न हुए। उनके कारण संसार के सभी प्राणी मोहित होने लगे। भगवती से प्राप्त वरदान से उत्साहित कामदेव ने शिवजी को जीतने की इच्छा से अपने मित्र वसंत को प्रोत्साहित किया। कोकिल, आम्रमंजिरी, मलयानील इन्हें साथ में लेकर कामदेव शिव के आश्रम आएँ।

''कामदेव ने ध्यानमग्न शिव के हृदय पर अपने पुष्प बाणों से प्रहार किया। परिणाम स्वरूप, शिव का वैराग्य और तप भंग हुआ। उनके विरागी मन में पार्वती

की प्रतिमा उभरने लगी। शिवजी ने अपने मन को शांत रखने का बहुत प्रयास किया। किन्तु पार्वती की प्रतिमा उनकी आँखो से ओझल नही हो पा रही थी। शिवजी का सारा समय पार्वती का ध्यान करने में ही व्यतीत होने लगा। मन में उनका ही चिंतन था। उनके मन की शांति भंग हो गई थी। वे पूर्णतः विचलित हुए। इसलिए वे पार्वती से विवाह करने का सोचने लगे।

''भगवती ललिता देवी की योजना के अनुसार कामदेव ने इस प्रकार शिवजी को काममोहित करने के पश्चात पूरी तत्परता के साथ वे पार्वती के पास गए। उनकी कठीण साधना को देख कर वे द्रवित हो गए। उन्होंने पार्वती से कहा कि, ललिता देवी उन पर अपार प्रसन्न है और उनकी आज्ञा से ही उन्होंने शिवजी को अनुरागी बनाया। अब शिवजी पार्वती से अवश्य विवाह करेंगे, ऐसा विश्वास भी कामदेव ने प्रकट किया।

''भगवती ललिता देवी की योजना के अनुसार शिवजी ने पार्वती से विवाह किया। दोनों ने चिरकाल तक कैलाश के शिखर पर सानंद रतिविलास उपभोग लिया। शिवजी का वीर्य उग्र होने के कारण पार्वती उसे सहन नहीं कर सकी। उसने उसे अपनी योनि से निकालकर पृथ्वी पर छोड दिया। पृथ्वी भी उस वीर्य को धारण नहीं कर सकी। उसने वीर्य को आग में फेंक दिया। अग्नि ने भी अपनी असमर्थता प्रकट की और वीर्य को कृतिका की ओर फेंक दिया। कृतिका ने वीर्य को गंगाजल में फेंक दिया। गंगा ने उसे वन में फेंक दिया। इसी वन में षड्‌ानन का जन्म हुआ। गंगा ने उसे अपने पास रख कर उसका पालन-पोषण किया।

''शिवजी ने अपने पुत्र को सभी विद्याओं का ज्ञान दिया। यह बालक अपने पिता की आज्ञा से देवताओं का सेनापति हुआ। उसने अति दुष्ट राक्षसों का वध किया। देवताओं का शत्रु तारकासुर का भी वध किया। उसने अपने पराक्रम से देवताओं को प्रसन्न किया था। देवेन्द्र ने कृतज्ञतावश षड्मुख का विवाह अपनी अत्यंत सुंदर पुत्री देवसेना से कर दिया। इससे षड्मुख अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसने उस सुंदरी से रमणीविलास किया। इन सभी घटनाओं के पश्चात ललिता देवी ने श्रीपुर के लिए प्रस्थान किया।'' हयग्रीव ने विस्तार से कहा।

''हे प्रभो, हयग्रीव, आपने अभी श्रीपुर का निर्देश किया। कृपया हमें इन स्थानों की जानकारी दें।'' अगस्त्य ने जिज्ञासा व्यक्त की।

''हे अगस्त्ये, आपकी जिज्ञासा देख कर मैं आपको उस स्थान की महानता

विदित करता हूँ। इंद्र, वरुण, अग्नि और वायु, अनंत योजन उँचा और सृष्टि को आधारभूत मेरू पर्वत के चारों ओर शिखर पर निवास करते हैं जो क्रमशः पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में स्थित हैं। इन चारों लोकों के नाम इंद्रलोक, वरुणलोक, अग्निलोक, वायुलोक हैं। इन में शत योजन उँचाई पर एक शिखर है, जो चारों ओर से चार सौ योजन तक फैला हुआ हैं। विश्वकर्मा ने ब्रह्मा की आज्ञा से इसी शिखर पर भगवती जगदंबा ललिता देवी के निवास के लिए श्रीपुर का निर्माण किया।

''इस त्रिपुरा के चारों ओर उन्नत, विस्तृत, सुवर्ण जडित तोरणद्वार हैं। मधुर फलों से लदे वृक्ष है। लताओं, बल्लरियों से यह सुंदर उपवन समृद्ध हुआ हैं। हरी-भरी घास से ढके आकर्षक मैदान हैं। ऐसे उपवन में कई पक्षी कलरव करते हैं। उनके विचरण एवम् दर्शन मात्र से हर कोई मंत्रमुग्ध हो जाता हैं। इसी क्षेत्र में भगवती ललिता देवी का अत्यंत सुंदर, सुखद एवम् चित्ताकर्षक भवन हैं। यहाँ प्रतिदिन देवता, यक्ष, गंधर्व, ऋषि, सिद्ध, मुनिश्वर, आदि देवी के दर्शन करने आते हैं। उनके आशीर्वाद से उनका जीवन सफल हो जाता है। यहाँ की मान्य मातंग कन्याएं नित्य गाती रहती है, क्रीडा करती है।'' हयग्रीव विदित कर रहे थे।

''प्रभो ये मान्य मातंग कौन हैं?'' अगस्त्य ने पूछा।

''हे अगस्त्ये, प्राचीन काल में एक बहुत ही गौरवशाली महात्मा थे। वे चाहते थे कि वे त्वष्टा बने। उनकी इच्छा कभी पूरी नहीं हुई। परंतु उन्हें एक बहुत ही उज्ज्वल, धर्मात्मा, देवी भक्त पुत्र की प्राप्ति हुई। अपने पिता के नाम से वह मातंग नाम से विख्यात हुआ।

''इस मातंग ने भगवती ललिता देवी की उपासना की। उनकी तपस्या से देवी प्रसन्न हुई और उन्हें दर्शन दिए। देवी ने उन्हें कोई वर माँगने के लिए कहा। तब उन्होंने देवी से कहा कि, देवी की ही कृपा से उन्होंने अणिमा गरिमादि सभी सिद्धियां प्राप्त की हैं। परंतु एक कामना उन्हें सदैव व्यथित कर रही थी। बचपन में उनके एक घनिष्ठ मित्र हितवान ने एक दिन उनसे परिहास करते हुए कहा कि, मातंग को गौरी का पिता होना चाहिए। तभी से मातंग गौरी समान पुत्री की चाहत मन में रखे हुए थे। यह कह कर मातंग ने भगवती से प्रार्थना की, कि, भगवती स्वयं उनकी पुत्री के रूप में जन्म लें। क्यों कि, उनके बिना वे

हिमवान समान नहीं बन सकते।

‘‘करुणामयी ललिता देवी भक्त की इस विनम्र वाणी सुन कर प्रसन्न हुई और उन्होंने ‘तथास्तु’ कहा और वह अंतर्धान हुई। यथासमय मातंग मुनि की पत्नी गर्भवती हुई। उसे कन्या रत्न की प्राप्ति हुई। उन्होंने कन्या का नाम लघुश्यामा रखा। तथापि लोग उसे ‘मातंगी’ नाम से ही संबोधित करते थे। इस मातंगी के कारण ही मुनि ‘मातंग’ नाम से विख्यात हुए। देवी के स्वरूप से उत्पन्न मातंगी देवी के सान्निध्य मे रही। यह देवी का पाँचवा रूप हैं।

‘‘हयग्रीव ने अगस्त्य को ललिता देवी की महिमा का वर्णन कथन किया और कहा, ‘‘भले ही ‘पूर्ण’ मे’ से ‘पूर्ण’ घटा दिया जाए, तो भी शेष ‘पूर्ण’ ही रहता है। घटाया हुआ भी सदैव परिपूर्ण ही होता है। यद्यपि देवी अपने स्वरूप से विभिन्न रूप धारण करती है, फिर भी देवी का हर एक रूप परिपूर्ण ही है। यही इस देवी तत्व की महत्ता है। यही विशेषता है। इस दृष्टि से यद्यपि ललिता लघुश्यामा हुई, उनके दोनो रूप पूर्णतः सुरक्षित हैं। अतः उस अतर्क्य भाव पर संदेह करने का कोई कारण नहीं हैं।

‘‘वस्तुतः ललितादेवी का महिमा अवर्णनीय है।

‘यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा ह।’

‘‘अर्थात देवी का पूर्णतः चिंतन अथवा वर्णन करना मन और वाणी के लिए संभव नहीं हैं। इसका अर्थ पक्षपात, प्रलोभन, अज्ञान अथवा देवी के प्रति अपार स्नेह से कहा गया हो, ऐसा नहीं है, अपितु सर्वसंमत और शास्त्र प्रतिपादित सत्य यह है कि, यद्यपि कल्पतरू की सभी शाखाओं को तोडकर उन से लेखन्यः बनाया, सप्त समुद्र की स्याही बनाई और पराध्दातक सभी लोकपाल देवी का महिमा लिखते रहें... बृहस्पति जैसे कुशल सहायक मिल भी जाए तो भी वे इतनी अवधि में देवी के चरण कमलों की एक अंगुलि की सुंदरता का वर्णन नहीं कर पाएंगे। समग्र रूप से उनकी महिमा का वर्णन करना संभव नहीं। हयग्रीव ने कहा।

‘‘हे प्रभो, आपके मुख से भगवती ललिता देवी की महिमा सुनी। महत्ता का ज्ञान हुआ। अब मेरे मन में देवी माँ के प्रति अनुराग जाग गया है। इसलिए मेरा आपसे नम्र निवेदन है कि, मुझे ईश्वर की सहज प्रसन्नता के लिए कोई सिद्धप्रद ऐसा दिव्य मंत्र बताइएं जिस से मैं देवी की आराधना कर के उनका प्रसाद प्राप्त

कर सकूं। अगस्त्य ने बडी श्रद्धा से कहा।

हयग्रीव ने अगस्त्य को दिव्य मंत्र के विषय में कहा,

''इस विश्व में सभी वस्तुओं की तुलना में शब्द अधिक महत्वपूर्ण और अद्वितीय हैं। सभी शाब्दिक वर्णनों में वेदों का अत्यधिक महत्व हैं, और वेदों में मंत्रों का सर्वाधिक महत्व होता है। मंत्र भागवत में स्तुति और ब्राह्मण भाग में यज्ञ यागों का वर्णन हैं। विष्णु के स्तुति मंत्रों के पश्चात सब से अधिक मंत्र दुर्गा देवी की आराधना के लिए है। तद्नंतर गणपती स्तोत्रों का महत्व है। गणपती के पश्चात क्रमशः सूर्य, शिव, लक्ष्मी, सरस्वती, गिरिजा, वराह, इनके स्तुतिमंत्र हैं। इनमें ललिता देवी के मंत्रों का स्थान महत्वपूर्ण है। ललिता देवी की स्तुति करने के लिए दस मंत्र है। इनमें एक मंत्र अत्यंत आशुफलप्रद है और वह मंत्र है कामराज महेश्वर मंत्र। इसकी साधना से मनुष्य को मर्त्य लोक में सुख और परलोक में मोक्ष की सहजता से प्राप्ति होती है।

''यह परम पवित्र मंत्र स्वयं ब्रह्मा ने शिवजी को प्रदान किया था। शिवजी से कामपत्नी रति ने उसे ग्रहण किया। उसने इसी मंत्र से ललिता देवी को प्रसन्न किया। शिवजी क्रोध से दग्ध उसके पति कामदेव को उसने पुनश्च पा लिया। तभी से इस मंत्र का नाम कामराज महेश्वर मंत्र हो गया। यह मंत्र शिव जी से भृगु को, भृगु से चंद्रमा और चंद्रमा से पृथ्वी के ऋषियों को प्राप्त हुआ। इस मंत्र के जाप से उन्हें मुक्ति और भक्ति प्राप्त हुई। यह मंत्र है,

**'ॐ ऐं ऱ्हीं श्रीं क्लीं ऱ्हीं स्वः हुं फट् स्वः।**

**श्रीः परामवाच विशद्ज्योत्स्ना निर्मल–विग्रहः।।**

**ॐ ऐं श्रीं ऱ्हीं क्लीं सः फट् हुं स्वः स्वः फट् हुं स्वः स्वः सौः।।'**

''इस परमपवित्र, गोपनीय, रहस्यमय और निश्चित सिद्धिप्रद मंत्र की जपादि विधि भी मैं आपको स्पष्ट कर देता हूँ। हे अगस्त्ये, प्रातःकाल उठ कर गुरू और इष्ट देवताओं का स्मरण करना चाहिए। उन्हें अभिवादन करना चाहिए शौचादि विधि के पश्चात तेल आदि से स्नान करें। स्वच्छ, शुद्ध, पवित्र वस्त्र धारण करके शुद्ध और पवित्र होकर मंदिर अथवा किसी पवित्र स्थान पर जाएं। उस पवित्र स्थान पर ललिता देवी की प्रतिमा को स्थापित करके देवी के सम्मुख शुद्ध आसन ग्रहण करें। शुद्ध जल लेकर स्वयं पर तथा चारों दिशाओं में 'अधमर्षणादि' मंत्र से जल का छिड़काव करके वातावरण को शुद्ध करें। तत्पश्चात् आचमन करके

हृदय में परांबिका ललिता देवी का ध्यान करें। तद्नंतर उर्ध्वपुंड अथवा त्रिपुंड को अपने शीश लगाएं। इस प्रकार अन्तर-बाहर की शुद्धि के पश्चात संध्यावंदन करें। तद्नंतर सूर्य देवता को कुश, चावल, पुष्प, चंदनमिश्रित अर्घ्य अर्पण करें। सूर्य के स्वरूप में देवी के दर्शन लेकर तीन बार सुगंधित अर्घ्य देवी को समर्पित करना चाहिए।

''इस प्रकार ललितेश्वरी को प्रसन्न कर श्रीनगर के ललिता देवी के निवास स्थान का ध्यान करना चाहिए। तत्पश्चात अंगन्यास करके षोडोपचार से देवी की पूजा करनी चाहिए। अर्चना के उपरांत कस्तुरी आदि की सुगंधित माला देवी के गले में अर्पण करनी चाहिए। इन सभी विधियों के पश्चात बनाए गए मंत्र का छत्तीस लक्ष जाप करना चाहिए। अग्नि को तीन लक्ष साठ सहस्त्र आहुतियाँ समर्पित करनी चाहिए। अन्नदान करना चाहिए।

''इस प्रकार विधिविधान से, निर्धारित संख्या के जाप से मंत्र सिद्ध होता हैं। इसकी सिद्धि से मनुष्य समस्त, पापों, पीडा, काय क्लेशों, आपत्तियों से मुक्त हो जाता हैं। उस पर देवी की कृपा होती हैं। आठ लक्ष तक इस मंत्र के जाप से सभी देवताओं को वश में किया जा सकता हैं। पाँच लक्ष जाप करने से सिद्धियाँ प्राप्त होंगी। एक लक्ष जाप से वांछित फल प्राप्त होगा। प्रतिदिन एक निश्चित संख्या में इस मंत्र का जाप करने से मनुष्य पर देवी भगवती की कृपा होगी। सभी पापों से वह मुक्त होता है। कामदेव समान सुंदर होता है। बृहस्पति के जैसी सिद्ध वाणी उसे प्राप्त होती है। इंद्र जैसा पराक्रमी, वायु जैसै बलवान, समुद्र जैसा गंभीर और विष्णु जैसा श्रीसंपन्न हो जाता है। देवी भक्तों के भ्रूभंग से ही संसार में आतंक फैलता है। उसके क्रोध से विश्व को प्रलय की अनुभूति होती है। देवी का भक्त अठारह विधाएँ, अर्थात चार वेद, छट शास्त्र पुराण, धनुर्वेद, आयुर्वेद, इतिहास, कला, नाट्य, काव्य और संगीत का ज्ञाता होता है। उसकी वाणी गंगा जैसी पवित्र, निर्मल और मधुर होती है। उसके लिए अज्ञेय ऐसा कुछ भी नहीं होता। वह सभी सिद्धांतों का ज्ञाता होता है। उसके सारे संदेह दूर हो जाते हैं। उसका उज्ज्वल यश दिशाओं को व्याप्त कर लेता है।

''यही कारण है कि, चारों वेद, सप्तशास्त्र, ललिता देवी की स्तुति करते है। जगदंबा ललिता देवी ही परमात्मा और परागती है। उस से भिन्न अन्य कोई दूसरा परमतत्व नहीं हैं। मुनि इसी देवी का गान करते हैं। सनकादिक ऋषि इसी

देवी का ध्यान करते हैं। ब्रह्मादि सुरश्रेष्ठ पाँच प्रकार की सिद्धियों के लिए इस देवी की अर्चना करते है। हे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्ये, आपने अत्यंत भक्ति भावना से ललिता देवी माहात्म्य, मंत्र और विधिविधानों का श्रवण किया, इसलिए आप को देवी के विभिन्न रूपों को जानना चाहिए।

''तत्वचिंतन के माध्यम से, अचिंत्य, सूक्ष्मरूप में निराकार ललिता देवी ने ही सर्वप्रथम द्विभुजस्वरूप धारण किया है। उसके दाहिने हाथ की योग मुद्रा और बाएं हाथ में एक ग्रंथ शोभा देता है। कभी कभी वह दश भुजाओं वाली दुर्गा का रूप धारण करती है। इस देवी ने त्रिपुरा का नाश कर के चतुर्भुज रूप धारण किया था। यही देवी कांची पुरी में कामाक्षी देवी बन जाती हैं और भक्तों को प्रसन्न करती हैं। काशी और कांची भगवान शिव के दो नेत्र हैं। दोनो नेत्रों मे ललिता देवी ही अपने दो भिन्न-भिन्न रूपों में विराजमान हैं।

''एक समय, ब्रह्मदेव कांचीपुरी में भगवती ललिता देवी के दर्शन के लिए गए। वहाँ उन्होंने घोर तपस्या की। देवी प्रसन्न हुई और पद्महस्ता लक्ष्मी के रूप में स्वयं ब्रह्मदेव के सम्मुख प्रकट हुई। उस परात्पर ज्योति का दर्शन होते ही ब्रह्मदेव प्रसन्न हुए। उन्होंने देवी को 'आदिलक्ष्मी', 'त्रिपुरादेवी', 'ब्रह्माविष्णुजननी', 'कामाक्षी' और 'मंगलमूर्ति' आदि संबोधन से अभिवादन किया। देवी का स्तवन करते हुए ब्रह्माजी ने कहा,

''हे सृष्टि जननी, प्राकृतिक सौंदर्य के निधान, भक्तों का हर प्रकार से कल्याण करने वाली, आनंदमयी जननी, आपको मेरा कोटि कोटि प्रणाम।'

''ब्रह्मा की भक्ति देख कर भगवती ललिता देवी उनके सम्मुख प्रकट हुई। ब्रह्मदेव ने देवी के आग्रह से विमूढ, हतप्रभ लोगों के कल्याण हेतु कांची मे नित्य निवास करने के लिए आवाहन किया। देवी से प्रार्थना की कि, भगवान शिवजी के साथ ललिता देवी का कांची में नित्य वास हो। शिवललिता के लिए ब्रह्मदेव ने सभी सुख-सुविधाओं से युक्त एक विशाल प्रासाद बनवाया। दोनों का निवास सुख कर हो, इसलिए उनके मंदिर का भी निर्माण किया। तत्पश्चात देवी बिंबरूप में स्थिर होकर अंतर्धान हुई।

''हे अगस्त्य ऋषे, जहाँ शिवजी ने ललिता देवी के साथ वास किया था, उसी कांची पुरी में पार्वती ने ललिता देवी को प्रसन्न करने के लिए तपस्या की है। मैं उसे भी निवेदन करता हूँ।'' हयग्रीव ने निवेदन करना आरंभ किया।

''एक समय की बात है, कैलाश शिखर पर हास्यपरिहास, विलास क्रीडा चल रही थी, पार्वती ने अपने दोनों हाथों से शिवजी की दोनों आँखे बंद कर दी। शिवजी के दोनों नेत्र चंद्रमा और सूर्य हैं। दोनों नेत्र बंद होते ही पूरे विश्व में अंधकार फैल गया। बहुत देर तक पृथ्वी पर अंधेरा फैला रहा। इसके चलते यज्ञ की गतिविधियां ठप हो गई। श्राद्ध तर्पणादि कर्मकांड भी बंद हुए। विश्व कृश होने लगा। पार्वती के इस कृत्य से शिव भी रुष्ट हुए। उन्होंने पार्वती को त्याग दिया। पार्वती ने उनसे क्षमा माँगी, अनुरागार्थ अनुनय भी किया। तब शिवजी ने पार्वती को कांचीपुरी जाने और तपस्या करके सिद्धेश्वरी देवी ललिता महाराणी को प्रसन्न करने के लिए कहा। शिव ने सुझाव दिया कि, पार्वती को तपस्या करके अपने पापों का प्राचश्चित्त करना चाहिए।

''पार्वती अपने पति के वचन का सम्मान करते हुए कांचीपुरी आई। उन्होंने भगवती देवी की आराधना करने के लिए घोर तपस्या की। पार्वती की साधना से प्रसन्न होकर ललिता देवी अनके सम्मुख प्रकट हुई और कहा, 'हम दोनों एक ही है। केवल नाम रूप का भेद है। तुम्हारी तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ। तुम कोई अभिष्ट वर माँग ले।' पार्वती ने ललिता देवी को शिव से अपना परित्याग, उन्हीं के आदेश से की गई तपस्या आदि पूरा वृत्तांत कथन किया। देवी ने पार्वती को प्रायश्चित्त दिया और शिवजी के पास लौटने का आदेश दिया। देवी ने शिवजी के मन मे पार्वती के प्रति अनुराग निर्माण किया। जब पार्वती कैलाश लौटी तो शिव ने उन्हें बडे सम्मान के साथ उसे स्वीकार किया।

मैं अब आपको एक और कथा सुनाता हूँ, जो कांचीपुरी में पूजनीय सिद्धेश्वरी ललिता देवी की महिमा का वर्णन करती है।'' इतना कह कर, हयग्रीव ने कथा विदित करना आरंभ किया। अगस्त्य भी बडी श्रद्धा से श्रवण कर रहे थे।

''एक समय सभी देवता, सिद्ध, तपस्वी, महात्मा एक साथ बैठ कर चर्चा कर रहे थे। उस सभा में पंचमुखी ब्रह्मदेव, चतुर्भुज विष्णु और पंचमुखी शिव थे। शिव और ब्रह्मा दोनों भी पंचानन होने से, उनमें से कौन ब्रह्मदेव? कौन शिव? समझना कठिन था। अब उनमें श्रेष्ठ कौन, इस पर विवाद निर्माण हुआ। परिणाम स्वरूप शिवजी क्रोधित हुए। उन्होंने स्तंभ से कालभैरव निर्माण किया। कालभैरव ने ब्रह्मदेव का सिर काट दिया किन्तु वह कालभैरव के हाथ से चिपक गया और

ब्रह्महत्या का पाप हमेशा के लिए शिव पर आ गया। भैरवनाथ ने कांचीपुरी आकर ललितादेवी से इस पाप से मुक्ति की प्रार्थना कीं। उनकी निर्णायक भक्ति को देखकर देवी ने कालभैरव का ब्रह्महत्या का पाप अपने सिर लिया। इससे ब्रह्मदेव का सिर ललिता देवी के हाथ से चिपक गया।'

''हे भगवन् हयग्रीव, किस-किसने ललिता देवी की तपस्या करके अपने संकटों का निवारण किया, यह कृपा करके मुझे बताइए।''

''हे अगस्त्ये, आपकी जिज्ञासा को संतुष्ट करना कठिन है, क्यों कि यह सूचि अंतहीन है। परंतु हे अगस्त्ये, अयोध्यापति राजा दशरथ ने पुत्र-संतान प्राप्ति के लिए देवी को प्रसन्न किया था। वास्तविक जो भक्त मर्त्य लोक और स्वर्ग लोक की सभी चिंताए भगवती पर छोड देता है, वही देवी का भक्त होता है और देवी उस भक्त की सर्वतः सहायता करती है।'' हयग्रीव ने कहा। इस पर भी अगस्त्य का समाधान नहीं हुआ। तब अगस्त्य के आग्रह से प्रसन्न होकर, हयग्रीव ने अगस्त्य मुनि को ललिता सहस्त्रनाम बताया। सहस्त्र नामोच्चारण का महत्व भी कथन किया। उन्होंने कहा, 'अपने दैनंदिन नित्य कर्मों जैसा इस सहस्त्र नाम का पाठ करना चाहिए। श्री चक्र की पूजा करनी चाहिए। देवी नाम का जाप पाठ करना चाहिए। प्रतिदिन निश्चय के साथ इस सहस्त्रनाम का पाठ करना आवश्यक है। यदि उसे वैभव, संपत्ति की आकांक्षा हो, तो उसे स्तोत्रादि अन्य कर्म भी करने चाहिए। परंतु सहस्त्रनाम का पाठ करना अति आवश्यक है। हे कुंभोद्भव अगस्त्य मुने, मैं इसका कारण समझाता हूँ, सुनिए। एक समय की बात है, एक बार ललिता देवी ने अपने भक्तों के कल्याण की कामना करते हुए देवताओं को बुलाया, जिनमें से मुख्य देवता वाग्देवीवशिनी थी और उनसे कहा, 'हे देवताओं, मेरी बात ध्यान से सुनो। मैंने आपको वाणी की दिव्य शक्ति प्राप्त करने के लिए नियुक्त किया हैं। आपको मेरे चक्र का रहस्य ज्ञात हैं। आप मेरे नाम के उच्चारण में पूरी तरह तल्लीन हुए हैं। इसलिए मैं आपको आज्ञा देती हूँ कि, मुझ पर स्तोत्र रचें। आप मेरे सहस्त्रनामों से सुशोभित स्तोत्रों की रचना करें। जिसके कारण भक्त मेरे स्तवन करने लगेंगे।' इस प्रकार देवी की आज्ञा से इन स्तोत्रों की रचना की गई। हे अगस्त्य मुने, त्रिदेवों सहित सभी देवताओं तथा मनुष्यों ने बडी श्रद्धा से स्तोत्र गान किया। इन सभी को देवी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

''हे भगवान हयग्रीव, आपने श्री ललिता देवी के इस आख्यान से और

उनके सहस्त्रनाम स्तोत्र से मेरा जीवन कृतार्थ किया। मुझे अब भविष्य के लिए मुक्ति का मार्ग प्राप्त हुआ है।''

''तत्पश्चात महर्षि अगस्त्य ने श्री ललिता देवी स्वरूप श्री विष्णु का ध्यान किया और वे उनके अनुष्ठानों के साथ तपस्या करने गए। ललिता देवी ने उन्हें अगस्त्य विद्या चिरकाल रहने तथा इस विद्या का अनुसरण करने वाले अपने जीवन में सफल होने का वरदान दिया। अगस्त्य अत्यंत प्रसन्न हुए। प्रसन्न होकर त्रिपुरेश्वरी ललिता देवी ने जैसे ही अगस्त्यों को अगस्त्य विद्या सुफल होने का वरदान दिया, अगस्त्य गुरुकुलों का वातावरण आनंदादोलित हुआ। अत्यधिक गुप्त विद्या अगस्त्य को प्राप्त थी। अगस्त्य आश्रमों के सभी कुलपतियों ने कांची पुरी में आकर अगस्त्य को प्रणाम किया और श्रीललिता, त्रिपुरेश्वरी अर्थात पराशक्ति ने यथासाध्य पराविद्या अगस्त्य से ग्रहण की। श्री विष्णु, साक्षात धन्वंतरी बहुत प्रसन्न हुए।

विष्णुरूप हयग्रीव ने ललिताख्यान कथन करने के पश्चात हयग्रीव अंतर्धान हुए।

*

''अनिल, यह सत्य है कि, पुराणकथा अद्भुत, सुरस और चमत्कारी होती है। तथापि हम 'इतिहास पुराण' ऐसा शब्दप्रयोग क्यों करते हैं?'' योगेश्वर ने संदेह व्यक्त किया।

''तुम सत्य कहते हो। मौखिक परंपरा में जितनी भी लोककथाएँ आई हैं, उनमें कालक्रमानुसार ऐसी अद्भुत, सुरस चमत्कारिकता निर्माण होती गई। परंतु उस में सत्यांश छिपा होता हैं। सत्यांश ही इतिहास होता है। जैसे लोककथाएँ इतिहास से निकलती हैं, वैसे ही इतिहास की पौराणिक कथाएँ भी निकलती हैं।'' अनिल ने कहा। बात को आगे बढाते हुए वह कहने लगा,

''मान मान्य मान्दार्य अगस्त्य के मन में विचार आया कि, ऋषिपद को त्याग कर संन्यास लेने का यही उचित समय है। अगस्त्यों के जीवन में मानवी जीवन की स्वीकृति एक अत्यंत विलक्षण, अद्भुत किन्तु उद्देश्यपूर्ण रूप से स्वीकृत अवस्था थी। वे जानते थे कि, इस अवस्था से ऋषियों, देवताओं की अवस्था में

जाना साधारण मनुष्य के लिए भरकस प्रयास के पश्चात भी असंभव है। अगस्त्यों का सीधा संपर्क परब्रह्म स्वरूप से तो था ही, तथापि ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर से भी था। महर्षि अगस्त्य ने मानव कल्याण तथा प्रकृति और मनुष्य के उचित प्रबंधन के लिए मानवी जीवन का स्वीकार, त्रिदेवों और आकाश, अंतरिक्ष के देवताओं के परामर्श से ही किया था। अगस्त्य आश्रम परंपरा की रचना कर, विश्वव्यापी संचार के साथ-साथ अगस्त्य विद्या का प्रचार-प्रसार करने में भी सफल रहें। अगस्त्यों को ज्ञात था कि, महायुद्ध के पश्चात बदलते परिवेश में आश्रमों को एक सूत्र में रखना भावी चंचल युग की दृष्टि से उचित नहीं था। त्रिकालज्ञ अगस्त्य को आनेवाले भविष्य काल में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन पुरुषार्थों के साधन प्राप्ति के साथ धर्म, राजसत्ता, गुरुकुल, गोत्र, यज्ञसंस्था, इनमें होनेवाले परिवर्तन का ज्ञान था। अगस्त्यों की परंपरा से उनके गुरुकुल, आश्रमों द्वारा विभिन्न वंश जैसे राज वंश, पुरोहित वंश, वैश्य, शूद्र वंश तथा राक्षस, दैत्य, वानर, दानव आदि वंश के कई लोग जुड गए थे। उनमें एकाधिकार नहीं था। महायुद्ध के परिणाम स्वरूप आश्रम तथा गुरुकुलों की नित्यव्यवस्था एवम् समर्थन में दुर्बलता आ गई थी। तथापि, अगस्त्य विद्या के उद्देश्य, श्रद्धा, स्वास्थ्य के साथ साथ मानव कल्याण के विषय में गुरुकुलों, विभिन्न राजाओं तथा लोकसमुदायों मे विश्वास था।

''महर्षि अगस्त्य ने अपनी परंपरा की सभी मौखिक परंपराएँ समय की माँग को ध्यान में रखते हुए उदारता से व्यास शिष्यों को दे दी। ऋषियों, गोत्रों और गुरुकुलों की परंपरा खंडित होने की संभावना थी। चारों वेद, पुराणों, नीतिशास्त्रों तथा विज्ञानों का स्वतंत्र लेखन, लेखन विद्या से संभव हो सका। महर्षि वाल्मिक ने रामायण और महर्षि व्यास ने महाभारत कथा लिख कर प्रलयोत्तर निर्माण हुई मनु की सभी कथाएँ एकत्रित की थी। पुराणों के अनुसार, विभिन्न देवताओं से जुडी हुई थी। एक नए विश्वविद्यालय के माध्यम से लाखों वर्षों का इतिहास दिव्यदृष्टि से लोगों के सामने रखा गया। राजनीति, युद्धनीति, समाजनीति, कृषिनीति, स्वास्थ्यनीति, अथर्वण, धर्मशास्त्र, पौराणिक कथाओं, तंत्रशास्त्रों और प्रौद्योगिकी का निर्माण होने लगा। अगस्त्य गुरुकुल भी पीछे नहीं रहें। लेखन कार्य संस्कृत और लोकभाषा से आरंभ हुआ। यज्ञसंस्था को तंत्रशास्त्र का स्थान प्राप्त हुआ था। देवताओं, दानवों, पिशाच्चों, गंधर्वों, नाग, ऋषियों, वृक्षों, नदियों, समुद्रों, पर्वतों

का मानवीकरण पूरा हो गया था। दिव्य शक्ति, तपस्या, साधना को मानवाधीन शास्त्रों, योगविद्याओं, तंत्रशास्त्रों में समाविष्ट करना अब संभव हुआ था।

''महायुद्ध के पश्चात अनेक ऋषियों ने अपने स्वतंत्र गुरुकुलों को बंद कर दिया था। व्यक्तिगत स्तर पर गुरु परंपरा आरंभ की गई थी। साधक, साधु, सिद्ध, गोसावी, मुनि जैसे व्यक्तिगत अभ्यासियों का एक वर्ग निर्माण होने लगा था। तंत्रशास्त्र में वाम और दक्षिण मार्ग निर्माण होकर मांत्रिक, हठयोगी और पुरोहितों के वर्ग निर्माण हो रहे थे। तारापुंज में समाविष्ट, दिव्यशक्ति प्राप्त ऋषियों द्वारा लोक कल्याणार्थ परामर्श देकर मार्गदर्शन करने का संकेत प्रचलित हुआ था। ऋषियों के मंदिर स्थापित किए गए। उन्हें दिव्य देवताओं का स्थान प्राप्त हुआ था।

''अगस्त्य अति प्राचीन परंपरा प्राप्त मान मान्य मान्दार्य ऋषि होने के कारण उनके गुरुकुलों का विस्तार सप्तद्वीपों में अर्थात समुद्र के परे सर्वदूर हुआ था। अगस्त्य इन सभी स्थानों पर सूक्ष्म देह धारण कर मनोवेग से संचार करते थे। एक समय अगस्त्य ने अपने 'तारा'धिष्ठित आश्रमों सहित सभी आश्रमों के अगस्त्य कुलपतियों को कांची नगरी मे एकत्रित किया। अगस्त्यों ने कदाचित सहस्त्रों वर्षों में प्रथमतः सभी विद्यमान कुलपतियों को आमंत्रित किया था। सर्वदूर चर्चा थी कि, कांची पुरी मे अगस्त्य याग स्वरूप उत्सव चल रहा है। दक्षिणी गुरुकुल के कुलपतियों ने अपने साथ एक महत्वपूर्ण शिष्य परिवार लाया था। अगस्त्य याग का आयोजन उसी स्थान पर किया गया था, जहाँ हयग्रीव ने अगस्त्य को ललिताख्यान का कथन किया था। अगस्त्य परंपरा की पद्धति नुसार सोमयागपूर्वक याग का प्रारंभ हुआ। यज्ञ में सभी अगस्त्यों ने सामुहिक रूप से वेदों का पठन किया। अगस्त्य परंपरा के द्युस्थानीय देवता, अंतरिक्ष देवता और पृथ्वीस्थानीय देवताओं का सूक्त गाकर आवाहन किया गया। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चारों वेदों की परंपराओं को अगस्त्य और लोपामुद्रा के सम्मुख इध्मवाह के अगुआपन से पुनःघोषित किया जा रहा था। सत्रों के बीच विश्राम के समय में, अगस्त्य और अगस्त्य शिष्य पुराणों में ग्रथित अगस्त्य कथाओं का स्मरण कर रहे थे। दशदिशाओं में फैला अगस्त्य स्थानों का माहात्म्य प्रकाशमान हो रहा था। अगस्त्य मुनि का कार्य भी अगस्त्य परंपरा के सामने उज्ज्वल हो रहा था। अगस्त्य और लोपामुद्रा मानो विष्णु लक्ष्मी,

शिवपार्वती समान शोभायमान और प्रसन्न लग रहे थे।

सत्रों की पूर्णाहुति होने तक, कोई भी अगस्त्य याग के उद्देश्य के विषय में बात नहीं कर रहा था। लाखों वर्षों की तपस्या से प्रकट हुए अनुभव सिद्ध ज्ञान प्रकाश में हर कोई प्रकाशमान हो रहा था। आश्रमवासी स्त्री-पुरुषों की प्रसन्न मुद्रा में अगस्त्य तेज प्रतीत हो रहा था। मान मान्य मान्दार्यों के लाखों वर्षों की तपस्या का फल अगस्त्य विद्या के रूप में सर्वतोगामी से प्रकट हुआ। त्रिदेवों की उपस्थिति में सभी देवताओं ने अगस्त्य को और अगस्त्य विद्या को अमरत्व का वरदान दिया। आशीर्वाद से संतुष्ट होकर अगस्त्य मुनि ने गंभीरता से परामर्श देना आरंभ किया।

''हे कुलपति अगस्त्ये, माता पार्वती और महादेव शिवजी के आशीर्वाद से, परब्रह्म की इच्छानुसार और ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, मरुत, मित्र, वरुण इनके आदेशात्मक परामर्शनुसार सहस्त्रों वर्ष, अगस्त्य आश्रमों अर्थात गुरुकुलों ने देवताओं, दानवों, मानवों, प्राणिमात्रों, पृथ्वी के कल्याण के लिए यज्ञ संस्था के सोमयागपूर्वक अगस्त्य विद्या प्रसार का कार्य किया है। अगस्त्य विद्या का समावेश वेद व्यास के संकलन में पूर्णतः अंतर्भूत हुआ है। गुणकर्मों के अनुसार मनुष्य ने तुरंत उत्पन्न होने वाली संपत्ति को नष्ट करने की क्षमता प्राप्त कर ली है। विश्वविख्यात ऋषियों के ज्ञान का, दर्शन का लाभ अब संकलित विश्वविद्यालय, गुरुकुल से लिया जा रहा है। सभी महत्वपूर्ण मानव कुलों ने नए संकलित विश्वविद्यालय से शिक्षा लेने, उन विद्यालयों को मान्यता देना स्वीकार किया हैं। इसी कारण से अगस्त्य आश्रमों का स्वरूप अब स्वैच्छिक शिक्षा का क्षेत्र बन गया है। नियमित श्रमपूर्वक पाठशालाओं की अब आवश्यकता नहीं। जहाँ कहीं भी अति आवश्यक हो वहाँ गुरुकुल चलाए जा सकते हैं। तथापि, इन आश्रमों का उपयोग, परामर्श, स्वैच्छिक शिक्षा, स्थानीय प्रश्नों पर संकट राहत प्रयास, लोक कल्याण के लिए पारंपरिक यज्ञयाग और कुलपति ऋषियों के ध्यान, तप, योग, तंत्र, सिद्धि, मोक्ष साधन और स्वास्थ्य विद्यालय के लिए किया जाना चाहिए। भगवान हयग्रीव ने दश दिशाओं के लोकपालों की मानसिकता को ललिता आख्यान के रूप में व्यक्त किया है। परब्रह्म, त्रिदेव, यज्ञीय वेदोक्त देवताओं की प्रतिकात्मक पूजा और पुरुष, प्रकृति रूपों को तांत्रिक मार्ग से सिद्धतापूर्वक उपयोजन से मनू अवतीर्ण हुआ है। भगवान हयग्रीव के परामर्श

के अनुसार हम लोककल्याणकारी कार्य करने के लिए समूचे विश्व में फैले अपने आश्रमों, पवित्र स्थानों का उपयोग करेंगे। अगस्त्य गुरुकुल अब श्रद्धा, कृषिकर्म और स्वास्थ्य के त्रिसूत्री सिद्धांतों के आधार पर स्थानीय क्षेत्र की भाषा, लोकाचार, रूढि परंपरा, धर्म मूल्य को अनुभूतिपूर्वक मोड देने का कार्य करेंगे। मैं स्वयं मान मान्य मान्दार्य अगस्त्य स्थूल रूप में दशदिशाओं के विशिष्ट स्थान पर चिर वास्तव्य करने वाला हूँ। सूक्ष्म देह से मैं सर्वत्र रहूँगा एवम् तारापुंज में प्रकाशमान होकर अगस्त्य विद्या का बोध कराऊँगा। हम प्रचलित मनु में सिद्ध स्वरूप में कटिबद्धता से मेरी अगस्त्य शक्तियुक्त विद्या के साथ लौकिक रूप में मानवी रूपधारी देवताओं के समान लोक कल्याणकारी कार्य करने जा रहे हैं। लोपामुद्रा भी मेरे साथ इस कार्य के लिए हमारे साथ सर्वत्र रहेगी। ब्रह्मा, विष्णु, महेश के आशीर्वाद से और परब्रह्म की इच्छा से, आइए हम नये मनु की प्रथानुसार कार्यरत होते हैं। एक युग का अस्त और एक नये युग का आरंभ हो रहा है। इसमे तंत्र मार्ग का महत्व अधिक है। लोक व्यवहार मूलतः तंत्र के अनुसार चलता है। तंत्र वाम दक्षिण दोनों प्रकार से, वृत्तिनुसार चलता है। किसी भी मंत्र का साध्य अंततः एक ही होता है। मानवी कल्याण की दृष्टि से तंत्रशास्त्र के अध्ययन को अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रेरित करना चाहिए। साक्षात्कारी एक प्रबुद्ध व्यक्ति और तांत्रिकता का पौरोहित्य दोनों के रूप में कार्य करने में हम सक्षम रहेंगे। विभिन्न दैवीय शक्तियों, आसुरी शक्तियों और मूल महाशक्तियों को प्रसन्न करके सफलता प्राप्त करने के लिए इस मनु में मंत्र, तंत्र, उपाय, विधिविधान को विशेष महत्व प्राप्त होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि, जप-तप का महत्व कम नहीं हुआ है। श्रम, तपस्या, स्वाध्याय, योग, अध्ययन भी महत्वपूर्ण हैं। यज्ञयाग भी तंत्रशास्त्र के अनुसार ही होगा। इसी में हमें सहभागी होना है। शैव, शाक्त, गणपत्य, सौर, वैष्णव आदि दैवीय तंत्रो में शिवगण के सभी देवता सहभागी हैं और इन पूजाओं अथवा साधनातंत्रों को मानवीय शरीर को केंद्र में रखकर ही निर्माण किया जा सकता है। मानव समुदायों में कई विचार धाराएँ और मार्ग नए सिरे से सिद्ध होंगे। उस समय उनका भी कोई तंत्र निर्माण होगा। ये तंत्र बुद्धिजन्य और ऐंद्रियजन्य शक्तियों पर आधारित होंगे। इसे गुरू परंपरा के साथ प्रयोग में लाने का नए मनु का तंत्र है। हे अगस्त्यों, तत्पश्चात मैं संपूर्ण संन्यासपूर्वक सूक्ष्म रूप से आपके लिए उपलब्ध हो जाऊँगा। यद्यपि यह लौकिक रूप से संन्यास है,

अगस्त्य यह श्रम जीवन के लिए कल्याणकारी मानवी जीवन परंपरा है। प्रकृति और मनुष्य, ईश्वर और मनुष्य के बीच संबंध सहित आर्यधर्म अर्थात आर्यत्व के कसौटि पर सभी मनुष्यों को परख ने का कार्य आगे भी चलता रहेगा। इस प्रकार आपके लिए भी अपना मार्ग प्रशस्त करना उचित होगा। जहाँ आवश्यक होगा, जैसे ही मेरा स्मरण किया जाएगा मैं वहाँ उपस्थित हो जाऊँगा। काल और आकाश अनंत है। पृथ्वी की भांति सृष्टि भी अनंत है। एक मनु से दुसरे मनु तक की हमारी यात्रा है। एक प्रलय से दूसरे प्रलय तक हमें ले जाती हैं।'' अगस्त्यों द्वारा उच्चार किया गया एक एक शब्द वेदमंत्र घोष समान नए मन्वंतर का संकेत दे रहा था। अगस्त्य विद्या के अमरत्व का तथा परिवर्तन का भी विश्वास दिलाता था।

''नारायण, नारायण, हे अगस्त्यों, आपको मेरा प्रणाम है।''

''हे ब्रह्मर्षे, आपको भी हमारी अगस्त्य परंपरा का प्रणाम है।''

''हे अगस्त्ये, आपने जो परामर्श दिया, वह उचित ही है, किन्तु अगस्त्य ने संन्यास स्वीकार करना, हयग्रीव को भी अपेक्षित नहीं हैं। महर्षि अगस्त्य ने यह संन्यास का विचार महायुद्ध के पश्चात निर्माण हुई विदारक स्थिति के कारण ही प्रस्तुत किया है। तथापि हे ऋषे, आश्रमाधिष्ठित ज्ञानार्जन, ज्ञानदान की आवश्यकता अभी समाप्त नहीं हुई है। ऋषि गुरुकुलों का परिवर्तन, सामूहिक वेद विद्या, युद्ध विद्या, आयुर्वेदादि वेदउपांग, राजविद्या इन सभीं के लिए सामूहिक विश्वविद्यालयों का गठन किया जा रहा है। विश्वविद्यालयों के आचार्य वेदव्यास की परंपरा निर्बाध रूप से आगे बढाएंगे। इसके लिए आपके योगदान की आवश्यकता है। तंत्र विद्या के लिए अथर्वण और आयुर्वेद, ज्योतिर्वेद, योग विद्या का विकास आपके अधिकार से अपेक्षित है। मान्दार्यों का यह निर्विवाद सत्य वचन है कि, लोक भाषा, लोक विद्या, विज्ञान में प्रौद्योगिकी को अर्थात तंत्रशास्त्रों को महत्व प्राप्त होगा। इन सभी प्रणालियों के शक्ति स्त्रोत उमा, महेश, गणेश और विष्णु, सूर्य, चंद्र और लोक देवता होंगे। परब्रह्माने ब्रह्मा द्वारा विष्णु, महेश तथा इंद्र, वरुण, मरुत, चंद्र, सूर्य, अग्नि इन देवताओं की सहायता से निर्माण की गई सृष्टि का व्यवस्थापन करने के लिए तप सामर्थ्यशाली ऋषि, तप सामर्थ्य युक्त महाबली इनका निर्माण सृष्टि शक्ति माया में किया था। माया में यातुशक्ति अब इतनी शक्तिशाली हैं, कि समग्र सृष्टि को व्याप्त कर सकती हैं।

इसलिए शक्तिद्रष्टा, मंत्र, सूक्त कर्ता ऋषियों का स्थान अब शक्तियाँ अंकित कर उनका उपयोजन करने वाले तंत्र वैज्ञानिक लेंगे। अतः ऋषि संस्था का लोप होगा और साधक, तांत्रिक, पुरोहित, योगी, सिद्ध और वैज्ञानिक, अथर्वण इनको ऋषि संस्था का कार्य करना होगा। शब्द माध्यम के ग्रथित ज्ञान को महत्व प्राप्त होगा और इसके साथ तंत्र विद्या का अनुसरण करने वाले श्रेष्ठ शासक होंगे।

''इसलिए हे अगस्त्ये, शिव, विष्णु, ब्रह्म, इंद्र, मरुत, अग्नि, मित्र, वरुण आदि शक्तियों से युक्त और इन शक्तियों से प्रत्यक्ष अनुग्रहित अमानवी, त्रिकालज्ञ और सृष्टिरूप विभूति, आप मानव रूप में विगत लाखों वर्ष प्रत्यक्ष कार्य करते हुए देख रहे हैं। इस अवस्था से निष्पन्न मरीचि, कश्यप, अगस्त्य आदि ऋषि परंपरा की विभूतियाँ अब वैवस्वत जाकर आगे के वैवस्तव के लिए भूलोक स्थापित करने के लिए महानिर्वाण जाएंगे।

अगस्त्य की प्राकृतिक अवस्था अन्य ऋषियों से भिन्न है। उनकी अवस्था अमानवी, मानवी है और वे तपस्वी, शक्तिमान, सिद्ध और महाबली अथर्वण है, सृष्टि शक्ति के व्यवस्थापक होने के कारण उनका तंत्रज्ञान पर अधिक प्रभाव है। इसलिए उनका वैवस्वत जाना केवल लाक्षणिक होगा। इसीलिए उन्होंने आपको शक्तिमार्ग के साथ स्थान माहात्म्य, अगस्त्य परंपरा का रक्षण करते हुए लोक कल्याणकारी कार्य करने की आज्ञा दी हैं।

''हे ब्रह्मर्षे नारद, आपने विस्तृत भविष्य काल के विषय में जो भाष्य किया है, उसमें अगस्त्य का क्या स्थान है? नया वैवस्वत कैसे निर्माण होगा, यह हमें मान्दार्य अगस्त्य की साक्षी से कथन करें।'' इध्मवाह ने ब्रह्मर्षि नारद को पुनश्च बोलने के लिए बाध्य किया।

''हे इध्मवाह अगस्त्य महर्षे, आपने बहुत ही मार्मिक तथा भविष्य को सुलझाने वाला प्रश्न किया है। इसके लिए हमें सृष्टि के रहस्य को जानना होगा। ब्रह्मांड में कैवल्य से उसकी प्रकृति के अनुसार अकारण अनेकों में रुपांतरित होने की क्रिया होती है और यहीं से कार्यकारण, क्रिया, प्रतिक्रियाशील कालमापन आरंभ होता है। कैवल्य स्वरूप परब्रह्म का अस्तित्व चिरंतन हैं, ब्रह्मांड में कालक्रम नुसार असंख्य क्रिया-प्रतिक्रियात्मक मनु होते रहते है। काल का एक मन्वंतर होता है। प्रत्येक मनु का कालमापन कैवल्य की इच्छा से कम-अधिक होता है, किन्तु इस स्वप्नवत् अवस्था का कारण उत्पत्ति, स्थिति और

प्रलय (अथवा संहार) अवस्था है। इन तीनों अवस्थाओं को कैवल्य निष्पादित ब्रह्मा, विष्णु, महेश अवस्था, शक्ति अथवा त्रिदेव कहा जाता है। अतः ब्रह्मा, विष्णु, महेश जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारक हैं। इन त्रिदेवों की प्रेरणा से, ब्रह्मा से और विष्णु महेश तत्त्वों से सृष्टितत्त्व निष्पन्न होकर कार्यान्वित होते हैं। इनमें विष्णु ही उर्जास्त्रोत, सूर्य, अग्निरूप अथवा तेजरूप होते हैं, जब कि शिव तत्त्व से प्रकृति, माया, पृथ्वी, वायु एवम् जल निष्पन्न होता है, फिर भी ब्रह्मा की आज्ञानुसार इन सब का कारक प्रत्यक्ष ब्रह्म ही है। वह इन सभी तत्त्वों को इंद्रशक्ति से निर्देशित करता है। इनमें कैवल्यमय ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप है और ये सभी तत्त्व प्रत्यक्ष निर्माण होते हैं। इसीलिए उन्हें भूत कहा जाता है। पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाश अथवा उसी से निष्पन्न मायाकाश इन पंचतत्त्वों का जनक परब्रह्मा ही होता है और ये तत्त्व कैवल्य से त्रिदेवों के विकार रूप से अकारण निष्पन्न होते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि अंत में ये सभी तत्त्व कैवल्य में ही अंतर्भूत होंगे। मायाकाश में भूत प्रबंधन से क्रिया प्रतिक्रियाशीलता से सृष्टि संचालित करने के लिए त्रिदेवों एवम् पंचतत्त्वों से निष्पन्न होनेवाले द्यु देवताओं, अंतरिक्ष देवताओं और पृथ्वी देवताओं सहित विभिन्न प्रकार से निष्पन्न मन, प्रकृति और वासना युक्त मानव एवम् अन्य प्राणियों का व्यवस्थापन करने के लिए परब्रह्म की आज्ञा के अनुसार ब्रह्ममानस से शक्तिस्वरूप त्रिविध देवता, परिश्रमपूर्वक ऋतु व्यवस्थापन करने वाले और प्राणियों के जीवन को यथोचित आकार देनेवाले ऋषि निष्पन्न होते हैं। मरीचि, कश्यप, अगस्त्यादि, मुझ जैसे ऋषि ब्रह्मदेव के मानसपुत्र हैं। मायावकाश के एक विकार के प्रबंधन की प्रक्रिया में अवतीर्ण होते हैं और अगले नए मायावकाश के प्रबंधन के लिए अंतर्धान होते हैं। कैवल्य निष्पादित ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिदेव और उनके द्वारा निष्पन्न शक्तियाँ वास्तव में निर्विकार होती हैं। उनका विकार ही एक भ्रम है। मायावकाश में होनेवाले तत्त्वाधिष्ठित उत्पत्ति, स्थिति, एवम् विलय युक्त विकार व्यवस्थापन में ये अवस्थाएँ निर्विकार सूत्रों का ही तत्त्वज्ञान निरंतर मायावकाश के अस्तित्वों को समझाती हैं और इस विकार से निर्विकार कैवल्य की ओर जाने की प्रेरणा देती रहती हैं। मान्दार्य अगस्त्य ने इंद्र मरुतादि देवताओं की रक्षा करना, समुद्र, विन्ध्य, असुर, रावण, नहुष आदि का अहंकार मिटाना, गोमाता, कृषिवल, इनका व्यवस्थापन करना, सोमयाग पूर्वक यज्ञसत्र करना, आयुर्वेद उपासना

करना, शल्यचिकित्सा पूर्वक रसचिकित्सा, रुग्णसेवा, परंपरा सम्हालना, पर्जन्य और जल का आकाश, पृथ्वी और समुद्र का व्यवस्थापन करना, आदि ब्रह्मकर्तव्य भावना से किए हुए कार्य हैं। इसीलिए शिवशक्ति स्वरूप अथर्वण अगस्त्य जैसे अगस्त्य के कई रूप लाखों वर्षों में देखे गए हैं। प्रभु रामचंद्र, परशुराम, श्रीकृष्ण के साथ पांडवों को उचित मार्गदर्शन देकर देवदानवरहित संपूर्ण मानवी जीवन की श्रद्धापूर्वक स्थापना करने वाले अगस्त्य हमनें देखें हैं।

''हे अगस्त्ये, अब से विद्यमान मनु की अवस्था केवल इक्कीस सहस्त्र वर्ष होगी। महाप्रलय निकट है। यह मनु की अवस्था नास्तिक और आस्तिक संघर्ष से मनुष्य के मन में संघर्ष करने वाली है। इससे लोकमानस उलझा रहेगा और नास्तिकता प्रबल होगी और स्वाभाविक रूप से इस विवस्वता में कैवल्य ज्ञान से वैज्ञानिक सूचना एवम् प्राविधिकता को अधिक बढावा प्राप्त होगा। सृष्टि तत्त्व के जीव तत्त्वों पर प्रौद्योगिकी का प्रभाव जीवसृष्टि के विकास को आमंत्रित करेगा। इस अवस्था में ऋषि, मुनि, तपस्वी, वेदविद्या, तत्त्वज्ञान निष्प्रभ सिद्ध होंगे। विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी के कारण अंतर्ज्ञान, आत्मज्ञान, आत्मसंबंध, अतींद्रिय शक्ति, अतींद्रिय ज्ञान विस्मृति में चले जाएंगे। जीवसृष्टि का क्षय होता जाएगा। सूर्य की उष्मा और अप्राकृतिक परियोजनाओं से पृथ्वी दोलायमान होगी। मनुष्य और प्राणियों के बीच असंतुलन और संकर बढेंगे। मनुष्य स्वत्व को भूल कर पराधीन हो जाएगा और प्रौद्योगिकी के बल पर अस्थायी इच्छाओं, वासनाओं एवम् आकाक्षाओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करता रहेगा। ग्राम, नगर, राज्य, सत्ता, अर्थ आदि का प्रबंधन अस्त-व्यस्त एवम् पराधीन हो जाएगा। वासनाओं से असंतुष्टि, बुभुक्षा और अधिक बढ जाएगी। प्राणियों का जीवन कुछ तांत्रिकों के अधीन हो जाएगा। लोकतंत्र हतबल होगा। स्वशस्त्रों से ही, मनुष्य भस्मासुर की भांति स्वयं को नष्ट कर देगा।''

''हे ब्रह्मर्षे, आप सृष्टि के इस रहस्य को सब के सामने लाकर सबको भयग्रस्त कर रहे हैं। क्या इससे मार्ग निकालने के लिए परब्रह्म कैवल्य महामानवों का निर्माण नहीं कर सकते?'' इध्मवाह अगस्त्य ने नारद से पुनः प्रश्न किया।

''हे इध्मवाह अगस्त्ये, आप बहुत चतुराई से और लोककल्याण के लिए प्रश्न पूछ रहे हैं। कैवल्य का अस्तित्व गृहित है, किन्तु विज्ञान इससे अवगत नहीं होगा, इसलिए आस्तिकता नष्ट होती हैं। पंचेंद्रिय युक्त प्राप्त जीव, धर्म यही

सत्य है। कैवल्य के ही ये विभिन्न रूप हैं और प्रलय तक के काल में क्रिया प्रतिक्रियात्मकता से भासमान अस्तित्व के साथ वहीं तत्त्व अथवा बहुविध प्रकट हुए तत्त्व नित्य नए रूप धारण करके यह सृष्टि भोगती है। इसी में उसे मोक्षमार्ग अथवा भौतिक मार्ग प्रतीत होता है। जो लोग भौतिक मार्ग का अनुसरण करते हैं, वे नास्तिक बुद्धि के और आँखे होकर भी अंधे होते हैं। वस्तुतः वे जिस अस्तित्व के बारे में सोचते हैं, उसके विषय में सोचने का ज्ञान कैवल्य की शाश्वत शक्ति से ही प्राप्त होता है। तथापि वे प्राप्त व्यवहार को ही प्रमाण मानकर उसी के विषय में सोचते हुए प्राप्त दुःख भोगता है और अंत में अपना शरीर त्याग देता है। विज्ञान प्रामाण्य अर्थात प्रत्यक्ष प्रमाण में विश्वास रखने वालों को लगा कि, उन्हें विज्ञान अवगत हुआ है। वास्तविक नास्तिकता, आस्तिकता के चिंतन का ही परिणाम है, और आस्तिकता की खोज ही इसका लक्ष्य है। परंतु वहाँ पहुँचने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है। भविष्य में नास्तिकता सम्मत होगी और उसका प्रभाव बढेगा। यही मानव अवस्था की वास्तविक और अंतिम अवस्था है। इस अवस्था को पार करके आत्मज्ञान से सिद्ध होना ही मायाकाश के परे पहुंचना हैं।''

''हे अगस्त्ये, नास्तिकता और आस्तिकता मनुष्यों के बीच एक तात्त्विक संघर्ष छेडते रहेंगे। संपूर्ण ब्रह्मांड में कैवल्य तत्त्व का ही आविष्कार है। उपनिषदों के सार अथवा वेदान्त अस्वीकार्य होगा और इस मतभिन्नता से राज्य, राष्ट्रवाद तथा परिणामस्वरूप युद्ध होते रहेंगे। सत्ता के लिए भी उनका उपयोग होगा। ब्रह्मांड के समग्र सृष्टितत्त्व का विचार करने के लिए भी अवसर प्राप्त नहीं होगा। इससे विश्व का प्रलय अटल है। किन्तु इससे सनातन लोकधारणा कैवल्य भक्ति के विभिन्न आविष्कारों से आस्तिक मन के अनुसार वर्तन करेगी तथापि व्यवहार और विचार में बहुत अंतर होगा। मानव कल्याण तभी होगा, जब कैवल्य भक्ति के मार्ग का अनुसरण सृष्टि विषयक आस्तिक मतानुसार प्रेमभावना से होगा। परंतु मानवी मन के संतुलन के साथ-साथ सृष्टि में पंचतत्त्वों का संतुलन अति आवश्यक है। उसके लिए प्रकृति के संतुलन को ध्यान में रखकर मानव व्यवहार होना चाहिए। यदि ऐसा होता हैं तो, वर्तमान मनु परब्रह्म के आशीर्वाद से लाखों वर्षों तक यथोचित कालक्रमणा करता रहेगा। शाश्वत और अशाश्वत के बीच की कारण प्रक्रिया को समझना चाहिए। शाश्वत, निर्विकार, निर्गुण और निराकार है।

यही वास्तविक तत्त्व है और अशाश्वत विकारी, सगुण और साकार है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन उसकी सकारण प्रतिक्रियात्मक वृत्ति है। सृष्टि के सभी जीव इसमें फंसे हुए हैं। इसलिए उनका संघर्ष मायाकाश में अशाश्वत रूप में चल रहा है। उनका अस्तित्व जल की तरंगों, वायुलहरों, वस्तुओं के छाया के अस्तित्व की भांति, अशाश्वत है। नास्तिक इस अशाश्वत के अस्तित्व पर बल देकर जीवन की रचना करते हैं, जब कि शाश्वत अशाश्वत के परे हैं, इसलिए, जीवन में सावधानी बरतने का परामर्श कुछ आस्तिक देते हैं। शुद्ध अस्तित्ववादी शाश्वत, अशाश्वत अवस्था में भी विद्यमान हैं और उससे परे भी हैं, इसका मूल कारण अस्तित्व और पारलौकिक अस्तित्व कैवल्य में समाए हैं। मायाकाश की सृष्टि को कैवल्य तक पहुँचाने के लिए ऋषियों ने मानव कल्याण के लिए अनेक प्रयास किए और मायाकाश की सर्वसत्ता मनुष्य को सौंप दी। कैवल्य और त्रिदेव तब से प्रबंधक केवल साक्षी हैं। इसलिए कैवल्य और त्रिदेव से निष्पन्न शक्तियों से साक्षी रहकर मार्गदर्शन करने का उनका कार्य निरंतर चलता रहेगा।'' नारद ने भविष्य की वास्तविकता को निरुपित किया। इस पर अगस्त्य ने कहा,

''हे ब्रह्मर्षे, मेरे स्मरण करते ही, आप ने उपस्थित होकर हम सबको अगस्त्य पद के कार्य की अवस्था एवम् अस्तित्व की वास्तविकता से अवगत कराया, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि, अगस्त्यपरंपरा का कार्य यथोचित चलता रहेगा। भगवान विष्णु ने हयग्रीव के रूप से जो उपदेश किया, उसके अनुसार अगस्त्य परंपरा जारी रहेगी।''

''हे महर्षि अगस्त्ये, भगवान विष्णु के संदेश के अनुसार प्रलय के अंतिम क्षण तक और नए वैवस्वता में, लोकधारणा करने के कार्य में समस्त ऋषिपरंपरा से कार्यरत रहना हैं।'' नारद ने कहा।

''हाँ, ब्रह्मर्षे, तथापि भविष्य में मनुष्य और प्राणि जो याचना करेंगे, क्या उस संदर्भ में सहायता करना हम पर निर्भर नहीं हैं? वास्तव में यह हम पर निर्भर है कि, हम उन्हें प्रेरित करें और एक सामंजस्यपूर्वक समन्वयात्मक ब्रह्मांड हितैषि वृत्ति से कार्य करने का आवाहन करें।'' अगस्त्य ने स्पष्ट किया।

''हे अगस्त्ये, कृपया हमें बताएं कि, भगवान हयग्रीव ने इसके लिया क्या उपाय सुझाया हैं?''

''हे ब्रह्मर्षे नारद, हयग्रीव ने कहा है कि, लोग सगुणोपासना के साथ-साथ

तंत्रमार्ग को अपनाएंगे। इसलिए इस मार्ग का आश्रय लेना क्रमागत है।'' अगस्त्य ने पुनः एक बार मार्ग विश्लेषण किया।

महर्षि अगस्त्य के इस निर्णायक कथन के पश्चात विश्व की अगस्त्य परंपरा, अगस्त्य से विदा लेकर, अगस्त्य के समन्वयक, लोककल्याणकारी, सृष्टि संतुलनवादी, पर्जन्य एवम् आयुर्विद्यानिष्ठ, शक्तिमान और अहंकार से लडने, एवम् लोककल्याण के कामनापूर्ति से लेकर समग्र विश्वरूप लोककल्याण की भूमिका मन में लिए अपने स्थान लौट आएं।

*

मान मान्य मान्दार्य अगस्त्य ने कांचीपुरम से अपनी यात्रा आरंभ की। कावेरी में प्रेमपूर्वक स्नान करने के पश्चात उन्होंने कावेरी को आलिंगन दिया। इध्मवाह को आशीर्वाद देकर अगस्त्य पंचवटी आएं। तपोवन के अनेक ऋषियों से उन्होंने भेंट की। सभी ऋषि गण एक अनोखी अवस्था में चिंतित थे। भविष्य का प्रश्नचिन्ह उनके वदन पर स्पष्ट प्रतीत हो रहा था। वसिष्ठ, विश्वामित्र, भृगु, दुर्वास, अंगीरस आदि अनेक ऋषियों ने अगस्त्यों से परामर्श किया। तपोवन में मानो ऋषि संमेलन चल रहा था। परामर्श के पश्चात सभी को विश्वास हुआ कि तटस्थ तपस्या ही इस का समाधान है। नये वैवस्वता तक।

पंचवटी से अगस्त्य अमृतवाहिनी प्रवरा तट पर अपने अगस्त्यपुरी आएं। अगस्त्यपुरी सहस्त्रों वर्षों से उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। सिद्धेश्वर का प्रिय अथर्वण अगस्त्य सिद्धेश्वर के सम्मुख खडा था।

''हे सिद्धेश्वर महादेव, आपके द्वारा प्राप्त शक्तियों के साथ, मित्रावरुण ने उपलब्ध किए गए अवसर से मैं त्रिदेवों का अपेक्षित कार्य करते आ रहा हूँ। मनु बदल गया, कार्य कारण भाव बदल गए। अगस्त्य विद्या वेद वेदांगों, ब्राह्मण ग्रंथों, और पुराणों में ग्रथित हुई। अथर्वण को महानिर्वाण तंत्र का स्वरूप प्राप्त हुआ। मुझे सौंपे गए कार्य कैवल्य के प्रसाद से, अग्निनारायण की शक्ति से संपन्न हुए। अब मानवी अवस्था देवता, पिशाच्च, दैत्य आदि अवस्थाओं को भूल कर एक ही परिपक्व अवस्था में साकार हुई। भूत तत्वों का नियंत्रण करने का प्रयास करने लगी। तंत्र विद्या का निर्माण हुआ। मानव शरीर के माध्यम

से माया, आदिशक्ति, यातुशक्ति, वाम मार्ग, दक्षिण मार्ग, तंत्रविज्ञान और शस्त्र, अस्त्र, तंत्रज्ञान प्रकट होने लगे। लोकनिष्ठा और आत्मनिष्ठा के बीच संघर्ष बढता गया। हे सिद्धेश्वर, आधुनिक मनु नास्तिक, आस्तिक के संघर्ष में उलझ गया। ऐसी स्थिति में अगस्त्य परंपरा, अगस्त्य विद्या को उपयोजित करने का अगस्त्य परंपरा का मंतव्य है। इसलिए आपका आदेश अतिमहत्वपूर्ण हैं। हे सिद्धेश्वर मैंने आपके दर्शन करके अमृतवाहिनी के तट पर समाधि योग सिद्ध करने का निश्चय किया है। मुझे आपके आदेश की प्रतीक्षा है। माता पार्वती के विषय का परामर्श भगवान हयग्रीव से प्राप्त हुआ है। ऋषि अवस्था अनादि अनंत है। वह प्रत्यक्ष ब्रह्मनिर्मित है। उनकी आज्ञा के बिना इस स्थिति में कुछ भी संभव नहीं हैं। परंतु हे पिताश्री, मान सरोवरात्मक, पुष्कर स्वरूप कुंभ से मित्रावरुण और माता उर्वशी के वरदान से अपने आत्मतत्वोंसहित अग्निस्वरूप वृत्ति से आपने मुझे प्रकट किया है। पर्जन्य, जल, आयुर्विद्या, युद्धविद्या, सामविद्या, कृषिविद्या, अहंकार, मनोविज्ञान का ज्ञान मुझे आप से ही प्राप्त हुआ है। जिस से मुझे देवता, मानव और गोमाता का रक्षण, पृथ्वीसेवा और मानवसेवा करने के लिए अगस्त्य विद्या स्वरूप ज्ञानप्राप्ति माता पार्वती के आशीर्वाद से, श्री गणेश, शारदा और कार्तिकेय की सहायता से प्राप्त हुई। वसिष्ठ, मत्स्य, नहुष, गणेश, कार्तिकेय आदि अनेक भ्राता प्राप्त हुए। अनेक ऋषियों के सान्निध्य में मैं सृष्टि और कैवल्य की अनुभूति कर सका। इसलिए हे प्रभो, मैं कृतार्थ हूँ, मुझे आज्ञा दें।''

अगस्त्य मुनि की ऐसी निर्वाण वाणी सुन कर सिद्धेश्वर मेघगरज के साथ प्रकट हुए।

''हे अगस्त्ये, नारायण, तुम कृतार्थ हो। तुमने यथार्थतः लोक कल्याणकारी कार्य किया है। इध्मवाह और कावेरी जैसी जगत्वंद्य शक्तियाँ तुम्हारे सान्निध्य से, कृपा से सिद्ध होकर लोक कल्याण का कार्य करने और तुम्हारे साथ तारापुंज से मार्गदर्शन करने में निमग्न है। हे अगस्त्ये, तुम्हारा समाधियोग भी सफल होगा। महान कार्यों के पश्चात भी अहंकार ने तुम्हें स्पर्श तक नहीं किया। तुम आंतगर्व हो। हे महातेजस्वी पुत्र, तुम अहंकार, अज्ञान, काठिन्य संकट मोचक हो। तुम मार्ग को प्रशस्त करते हो। भूमि, जल, वायु के यथार्थ व्यवस्थापन से मानव को स्वास्थ्य प्रदान करते हो। तुम्हारे पास शुद्ध मार्ग से संतति, धन, शक्ति प्राप्त करने का ज्ञान है। तुम्हारी कृपादृष्टि से कलह मिट जाते हैं, मन शांत

होता है, घनिष्ठ मित्रता निष्पन्न होती है। तुम्हारी शक्ति के आगे दुष्ट शक्तियाँ टिक नहीं सकती। तुम दुष्टों का नाश करने वाले महान योद्धा हो। देवराज के मित्र हो। दैत्य, दानवों के भी हितैषि हो; इसीलिए तुम परब्रह्म का रूप हो। हे अगस्त्ये, समाधि योग में आगे वैवस्वता तक तुम निमग्न होते हुए भी, तुम्हारे पूजन, ध्यान से, तुम्हारे यज्ञ याग से, इतना ही नहीं, तुम्हारे केवल स्मरण मात्र से ही लोगों की मनोकामना पूरी होगी। कल्याण का मार्ग निष्कंटक होगा, सुगम होगा, ऐसा अभिवचन तुम ब्रह्मांड को दे दो, जिस से दीन, दुर्बल, पीडित लोगों का कल्याण हो, यही मेरी आज्ञा है, मेरा आदेश है। हे अगस्त्ये, अगस्त्यपुरी में अमृतवाहिनी प्रवरा तट पर स्थित तुम्हारा आश्रम जीवन शांति का निधान, ज्ञान का तीर्थ और सुरक्षा कवच, आयुरारोग्य का प्राप्तिस्थान होगा। सूक्ष्म रूप से तुम्हारा ब्रह्मांड में संचार होगा। अगस्त्य तारा की भूमिका में तुम स्वयं नित्य तुम्हारे कार्य का अवलोकन करते रहोगे और स्मरण भी देते रहोगे यह मेरा तुम्हे आशीर्वाद है।''

सिद्धेश्वर के आशीर्वाद से कृतार्थ अगस्त्य अगस्त्यपुरी के अपने आश्रम आएं। लोपामुद्रा ने उनका मनःपूर्वक अभिवादन किया। अमृतवाहिनी में स्नान करने के पश्चात उन्होंने सूर्य, इंद्र, चंद्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कैवल्य, काल को अर्ध्य दिया और वे अपने नियत स्थान पर चले गए।

मान्दार्य अगस्त्य अमृतवाहिनी में यथेच्छ स्नान कर लौटे। तब लोपामुद्रा भी अमृतवाहिनी में स्नान अर्ध्यादि कर्म कर रही थी। उच्चारण से उसने गायत्री मंत्र का पुरश्चरण किया। अगस्त्य मुनि ने ध्यानस्थ लोपामुद्रा को दूर से ही देखा। अपने ही तेज से निष्पन्न हुई महर्षि लोपामुद्रा उन्हें कुछ अनोखे तेज से दीप्तिमान होते हुए प्रतीत हुई। अगस्त्य का समूचा तेज उसकी कांति से प्रकाशमान हो रहा था। नेत्र आकाश पर टिके थे। सूर्य के प्रखर किरणों को भी पार कर उसके नेत्र आकाश में टिके थे। मान्दार्य अगस्त्य लोपामुद्रा के निकट आए। लोपामुद्रा ने अपनी संध्या वंदन विधि पूरी की और वह तेजस्विनी स्वयंप्रकाशी तारका अगस्त्यों के चरणों को स्पर्श करने के लिए आगे बढी। लोपामुद्रा संपूर्ण अगस्त्यमय अवस्था में उनके पास आई। अगस्त्य मुनि को साक्षात देवी ललिता, त्रिपुरेश्वरी, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती उनकी ओर आ रही है, ऐसा प्रतीत हुआ। उन्होंने देवी को साष्टांग वंदन किया और लोपामुद्रा और अधिक दीप्तिमान हुई। उसका तेज पृथ्वी पर नहीं समाया। अगस्त्य देखते ही रह गए। लोपामुद्रा ने अगस्त्य को वंदन

किया और वह अगस्त्यों मे संपूर्णतः लोप हुई। अगस्त्य जानते थे कि क्या हो रहा है। कैवल्य का यह नया आविष्कार उन्हें अत्यंत विलोभनीय, प्रिय एवम् विश्वचैतन्यमय प्रतीत हुआ।

यह समूचा चमत्कार अगस्त्यपुरी के अगस्त्य सेवाधारी शिष्य स्त्री-पुरुष देख रहे थे। उन्होंने मनःपूर्वक अगस्त्यों में समा जानेवाली लोपामुद्रा को वंदन किया।

मान्दार्य अगस्त्य ने सुनियोजित ध्यान स्थल पर पद्मासनस्थ होकर समाधि योग का प्रारंभ किया। अगस्त्यपुरी के समस्त नागरिकों ने समाधि योग का अनुमान लगाया था। अगस्त्यपुरी वासी स्त्री-पुरुष आश्रम में इकट्ठा हुए। भीड जमा हुई। एक अनोखी भावनाने उनके मनमें प्रवेश किया।

**ॐ अगस्त्यै नमः। ॐ अगस्त्यै नारायणाय नमः।**

**ॐ अगस्त्यै सिद्धेश्वराय नमः। ॐ अगस्त्य ब्रह्माय नमः।**

**ॐ अगस्त्य मान्दार्य परब्रह्मायै नमः। त्वं साक्षात ब्रह्मासी।**

**त्वं परमात्मासी नित्यं। ॐ परब्रह्मरूपाय मान्दार्य अगस्त्याय त्राही भगवन्।**

नगरवासियों ने उद्घोषणा, प्रार्थना मान्दार्य अगस्त्य भगवान सहस्त्ररश्मि, सहस्त्र कोटिनाम प्रकाशमान हुए। समूचा विश्व दीप्तिमान हुआ। आकाश में देवता, ऋषि-मुनि, यक्ष गंधर्व, पंचतत्व, महामाया पराशक्ति ललिता, त्रिदेव... इन सभी ने अगस्त्यों का अमृतवाहिनी तट पर ब्रह्मांडव्यापि दिव्य प्रकाशमान विराट परब्रह्म स्वरूप सानंद देखा। आकाश से अमृत शब्द गुंजे,

**'परब्रह्म स्वरूपाय मान्दार्य अगस्त्याय नमो नमः।'**

त्रिदेव ने कहा, 'हर हर, हर, आत्मन् अवकाशे चिर प्रकाशमान।' और आकाश तारांकित हुआ, जिस से सूर्यचंद्रादि तेजोगोल निस्तेज प्रतीत होने लगे। अमृतवाहिनी का विमल देदीप्यमान रूप में चमकते हुए आकाश में दक्षिण दिशा की ओर आगे आगे बढनेवाले दिव्य देदीप्यमान तेजोराशि के सप्त तारापुंज में विलीन हुआ। अगस्त्यों के साथ लोपामुद्रा दृष्टिगोचर होने लगी।

जब अगस्त्य पुरी के नागरिक यह अद्भूत चमत्कार देख रहे थे कि, सहसा आकाश में शब्द गुँजे।

''हे अगस्त्यपुरीनिवासी अगस्त्ये, आकाश में जहाँ अगस्त्य स्थान हैं वहाँ अगस्त्य चिरसंजीवन समाधिस्थ हुए हैं। आप निःशंक होकर अपनी पारिवारिक,

माया, व्यवहारिक, परमार्थिक, दैवीय अदैवीय जो भी विपदाएं हो उन्हे विदित करें। अपने भीतर के अगस्त्यों को जगाएँ। आपकी मनोकामना पूर्ण होगी। यद्यपि मेरा सूक्ष्म रूप निवास अगस्त्य स्वरूप है, मेरा संचार वायु के समान सर्वत्र हैं। अगस्त्यपुरी मेरा चिरस्थायी पीठ है और अगस्त्यकूट, विंध्य, गंगाद्वार, काशी, प्रयाग, गया, वंग, ब्रह्मसरस आदि संपूर्ण भारत में तथा सर्व लोकों में मेरा वास है। सभी मनुष्यों, देवी देवताओं और दैत्यों-दानवोंओं की सुयोग्य सीमा में मेरी सहायता, मेरा मार्गदर्शन, इच्छापूर्तिकार्य निरंतर प्रचलन में रहेगा। इसके लिए आप निश्चिंत रहें। लोककल्याण, लोकहित, स्वास्थ्य, सृष्टिफलन, पृथ्वीसंतुष्टि के लिए आप जो भी कार्य करते हैं, मेरा स्मरण करते ही मैं वहाँ उपस्थित हो जाऊँगा। सूक्ष्म रूप में प्रकट होकर मैं किसी न किसी रूप में कार्य अवश्य पूर्ण कर लूँगा।

अगस्त्यपुरीवासियों ने अपने ऋषि को पालकी में बैठाया। तेजस्वी, ध्यान में निमग्न समाधिस्थ अगस्त्यों के मूर्ति की विशाल शोभायात्रा सिद्धेश्वर के दर्शन करते हुए अगस्त्य आश्रम आई। समाधियोग में निमग्न अगस्त्यों का मंदिर निर्माण हुआ। समाधिस्थ अगस्त्यों का समाधिस्थल बनाकर अगस्त्य जयघोष से निष्पादित शिलाखंड अगस्त्य मूर्तिरूप में स्थापित किया। अगस्त्यों की मानसपूजा करने के लिए प्रतीकपूजा करने में अगस्त्यपुरीवासी लीन हो गए। श्रीराम, वाल्मिकी, विश्वामित्र, ऋष्य शृंगादि का, भार्गव, वसिष्ठ नित्यवास, नित्यपाठ आरंभ हुआ।

''महर्षि अगस्त्य की समाधि कैसे कहीं नहीं है?'' योगेश्वर ने प्रश्न किया।

''अगस्त्यपुरी निवासी भी उनके प्रतीकरूप को समाधि मानते है, सामान्यतः इस प्रकार की यह एकमात्र समाधि है।'' अनिल ने स्पष्टिकरण किया।

*

''अनिल, तुम कहते हो कि, अगस्त्यों का कार्य आज भी चल रहा है, वह कैसे? योगेश्वर ने प्रश्न किया।

''अगस्त्यवर, अगस्त्यमुनिग्राम (धर्मारण्य), गंगाद्वार, काशी, प्रयाग, गया, वंग, प्रभास, उज्जैन, विंध्य, रावेर, अंबाई, पंचवटी, अकोले, नेवासा, बावधन, महानदी (ब्रह्मरसा), अगस्त्यस्थान बदामी, अगस्त्यकूट (पिथियल/

पोथियल), पाण्ड्य ताम्रपर्णी, वैदुर्य, कुंजर पर्वत, मलय पर्वत औदिद, विद्युत्वान और विश्वंभर शिवालयों के स्वरूप में अगस्त्यों के स्थान निर्माण हुए। ब्रह्माविण, श्रीविद्या, अथर्वण, धनुर्विद्या, स्वास्थविद्या, कृषिविद्या, जलविद्या प्राप्त अगस्त्य अद्वैत स्वरूप में अगस्त्यतारा और संपूर्ण विश्व में स्थित उनके स्थान पर सूक्ष्म स्वरूप में सशरीर समाधिमग्न अवस्थामें वास करते हैं। परब्रह्म स्वरूप अगस्त्य त्रिदेवों के स्वरूप में भी दर्शन देते हैं। हयग्रीव के अनुसार यंत्र, तंत्र, विधिविधान और सिद्धि प्राप्ति के साथ चमत्कार के संयोग से विभिन्न स्वरूप में हर स्थान पर आज भी प्रकट होते हैं। शंकराचार्य, बुद्ध, जैन, गुरुनानक, कबीर, तुकारामादि, संत धर्मात्मा और महाभारतोत्तर काल के राजाओं को प्रेरणा देकर आर्यमय विश्व निर्माण करने के कार्य संकल्प को पूरा कर रहे हैं। मगध नरेश इक्ष्वाक, लिच्छिवी, कुरु, भद्र, नाग, कुल, सम्राट, भोज, विराट, राजन, एकराट, स्वराट, सार्वभौम ऐसे सभी राजाओं से और पुरोहित, मुनि, शिष्यगणों से नित्य, काम्य सोमयागपूर्वक यज्ञों के आधार से करवा लेते हैं।

**'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।।**
**ॐ पूर्ण मदः पूर्णमिदम्। पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय।**
**पूर्णमेवावशिष्यते।।'**

यही अगस्त्य तत्त्वज्ञान का लक्ष्य है।

''नंदराजा, बिंबिसार, नंदिवर्धन, महापद्म, पौरस, पुष्यमित्र, खारवेल, शातवाहन, कृष्णसातवाहन, आन्ध्रभृत्य, अशोक, शातकर्णी, गुणाढ्य, चोल, पांण्ड्य, चेर, आदि सभी, अगस्त्य आश्रमों, अगस्त्य स्थानों, अगस्त्यतीर्थों से जुडे हैं। चंद्रगुप्त मौर्य और आर्य चाणक्य ने कृषि और जलव्यवस्थापन, स्वास्थ्य और धनुर्विद्या में अगस्त्य विद्या का यथार्थ उपयोग किया हैं। यज्ञसंस्था स्थापित करके विश्व को आर्यमय करने की उत्कट मनोकामना इन वंश के राजाओं की भी थी।

''नाग, वाकाटक, कदंब, मैत्रक, परिव्रजक अगस्त्य विद्या का शिवतत्व के साथ उपयोग करते थे। यद्यपि नागार्जुन और अगस्त्य इनके बीच द्वैत-अद्वैत को लेकर विवाद हुआ था, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि, नागार्जुन ने महायान संप्रदाय के आधार पर अगस्त्य मार्ग स्वीकारा था।

''उज्जैन, वलभी, पद्मावती, वत्सगुल्म, अयोध्या, काशी, पाटलिपुत्र,

मथुरा, नालंदा, नाशिक, प्रतिष्ठान, कांची, तंजावर आदि स्थानों पर स्थित विश्वविद्यालय में अगस्त्य अर्थात अद्वैत तत्वज्ञान, आर्यत्व, जलविद्या, कृषिविद्या, युद्धकर्म व धनुर्विद्या, धनविद्या, पशुविनिमय, स्वास्थ्यविद्या, यज्ञविद्या, अथर्वण के साथ मंत्रतंत्र विद्या और श्रीविद्या का अंतर्भाव था। विद्याभ्यास परंपरा में अगस्त्यों का स्थान बहुत उँचा था।

‘‘वर्धनगुप्त, चालुक्य, पुलकेशी, कलचुरी, पल्ल और पाण्ड्य, चोला विक्रमादित्य, राष्ट्रकूट आदि राजवंशों ने अगस्त्य विद्या प्राप्त की। अगस्त्य स्थानों, तीर्थस्थलों को भेंट दी। अगस्त्यों के स्मरणार्थ शिवालयों का निर्माण किया। जिर्णोध्दार किया। चालुक्य शैली के शिवालय बडी संख्या में देखने को मिलते हैं।

‘‘यहाँ तक कि यात्रा में अगस्त्य मुनि के आश्रम, गुरुकुल, स्थान, तीर्थस्थल अगस्त्यशिष्य परंपराओं के स्थान थे। अगस्त्य शिष्य परंपराओं में अगस्त्य विद्या के विभिन्न पहलुओं का विभिन्न स्थानों पर व्यापक रूप से अनुसरण किया गया। पूर्वांचल व मध्यभारत में अथर्वण, दर्शनशास्त्र और कृषिविद्या व्यापक रूप में प्रचलित थी। दक्षिण में दर्शनशास्त्र, भाषा, यज्ञविद्या, कृषिविद्या, स्वास्थ्य विद्या का व्यापक रूप में प्रचलन था। पश्चिम में कृषिविद्या, अथर्वण, स्वास्थ्य विद्या का अनुसरण हुआ। पश्चिम में कृषिविद्या, अथर्वण, स्वास्थ्य विज्ञान का प्रसार हुआ।

‘‘मान मान्य मान्दार्य, अगस्त्य समुद्र प्राशक और विंध्यगर्वहरक के रूप में महर्षि अगस्त्य की प्रतिष्ठा कभी कम नहीं हुई।

‘‘मध्ययुग में विश्वविद्यालयों का अस्तित्व बना रहा, किन्तु उनका महत्व कम हो गया। विदेशी आक्रमणों के दौर में वेद विद्या, प्राचीन युद्धविद्या पिछड गई। इन विद्याओं का अध्ययन करने वाले बहुत कम साधक थे। भारत में यावनी सत्ता का उदय हुआ। भाषा, संस्कृति के साथ-साथ शास्त्र, विज्ञान भी बदल गए। इतना ही नहीं, यज्ञ, याग, तप, जाप आदि कर्मों का स्थान केवल प्रासंगिक तथा कौटुंबिक स्तर पर ही सीमित रहा। इसके विपरित व्रत, यंत्र, तंत्र, जादूटोना इन्हें दुख, पीडा, भय, भूतबाधा और रोगनिवारणार्थ बडा महत्व प्राप्त हुआ। अर्थात इस में अगस्त्यों के अथर्वण का उपयोग होता रहा। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यादव काल भारतीय संस्कृति के पतन का काल है। ऐसे समय नाथ, शैव, शाक्त,

वैष्णव, भागवत और महानुभाव संप्रदायों का उदय हुआ। अगस्त्यों की योग विद्या, अथर्वण विद्या, आयुर्विद्या, नाथ, शैव, शाक्त ने स्वीकार की, जब कि अद्वैत दर्शन शास्त्र, भागवत महानुभाव ने स्वीकार किया।

*

''अनिल, तुम कह रहे हो कि, मध्ययुगीन काल में भी अगस्त्यों के अस्तित्व की अनुभूति होती हैं। ऐसा तुम कैसे कह सकते हो?'' योगेश्वर ने प्रश्न किया।

''हे योगेश्वर, महर्षि अगस्त्यों ने मुझे जो कुछ कहने की आज्ञा दी है, वह मैं आप को पहले ही कथन कर चुका हूँ। अब यही देखिए, नेवासा में मोहिनी राज का मंदिर समुद्रमंथन घटना में मोहिनी ललिता देवी के रूप में मोहिनीराज है। पास ही गोधेगांव में अगस्त्यों का स्थान है। अगस्त्यों द्वारा स्थापित नारद मंदिर हैं, एवम् सिद्धेश्वर मंदिर भी है। ये सभी स्थान अमृतवाहिनी प्रवरा तट पर ही हैं। मोहिनीराज के दर्शन से श्री संत ज्ञानेश्वर को, 'भावार्थ दीपिका' लिखने के लिए प्रेरित किया। 'अमृतानुभव' भी उन्हीं से प्रेरित था। इसमें मुख्य प्रेरणा उन्हें कहाँ से प्राप्त हुई? वह उन्हें अद्वैत के प्रथम पुरस्कर्ता अगस्त्यों से प्राप्त हुई। श्री संत ज्ञानेश्वर ने भी दुष्टांत देते हुए महर्षि अगस्त्य के समुद्रप्राशन घटना का संदर्भ दिया है। अनिल विस्तार से कथन करने लगा।

''हे अनिल, मैं यह कथा श्रवण करना चाहता हूँ।'' योगेश्वर ने इच्छा व्यक्त की।

''हे योगेश्वर, उस समय के महानुभावों के नाम तथा संदर्भ कदाचित भिन्न हो सकते हैं। उदाहरण स्वरूप रामानंद स्वामीने विठ्ठलपंत को आदेश दिया था। वे संत कबीर के भी गुरू थे। परंतु मुझे महर्षि अगस्त्यों ने जो निवेदन करने की आज्ञा दी है, वही मैं कथन करता हूँ।''

''संन्यास ग्रहण करने के पश्चात विठ्ठल स्वामी काशी आएं। उनका जीवन संन्यासाश्रमनुसार चल रहा था। गंगास्नान और काशी विश्वनाथ का दर्शन यह उनका नित्यक्रम था। दर्शन के पश्चात वे विभिन्न आश्रमों और स्थानों में जाते थे। एक दिन संयोग से विठ्ठल स्वामी के पग अगस्त्यस्थान की ओर मुड गए। अगस्त्य

आश्रम में उन्होंने अगस्त्य महिमा सुनी। गोदावरी नदी उनके गाँव के पास उनके क्षेत्र से होकर बहती है। इसलिए वे पंचवटी, अंकाई, अकोले और नेवासा को भी जानते थे। संन्यासी के मन में प्रेम की भावना निर्माण नहीं होनी चाहिए तथापि महर्षि अगस्त्य प्रति उनके मन में अपार प्रेम निर्माण हुआ। विठ्ठल स्वामी के मन में विचार चल रहे थे। अगस्त्यों के विषय में विचार आया कि, लोककल्याणार्थ निरंतर प्रयासरत महान शक्तिमान अगस्त्यों का आशीर्वाद मिलना चाहिए। हमने विरक्त होकर कुछ भी साध्य नहीं किया। परंतु गृहस्थाश्रम में भी क्या हो सकता था? विचारो से उनके मन की द्विधा अवस्था हुई।

''पूर्णिमा का दिन था। स्नानादि प्रातःकर्मों के पश्चात विठ्ठलस्वामी पुनश्च अगस्त्य स्थान आएं। उन्होंने भक्तिपूर्वक वंदन किया। मन की द्विधा अवस्था मन ही मन निवेदित की। आश्रम में दूसरी ओर एक जटाधारी तपस्वी पद्मासनस्थ बैठा था। उसे वंदन कर उन्होंने अपना मनोगत व्यक्त किया।

''वह जटाधारी उँचाई में तनिक छोटा, विशाल उदर का किन्तु बलिष्ठ था। उसकी जटाओं से विठ्ठल स्वामी को लगा कि, उसने मेरू पर्वत पर सहस्त्रो वर्षों तक तपस्या की होगी। उन्होंने मन ही मन में उन्हें अपना गुरू मान लिया और उनसे गुरुपदेश माँगा।

''हे वत्स, तुमने मुझे गुरू माना है। यदि तुम मुझे गुरू मानते हो, तो क्या तुम्हे ज्ञात है कि, गुर्वाज्ञा का पालन कठोर तपस्या की तरह करना पडता है?''

''हे गुरुदेव, आप जो आज्ञा देंगे, मेरे लिए शिरोधार्य होगी।

''हे विठ्ठल स्वामी, संन्यास मार्ग में कोई किसी का गुरू अथवा शिष्य नहीं होता। तथापि तुम्हारे मन में गुरुपदेश लेने का भाव जागृत हुआ है, इसलिए इस विषय में तुम्हारे द्वारा एक आश्रमापराध हुआ है। तथापि तुम्हारे प्रयास और मनोकामना शुद्ध है।'' जटाधारी यति ने कहा।

''हे गुरुदेव, मेरा एक ही निवेदन है कि, आप मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार करें। मैं आपके उपदेश का प्रार्थी हूँ।'' विठ्ठल स्वामी के इन वचनों से संतुष्ट जटाधारी योगी प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा,

''मैं तुम्हें सही समयपर सही उपदेश दूँगा। परंतु तुम्हें उसका मनःपूर्वक पालन करना होगा।'' इतना कह कर योगी तुरंत अदृश्य हुए।

''यद्यपि विठ्ठलस्वामी अस्वस्थ हो गए, परंतु उनका नित्यक्रम चल रहा

था। इसी क्रम में अगस्त्य स्थान पर नित्य जाना हो रहा था। वह योगी विठ्ठल स्वामी को कभी नहीं मिले। वर्ष बीत गया, उनका दर्शन नहीं हुआ। पूर्णिमा थी। विठ्ठल स्वामी नित्य हर पूर्णिमा के दिन अगस्त्य स्थान आकर योगी की प्रतीक्षा करते थे।

''विठ्ठल स्वामी अगस्त्य स्थान आएं। उन्होंने नित्यानुसार वंदन किया। जिस स्थान पर योगी प्रथमतः विठ्ठल स्वामी से मिले थे। उस स्थान पर विठ्ठल स्वामी की दृष्टि गई, तो उन्हें अत्यधिक आनंद हुआ। हर्षोल्लास से पुलकित हो रहे थे। वे अधीरता से उस स्थान की ओर गए। वहाँ वही योगी पद्मासनस्थ होकर ध्यान में निमग्न थे। विठ्ठल स्वामी की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें और क्या न करें। उन्होंने भक्तिभाव से योगी को साष्टांग दंडवत किया। विठ्ठल स्वामी हाथ जोड कर खडे हो गए। प्रहर बीत गया, योगी ध्यान मग्न थे। विठ्ठल स्वामी ने उत्कंठित होकर प्रार्थना की। पुनश्च एक बार साष्टांग प्रणाम किया। कुछ क्षण युगों समान प्रतीत हुए। अंततः योगी ने अपने नेत्र खोल दिए। योगी ने देखा कि उनके सम्मुख विठ्ठल स्वामी विनम्रता से हाथ जोडकर खडे है।

''आप विठ्ठल स्वामी हैं ना?''

''हाँ गुरुदेव''

''आप इतने दिन कहाँ थे?''

''मैं तो नित्य यहाँ आता हूँ और निरंतर आपका स्मरण करता हूँ।''

''फिर भी आप मुझे यहाँ नहीं देख पाए?''

''गुरुदेव, मैं क्षमा चाहता हूँ।''

''इसका अर्थ यह हुआ कि तुम अभी भी एक संन्यासी बनने के लिए अपरिपक्व हो।''

''गुरुदेव...''

''तुम क्या चाहते हो?''

''गुरुपदेश...''

''मैं जो कहूँ उसका अनुसरण करोगे?''

''प्रतिज्ञापूर्वक गुरुदेव''

''समाज रीति से विपरित होगा तो भी?''

''आज्ञा गुरुदेव।''

''हे वत्स, विठ्ठला, योगी ने इस प्रकार संबोधित किया तो विठ्ठलस्वामी भावुक हुए।''

''आज्ञा गुरुदेव...।''

''हे विठ्ठल स्वामी, अद्वैत परम तत्वज्ञान है। उसका सर्वत्र प्रचार-प्रसार होना चाहिए। जो गृहस्थी में मग्न है, उनके लिए यज्ञ, मंत्र, तंत्र, व्रतादिक है। तथापि भक्तिमार्ग अद्वैत का सब से सुगम मार्ग है। उस मार्ग से तुम्हें जाना है। तुम्हारे माध्यम से संसार को भी यह मार्ग प्राप्त होगा। इसके लिए तुम्हें लोकोत्तर कार्य करना होगा।''

''आज्ञा गुरुदेव।''

''हे विठ्ठल तुम्हें संन्यास को त्याग कर पुनश्च गृहस्थाश्रम स्वीकार करना होगा। रुक्मिणी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। गृहस्थी से भागना घोर पाप है। तुम पुनः गृहस्थी सँभाल लो। तुम्हारे तीन पुत्र और एक कन्या होगी। ये चारों संतान शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सभी मार्ग एकत्रित करेंगे। उनके मुख से योगमार्ग, भक्तिमार्ग, कर्ममार्ग जैसे सभी मार्ग सहजता से लोगों तक पहुँच जाएंगे। वेद और उपनिषदों के सार से परिपूर्ण भगवद् गीता के वेदांत और मार्ग का ज्ञान साधारण मनुष्यों के लिए सुलभ होगा। प्रत्यक्ष भगवान आपके उदर से जन्म लेंगे। जातिपंथादि भेद मिटाने का मार्ग प्रशस्त होगा।''योगी ने कहा।

''गुरुदेव, मैं धन्य हूँ। जिस क्षण से मेरा अगस्त्य ऋषि के जीवनी से परिचय हुआ, मेरे मन में लोक कल्याण की प्रेरणा जागृत हुई। साधारण लोगों के लिए कुछ करने का विचार मेरे मन में आया। आपके उपदेश से लोक कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ। हे गुरुदेव, मैं आपको वंदन करता हूँ।'' विठ्ठल स्वामी ने बारंबार झुक कर प्रणाम किया। उनके नेत्र आँसुओं से भर गए थे। उन्होंने पुनश्च साष्टांग दंडवत किया। योगी ने उनके मस्तक पर हाथ रखा। गुरुदेव के स्पर्श मात्र से विठ्ठल स्वामी के शरीर में एक अनोखी चेतना ने प्रवेश किया। वे चैतन्य स्पर्श से पुलकित हुए। जैसे ही गुरुदर्शनार्थ नेत्र विस्फारित किए कि, सहसा योगी अदृश्य हुए थे।

''विठ्ठल स्वामी आनंदविभोर होकर अपने आश्रम आएं। उन्होंने संन्यास दीक्षा देने वाले गुरुजी को पूरा समाचार कथन किया। उनसे अनुज्ञा लेकर विठ्ठल स्वामी आळंदी आएं। रुक्मिणी देवी आनंदित हुई। उन्हें स्वीकार किया। पुनश्च

गृहस्थी आरंभ हुई। इस अवस्था में उन्हें निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव तथा सोपान नामक तीन पुत्र एवम् मुक्ताबाई नामकी एक कन्या हुई। किन्तु वर्णाश्रम धर्म ने उन्हें समाज से बहिष्कृत किया था। संन्यास-दीक्षा ग्रहण के उपरांत गृहस्थाश्रम स्वीकार कर इन संतानों को जन्म देने के कारण विठ्ठल स्वामी और रुक्मिणी को देह त्याग करना पडा। निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाई के प्रकट होने से नाथसंप्रदाय के स्वरूप में अगस्त्य विद्या के अद्वैत, अथर्वण, आयुविद्या उपयोजित हुए। महर्षि अगस्त्य का जीवनदायी, कल्याणकारी पथ ज्ञानदेव ने कर्म और भक्तियोग के रूप से प्रशस्त किया। सोपान, मुक्ताबाई ने ज्ञान और मुक्ति का मार्ग दिखाया।

''नेवासा के सिद्धेश्वर मंदिर में, आदिनाथ शिवशंकर की उपस्थिति में निवृत्तिनाथ की आज्ञा से ज्ञानेश्वर के मुख से वेदांत गा रही गीता प्रकट होने लगी। 'ॐ नमो जी आज्ञा। वेद प्रतिपाद्या। जय जय स्वसंवेद्या आत्मरूपा' प्रत्यक्ष पांडुरंग, विष्णु ज्ञानेश्वर रूप में निरुपण कर रहे थे। सूक्ष्म रूप से गोदावरी तट पर भगवान अगस्त्य अमृत बोल श्रवण कर रहे थे।

*

''कल्याण के सुभेदार को पराजित करने के पश्चात शिवछत्रपति सेना मार्गस्थ हुई। मार्ग में जटायुतीर्थ देखा। छत्रपति शिवाजी महाराज ने बडे भक्तिभाव से तीर्थ में स्नान कर तीर्थ प्राशन किया। कुछ ही दूरी पर कळसाई के दर्शन किए और पाचुपट्टा गढ़ पर पट्टाई के आश्रम में विश्राम करने आएं। पट्टाई के दर्शन होते ही पट्टागढ़ पर त्र्यंबक क्षेत्र के महत्वपूर्ण लोगों की एक बैठक हुई। कल्याण अभियान की सफलता से सभी आनंदित थे। जटायु क्षेत्र में उन्हें पता चला कि, दंडकारण्य में प्रभु श्री रामचंद्र की अगस्त्य ऋषि से भेंट हुई थी। वहाँ अगस्त्य तक्षीमक्षेत्र के मुखिया रामचंद्र संत उपस्थित थे।

''हे महाराज, आप अवश्य अगस्त्यों के दर्शन करें। अगस्त्यों का कार्य विश्व को आर्य बनाने के संकल्प के साथ किया है। महर्षि अगस्त्य ने त्रिकालदर्शी, अजरामर, देवेन्द्र को बचाने और दानवों का नाश करने के लिए दानवों से युद्ध किया। अंततः समुद्र प्राशन करके उन्होंने दानवों को नष्ट करने में सहायता की। जिन्होंने इंद्रमरुतों का मिलाप किया, जो अथर्वण, आयुर्वेद, जलविद्या, और

कृषिविद्या के ज्ञाता हैं, कावेरी पति, विंध्य गर्वहर्ता, महान धनुर्धारी मान्दार्य अगस्त्यऋषि का आश्रम प्रवरा तट पर अकोले में हैं। आप वहाँ जाकर उनके दर्शन करें, जिससे आपके लक्ष्य का मार्ग सुगम होगा।

''हे संत, आप अगस्त्य क्षेत्र के मुखिया है। आपका सुझाव हमारे लिए हितकारी है। हम अवश्य अगस्त्य पुरी अर्थात अकोले जाएंगे।''

''शिवछत्रपति अपने इने गिने साथियों के साथ पट्टागढ़ से अकोले के लिए प्रस्थित हुए। मार्ग में केळेश्वर, हाहाकारी के सुंदर मंदिरों को देख कर उनका हृदय भक्तिभाव से भर गया। प्रवरा तट पर पहुँचते ही संत आगे बढे।

''हे महाराज, यह प्रवरा अमृतवाहिनी नदी है। एक लोकोक्ति प्रचलित, है, 'गोदास्नानम् प्रवरा पानम्' अर्थात यह प्रत्यक्ष शिवतीर्थ है। इस शिवतीर्थ के चारों ओर सह्य पर्वत की उँची चोटियाँ हैं। जिन में रत्नगढ़, हरिश्चंद्र, अळंग, मदान, कळंग, जोड किले, वितानगढ़, कोंबड किले, पेमगिरी शामिल हैं, जहाँ आपके पिताश्री शहाजी महाराज छोटे निजाम की देखभाल करने यहाँ रुके थे।'' यह सुनकर महाराज की आँखे चमक उठी।

''संत, यह अमृतवाहिनी शिवतीर्थ कैसे?''

''महाराज, समुद्रमंथन से निकले अमृतकलश का पूजन रत्नगढ़ पर रत्नों के राशिपर हुआ। हलाहलधारी शिव ने इसे अपने मुख से मृत्युलोक के लोगों के लिए अमृतवाहिनी के रूप मे प्रवाहित किया। अमृतवाहिनी का स्त्रोत रत्नगढ़ में है और रत्नगढ़ के तराई में अमृतेश्वर और रत्नेश्वर का मंदिर है। महादेव के बाण के नीचे शाळुंके की खाँच से होकर प्रवरा बहती है। यहाँ महादेव और कळसुबाई के रूप में पार्वती वास करते है। उनके पुत्र महादेव कोळी आसपास रहते हैं और प्रभु रामचंद्र के वंशज सूर्यवंशी ठाकर भी यहाँ बस गए हैं।

''संत, कितनी अर्थपूर्ण होती है, ये आख्यायिकाएँ, हैं ना। हम भी इस तीर्थ का प्राशन करके पावन होंगे।'' संत ने धर्माधिकारी को पौरोहित्य करने के लिए कहा। धर्माधिकारी ने पुण्यश्लोक राजा शिवाजी को प्रवरा तीर्थ दिया।

''महाराज, अगस्त्यपुरी में प्रवेश करने के पूर्व प्रवरा के परे सिद्धेश्वर का दर्शन करते है।'

''हे मुखिया संत जी, जैसा आप कहें।''

''सिद्धेश्वर का स्वयंभू लिंग और सुंदर शिवालय देखकर छत्रपति विस्मित

हुए।

''हे महाराज, ये अगस्त्यों के देवता है। छत्रपति ने भक्ति भाव से सिद्धेश्वर को साष्टांग नमस्कार किया। पीछे की ओर राम मंदिर में जाते हुए माता भवानी के भी दर्शन हुए। प्रभु श्रीराम के दर्शन करने के पश्चात महाराज अगस्त्य आश्रम आएं। प्रवरा के ढलान पर पनघट से नदी के पार सुगमता से जा सकते थे। शुभ्र स्फटिक के भांति शुभ्र और मधुर जल की अनुभूति लेकर महाराज धन्य हुए।

''अगस्त्यों के मंदिर में अगस्त्यों की प्रतिमा के सम्मुख खडे होकर छत्रपति ने आँखे मूँद ली और वे अगस्त्यों का चिंतन करने लगे। उनकी मुद्रा अत्यधिक तेजस्वी होने लगी। पास में खडे लोग विस्मित होकर देख रहे थे। जैसे ही महाराज को भावसमाधि का अनुभव होने लगा कि, सहसा उन्हे वास्तव का ज्ञान हुआ। उनकी आँखे अत्यानंद से चमक रही थी।

''हे संत, अगस्त्य मुनि ने हमें प्रत्यक्ष दर्शन दिए। हम धन्य हुए। संत, आश्रम की व्यवस्था करो। स्वच्छता का ध्यान रखो। कुंड दुरुस्त करवा लो। धन की चिंता मत करो। संत, मोरोपंत, अगस्त्यों ने हमें कृषिवल और गोधन के संरक्षण का महत्वपूर्ण परामर्श दिया है। अकाल स्थिति के निवारण का मार्ग अवगत कराया। प्रभु रामचंद्र को अक्षय बाण भाथा देकर रावण का वध करवाया। उसी प्रकार अकाल रूपी रावण को मारने के लिए 'पानी की बचत आज की जरुरत' ऐसा अक्षय बाण भाथा हमें भी प्राप्त हुआ है। हम पावन हुए. त्र्यंबक प्रांत के इस परिसर की ठीक ढंग से व्यवस्था लगाओ।

''जैसी आपकी आज्ञा।''

''हे संत, आपने हमें अगस्त्यों का प्रसाद देकर संतुष्ट किया। हम धन्य हुए। हमें कोटि कोटि सूर्यों का बल प्राप्त हुआ। आपने हमें ऋणकर्ता बना दिया। आपका एक परिवार देशपांडे वतन को भी सम्हालने है। वह वतन कायम करो। अगस्त्यपुरी नासिक के भांति तीर्थस्थल बन जाए ऐसी अगस्त्यों की मनोकामना हैं। प्रवरा के घाट ठीक से सुधार लें।''

''महाराज ने पुनः अगस्त्यों को साष्टांग प्रणाम किया और आगे की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने रामकुंड, सीताकुंड, अगस्त्यकुंड की यात्रा की थी, उनके मन में विचार आया। उन्होंने कहा, 'पंत, पाचुपुट्टा गढ़ पर आकर एक नई आशा की किरण दिखाई दी कि, हमारे राज्य पर वास्तव में अगस्त्यों का आशीर्वाद है।

यादवों ने सुरक्षित रखा, इसलिए हम देख पाएं। मन विश्रांत हुआ। पट्टागढ़ का विश्राम गढ़ ऐसा नामकरण करें।''

''महाराज जो आपकी आज्ञा।''

''शिवछत्रपति अगस्त्यपुरी आने से, वास्तव में शिव-शिवा की भेंट हुई और एक चमत्कार हुआ। समर्थ रामदास ने अगस्त्यों का जो संदर्भ दिया था, छत्रपति को प्रत्यक्ष उसकी अनुभूति मिली। छत्रपति, मराठी राज्य- महाराष्ट्र, संत और परिसर धन्य हुए।''

*

''पुण्यश्लोक अहिल्या देवी की यात्रा संपूर्ण त्र्यंबक क्षेत्र में हो रही थी। अगस्त्य परिसर की अमृतवाहिनी प्रवरा, मूल्यवर्धिनी मुळा और तारापुंज में अगस्त्यों को अटल स्थान प्राप्त कर देने वाली अढळा इनकी घाटियों से यह यात्रा हो रही थी। शिवभक्त अहिल्या देवी ने त्र्यंबकेश्वर के दर्शन किए और सीधे जटायुतीर्थ टाकेद आई। वहाँ उन्होंने माता कळसाई का भक्तिभाव से अभिषेक किया और वह अमृतवाहिनी परिक्रमा करने हेतु सीधे रत्नगढ़ पहुँची। गोविंद खाडे ने रत्नगढ़ पर उनका मनःपूर्वक स्वागत किया। गोविंद खाडे, झडे पाटील, रामजी भांगरे जैसे गिने-चुने महादेव कोळी उनके साथ थे। वह उनके साथ अमृतेश्वर आई। अमृतवाहिनी प्रवरा परिक्रमा का पौरोहित्य करने के लिए अकोले से विष्णुपंत धर्माधिकारी उपस्थित हुए थे। अमृतेश्वर का प्राचीन मंदिर उसके, सम्मुख तीर्थकुंड, पुष्करिणी देखकर उनका मन प्रसन्न हुआ। उन्होंने गोविंद खाडे को चालुक्य शैली के अमृतेश्वर मंदिर और तीर्थकुंड की उचित निगरानी के निर्देश दिए।

''अमृतेश्वर का शास्त्रोक्त अभिषेक करने के पश्चात उन्होंने अमृतवाहिनी प्रवरा की मनःपूर्वक पूजा की और उनकी परिक्रमा आरंभ हुई। अहिल्या देवी के लिए राज्य शासन की व्यस्तता में परिक्रमा पूरी करना कहाँ तक संभव होगा, इसे ध्यान में रखते हुए, उन्होंने वहाँ के तीनों जल क्षेत्र के सभी कार्यों को निपटाने का निर्णय लिया था। घोरपडी माता, रणदगाव के निकट उछलता जलप्रपात, सीता पग के दर्शन कर प्रभु रामचंद्र का स्मरण किया। चेमदेव, खंडोबा, म्हाळसाई का

अभिषेक और पूजा करने के पश्चात वे अकोले स्थित अगस्त्यपुरी आई। सिद्धेश्वर मंदिर के दर्शन से उन्हें अमृतेश्वर मंदिर का स्मरण हुआ। मंदिर में उनका भव्य स्वागत हुआ। वहाँ से वे अगस्त्य आश्रम आई। अनकाई और अकोले दोनों स्थान पर स्थित अगस्त्याश्रम को भेंट देते हुए उन्होंने पंचवटी में अगस्त्य स्थान का दर्शन किया था। प्रवरा तट पर अगस्त्य दर्शन से उनकी अगस्त्य यात्रा और परिक्रमा भी पूरी होने जा रही थी। अहिल्या देवी अगस्त्यों के सामने हाथ जोड कर, आँखे बंद करके दया की याचना कर रही थी कि, सहसा उनके कर्णरंध्र दिव्य प्रसाद ध्वनि से मंत्रमुग्ध हुए।

''हे अहिल्ये, तुमने हर स्थान पर लोक कल्याणकारी कार्य किया हैं। तुम्हारा कल्याण हो। अकाल निवारण और अन्न, वस्त्र, निवास का प्रबंध करना राजा का प्रथम कर्तव्य होता है। तुम्हारे सम्मुख मेरे गले में जो रुद्राक्ष माला है, उसे अपने पास रखो। इस रुद्राक्ष माला की सहायता से तुम्हारा लोक कल्याणकारी कार्य का मार्ग प्रशस्त होगा। तुम्हें निरंतर सफलता मिलती रहेगी। कुएँ अपार जल से भर जाएँगे। सर्वदूर तुम्हारी ख्याति होगी। रुद्राक्षमाला के रूप में मैं स्वयं शिवजी के साथ सदैव तुम्हारे साथ रहूँगा। तुम पुण्यश्लोक हो, तुम्हारा कल्याण हो।''

''उस दिव्यध्वनि से अहिल्या देवी प्रथमतः विस्मित हुई और किंचित भयभीत भी। जब वे सचेत हुई, तो पुरोहित धर्माधिकारी उन्हें अंजुलि आगे बढाने के लिए कह रहे थे। अहिल्या देवी ने जैसे ही अपनी अंजुलि आगे बढाई, धर्माधिकारी ने अहिल्या देवी के हाथ में प्रसाद के रूप में अगस्त्यों की रुद्राक्ष माला रख दी। धर्माधिकारी ने प्रासादिक वाणी में कहा,

''हे अहिल्यादेवी माते, आपने हर स्थान पर लोक कल्याणकारी कार्य किया है। आपका कल्याण हो। अकाल निवारण और अन्न, वस्त्र, निवास का प्रबंध करना राज्य का प्रथम कर्तव्य होता है। आप यह कार्य कर रही हैं। इस रुद्राक्ष माला को सदैव अपने पास रखें। इस रुद्राक्ष माला की सहायता से आपको अपने लोककल्याणकारी कार्य में निरंतर सफलता मिलती रहेगी। कुएँ अपार जल से भर जाएंगे। सर्व दूर आपकी ख्याति होगी। इस रुद्राक्ष माला के रूप में सिंधुसम्राट मान्दार्य अगस्त्य शिवरूप में सदैव आपके साथ होंगे। धर्माधिकारी ने कहा,

''अहिल्यादेवी ने मनःपूर्वक रुद्राक्ष माला स्वीकार की। उन्होंने अगस्त्यों

को पुनः पुनः वंदन किया। उन्हें रहा नही गया तो, उन्होंने धर्माधिकारी को उनके दृष्टांत की अनुभूती विदित की। इस पर धर्माधिकारी ने कहा,

''अगस्त्यदेवता अति जागृत है। पुण्यात्मा और लोककल्याण की भावना से प्रेरित होकर कार्य करने वालों को ऐसे साक्षात्कार होते हैं। आप धन्य है, सौभाग्यशाली है।'' अगस्त्यपुरी के निकट दक्षिण की ओर कोतुळेश्वरी जाते समय अहिल्यादेवी की तनिक द्विधा अवस्था हुई। मार्ग पर नाशेरे ग्रामवासी अहिल्या देवी के दर्शन करने हेतु प्रतीक्षा कर रहे थे। गाँव के पंचों ने पानी के दुर्भिक्ष का भीषण चित्र अहिल्या देवी के सामने रखा। अहिल्या देवी ने रुद्राक्ष माला को स्पर्श किया और कुआँ खोदने का आवाहन किया।

''हे पंचो, इस स्थान पर कुआँ खोदना आरंभ करो। धन की चिंता मत करो। काम पर लग जाओ। कुआँ खोदने का काम आरंभ हुआ। कुआँ अपार जल से भर गया। अहिल्या देवी ने कुएँ के लिए उचित स्थान निर्देशित किया था। धन का भी प्रबंध किया था।

''लोग आनंदविभोर हुए थे। आनंद और सुख की सूचक मुसकान हर एक के मुख पर खेल रही थी। अदम्य उत्साह से पुण्यश्लोक अहिल्या देवी का जयघोष हो रहा था। इन जयघोष से आकाश गूँज उठा। पुण्यश्लोक अहिल्या देवी को अगस्त्य आशीर्वाद की अनुभूति हुई। आगे चल कर उन्होंने कुएँ खोदने और धर्मशालाएं निर्माण करने का विस्तृत कार्य किया।

*

अगस्त्य आश्रम मे पाँच योगी संन्यासी कुछ दिन के लिए निवास हेतु आए थे। तीर्थाटन करते हुए नागरिक त्र्यंबकेश्वर होकर अगस्त्य दर्शनार्थ आए थे। स्वतंत्रता आंदोलन का दौर था। महात्मा गांधी के शांतिपूर्ण स्वतंत्रता आंदोलन और क्रांतिकारियों और चरमपंथियों के आंदोलन में स्वातंत्र्यवीर सावरकर अग्रणी थे। महाराष्ट्र में अहमदनगर जिले के अकोले तहसील में भी क्रांति की हवा चल रही थी। गणेश जगन्नाथ जोशी, धुमाळ, नवले आदि के नेतृत्व में स्वतंत्रता के विषय में विचार हो रहा था। भूमिगतों को आश्रय देने का कार्य हो रहा था। उस समय तहसीलदार उस क्षेत्र का राजा माना जाता था। अंग्रेजो की ताकत

उसके मुख से दौडती थी। अधिकारियों के बीच यह दिखाने के लिए प्रतिस्पर्ध्दा हुआ करती थी कि, हम ब्रिटिश सरकार के सर्वाधिक आज्ञाकारी, एकनिष्ठ सेवक हैं। अकोले तहसील के लिए शेख नाम का एक बहुत ही अहंकारी हिन्दुद्वेष्टा तहसीलदार था। स्वतंत्रता आंदोलन को नामशेष करने के लिए दहशत निर्माण करने का उसका प्रयास रहता था।

''शेख तहसीलदार को समाचार मिला की, अगस्त्य आश्रम में कुछ साधु निवास करने आए हैं। उसने एक रिपोर्ट बनाई कि, वे साधु नहीं अपितु साधुओं के भेंस में चरमपंथी क्रांतिकारी है। इन क्रांतिकारियों को परास्त करनेके लिए सबसे पहले उसने दहशत निर्माण करके उन्हें भ्रष्ट करने का निर्णय लिया। वह अपने दल के साथ अगस्त्य आश्रम आया। उसने पुलिस को साधुओं को पकडकर लाने का आदेश दिया। साधुओं को पकडकर अगस्त्य कुंड पर लाया गया। वहाँ उनसे पूछताछ शुरू हुई। जाँच का वह एक निरंकुश नाटक मात्र था। किसी भी प्रकार से साधु क्रांतिकारी होने को स्वीकार नहीं कर रहे थे। साधुओं ने पुलिस को बताया,

''हम उदासीन बाबा के आखाडा के साधु, तीर्थाटन करते हुए यहाँ अगस्त्य दर्शन हेतु आए हैं।'' साधुओं ने बारंबार उन्हें समझाने का प्रयास किया। किन्तु दर्पोन्मद तहसीलदार शेख उसे स्वीकार करना ही नहीं चाहता था। उसने दो नाइओं को बुलावा भेजा।

''मुनि अगस्त्य की समाधि के सामने अगस्त्य कुंड पर, उन साधुओं का क्षोर किया, पूरी तरह से मुंडन करके उन्हें भ्रष्ट कर दिया। पास से गुजर रहे ग्रामवासियों ने इसे देखा तो उनका खून खौल उठा। कुछ ग्रामवासियों ने पुलिस को रोकने का प्रयास किया। तथापि उनके अनुरोध को कौन स्वीकार करनेवाला था?

''इस घटना की सर्वत्र चर्चा होने लगी। चर्चा ने उग्र रूप धारण किया। गणेश जगन्नाथ, धुमाळ आदि नेताओं तक समाचार पहुँचा और उन्होंने इस पर कुछ करने का निर्णय लिया। वातावरण तणावपूर्ण होता गया। साधुओं को कारागृह में डाल देने से आग में घी डाल दिया गया। गणेश जगन्नाथ और धुमाळ के नेतृत्व में समूचि अमृतवाहिनी प्रवरा घाटी जागृत हुई। कुछ तो करना चाहिए। चर्चाएं होने लगी। बैठकों का आयोजन होने लगा। इस विचार से लोग प्रेरित हो

रहे थे, कि शेख तहसीलदार को ही नहीं अपितु ब्रिटिश सरकार को भी दहशत होनी चाहिए।''

''आधी रात से भी अधिक समय बीत चुका था। पहले मुर्गे ने बांग दी और गहरी नींद से प्रवरा परिसर घबडाकर जाग गया। अग्निस्वरूप, रुद्रावतारी अगस्त्य गहरी नींद में सोए हुए सभी को स्वप्न में उन्हे आदेश दे रहे थे।

''हे नपुंसको, गहरी नींद में सोए हो। उठो, जागो, संघटित हो जाओ और निरपराध साधुओं को भ्रष्ट करने वाले, निरपराध गरिबों का शोषण करने वाले निरंकुश अधिकारियों को भस्मसात कर दो।''

''सभी ग्रामवासी आपस में एक दूसरे से स्वप्न का अनुभव बता रहे थे। सभी विस्मित थे कि, कैसे सभी को एक जैसा स्वप्न दिखाई दिया। सब के कानों में महर्षि अगस्त्य के शब्द गूँज रहे थे।

''निरपराध साधुओं को भ्रष्ट करनेवाले, निरपराध गरिबों का शोषण करने वाले निरंकुश अधिकारियों को भस्मसात कर दो।''

''चक्र घुमने लगा। समूचा डांगाण, पेहरा खाडी, अगस्त्यपुरी अकोलकर, ग्रामवासी सभी जो भी हथियार मिला उसे लेकर अकोले में प्रवरा तट पर इकट्ठा हुए। वाणी के दुकान से मिट्टी के तेल के डिब्बे उठाकर लाए गए। तहसीलदार के निवास को घेर लिया गया। लोग अंदर घुस गए। उन्होंने मिर्च की बोरियाँ घर में फेंक दी और उसे आग लगा दी। पत्नी और बच्चे बाहर निकल आए। तहसीलदार की बेगम और बच्चों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया गया।

''जब यह सब चल रहा था, टेलिग्राम के तार तोड दिए गए। रास्ते में, गलियों में बडे बडे वृक्ष काट कर रख दिए। अकोले एक द्वीप जैसा बन गया था। तहसीलदार बाहर ही नहीं आ रहा था। 'हर हर महादेव', 'अगस्ती महाराज की जय' के जयघोष से समूचा परिसर गूँज उठा। अंततः तहसीलदार को जला देने का निर्णय लिया गया। आग लगा दी गई। चारों ओर से बाडा जलने लगा। आग भडक गई। पीछे के द्वार से शेख तहसीलदार बाहर निकलने का प्रयास कर ही रहा था कि सहसा द्वार पर ही उस पर अविलंब कुल्हाडी से प्रहार होने लगे। तहसीलदार ने वहीं पर दम तोड दिया। ग्रामवासियों ने तहसीलदार शेख को पल भर में मृत्यु के घाट उतार दिया। प्रतिशोध की ज्वाला शांत हुई थी। किन्तु रात्रि के अंधकार को चीरती हुई विजयोल्लास की आवाज गुँजी, 'तहसीलदार को मार

डाला, तहसीलदार को मार डाला', 'अगस्ती महाराज की जय', 'हर हर महादेव' की घोषणा से आकाश हिल गया। ब्रिटिश सरकार कंपित हुई। तुरंत घटना स्थल पर पुलिस भेजी गई। क्रांतिकारियों को पकडने के आदेश दिए गए। गणेश जगन्नाथ अपने साथियों सहित भूमिगत हुए। पुलिस ने समूचा अकोले तहसील छान डाला किन्तु कुछ भी पता न चला। अंत में कुछ विश्वासघातियों ने अपना काम किया। नेताओं को गिरफ्तार किया गया। उन्हें सजा दी गई। अंदमान कारागृह भेजा गया। संयोग से उस समय स्वातंत्र्यवीर सावरकर भी अंदमान के कारागृह में थे। अगस्त्य परिसर का आतंक आज भी अहमदनगर जिले की स्मरण में है।

*

''अगस्त्यपुरी अकोले के दगडू आसाराम बाहेती नाम के एक बडे सेठ साहूकार थे। किसान, मजदूर, विपत्ति के मारे लोगों को दोगुना अथवा उससे भी अधिक ब्याज दरों से ऋण देता था। एक बार उसने एक संकल्प किया। उसने अगस्त्य ऋषि की संगमरमर की मूर्ति स्थापित करने का निश्चय किया। अगस्त्य भक्तों को उसका यह विचार बहुत अच्छा लगा। सभी ने सोचा कि अगस्त्य मंदिर का जीर्णोद्धार किया जाएगा और एक बडा धार्मिक समारोह होगा। अकोले, संगमनेर और नासिक जिले तक सभी जगह चर्चा होने लगी। अगस्त्य मुनि की संगमरमर की मूर्ति स्थापित की जाएगी। कुछ दिनों के पश्चात अगस्त्य मुनि की एक मूर्ति बाहेती के घर आईं। उन्होंने उसे अपने घर में रखा। मूर्ति का दर्शन लेने के लिए ग्रामवासियों की भीड लगने लगी।

''दूसरी ओर सेठ जी मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा की तैयारी करने लगे। हरिनाम सप्ताह का आयोजन किया गया। इसमें दुंडा महाराज से लेकर अनेक प्रसिद्ध कीर्तनकारों के कीर्तन का आयोजन किया गया। आसपास के परिसर से भजन समूहों का ताँता लगने लगा। वासुदेव रामचंद्र धर्माधिकारी की सहायता से महत्वपूर्ण क्षेत्र से वेदशास्त्र संपन्न विद्वान ब्राह्मणों के आगमन के समाचार आने लगे। काशी, पैठण, नासिक आदि स्थानों से विद्वान ब्राह्मण आने वाले थे। अन्नछत्र का आयोजन किया गया। प्राणप्रतिष्ठा की तैयारी पूरी कर ली गई। प्राणप्रतिष्ठा से पहले अगस्त्यपुरी से अगस्त्य के मूर्ति की भव्य शोभायात्रा होनी

थी। शोभायात्रा के लिए रथ तैयार किया गया। परिसर के ग्रामवासी अपनी बैलगाडियाँ, बैलजोडियाँ लेकर आएं। सौ पाँच सौ बैलजोडियाँ रथ को जोती गई। रथ खींचने के लिए बडी संख्या में लोग आगे आए। लोग बडे उत्साह से शोभायात्रा में शामिल हुए थे। गाँव मे बडी धूमधाम से शोभायात्रा चल रही थी।

''पूरा गाँव सुशोभित किया गया था। महिलाओं ने रंगोली सजाई थी। मार्ग पर फूल बिखेर दिए थे। साजशृंगार करके महिलाएँ अगस्त्य प्रतिमा की आरती उतारने के लिए तत्पर थी।

'अगस्ती महाराज की जय' इस घोषणा से अगस्त्य पुरी गुँजने लगी थी। लोग अपने घर के सामने खडे होकर अबीर, फूल बिखेर रहे थे।

''एक ओर अगस्त्य मंदिर में ब्रह्मवृंद का होमहवन की तैयारी का काम चल रहा था। मध्यान्ह को प्राणप्रतिष्ठा होने वाली थी। इसी को ध्यान में रखते हुए शोभायात्रा का आयोजन किया गया था। ब्रह्मवृंद ने प्राणप्रतिष्ठा समारोह आरंभ किया।

''मंदिर के गर्भगृह में अगस्त्यों का 'तांदळा' था। इसकी स्थापना कब और किसने की, या स्वयंभू था, कोई नहीं जानता था। उस तांदळा को हटाकर उस स्थान पर अगस्त्य मूर्ति की स्थापना होनी थी। ब्रह्मवृंद ने विधिपूर्वक मंत्रोच्चार करके तांदळा हटाने के लिए अनुमति दी और सब्बल आगे बढे। खुदाई शुरू हुई। चारों ओर से तांदळा खुला हुआ, किन्तु नीचे जमीन में मजबुती से गाड दिया गया था। आसानी से उसे हटाया जाएगा, ऐसा अनुमान था। किन्तु सभी प्रयास असफल रहें। तांदळा टस से मस नहीं हो रहा था। जो खुदाई का काम जानते थे, उन्होंने सुझाव देना आरंभ किया। कुछ लोगों ने आगे बढ़कर कोशिश की, किन्तु नाकामयाब रहे।

इस पर भी मूर्ति कैसे नहीं हिलती, इसका क्या उपाय करना है? इस विषय पर चर्चा होने लगी। समय बीतता गया। प्राणप्रतिष्ठा के मुहूर्त का क्षण भी बीतने लगा। ब्रह्मवृंद ने सभी संभावित उपायों की कोशिश की। बाहेती ने तांदळा के

---

(*तांदळा– अश्मयुगीन काल में जंगल का महत्व ध्यान में आया। जंगल की रक्षा करने के लिए ईश्वर पर श्रद्धा बढी। वन राज्य की रक्षा करनेवाली देवता की प्रतिमा एक निराकार शीला से बनाई जाती है। उसे सिंदूर लगाकर देवता के रूप में स्थापित करते है, इसे तांदळा कहा जाता है।)

आगे साष्टांग दंडवत कर क्षमा माँगी। ग्रामवासियों में पाप-पुण्य, छूआछूत, को लेकर विवाद होने लगे। किन्तु सभी को हिलाने वाले अगस्त्य अचल बने रहे। हिलने के लिए तैयार ही नहीं थे। पुनश्च मंत्रोपचार पूर्वक आवाहन किया गया. अंतिम उपाय के रूप में सब्बल चलाए गए। कुछ क्षण के लिए तांदळा हिलने का आभास हुआ। सैंकडो वर्षों से उस पर लगाए गए सिंदूर का कवच गिर पडा और सब्बल चलाने वाले पसीना पसीना हो गए। 'अगस्त्य कोपित हुए!' सहसा, कोलाहल मच गया। शोभायात्रा द्वार पर आकर रुक गई। मूर्ति लेकर कुछ ग्रामवासी भीतर आए। अगस्त्य भक्त चिल्ला उठे, 'अब मूर्ति मत बिठाओ। अगस्त्यों को शांत हो जाने दो, अन्यथा सब कुछ भस्म हो जाएगा।' सभी के मन में एक ही विचार था, 'क्या किया जाए, कैसे मार्ग निकाले।' कुछ समझ नहीं रहा था। गर्भगृह में नीरव शांति थी। कार्य ठप हुआ था। पंच एक साथ इकट्ठा हुए। विचार हुआ। धर्माधिकारी और मुखिया, संत, अगस्त्य भक्तों ने एकत्रित विचार किया। पंचों के सामने रखा गया। सभी सहमत हुए। पंचमंडली, ब्रह्मवृंद एकत्रित ग्रामवासियों के सामने खडे हुए। धर्माधिकारी ने घोषणा की, 'अगस्ती महाराज की जय।' सभी के मुख से निकले जयघोष की ध्वनि से वातावरण गूँज उठा। धर्माधिकारी ने सब से अनुरोध किया,

''देखिए, अब सब हाथ जोडो और कहो, हे ब्रह्मर्षि अगस्त्ये, हम सब आपकी संतान है। हमने आपकी पूर्व विद्यमान प्रतिमा को स्थानांतरित करने और नई मूर्ति को स्थापित करने के लिए आक्रमण किया था। हम से भूल हुई। हम निर्बोध बालक हैं। हमें क्षमा करें, क्षमा करें, क्षमा करें। आप शांत हो जाइए।'' धर्माधिकारी के पीछे सब दोहरा रहे थे। जनसमुदाय शांत हुआ। तब धर्माधिकारी पुरोहित ने कहा,

''कहो, हे अगस्त्य नारायण, हे अगस्त्य सिद्धेश्वर, हम से भूल हुई। हम आपको नहीं हिलाएंगे! नहीं हिलाएंगे! नहीं हिलाएंगे!' जनसमुदाय धर्माधिकारी के पीछे श्रद्धापूर्वक कह रहा था। तद्नंतर धर्माधिकारी ने भीड को संबोधित करते हुए कहा,

''पंचों का निर्णय हुआ है। हमारे दगडू सेठ बडे भक्तिभाव से मूर्ति बनाकर ले आए हैं। हम उस मूर्ति को अगस्त्यों के तांदळा के पीछे स्थापित करेंगे। हम सभी ने अगस्ती महाराज के सामने नाक रगडी हैं। आइए, हम तांदळा को

समारोहपूर्वक पुनः प्राणप्रतिष्ठा से स्थापित करते हैं। यह स्थान अगस्त्यों का मूल और मुख्य समाधिस्थान होने का प्रमाण उन्होंने हमें दिया है। इसलिए, तांदळा के पीछे अगस्त्यमूर्ति, यह इस स्थान की विशेषता होगी! कहिए, 'ब्रह्ममहर्षि, शिवविष्णुरूप अगस्ती महाराज की जय।'

धर्माधिकारी की बातों से सभी सहमत हुए और समारोह के कार्यक्रम आरंभ हुए। अकोले अगस्तीपूर का यह स्थान विश्व के अगस्त्य स्थानों में सबसे अनोखा स्थान है। यहाँ महर्षि अगस्त्य का चैतन्य स्वरूप में सदैव वास होता है, इसकी निरंतर अनुभूति होती है।

* * *